उत्तर साकेत

प्रथम खंड

सोहन लाल 'रामरंग'

उत्तर साकेत

राज्याभिषेकोपरान्त श्रीराम कथा

प्रथम खंड
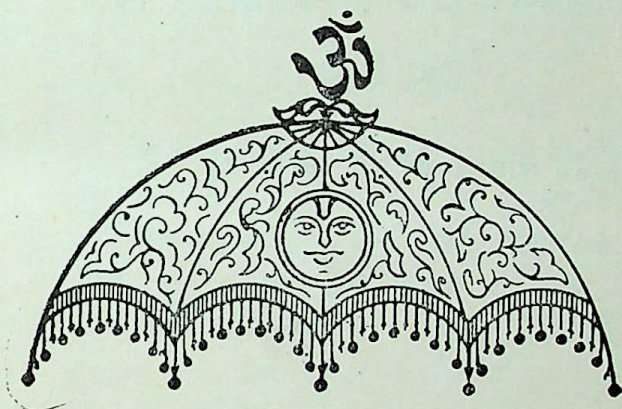
द्वितीय संस्करण : एक निवेदन

समादरणीय पाठक वृंद !

उत्तर साकेत का विधिवत् विमोचन भारत के महामहिम उपराष्ट्रपति मान० डा० शंकर दयाल जी शर्मा के द्वारा सम्पन्न हुआ। यह ग्रंथ समस्त भारतीय भाषाओं में अपने विषय का प्रथम ग्रंथ है जिसे अनेकानेक धर्माचार्यों ने जहां मान्यता प्रदान करते हुए आशीर्वाद दिया है वहीं साहित्यिक जगत की मूर्धन्य विभूतियों ने भी इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अनेकानेक टिप्पणियों में से कुछ को संलग्न करने का लोभ हम भी संवरण नहीं कर पा रहे हैं। वे ही हमें द्वितीय संस्करण की प्रस्तुति हेतु उत्साहित कर रही हैं। अन्यथा तो स्वान्तः सुखाय लेखक और श्रद्धाभिभूत प्रकाशक के वश में विशुद्ध व्यावसायिक होना नहीं है। आपने जो स्नेह और सम्मान इस महती कृति को प्रदान किया है, यह हमारे लिये प्रत्यक्ष गौरव का ही विषय है।

हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि आपका यही सात्विक संबल हमें सदैव प्राप्त होता रहेगा।

श्रीरामनवमी, २०४८ वि० सं० प्रकाशक

आवेदन

श्रीरास-रंग-रँगीली विभूतियो !

सहस्रशीर्ष-पुरुष की निष्कलुष विराट-छवि से प्रतिद्वन्दिता सी सी करती हुई, नवीन मेघमालाओं की विश्रामस्थली गिरिराज हिमालय की सुशुभ्र शीतल हैमालिनी से विभासित शिखरराज गौरीशंकर की हरित चरण-पीठिका उपत्यका-राजि से लेकर भगवती कन्याकुमारी की सुपंजु चिबुकस्थित दिव्य हीरक-मणिका की महज्ज्योति से ज्योतिर्मयी सिंधु-त्रिवेणी तक एवं शाश्वत् ऋतुव्यूहों तथा समय-समूहों की परिधियों की स्पष्टतः अवहेलना सी करते हुए, आकाश-मण्डल की सुरम्य रासस्थली की समीरण-गोपिका-मंडली में सतरंगी-छवि धारण कर प्रभु रणछोड़नाथ के ही रसिकेश्वर-विग्रह के उपमान-स्वरूप प्रभु रणछोड़नाथ के ध्वजराज की अभय छत्रछाया से गौरवान्वित प्रतीची-प्रमोदिनी सौराष्ट्र की धरती से लेकर, जन-गण-मन मंथनकारी अनंगदेव मन्मथ के भी मन को युग-युगान्तर से मथती हुई नित्य-प्रति अभिनव मेघमालाओं से सतत् अभिषिक्त जगदंबिका कामाक्षी की विचित्र चित्रशालिका से सुशोभित गोहाटिका की सुदूर प्राची-क्षितिजस्पर्शिनी वरदा-मुद्रामयी भुजवल्लरी की सुदीप्ति से उद्दीप्त इस अपनी जन्मभूमि-मातृभूमि-पुण्यभूमि-धर्मभूमि भारतभूमि में यों तो अनेकानेक भाषायें हैं। आंचलिक बोलियों के रूप में उनका भरा-पूरा परिवार है। उनकी विविध विधायें हैं, शैलियें हैं और अनेकानेक महिमामयी विभूतियों द्वारा विरचित, गणित का उपहास सा करती हुई अगणित ग्रंथावलियां आज भी, उस समय भी उपलब्ध हैं जबकि न जाने कितने दानव हमारी सुकूटनीति के अपराजेय को दुर्ग हमारी

नातिच्युति को खंडता एवं अपनी कूटनीति की धूर्तता से अनेकता में परिवर्तित कर अनेकानेक बार हमारे ग्रंथागारों को ध्वस्त कर अपने हरमों के हम्माम गर्म कर चुके हैं। अपार पांडुलिपियां सात-समन्दर पार ले जा चुके हैं। उनके विषय की तो कौन कहे उनके नाम तक बताने को तैयार नहीं हैं, परन्तु उनके निर्दिष्ट मार्ग पर चल कर अनेकानेक प्रयोगों द्वारा विश्व को चमत्कृत कर रहे हैं। चोर शहन्शाह और साहूकार भिखारी बना बैठा है। विधि की विडम्बना कहने के अतिरिक्त इसे आज और कहा ही क्या जा सकता है जब कि स्वतंत्र भारत के अधिकांश राजनेता अपनी जननी की अस्मिता के उन्हीं लुटेरों से सस्मिता-वाणी में वार्तायें करके कृतार्थ हो रहे हैं।

अस्तु, फिर भी संस्कृत से लेकर अन्य अनेकानेक भारतीय भाषाओं का जो लिपिबद्ध साहित्य प्राप्त हैं उसे देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है मानो उसमें भारतमाता की आत्मा का स्वरूप धारण कर स्वयं वाग्देवता भगवती सरस्वती ही अपने मानस में उन्मत्त-भाव से सस्मित विहार कर रही है और अपनी भारतभूमि उस भव्य-भावमय जंगम-मानसरोवर की अदृष्ट-अश्रुत-अलभ्य-अनुपम अलौकिक मणि-माला-मंडित मेखला उसी प्रकार बन गई है जैसे अचलराज के अंक में अचल उस सरोवरराज मान को राजराजेश्वर के निर्जरवासंती–विभूषित चैत्ररथ-उद्यान की वाटिका-माला घेर कर अपने सौभाग्य-गौरव और वैभव की श्रीवृद्धि कर रही हो। यद्यपि इस वृत्ताकर साहित्य-मेखला में चतुर्दिक गुंफित अनेकानेक आदर्श कथामालाओं की लड़ियां उसे अपरिमित शोभा प्रदान कर रही हैं परन्तु श्री-राम-चरितावलि तो 'तरलो हारमध्यगः' के समान उस शोभा की सुशोभित देह-यष्टि की स्वयंसिद्ध प्राण-शक्ति ही है। श्रीरामकथा को पृथक कर भारतीय-साहित्य का मूल्यांकन तो क्या होगा अपितु उसके अस्तित्व की कल्पना करना भी, जलराशि पर रेखा पर रेखा खींचते हुये उनको स्थिरता देने के प्रयास में अपनी ही अज्ञता का प्रदर्शन कर अपने को उपहासास्पद बना देने जैसा है।

परम्परागत रूप से जिनके मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सम्पूर्ण सात्त्विकता सहित श्रीराम के गुणातीत अनिर्वचनीय गुणमाहात्म्य,

रूप-पूजा-स्मरण-दास्य-सख्य-कांत - वात्सल्य-आत्मनिवेदन-तन्मयता-परमविरही किसी भी भाव के वशीभूत होकर उनके दिव्य ईश्वरीय स्वरूप के प्रति मन-वचन-कर्म से पूर्णतः समर्पित हो गए हैं, उनके लिये तो परम-प्रेमरूपा-अमृतस्वरूपा भक्ति ही उनकी स्वप्न-सुषुप्ति-जागृति-तुरीय भूत-भविष्य-वर्तमान लोक-परलोक स्वकीयता-परकीयता की एकमात्र स्वामिनी ही हो जाती है। उनकी दृष्टि तो एकमात्र 'राम-काज' पर ही केन्द्रित हो जाती है। उनके लिये तो ईश्वर से विमुख करने वाली माया के द्वारा दिए गए नाना प्रकार के शरीरों को देने वाला कौतुक ही स्वयमेव निष्प्राण नहीं हो जाता अपितु उनके लौकिक-दृष्टि के गुण-अवगुण करणीय-अकरणीय उनके द्वारा संपन्न होकर उस माया को निष्प्राण-शरीर के समान भस्म करने वाले ईंधन ही सिद्ध होते हैं। यज्ञभूमि में मेघनाद का वध और आबाल-वृद्ध नर-नारी पशु-पक्षी परिपूरित लंका का दहन इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। यद्यपि साधन के महत्त्व को स्पष्टतः नकारा तो नहीं जा सकता किंतु साधक के समक्ष उसका साध्य ही सर्वदा प्रमुख रहता है, य त्रकाल सत्य है।

संभवतः आपको ऐसा लग रहा होगा कि मैं विषयांतर हो रहा हूं परन्तु मैं जिस ओर आपका ध्यान विशेषतः आकर्षित करना चाहता हूं, यह उसी की भूमिका मात्र है। यहाँ यह सब कहने का मेरा तात्पर्य यही है कि ऐसी एकनिष्ठ-अव्यभिचारिणी प्रकृति की स्वामिनी जो विभूतियाँ हैं वे तो श्रीराम के अतिरिक्त अन्यत्र रम ही नहीं सकतीं परन्तु जिन्हें 'नव' के व्यामोह ने घर-घर घाट-घाट भटकाया है, उन्हें भी शांति श्रीरामचंद्र के चरित्र का गायन किए बिना नहीं मिली। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आश्यकता नहीं, आप प्रत्येक भारतीय-भाषा के प्रत्येक गद्य-पद्य-नाटक-चंपू को देख लें, वह श्रीराम की चर्चा अनायास स्वाभाविक रूप से करता हुआ प्रत्यक्षतः दृष्टि-गोचर हो रहा है। वह किसी भी बंधन अथवा वाद से ही क्यों न प्रेरित हो

किंतु जो राम, मरने-जीने उठने-बैठने हंसने-रोने मिलने-बिछुड़ने सब में प्राण-शक्ति के समान इस भारतीय-संस्कृति के रोम-रोम में युग-युगान्तर से प्रविष्ट हो गया है, उससे अछूता कौन रह सकता है? और जब जिससे अछूता नहीं रहा जा सकता, पृथक नहीं हुआ जा सकता तो फिर आंचल की ओट कर-करके उसे तांकना, क्या कहा जायेगा? वैशाख और जेठ की तपती हुई लुओं में, गंगा के सुरम्य-तट पर बैठ कर, उसकी लहरों से अँगुलियों के पोरवों से खेलते हुए असह्य-पिपासा के कारण प्राण छोड़ देने वाले को दुर्भाग्य नहीं तो और क्या कहा जायेगा?

अस्तु, मूल-विषय की चर्चा करते हुए ही विनम्रता-पूर्वक मेरा आवेदन है कि जिनकी इस प्रकार की इष्ट-विषयक रति नहीं है, वे भी देखें सोचें समझें विचारें कि केवल-मात्र भारतीय-साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य में भी श्रीरामचन्द्र के व्यक्तित्व की समता करने की क्षमता रखने वाला अन्य कौन सा चरित्र दृष्टिगोचर होता है? आकाशस्थित आदर्श को अत्यन्त सहज भाव से धरती के कण-कण में यथार्थ के रूप में रमाने की सामर्थ्य जानकीनाथ के अतिरिक्त और किसमें दृष्टिगोचर होती है? अनुराग और वैराग्य, शौर्य और धैर्य, सौन्दर्य और ऐश्वर्य, द्रवितता और निश्चलता नीति और कृति इन परस्पर विरोधी भावों को अविरोधी बनाकर मर्यादा की परिधि में बाँधने वाला एकमात्र मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीदशरथ-राजकिशोर प्रभु श्रीरामचन्द्र का चरित्र-समुद्र ही है। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि समस्त सद्गुणों का समुदाय एकत्रित होकर सरिताओं के रूप में इस सागरराज के अंक में प्रविष्ट हो गया है अथवा इन्हीं सरिताओं के रूप में इसी गिरिराज के अंक से निःसृत होकर समस्त भुवन मण्डल को हरितिमा का प्रकाश-पुंज प्रदान कर रहा है। साहित्याचार्यों के द्वारा एक रचना नायक के लिए धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित अथवा धीरप्रशांत होना आवश्यक माना गया है परन्तु श्रीराम

ऐसे नायक हैं कि ये नायक-चतुष्टय उनके एक-एक चरितांश के लघु-तम अंश बन कर रह गए हैं। ऐसे लोकोत्तर गुणव्यूह विभूषित चरित्र से किस सहृदय का चित्त स्वतः आकर्षित नहीं हो जायेगा ? उसी के प्रतिफलस्वरूप श्रीराम के एक-एक चरितांश पर एक-एक रचना रच कर भी उनके रचयिता अनायास आचार्य-श्रेणी में सुशोभित हो गए। यद्यपि अनेकानेक बार अनेकानेक ढंग से एक ही श्रीराम के चरित्र को अनेकानेक ऋषियों-मनीषियों-कवियों ने वर्णन किया परन्तु उसके चिर-नावीन्य में किसी प्रकार का अंतर नहीं आया। हां, अंतर (हृदय) में अवश्यमेव ऊर्ध्वमुखी भावना ने चैतन्य होकर जड़ों में चेतना की वह अलौकिक वासंती-वाटिका लगादी कि उसके विषय में यह कहना कठिन है कि श्रीराम कथा उस शाश्वत् वसंत की जन्म-स्थली है अथवा वह यहाँ प्रवेश कर उसे अपनी शाश्वत् रमणस्थली बना बैठा है या अपने यौवन को शाश्वत् बनाने के लिए वह श्रीराम की अभया-वरदा मुद्राओं का ध्यान करता हुआ स्वयमेव समाधिस्थ होकर साधना की कांति से, सिद्धि को अक्लांत प्राप्ति से सुसिद्ध सा इस रमणस्थली में सहज विभासित हो उठा है।

जिस राम-नाम की रमणीयता योगियों की चित्त-वृत्तियों को अपने में रमण करने के लिए बाध्य कर देती है तो सांसारिकजनों का तो फिर कहना ही क्या ? एक ओर तो 'रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस विशेष जाना तिन्ह नाहीं ॥' और दूसरी ओर 'राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाए सहज संभाव्य हैं ॥' मनीषि-गण श्रीराम-तत्त्व का साक्षात्कार किए बिना नहीं कह गए। मुझ जैसे नगण्य-जीव के हृदय में भी उन्हीं अकारण-कारण कृपालु करुणा-वरुणालय भगवान् जानकीनाथ ने ही प्रवेश कर अपनी वात्सल्य-भावना से प्रेरित कर भगवती सरस्वती के द्वारा प्रसारित श्रुतलेख को अनेकानेक अभावों में सुनने और लिपिबद्ध करने की शक्ति प्रदान की। उसी उत्तर-साकेत का लिपिक यह आपका दासानुदास है। इसमें

जो त्रुटियें हैं वे मेरी दूषित-वृत्तियों की द्योतक हैं, मेरी अल्पज्ञता की प्रतीक हैं और जो इसमें आनन्द है वह श्रीराम का प्रसाद है। मैं तो इतना ही कहूंगा कि--

श्री श्री विकासो वागीश वासो, भाषा सुहासो वाचा विलासः।
वाणी सुवाणी साल्हाद मानं, ब्राह्मीस्वरूपो रामप्रसादः।।

अनन्तश्री विभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्ण-बोधाश्रम जी महाराज (ज्योतिर्पीठ), राष्ट्रकवि श्रीयुत् मथिलीशरण जी गुप्त (दद्दा), आचार्य श्री पं० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी, श्रीयुत् मा० स० जी गोल्वलकर (गुरुजी) महाकवि श्री सूर्यकांत जी त्रिपाठी निराला, सेठ गोविन्ददास जी, शास्त्रार्थ महारथी पं० माधवाचार्य जी शास्त्री, शास्त्रार्थ महारथी पं० रामचंद्र जी देहलवी, राष्ट्रकवि श्री रामधारीसिंह जी दिनकर, श्री हरिकृष्ण जी गुप्ता प्रभृति ब्रह्मलीन विभूतियों एवं पूज्य-पाद पं० ईश्वरप्रसाद जी आत्रेय, रामकथा-मर्मज्ञ समादरणीय पं० कपीन्द्र जी महाराज, ऋषितुल्य पद्मश्री डा० कृष्णदत्त जी भारद्वाज, श्रद्धेय डा० हरिवंश राय जी बच्चन, श्रद्धेय पं० गोपाल-प्रसाद जी व्यास, प्रसिद्ध कवियित्री सुश्री डा० सरोजिनी महिषी जी, प्रसिद्ध चिंतक श्री हरिकृष्ण जी गुप्त आदि आचार्यजनों ने जो समय-समय पर मार्गदर्शन प्रदान किया, उनके लिए उनका किन शब्दों में अभिनंदन करूँ वे तो मुझे दृष्टिगोचर नहीं हो रहे, किन्तु वे मेरे हृदय की भावना हृदय से ग्रहण करें, यहीं विनम्रतापूर्वक निवेदन है।

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ के निर्माणकाल में जयसाव समिति एवं प्रकाशन में दि दिल्ली रजि० स्टाक होल्डर्स (आयरन एण्ड स्टील) एसोसियेशन लि०, एक सबल माध्यम क्या वास्तव में एक सुदृढ़ आधार ही सिद्ध हुई हैं। जहाँ तक समादरणीय भैया जी श्रीयुत् सत्य-शीलजी की उदारता का प्रश्न है, तो इस सन्दर्भ में मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि मेरे हेतु कर्तापुरुष प्रभु श्रीरामचन्द्र की महती कृपा के करुणांश की प्रदीप्ति का दीपदंड अभी तक यही सत्पुरुष सिद्ध हुआ है।

इस ग्रन्थ के मुद्रण-कार्य में माननीय बंधुवर श्री महेशनारायण जी ने जितना परिश्रम-परामर्श आदि प्रदान किया है, उससे तो उऋण होने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।

यदि पूज्यपाद पं० करीन्द्र जी की अहैतुकी कृपा का पुनः अभिवंदन किये बिना यह चर्चा समाप्त करता हूं तो वह अक्षम्य कृतघ्नता होगी पर उनके चरणों में अभिवंदन के अतिरिक्त मुझ जैसा नगण्य व्यक्ति और कर भी क्या सकता है ? उन्हीं ब्रह्मलीन विभूति की कृपा ज्योति आज उनके मानस पुत्र पूज्यपाद आचार्यवर श्री नरेन्द्र जी महाराज में प्रविष्ट होकर मुझे परिपुष्ट कर रही है।

एक बात और शेष है, जिसे कहे बिना यदि मैं इस आवेदन को विराम दूंगा तो मैं निश्चित् रूप से पुनः कृतघ्नता का पात्र कहलाऊँगा, वह है मेरे परिवार का असीम संतोष और त्याग। जिन्होंने इस ग्रन्थ के रचनाकाल में विपरीत से विपरीत अभावग्रस्त परिस्थितियों का सामना दृढ़ता से किया। यदि उन्होंने पैर उखाड़ दिए होते तो क्या होता—राम जाने। आज के चकाचौंध करने वाले युग में इतना संयम असंभव नहीं तो सहज संभव भी नहीं है परन्तु यह सहज संभव श्रीराम के कृपा-कटाक्ष से ही हुआ, मुझे परम विश्वास है। प्रभु से यही प्रार्थना है कि इनकी यह आस्था-प्रवृत्ति-सहनशीलता स्थायी बनी रहे।

अंत में उन अनेकानेक कृपालु-सहयोगियों-मित्रों-विद्वानों को अनेकानेक बार प्रणाम करता हूं जिनकी चर्चा विशेष संकोचवश और कतिपय कारणों वश नहीं कर पाया हूं और जिन्हें वे जानते भी हैं और उचित भी मानेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। यह उन सभी की शुभकामनाओं का फल उन्हीं की करांजलि में "त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयेत्" की सात्त्विक भावनाओं से कर रहा हूं। स्वीकृति प्रदान कर अनुगृहीत करें।

आषाढ़ कृ० ६ वि० सं० २०३८ — आपका अपना ही

रामरंग

कथा की कथा—

वैसे तो प्रत्येक कथा अपने में स्वतंत्र भी होती है परन्तु फिर भी उसका कहीं न कहीं कुछ न कुछ न्यूनाधिक पूर्वापर-प्रसंग अवश्यमेव रहता है। यद्यिपि जन-साधारण के लिए उसका कोई विशेष महत्त्व कभी-कभी नहीं भी होता, वह तो अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अपने-अपने रस का ही ग्राहक होता है परन्तु विद्वज्जन-जिज्ञासुओं के लिए वह उसी प्रकार से आवश्यक होता है जैसे कुलीन-लोग कुल-शील आदि का परिचय पाये बिना सम्बन्ध-स्थापित करने की कल्पना भी नहीं कर सकते।

यद्यपि उत्तर-साकेत के नाम से ही प्रगट है कि यह श्रीराम के उत्तर-जीवनचरित्र से सम्बन्धित कथानक पर आधारित काव्य है, फिर भी जैसा कि मैंने अभी निवेदन किया पूर्वापर-प्रसंग प्रत्येक कथानक का कुछ न कुछ अवश्य रहता है तदर्थ पुनः निवेदन है कि उत्तर-साकेत की कथा वहीं से प्रारम्भ होती है जहां प्रातस्मरणीय गो० तुलसीदास जी ने श्रीमद्रामचरितमानस की प्रधान-कथा को विराम दिया है। उत्तर-कांड के ४९वें दोहे के पश्चात्—

हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिये सेवक सुख दाता।।
पुनि कृपालु पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग मँगावत भए।।
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिये उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे।।

तदनन्तर –

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गये जहाँ सीतल अँवराई।।
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई।।

और फिर देवर्षि नारद का आगमन-स्तुति-ब्रह्मलोकगमन और तत्पश्चात् तुरन्त ही भगवान् शंकर अपनी श्रोता भगवती पार्वती से सहसा कह उठते हैं—

गिरजा सुनहु बिसद यह कथा । मैं सब कही मोरि मति यथा ।।
उमा कहिउँ सब कथा सुहाई । जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई ।।
कछुक राम गुन कहउँ बखानी । अब का कहौं सो कहहु भवानी ।।

यह 'सब कही' और 'सब कथा' पूर्णतः विराम की द्योतक है । गोस्वामी जी ने "रामचरित सत कोटि अपारा" और आनंद रामायण-कार ने "शतकोटिमिता तेषां सर्वेषां गणनाकृता" कहकर भावी श्रीराम-कथाकारों का मार्ग प्रशस्त ही किया है । इधर-उधर न भटक-कर श्रीरामचरित-सरोवर में मज्जनार्थ आह्वान किया है । 'राम-चरित जे सुनत अघाहीं । रस विशेष जाना तिन्ह नाहीं ।।' का उद्घोष कर चेतावनी भी दी है कि जो श्रीराम-कथा को पूर्ण-विराम देने का दुस्साहस करेंगे उन्हें शिला के अतिरिक्त अन्य कोई संज्ञा नहीं दी जा सकती ।

अस्तु, उत्तर-साकेत के नायक श्रीराम श्रीमद्रामचरितमानस के नायक श्रीराम ही हैं अतः मानस के नायक को पाना है तो मानस में ही जाना होगा । मानस के उपवन से ही उत्तर-साकेत की कथा प्रारम्भ होती है—

"वे सीतापति राम, जहाँ विराजे मुदित मन ।
उपवन ललित ललाम, चल लेखिनि ! उस अवध के ।।

इसके पश्चात् तो फिर जैसा कि प्रथम-भुवन के मंगलाचरण के अंत में मैंने निवेदन किया है—

आगम-निगम - पुराण-अमित रामायण मंडल ।
संत-गिरा सद्-काव्य जनश्रुति-प्रचलित भूतल ।।
वय-अनुभव अनुमान भारतादर्श-समर्थित ।
यत्र-तत्र लघु-सूत्र दैव-प्रेरणा समन्वित ।।
अनुकंपा सिय - राम की, श्री विग्रह चित-चेत का ।
गुरु-पितु-आशिष अवतरण, यह उत्तर-साकेत का ।।
— के अनुसार इस उत्तर-साकेत की रचना हुई है ।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो प्रायः उत्तर-चरित की ओर नहीं

के तुल्य ही देखा है परन्तु श्रीराम के समकालीन आदिकवि महर्षि वाल्मीकि जी ने भी उतने विस्तार से उत्तर-चरित्र का वर्णन नहीं किया जितना कि रस के साथ पूर्व-चरित्र का किया है। संभवतः उसका कारण श्री जानकी-वनवास का सग्लानि पक्ष रहा हो। इसी कारण –

नाख्यातवानिदं युद्धं वाल्मीकिः पितृपुत्रयो।
यथाख्यास्यदमज्जिष्यल्लोकोऽयं करुणार्णवे ॥
श्रीजैमिनीयाश्वमेधपर्व ८५ १/२ ३६

(वाल्मीकि मुनि ने पिता-पुत्र के इस युद्ध का वर्णन नहीं किया है। यदि वे इसका वर्णन करते तो यह संसार करुणा के समुद्र में डूब जाता।)

यद्यपि आनन्द रामायण में उत्तर-प्रसंग बहुत विस्तार से है परन्तु अत्यधिक भाव-परक होने के कारण संकोच भी बहुत देता है। अध्यात्म रामायण में भी कुछ-सौ श्लोकों में ही इस चरितांश को ऐसे निबटा दिया जैसे निबटाना ही हो। कुछ इसी प्रकार की स्थिति अन्यान्य पुराणों और उप-पुराणों की भी है कि उनमें से किसी ने श्री-राम-चरित छोड़ा भी नहीं और कुछेक अपवाद स्वरूप को छोड़कर शेष ने विशेष रूप से राज्याभिषेकोपरांत कथा को छेड़ा भी नहीं। इतना ही नहीं 'यन्नभारते तन्नभारते' जिस संसार के विशालतम ग्रन्थ महाभारत के विषय में प्रसिद्ध है, उसमें भी महर्षि वेदव्यासजी ने वन पर्व में १७ अध्यायों और ७०९ श्लोकों में विस्तार से श्रीराम-चरित का वर्णन किया परन्तु राज्याभिषेक के पश्चात् वही मौन।

परवर्ती कवियों एवं नाटककारों का ध्यान यद्यपि इस ओर गया परन्तु कालिदास जी ने मात्र दो सर्गों में १९० श्लोकों में ही इसे समाप्त किया। रघुवंश के कलेवर और उसके कथा-प्रकार को देखते हुए इसे अपर्याप्त तो नहीं कहा जा सकता किन्तु फिर भी पर्याप्त भी कैसे कहा जाए ? महाकवि भवभूति जी के 'उत्तर रामचरितम्' नाटक का प्रधान विषय यद्यपि यह उत्तर-चरित ही है परन्तु ऐसा लगता है कि स्यात् उन्हें अपनी नायिका का धरती-प्रवेश रुचा

नहीं। अधिक विस्तार में तो कभी समय मिला तो कहूंगा परन्तु इतना अवश्य है कि पूर्व चरित से विस्तृत उत्तर-चरित से सावधानी-पूर्वक इन महर्षियों-मनीषियों-कवियों ने बचते हुए भी यत्र-यत्र ऐसे सूत्र कृपापूर्वक अवश्य छोड़े हैं कि उनके सहारे लक्ष्य पर अवश्यमेव सहज ही पहुँचा जा सकता है। आज आवश्यकता है उन बिखरे हुए सूत्रों को सावधानीपूर्वक जोड़ने की। ये सूत्र मेरे जैसे अल्पज्ञ से कितने ढूढ़े गये, जोड़े हुए कैसे लगते हैं यह तो विद्वज्जन जानें। रसिकजन पहचानें। यह एक लुप्तप्राय-परम्परा को प्रकाशित करने का एक क्षुद्र खद्योत का दुस्साहस अवश्य है किन्तु कभी-कभी यह दुस्साहस साहसी-जनों को कुछ ऐसे अलक्ष्य-लक्ष्य का भान गहन-अन्धकार में भी कुछ इस प्रकार अवश्य करा जाता है कि जिसके प्रकाश में आने पर बड़े-बड़े प्रकाश चुँधिया जाते हैं। परमेश्वर करे कि हमारे वे कविजन जो आज नव-व्यामोह में दिशाभाव में इतस्ततः भटके हुए से फिर रहे हैं उनका ध्यान इस चिर-पुरातन के इस नव-वेष के अभिनव शृंगार में लगे। एवं—

"भगति हेतु विधि भवन बिहाई। सुमिरत-सारद आवति धाई।।
रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ।।
कवि कोविद अस हृदय विचारी। गावहिं हरि जस कलिमल हारी।।
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगति पछताना।।

—के अनुसार वे हमारे भावी श्रीरामचरित-रचयिता मां सर-स्वती को मानस के अनुसार मानस से आह्वान कर, मानस में मज्जन करा उस जन-जन मानस-विहारिणी को प्रसन्न-मानस छवि प्रदान कर, जनमानस में सादर प्रतिष्ठित करें और "सरस्वती पुत्र' के अक्षय-पद की अक्षय-प्रतिष्ठा प्राप्त करें।

जहाँ तक इस कथानक के विषय में मेरे व्यक्तिगत दृष्टिकोण का प्रश्न है तो मैं यही कहूंगा कि प्रभु श्रीरामचन्द्र का चरित्र स्वयमेव चमत्कार पूर्ण है, उसे और किसी चमत्कार से पूर्ण करना उस चमत्कार का उपहास कराना ही होगा। वह किसी सुन्दरी की नाश-वान छवि तो है नहीं कि जिसकी ढलती हुई आयु को सुनहरी-मिट्टी मे

ढका जाये। वह तो परमसिद्ध महाविभूति की अलौकिक तेजोमय तपोमूर्ति है। उसे हीन-भावनावश किसी आवरण से ढकना, उसके अंग-प्रत्यंग की स्वतः प्रस्फुटित प्रदीप्ति के दर्शन से संसार को वंचित करके, उस महाविभूति एवं संसार दोनों के ही सम्मुख अपराधी के रूप में खडा होना है। वह तो पवित्र यज्ञाग्नि है जिसे जीवन का स्नेह, जन्मजन्मान्तर का शाकल्य, युग-युग की वासनाओं की समिधा तो समर्पित की जा सकती हैं, यह तो कर्तव्य हैं, धर्म है परन्तु उस पर क्षार डालने का अधिकार तो किसी को नहीं है। यदि कोई मूढ़ क्षार डालेगा तो वह अपनी क्षार को संसार की क्षारों में भटकने का दुर्भाग्यपूर्ण निमंत्रण ही देगा। उस मर्यादा की कौपीनवंती ज्योति की अर्चना तो साधना के पुष्पों और आराधना के चंदन से ही होनी चाहिए परन्तु देश-काल-परिस्थिति की प्रवृत्ति से अछूता तो नहीं रहा जा सकता। क्योंकि सर्वथा अछूता रहने वाला तो अछूत बन जाता है और सांगोपांग उस प्रवृत्ति को समर्पित हो जाने वाला जहां अपने अस्तित्व की अस्मिता को गँवा देता है वहाँ उस प्रवृति की उद्दंड बाढ़ का दुस्साहस भी बढ़ा देता है जो कि अंततोगत्वा समष्टि के विध्वंस का कारण बनती है।

आज के परिप्रेक्ष्य में जबकि समाज शताब्दियो की परकीय-दासता से मुक्त होकर भी परकीयत्व की दासता से आपादचूड़ जकड़ा हुआ है। उसकी रुचि, छवि सभी कुछ विकृत हो चुकी है। राजनैतिक-सामाजिक - सांस्कृतिक - धार्मिक - साहित्यिक-आर्थिक-नैतिक आदि समस्त मान्यतायें अभूतपूर्व पूर्वाग्रहों के पिशाच-झुंडों से पूर्णतः आक्रांत हो गई हैं और उसमें भी युवक-मनीषा की तो और भी अधिक दुर्दशा है। आस्था के अभाव में अनुभव-हीनता का दुष्प्रभाव और राष्ट्रीयता का बिखराव—

> "ग्रह गृहीत पुनि वातबस, तेहि पुनि बीछी मार।
> ताहि पियाइहि वारुणी, कहहु काह उपचार॥"

—की सी स्थिति उत्पन्न कर रहा है। उस युवक को शाप देने से अथवा कपूत घोषित करने से काम नहीं चलेगा। यह तो अपने को ही प्रकारान्तर से नष्ट करने की कुचेष्टा जैसी होगी।

'आचार्य देवो भव' 'मातृ देवो भव' 'पितृ देवो भव' ये नारे नहीं हैं। ये मंत्र हैं। मंत्र साधना से प्राणवान् होते हैं। साधनाहीन को सिद्ध मंत्र भी भयंकर विषधर सर्प बनकर डस जाते हैं। वेद-वेदांग का पंडित अपने स्तर से नीचे उतर कर जब बारहखड़ी और 'अ' से अनार तथा 'आ' से आम का ज्ञान करा कर अपने समान ही नहीं अपने से भी आगे का द्वार खोलकर दिखा देता है, तभी तो वह 'आचार्य देवो भव' कहला पाता है। रक्त से रक्त, मांस से मांस, शरीर से शरीर, प्राण से प्राण निकाल कर देने वाली, पुत्र को स्वामी का भी स्वामी बना देने की क्षमता रखने वाली देवी ही तो 'मातृ देवो भव' कहला पाती है। अपनी तनी हुई कमर को झुकाकर धूलि में लोटने वाले की अँगुली थाम कर अपने से ऊँचा बनाकर, अयाचना का स्थायी-भाव प्रदान करने वाला प्रबल पुरुष ही तो 'पितृ देवो भव' कहलाने का अधिकारी हो पाता है। कमर को झुका कर ही तो कमर के झुकने वाले समय का सुदृढ़ आधार तैयार किया जाता है। यह सब कुछ अनायास ही नहीं होता, सप्रयास होता है।

आज की युवक-मनीषा गर्भ से चक्रव्यूह का भेदन सीखकर प्रकट होने वाली नहीं है। छठी में शकट उलटने वाली और कलेऊ में अरुण की पिष्टक बनाने वाली नहीं है। इसे निमिष मात्र में सुरसा का 'शत योजन तेइ आनन कीन्हा' और कुंभकर्ण का 'योजन चार मूंछ रह ठाड़ी' वाला न तो तामसी स्वरूप समझ में आने वाला है और न ही—

'जिमि-जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ हरि भुज देखउं निज पासा ॥

और—

'उदर मांझ सुनु अंडजराया। देखेउं बहु ब्रह्माण्ड निकाया ॥'

वाला परमसात्त्विक रूप ही समझ में आने वाला है। सात्त्विक और तामसी दोनों ही माया विराट हैं। इसे तो इसकी काया में प्रविष्ट मस्तिष्क में ही प्रविष्ट होकर और उस समूचे मस्तिष्क को लेकर अपने हृदय के सुदृश्यों का अवलोकन करा कर उसके हृदय में प्रविष्ट होना पड़ेगा अथवा उसको उसके हृदय के शून्य का भटकाव दिखाकर अपने हृदय में से 'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्ण-

मादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।' की भांति पूर्ण का पूर्णहृदय समर्पित कराने के लिए पूर्ण हृदय ही समर्पित करना पड़गा । तब इसे गीता का वह रूप—

'अनादिमध्यांतमनतंवीर्यमनंतबाहु शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्त हुताशवक्त्रं स्वतेजता विश्वमिदं तपन्तम् ।।'

—सहज ही समझ में आ जायेगा । तर्कप्रधान मनीषा को तर्क से संतुष्ट करके ही विश्वास की सहचरी बनाया जा सकता है । प्रीति और श्रद्धा इसी युगल की संतानें हैं । पहले श्रद्धा के पश्चात् प्रीति जन्म लेती थी अब प्रीति के पश्चात् श्रद्धा जन्म लेती है । अनुजा अग्रजा और अग्रजा अनुजा बन गई है परन्तु इस भीषण दुष्काल में यह ही क्या कम सन्तोष का विषय है कि सहोदरा-भाव तो कम से कम बना हुआ है । यदि यह बना रहा तो अग्रजा फिर अग्रजा बन जायेगी और अनुजा फिर अनुजा बन जायेगी ।

अस्तु, इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर, पृथ्वी के विशुद्ध तल पर खड़े होकर उत्तर-साकेत की रचना हो, ऐसा प्रयत्न किया है । युद्ध के प्रसंगों में जैसा कि हमारे एक मित्र का कथन है कि कुछ चमत्कार सा आ गया है । तो मेरा निवेदन है कि उसके लिए अपने प्राचीन शस्त्रास्त्र, ज्ञान और विज्ञान की ओर दृष्टिपात करना ही होगा । इस सत्य के राजपथ को छोड़कर भ्रम की पगडंडियों में भटकते हुए वास्तविक प्रतिष्ठा के गंतव्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता । हमारे यहाँ वैष्णवास्त्र - ब्रह्मास्त्र - पाशुपतास्त्र - आग्नेयास्त्र - गरुड़ास्त्र ऐन्द्रास्त्र-शैलास्त्र-नागपाश-उच्चाटन-सम्मोहन-ज्वर-अनेकानेक माया-प्रपंचादि का बड़ा विस्तृत वर्णन है । उन्हें मान्य करना ही पड़ेगा । ये चंद्र-मंगल-शुक्र-बृहस्पति-शनिलोक आज के वैज्ञानिकों को कहाँ से दिख गए ? हमारे पुराणों में जिस-जिस प्रकार की रंगीन परिधियों-वलयों आदि का वर्णन है, वही तो वैज्ञानिक बोल रहे हैं । अणु-परमाणु बमों के निर्माण की कल्पना का बीजारोपण कहाँ से हुआ ? ये प्रक्षेपशास्त्र 'सोषौं वारिधि विशिख कृशानू' वाला वही बाण तो है, जिसे देखकर समुद्र के अभिमानी देवता ने कहा कि—

उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित्पुण्यतमो मम ।
द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान् ।।
उग्र दर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः ।
आभीरप्रमुखाः पापाः पिबन्ति सलिलं मम ।।
तैस्तु संस्पर्शजं प्राप्तैर्न सहे पापकर्मभिः ।
अमोघः क्रियतां राम तत्र तेषु शरोत्तमः ।।
बाल्मीकि रा० युद्ध० ३१-३२-३३/२२

(हे राम ! यहां से उत्तर की ओर अति पवित्र मेरा देश है। वह द्रुमकुल्य नाम से संसार में आपकी ही भांति प्रख्यात है। वहां पर भयंकर रूप वाले और भयंकर कर्म करने वाले पापी डाकू रहते हैं, जो मेरा जल पिया करते हैं। मुझे उनके स्पर्श भी सह्य नहीं हैं। आप अपने इस उत्तम बाण को वहीं गिरा कर सफल कीजिए।) और फिर—

तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां खलु विश्रुतम् ।
निपातितः शरो यत्र दीप्ताशनिसमप्रभः ।।३५/२२।।

(वह वज्र के समान प्रदीप्त बाण जहां गिरा, वह स्थान मरुकांतार 'मारवाड़' नाम से प्रसिद्ध हो गया।)

परन्तु—

वरं तस्मै ददौ विद्वान् मरवेऽमर विक्रमः ।
पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुतः ।।
बहुस्नेहो बहुक्षीरो सुगन्धिर्विविधौषधः ।
ऐवमेतैर्गुणैर्युक्तो बहुभिः सततं मरुः ।।
१/२/२२

(वह स्थान तीनों लोकों में मरुकांतार नाम से प्रसिद्ध हुआ, उस समुद्र-मध्यगत स्थान का जल सुखा कर दशरथनंदन श्रीराम ने उसे यह वर दिया कि यह देश पशुओं के लिए हितकारक, रोगरहित, फल-मूल-मधु-घी-दूध एवं अनेकानेक सुगंधित औषधियों से परिपूरित होगा।)

अब आप देखें कि द्रुमकुल्य (वृक्ष बहुल) प्रदेश मरु-कांतार (निर्जन मरुस्थल) बनाया और फिर सुगन्धित घी-दूध-मधु-औषधियों से परिपूरित किया। अस्त्र का प्रहार एक बात है, परिहार दूसरी बात है। श्रीराम ने दोनों तो किए ही परन्तु तीसरा प्रहार और परिहार के पश्चात् सफल श्रृंगार भी किया, क्षति की पूर्णतः पूर्ति करने वाला पुरस्कार भी दिया। महाभारत में अश्वत्थामा द्वारा पांडवों पर ब्रह्मास्त्र-प्रयोग के संदर्भ में भगवान व्यास का कथन दृष्टव्य है—

अस्त्रं ब्रह्मशिरो मंत्र परमास्त्रेण वध्यते।
समा द्वादश पर्जन्यस्तद्राष्ट्रं नाभिवर्षति॥
सौप्तिकपर्व २३/१५

(जिस राष्ट्र में ब्रह्मास्त्र को दूसरे उत्कृष्ट शस्त्र से दबा दिया जाता है, वहाँ बारह वर्ष तक वर्षा नहीं होती।)

विचारें, नागासाकी-हिरोशिमा आदि पर अणु-प्रयोग करने वाले, देखने वाले, सुनने वाले कि संसार हमारे शस्त्रास्त्र-विज्ञान के समक्ष कितना बौना है, सो उत्तर-साकेत में युद्ध-वर्णन समुन्नत-संस्कृतियों के युद्धों के वर्णन हैं। अविकसित-अल्पविकसिक तथाकथित पाषाण काल के युद्ध वर्णन नहीं हैं। चमत्कार से बचने का अर्थ धूल में लोटना और कीचड़ में सनना नहीं है। सौन्दर्य-प्रदर्शनों के दोष से मुक्त होने के लिए कृत्रिम सौन्दर्य-प्रसाधनों से बचना तो है परन्तु स्नान का परित्याग कर कालिख लपेटना नहीं है। जानकी-शतकंधर और भरत-शैलूष संघर्ष संग्राम हैं। गली-मुहल्ले के बलवे नहीं हैं यहां तो 'निश्चरहीन करौं मही' प्रण, विधिवत् भुजा उठाकर किए ही नहीं जाते अपितु अपने शिर को हथेली पर रखकर समुद्र की दुर्जेय छाती पर अभूतपूर्व कल्पनातीत सेतु का निर्माण कर शत्रु से निर्णायक युद्ध किया जाता है। चैतन्य-चेतना से किए हुए प्रणों से चमत्कार स्वयं प्रकट हो जाते हैं, प्रयत्नपूर्वक उनकी कथा घड़नी नहीं पड़ती।

प्रिय स्वजनो !

कहने की तो बहुत सारी बातें हैं किन्तु क्या-क्या कहूं? कुछ बात

मैं न कहना चाह कर भी बाध्य होकर कह रहा हूं। समाज, संस्कृति-साहित्य और धर्म के पिछड़ने पर दोष तो कवियों-लेखकों-चिन्तकों को देता है परन्तु जो गम्भीरता से कार्य कर रहे हैं उनकी ओर गम्भीरता से देखने वाले कितने हैं? मैं तो इस 'उत्तर-साकेत' को इस परिवेश में, जिससे कि मैं स्वयं संतुष्ट नहीं हूं, आपके सामने केवल श्रीराम-कृपा से ही जैसे-तैसे प्रस्तुत कर रहा हूं। कई ऐसी त्रुष्टियां हो रही हैं जिन्हें क्या कहा जाए परन्तु मैं तो जानता हूं क्योंकि वे त्रुटियें जानकारी में हो रही हैं और उन्हें द्वितीय संस्करण में भी सुधार नहीं पा रहा हूं। चित्त में दुःख और ग्लानि के साथ-साथ पंगु आक्रोश भीहै।

इस संदर्भ में देश और समाज के कर्णाधारों से केवल मात्र इतना निवेदन है कि वे प्रमाद को त्याग कर देश-काल-परिस्थिति के अनुसार एवं अपने सम्मुख प्रस्तुत विषय के स्वरूप को पहचान कर व्यवहार करें। मैं सूत्र रूप में संकेत कर रहा हूं। स्पष्टतः कहूंगा तो स्यात् आत्मश्लाघा जैसी लगे परन्तु अब मैं अपने लिए नहीं अपितु उनके लिए कह रहा हूं जो अन्य महानुभाव इस पथ पर चल रहे हैं अथवा चलेंगे या जिन्हें इस पथ पर चलाने के लिए प्रेरित करना हमारा परम धर्म है। समाज-साहित्य-संस्कृति-धर्म और मानवता की प्रखर दृष्टि से यह वही प्रार्थना है जो कि महाराज मयूरध्वज ने अपने शरीर को प्रसन्नतापूर्वक दो फांकें कराकर प्रसन्नचित्त सम्मुख समुपस्थित प्रभु श्रीकृष्ण से की थी कि "जनार्दन भविष्य में किसी की ऐसी परीक्षा कृपा करके मत लेना क्योंकि आगे भयंकर कलिकाल आ रहा है" तो यदि अब भी देश को प्रत्यक्ष परमेश्वर मानने वालों का स्वरूप जागृत नहीं हुआ तो इस भारतवर्ष नामक देश की कहानी, कहानी-संग्रहों में भी ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगी क्या अपितु उसे ढूँढ़ने वाले भी नहीं मिलेंगे।

भाषा-छंद-अलंकार आदि की त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए भारतीय जनो! अपने एक अबोध भारतीय बालक से संस्कृति के प्राण-पुरुष प्रभु श्रीसीताराम की यह गाथा ग्रहण करें, यही आप सब से पृथ्वी पर मस्तक टिका कर करबद्ध याचना है। कृपया स्वीकार कीजिए।

रामरंग

कतिपय समादरणीय विभूतियों के सम्मति अंश :

अरे ! यदि यह क्रमबद्ध लिखा जाए तो यह उत्तर साकेत हो जाये।

राष्ट्रकवि स्व० श्री मैथिलीशरण जी गुप्त

यदि यह यति वेष आड़े नहीं आता तो उत्तर साकेत जैसी अलौकिक कृति के कवि को साष्टाँग दण्डवत् किए बिना न रहता।

अनंतश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य, द्वारका-शारदापीठ
ब्र० स्वामी श्री अभिनवसच्चिदानंदतीर्थ जी महाराज

इतना बड़ा चमत्कार इतने सहज में हो गया यह क्या किसी बड़े चमत्कार से कम है।

अनंतश्री विभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य, शृंगेरीपीठ
स्वामी श्रीमदभिनवविद्यातीर्थ जी महाराज

लगता है तुलसी अपने पिछले प्रश्नों को तुम्हारे लिए ही अनुत्तरित छोड़ गए हैं। स्व० श्री काका कालेलकर

जहाँ जानकी जैसी धैर्य की प्रतिमा और भरत जैसे संत शस्त्र उठा लें वहाँ अधर्म कैसे टिकेगा और वह रचना धर्म-संरक्षक नहीं होगी तो और क्या होगी ? राष्ट्रकवि स्व० श्री रामधारी सिंह दिनकर

हिन्दी साहित्य में एक अभाव की पूर्ति हो गई।

श्रीमती महादेवी वर्मा

कवि ने उत्तर साकेत में अपना अन्तर खोलकर रख दिया है। प्राचीन के साथ अर्वाचीन के समन्वय का यथासंभव प्रयास श्रीरामरंग के गंभीर अध्ययन और अनुशीलन का परिचायक है। उत्तर साकेत की चर्चा के बिना अब राम चर्चा नहीं हो सकेगी। श्री वियोगहरि

इतना विशाल ग्रन्थ लिखना बड़े धैर्य और बड़े समय की माँग करता है, रामरंग ने इसे नवीन रूप से संभव कर दिया।

डा० हरिवंशराय बच्चन

मैं समझता हूं कि राम के उत्तर चरित का इतना विराट और व्यापक वर्णन कहीं भी अन्यत्र सुलभ नहीं है।

डा० विजयेन्द्र स्नातक स० आचार्य दिल्ली वि.वि.

उत्तर साकेत पूरे एक वर्ष मेरे निजी क्षणों का विषय रहा है।

डा० बलराम जाखड़, लोकसभाध्यक्ष

भव्य कथानक, उदात्त भाव-सम्पदा और प्रबल शैली में प्रणीत यह महाकाव्य हिन्दी रामकाव्य-परम्परा में विशेष स्थान का अधिकारी है। इसमें पौराणिक आस्था और आधुनिक युग की राष्ट्र-भावना का सुन्दर समन्वय है। यत्र-तत्र बिखरे हुए सूत्रों के आधार पर कथावस्तु का संयोजन तथा भाषा और छंद-योजना पर कवि का अधिकार स्पृहणीय है।

डा० नगेन्द्र, सम्मान्य आचार्य, दिल्ली वि०वि०

यह महाकाव्य राम के उत्तर चरित की व्याख्या तो करता ही है, अपनी पूर्णता एवं रसमयता में ऐतिहासिक रामकथा का प्रामाणिक दस्तावेज ही बन गया है। इसे रामकथा का विश्वकोष कहें तो अत्युक्ति न होगी। प्रा० श्रीमती कमलारत्नम्

भाषा-भाव-छन्द-चरित्रचित्रण आदि सभी दृष्टि से उत्तर साकेत सफल कृति है। आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन

तथाकथित बुद्धिजीवियों का यह कथन कि "राम आज के साहित्य के लिए मृत विषय होगया है" आज स्वयं ही हास्यापद होगया है अपितु सर्वथा मृत हो गया है। डा० शुकरत्न उपाध्याय, ग्वालियर

'उ. सा.' उत्तर रामकथा का परम्परागत दृष्टिकोण से लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण-प्रामाणिक और सरस दस्तावेज है। श्री विष्णु प्रभाकर

उत्तर-साकेत की चर्चा के बिना रामकथा की चर्चा अब अधूरी ही रहेगी। डा० सत्यभूषण वर्मा जवा० नेहरू वि० वि० नई दिल्ली

श्री रामरंग ने प्रभु राम के उदात्त चरित्र के रंग में रँगकर उनके उत्तरकालीन चरित्र का अत्यन्त सुन्दर कवित्व में सुमधुर गान किया है। उन्होंने श्रीराम का चरित्र विविध सूत्रों से सुसंबद्ध कर उनके व्यक्तित्व का जो निरूपण किया है, उससे जीवन में जागरण की ज्योति उत्पन्न होती है। कुछ प्रसंगों से सहमत न होते हुए भी मैंने उनके काव्य में अद्भुत और अलौकिक रस पाया है।

डा० रामकुमार वर्मा, प्रयाग

रामरंग जी के कृतित्व एवं सौभाग्य की मैं सराहना करता हूं। उन्होंने प्रभु के गुणों से अपनी प्रतिभा-कवित्व को जोड़कर उसे धन्य बनाया। वे एक वास्तविक एवं सशक्त कवि के रूप में सामने आए हैं।

मानस मर्मज्ञ पं० राम किंकर उपाध्याय, कानपुर

इस पर विश्वास नहीं आता उ०सा० जैसा ग्रन्थ रामरंग ने लिखा है। यह तो [illegible] कथा है उसी में प्रवाह होकर लिखा है। मैं तो राम नाम के ही [illegible] में बहा जाता हूँ।

पं० [illegible] व्यास [illegible] काशी

स्वतंत्रता के उपरान्त ऐसा [illegible] बना कि राम और कृष्ण पर काव्यादि लिखना मानो कोई साम्प्रदायिक या देशद्रोह का काम है। राम और कृष्ण पर जो चर्चा हुई भी वह प्रायः उनका छिद्रान्वेषण करने के लिए ही हुई। ऐसी स्थिति में श्रद्धा समन्वित इस महती कृति को देखकर बड़ा सन्तोष होता है। डा० दशरथ ओझा वरिष्ठ समीक्षक एवं नाटक०

राम काव्य परम्परा का उत्तर साकेत अभिनव शृंगार है।

डा०रमानाथ त्रिपाठी, पू०आचार्य दिल्ली वि०वि०

भारतीय साहित्य का यदि किसी को मेरुदण्ड कहा जा सकता है तो निश्चय ही वह राम कथा है। आश्चर्य है कि इस मेरुदण्ड का पूरा सर्वाङ्गिक रूप अभी तक नहीं आ सका था, इसके अनेक प्रसंग और आयाम अस्पर्शित रह गए थे। प्रस्तुत कृति ने हिन्दी ही नहीं, भारतीय साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति है राम कथा से सम्बद्ध प्रबन्ध काव्यों की दृष्टि से हिन्दी को भारतीय भाषाओं में अग्रणी बना दिया है।

डा० भोलानाथ तिवारी प्रसिद्ध भाषा शास्त्री

श्री रामरंग का भाषा पर अधिकार चमत्कृत करने वाला है।

कन्हैयालाल ओझा, कलकत्ता

उत्तर-साकेत समग्र भारतीय राम-साहित्य का सारसंचन है और भारत की श्रमित भारती की नवस्फूर्ति का उद्घोषक है। आकार-प्रकार दोनों की जो विराटता और विशिष्ट। उ० सा० में प्रकट हुई है, अन्यत्र दुर्लभ है। यह तो हिन्दी में उत्तर वाल्मीकि का अवतरण है।

डा० रामप्रकाश विभागाध्यक्ष वि.वि.अनु. आयोग, शोधनिदेशक, से०ठ

'उत्तर साकेत' के लेखक और प्रकाशक दोनों ही स्वान्तः सुखाय हैं, जो आज के युग में सहज नहीं हैं।

डा० मोतीलाल जोशी, अध्यक्ष प्राच्य विद्या शोध संस्थान, जयपुर

राष्ट्र की महिमामयी संस्कृति के उद्धार के लिए किया गया यज्ञानुष्ठान है। उत्तर साकेत एक दिव्य उपहार है।

डा० कुंवर चन्द्रप्रकाशसिंह, लखनऊ

वामन-द्वादशी

जिस हृदय में रघुपति सु-रति-प्रति,
हृदय-सरिस न स्थान है।
उस हृदय को कहना शिला भी—
शैल - छवि अपमान है।।
करते न निज करुणा-विवश—
यदि राम निज लीला सगुण।
तो दीन-हीन-अनाथ से—
करते,सुगुण क्रंदन-करुण।।
उपजीं अमित-संस्कृति जगत में,
पर हुईं मरु-निर्झरी।
प्रगटी न उनके गिरि-शिखर,
सियपति - चरित - गंगोत्तरी।।
शरदारविंदों का मधुर—
मकरंद जो अलि पी चुके।
हेमंतवन में आक का पय—
पान कर वे जी चुके।।
श्रीराम मनुज कि ईश हैं,
कि विशेष-वेष अशेष हैं।
पर निर्विवाद स-नाद मेरे—
तो सदा सर्वेश हैं।।
सिय-दक्षिणांगा मुदित-चित,
धनु-धारिणी छवि-सांवली।।
करती रहे, त्रय-ताप हरती—
त्रिवय मम मति बावली।।

हमें तो विश्बास नहीं आता उ०सा० जैसा ग्रन्थ रामरंग ने लिखा हो। यह तो जिसकी कथा है उसी ने प्रत्यक्ष होकर लिखा है। मैं तो पाठ मात्र से ही भाव-समाधि में चला जाता हूं।

पं० शिवनारायण व्यास वयोवृद्ध कथा० काशी

स्वतंत्रता के उपरान्त ऐसा लगने लगा कि राम और कृष्ण पर काव्यदि लिखना मानो कोई असामयिक या देशद्रोह का काम है। राम और कृष्ण पर जो चर्चा हुई भी वह प्रायः उनका छिद्रान्वेषण करने के लिए ही हुई। ऐसी स्थिति में श्रद्धा समन्वित इस महती कृति को देखकर बड़ा सन्तोष होता है। डा० दशरथ ओझा वरिष्ठ समीक्षक एवं नाटक०

राम काव्य परम्परा का उतर साकेत अभिनव श्रृंगार है।

डा०रमानाथ त्रिपाठी, स०आचार्य दिल्ली वि०वि०

भारतीय साहित्य का यदि किसी को मेरुदण्ड कहा जा सकता है तो निश्चय ही वह राम कथा है। आश्चर्य है कि इस मेरुदण्ड का पूरा व्यवस्थित रूप अभी तक नहीं आ सका था, इसके अनेक प्रसंग और आयाम अस्पर्शित रह गए थे। प्रस्तुत कृति ने हिन्दी ही नहीं, भारतीय साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति है राम कथा से समबद्ध प्रबन्ध काव्यों की दृष्टि से हिन्दी को भारतीय भाषाओं में अग्रणी बना दिया है। डा० भोलानाथ तिवारी प्रसिद्ध भाषा शास्त्री

श्री रामरंग का भाषा पर अधिकार चमत्कृत करने वाला है।

सन्हैयालाल ओझा, कलकत्ता

उत्तर–साकेत समग्र भारतीय राम-साहित्य का सारसंचन है और भारत की श्रमित भारती की नवस्फूर्ति का उद्घोषक है। आकार-प्रकार दोनो की जो विराटता और विशिष्टता उ० सा० में प्रकट हुई है, अन्यत्र दुर्लभ है। यह तो हिन्दी में उत्तर वाल्मीकि का अवतरण है।

डा० रामप्रकाश विभागाध्यक्ष वि.वि.अनु. आयोग, शोधनिदेशक, मेरठ

'उत्तर साकेत' के लेखक और प्रकाशक दोनों ही स्वान्तः सुखाय हैं, जो आज के युग में सहज नहीं हैं।

डा० मोतीलाल जोशी, अध्यक्ष प्राच्य विद्या शोध संस्थान, जयपुर

राष्ट्र की महिमामयी संस्कृति के उद्धार के लिए किया गया यज्ञानुष्ठान है। उत्तर साकेत एक दिव्य उपहार है।

डा० कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह, लखनऊ

वामन-द्वादशी

जिस हृदय में रघुपति सु-रति-प्रति,
हृदय-सरिस न स्थान है।
उस हृदय को कहना शिला भी—
शैल - छवि अपमान है ।।
करते न निज करुणा-विवश—
यदि राम निज लीला सगुण ।
तो दीन-हीन-अनाथ से—
करते,सुगुण क्रंदन-करुण ।।
उपजीं अमित-संस्कृति जगत में,
पर हुईं मरु-निर्झरी ।
प्रगटी न उनके गिरि-शिखर,
सियपति - चरित - गंगोत्तरी ।।
शरदारविंदों का मधुर—
मकरंद जो अलि पी चुके ।
हेमंतवन में आक का पय—
पान कर वे जी चुके ।।
श्रीराम मनुज कि ईश हैं,
कि विशेष-वेष अशेष हैं ।
पर निर्विवाद स-नाद मेरे—
तो सदा सर्वेश हैं ।।
सिय-दक्षिणांगा मुदित-चित,
धनु-धारिणी छवि-सांवली ।।
करती रहे, त्रय-ताप हरती—
त्रिवय मम मति बावली ।।

वंदे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम्

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं,
तीर्थास्पदं शिवविरंचिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं,
वंदे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।।

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं,
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्,
वंदे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।।

रघुपति के उन; श्री चरणों में शत-नमस्कार ।
जिनसे पाये दंडक-वन के कंटक दुलार ।।

जो चले सुरेप्सित दुस्त्यज त्याग अवध-लक्ष्मी,
अज्ञात-दिशाओं को दुलराते संतति से ।
मख को तन, ऋषिजन को जीवन, श्रुति को हर्षंत,
संस्कृति को ऋति, सद्मति को मति निजगति गति से ।।

वन-गिरि-सरि-सागर-उषर सभी को एक-भाव,
देते पथ-पथ पग-पग पल-पल तीर्थोपहार ।
शत-नमस्कार ।।

श्रीभरत-विलोचन तीर्थ-सलिल - कलशाभिषिक्त,
पदपीठ अवध-पदपीठ हुए शोभित जिनके ।
कुंतल-कषाल शट-जाल बने रिपु के उपवन,
जो श्रीव रहे उस शिशिर-सुमन सिय-मस्तक के ।।

लाये सुलोचना-सरिस सती का शीशफूल—
जिनकी छांया में शेष सहज रण में उतार ।
शत-नमस्कार ।।

गुह-वासन में विधि-भाजन के नव-गंगोद्गम,
गिद्धेशासन शबरी-किरोट कपिपति-चामर ।
सुर-ग्राम-स्वर्ग असुरापवर्ग लंकेश-सर्ग,
वाल्मीकि-सुयश मारुति-श्रेयस कंचनमृग-वर ।।

श्रृंगार, बिवाई-रुधिरधार से कर-कर के,
की भरत-भूमि हर भार, महामंगलागार ।
शत-नमस्कार ।।

वेदना-संवेदना

परमेश्वर !

अब आपसे क्या कहूं ? वैसे तो क्या नहीं कहा और आपने क्या नहीं सुना ? परन्तु यदि संसारी-जीव की प्रकृति की पद्धति से कहूं, जो कि वास्तव में मैं हूं, तो सरकारों की सरकार ! आप स्वयं सोच लो कि आपकी जितनी श्रवण-शक्ति है, उसके अनुसार आपने सुना ही क्या ? पर प्यारे ! कोई बात नहीं। पाला तो मुझ जैसे ढ़ीट से पड़ा है, कब तक नहीं सुनोगे ? तुम्हारी नींद हराम करके न रख दी तो राम जी ! तुम्हारी सौगन्ध तुम्हारा जाया नहीं।

सर्वेश्वर !

यूं तो तुम्हें कोई नहीं जाना कि तुम क्या हो ? पर मुझे तो बता दो कि तुम मानव हो कि सहस्र-सामन्तचक्र - चूडामणि आसेतुहिमंचला धराधीश्वर-राजाधिराज हो कि अनन्तकोटि ब्रह्मांड-नायक हो या जैसा कि कुछ जन्मजन्मान्तर के बिचारे 'महासूर' महाशूरों की भाँति ताल ठोंककर कहते हैं कि 'राम' कुछ है ही नहीं, तो सच-सच बोलो इसमें क्या सत्य है ? पर जानता हूं कि तुम सीधे-सीधे सहज में थोड़े ही बोलते हो, और इस अपनी कथा में कइयों के कुरेदने पर ही बोले भी हो ! अस्तु।

महनीय-महिमा-परिधि !

अब, मेरी सुनो। यदि आप मानव हो तो हे महामानव! मैं आपके

द्वारा प्रतिपादित महामहिमामयी मर्यादित मानवता का अनुयायी हूं। अनुसरण कितना कराओगे, यह विषय आपका है। नौका की गति तो सरिता के प्रवाह और मल्लाह की सामर्थ्य दोनों की ही दासी है।

अयोध्याधिपते !

यदि आप राजेश्वर हो तो मैं आपका वैतालिक हूं। पर बुरा मत मानना, कहीं आपकी महान-राजनीति मेरी क्षुद्र-बुद्धि में नहीं समाई तो खोटी-खरी भी डट कर कहूंगा और उसे सुन कर आपने सूली दे दी तो आप हँसी के पात्र ही नहीं बनोगे बल्कि निर्दयी भी कहलाओगे।

अशरण-शरण !

यदि आप ईश्वर हो, हो क्या, मेरे लेखे तो हो ही और निश्चित ही हो। आप के स्वरूप तो अनेकों हैं। उन सबकी यथायोग्य वंदना भी है परन्तु यदि आप से पृथक कोई अन्य ईश्वर-पद का दावेदार है तो मेरे माध्यम से कहलाया गया आपका यह शब्द-समुदाय उस 'ईश्वर' के प्रति खुले विद्रोह का झंडा है। मैं डिंडिम-घोष करके कहता हूं कि "मैं नास्तिक हूं, मैं नास्तिक हूँ।" मैं दशरथराजकिशोर भगवान जानकीनाथ के अतिरिक्त किसी को ईश्वर नहीं मानता। ओ बनावटी ईश्वर ! जो तू मेरा बिगाड़ सकता है, बिगाड़ ले। अपनी करनी में कसर रखे तो तुझे तेरे प्यारे-मीठों की सौगंध। मेरी बनेगी तो केवल अनाथनाथ रघुनाथ से बनेगी। जो छत्तीस घर झांकना सीखी हो उसे ही पता होता है बहत्तर-टुकड़ों का स्वाद और सौ चिथड़ों का आकार-प्रकार। परन्तु जिसने उस कुल में जन्म लिया हो जिसकी परम्परा ही डोली आने की और अर्थी जाने की हो, तो उसकी तो ध्रुवों से ध्रुवों तक की परिधि उसका प्रियतम ही होता है। मेरे मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार के एकमात्र विषय मेरे प्रभु श्रीराम ! आप ही हो, और आप ही रहना यही प्रार्थना है !

जानकीनाथ !

अंगूरों में निंबोली मिला रहा हूं। किसी प्रकार उचित तो नहीं है परन्तु एक लाभ अवश्य हैं कि एक ओर जहाँ न पहचानने वाले नेत्र-विहीनों का पता लग जायेगा वहां दूसरी ओर उनके साथ-साथ जिनकी जिव्हा (चेतना) का स्वाद (प्रकाश) ही समाप्त हो गया है उन असाध्य-रोगियों का भी परिचय मिल जायेगा। व्यवहार में सुविधा रहेगी। पहेली क्यों बुझाऊँ ? राम जी ! मेरा स्पष्टत: तात्पर्य उन अधमों से है जो आपके स्थूल और सूक्ष्म, दोनों ही अस्तित्वों को अपनी हठधर्मी से नकारने पर तुले हुए हैं। जिनकी बातों से 'आप क्या हो' इस बात का तो प्रश्न ही कहां उत्पन्न होता है, वहाँ तो आपकी कथा भी कल्पना-मात्र ही ठहराई जाती है। गोस्वामी तुलसीदास जी तो खैर, अकबर के जीते जी उसके जेलखाने की चक्कियों को दर्शन दे आये इसीलिए 'हुए' मान लिये गये परन्तु महर्षि वाल्मीकि, अपने अनेकानेक ग्रंथों में भावाभिभूत होकर आपकी चर्चा करने वाले भगवान वेद-व्यास तो आज की कोर्ट-कचहरियों की भाषा की परिभाषा में अपना अस्तित्व प्रस्तुत करने वाला कोई रसीद-पर्चा इन कानून के पुतलों के लिये छोड़ ही नहीं गये। फलत: उनकी रचनायें, इन 'भद्र-पुरुषों' के निकट जिनकी शिक्षा ही कुछ बी० सी० से लेकर इस ए०डी० तक ही हुई है, कल्पना ही ठहरती हैं और कल्पना ही नहीं ठहरेगी तो और ठहरेगी भी क्या ? जो मां बहुत विचार कर भी बालक को उसके पिता का नाम ही न बता सके तो उसके लिये पिता-पितामह-प्रपिता-मह-वंश-कुल-गोत्र-नख-निकास यथार्थ होंगे भी कैसे ? वे तो दंड के नहीं, दया के पात्र हैं। फिर भी कोई धृष्टतावश ताल ठोंककर चुनौती देने आ ही जाये तो क्या वर्णसंकर रावण का शिरच्छेद करने वाले आपके पुत्र हम, अशुभ-दर्शन के भ्रम से भयभीत होकर कपाट मूंद कर बैठेंगे या भाग कर किसी गहन-कंदरा में छिप जायेंगे ? नहीं, अशुभ-दर्शन का प्रायश्चित तो मदोन्मत्त-अहंकार के रक्त में स्नान ही है। यही तो आपने बताया है न ?

मेरे ग्राराध्य !

आप ही के लोकोत्तर-चरित्र का स्मरण कर इस ग्रभिनव-रावण के भरे दरबार में यह ग्रापका ग्रभिनव-ग्रंगद उसके रचना-किरीट पर ग्रपना साधारण पैर रखकर दिग्दिगन्त प्रकंपन-कारी स्वर में उद्घोष कर रहा है कि "ओ संसार के प्राचीन-अर्वाचीन कथाकारों ! बुद्धि के व्यायामाचार्यों ! आओ, यदि मेरे श्रीराम की कथा कल्पना है तो यूं ही सही । उभय-सूरों (ग्रन्तर-बाह्य) के लिए यदि मौन गजराज दीवार-खंबा-रस्सी है तो यूं ही सही । कोई चिन्ता नहीं, पर दिखाओ ! इससे श्रेष्ठ कल्पना करके । बनाग्रो! समग्र देश-देशान्तर की संस्कृति को युग-युगान्तर के लिये उसकी अनुयायिनी । उठाओ ! अपनी लेखनी । चलाग्रो ! ये धरती की धूल ग्रौर आकाश का शून्य-मंडल आपके वामन-खुरों का मूल्यांकन करने को लालायित हैं ।

देवाधिदेव !

यह वाणी तो अहंकार की है । महानतम गरुड़ों के सामने एक क्षुद्र नाग-बालक की क्या सामर्थ्य ? परन्तु गंगाधर की जटाओं में लिपटने के कारण नागराज कहलाने वाला यह वाणी नहीं बोलेगा तो क्या 'त्राहि-माम' 'पाहि-माम' 'रक्षमाम' बोलेगा ? काठ की गोट के झंडे किस दिन आकाश में उड़े हैं ? कीर्ति-ग्रपकीर्ति तो उसकी है जिसकी गोट पीटती है, या पिटती है ।

प्रभो !

जैसा-कैसा हूँ, आपकी जंघा का घाव हूँ । निदान स्वयं करना पड़ेगा । किसी और से कराओगे तो लाज आप ही को ग्रायेगी । मैं तो निर्लज्जता-वश फूट निकला हूं । दूषित तत्व निकाल कर सीं लो । एक दिन आपके निष्कलंक-विराट श्रीविग्रह का वैसा ही ग्रविभाज्य-ग्रंश बन जाऊँगा । आपके प्रमाद से उत्पन्न दोष का निदान आपका प्रसाद ही है ।

जनार्दन !

वैसे तो आपके प्रमाद और प्रसाद की चर्चा के पश्चात् कुछ शेष नहीं रहता परन्तु अब तक तो आप से जो कुछ भी कहा वह व्यक्ति-वाद में सिमटा हुआ सा ही लगता है, यद्यपि है नहीं। फिर भी यह समष्टि जो कि आपकी परम कौतुकी प्रमुदिता के प्राक्ट्य की परिणति ही है, और उसमें भी यह भारतवर्ष जो कि उस प्रमोदिता प्रमुदिता की प्रत्यक्ष प्राणवान प्रतिमा है, जिसके पृथ्वी-जल-वायु-आकाश-तेज के तत्वों का समाश्रय पाकर यह जीव जीवितों में गणना करा रहा है, उसकी चर्चा ही न करूँ तो कैसा लगेगा? इस जघन्य-कृत्य को कृतघ्नता क्या उस आत्महत्या के पातक के अतिरिक्त और कोई संज्ञा ही नहीं दी जा सकेगी जिसका कि कोई प्रायश्चित ही नहीं है। जहां अपनी ही इहिलौकिक-उन्नति के ध्यान में मग्न हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष-रावण-कंससे लेकरआज के विवेक-शून्य वैज्ञानिक जो किप्रकृति को दासी बनाने के दिवा-स्वप्न का आनन्द लेने में निरालस्य निरन्तर निरानंद हो कर अपने ही सर्वनाश के स्वागत-समारोह का आयोजन कर रहे हैं। वहां पारलौकिक-उन्नति मोक्ष-निर्वाण की प्राप्ति के लिये, दंड-कारण्यके उन असंगठित ऋषियों की भांति जिनकी अस्थियों को निशा-चरों ने चबा-चबाकर ढेर कर दिया, ऐसे नितान्त स्वकेन्द्रित विक्षिप्तों की अभी भी कमी नहीं हैं। यह बात और है कि उनमें से अधिकांशतः गुरुडम की दलदल में दले जा रहे हैं। फिर भी कई हैं जो ध्यान-धारणा-समाधि-प्राणायाम-प्रत्याहार सभी का शास्त्रीय-सुरीति से पालन करते हुए सात्त्विकता की सुरम्य प्रतिमूर्ति के पावन-स्वरूप में इस देवभूमि भारतवर्ष की प्रतिष्ठा-वृद्धि कर रहे हैं। उनका देश-विदेशों में सम्मान भी हैं। उनमें सिद्धि और सामर्थ्य भी है परन्तु उनकी वह अन्तरमुखी-चेतना देश-धर्म के चिन्तन से सर्वतोभावेन निरपेक्ष होकर बैठी हुई है। उसी का प्रतिफल यह है कि वर्ग-विशेष के अतिरिक्त

शेष में वे उपहास और उपेक्षा के पात्र बन गये हैं। यदि उनसे विनम्रता-पूर्वक इस देश-धर्म के समुत्थान में अग्रसर होने के लिये निवेदन भी किया जाये तो वे शुष्क सा उत्तर देते हैं कि हमें इन प्रपंचों से क्या लेना है? यह तो राजनीति है, संतनीति का इससे क्या सम्बन्ध ?

पतितपावन !

बताना, क्या यह सत्य है ? क्या यह उचित है ? क्या राजनीति इतनी घिनौनी वस्तु है ? यदि वास्तव में इतनी घिनौनी है तो क्या वह वास्तव में राजनीति है ? यदि वह राजनीति ही है तो फिर अनीति क्या है ? देश की राजनीति को धर्माधारित बनाने के लोभ में ब्रह्मलोक का मोह छोड़ कर रघुवंश का पौरोहित्य-पद स्वीकार करने वाले ब्रह्मवेत्ता वशिष्ठ, अपार प्रयत्न के पश्चात् राजर्षि से ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त करके भी सुधार से निराश हो कर संहार के आव्हान के लिये पुत्रेष्ठि-यज्ञ से चौथेपन में प्राप्त राजा के परमलाडले राजकुमारों की निस्संकोच याचना करने वाले समर्थ विश्वामित्र,सागर की निस्सीमता को भी सीमित करने की महती प्रतिष्ठा की प्राप्ति के पश्चात् भी मानसरोवर और इन्दुसरोवर के जलों की एकरूपता सिद्ध करने की धुन में दक्षिणारण्य के विजनों में भटकने वाले महर्षि अगस्त, जिसकी कल्पना भी पहले किसी के मस्तिष्क में नहीं आई उसको यथार्थ सिद्ध कर लोककल्याण की कामना से लोकोत्तर-चरित्र को लोकरंजक स्वरूप में प्रस्तुत करने वाले आदिकवि वाल्मीकि, अनेकानेक सिद्धियों की स्वामिनी पातिव्रत्य की प्रत्यक्ष-महिमा भगवती-अनसूया को चरण-सेवा का सौभाग्य प्रदान करने वाले तपोमूर्ति अत्रि जिन्होंने चित्रकूट के गिरिजन शबर-कोल-किरातों से (जिन्हें आज कुछ धूर्त आदिवासी कह रहे हैं और मूर्ख उनका समर्थन कर रहे हैं।) हिंसा और चौर्य-

वृत्ति सहज सस्नेह भाव से छुड़ा कर उन्हें सर्वप्रथम सहकारिता, कुटीरउद्योग, स्वावलंबन का समर्थ पाठ पढ़ाकर नागरिक-जीवन का अविभाज्य-अंग, धर्म की वज्रादपि कठोर और कुसुमादपि सुकोमल प्रतिमा ही नहीं अपितु गहन-गव्हर वन-प्रान्तों का प्रबल पहरुआ, अभेद्य अपराजेय चैतन्य दुर्ग माला बनाकर खड़ा कर दिया। जिसके साक्षी त्रेता के विराध और कबंध के विनाश, द्वापर के वक और हिडिंब वध ही नहीं अपितु वर्तमान इतिहास के हल्दी घाटी, प्रतापगढ़, पन्हाला, रूपनगर आदि के विपक्षी विधर्मी आततायियों के विरुद्ध हमारे राष्ट्र-रक्षकों द्वारा किये गये संग्रामों में सफल-सहयोग हमारे स्वातंत्र्य-यज्ञ-मंत्र-माला के सिद्धिप्रद-संपुट ही सिद्ध हुए हैं। आधुनिक काल में ही संयासी होकर भी रणक्षेत्र में सैन्य-संचालन करने वाले स्वामी विद्या-रण्य महाराज, सिर देकर भी सार को संरक्षण देने वाले गुरु तेग-बहादुर देव, द्वादशवर्ष-पर्यन्त नर्मदा के आकंठ जल में खड़े रहकर 'श्रीराम जयराम जय-जय राम' का जाप कर हिन्दवी-स्वराज्य का घर-घर अलख जगाने वाले समर्थ स्वामी रामदास जी, सन् १८५७ के स्वातंत्र्य-समर के पुष्पों को एक सूत्र में गूंथने की प्रमुख भूमिका सम्पन्न करने वाले महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ही क्यों, वे महात्मा गांधी भी जिनसे किसी का विभिन्न-कारणों से सैद्धांतिक मतभेद तो हो सकता है परन्तु उनके द्वारा विदेशी-सत्ता के समक्ष 'रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम॥' का उद्घोष धर्मप्राण भारतीय-जनता को संकल्पबद्ध रीति से कार्य-सिद्धि तक अडिग हिमालय की भांति खड़े रखने का कार्य तो निर्विवाद-रूप से अभिनंदनीय है। तो फिर इन ऋषि-महर्षियों-सन्त-महात्माओं के चरित्र हेय माने जायें अथवा आज उनके आव्हान के लिये किन्हीं नवीन मन्त्रों का आविष्कार किया जाये? इन परमादरणीय-परम-पूज्य-परमश्रद्धेय अनन्त श्री विभूषित-परमहंस-परिव्राजकाचार्यों-ज्येष्ठ-

वर्ण-अग्रजन्मा-वेदवास-भूदेवोंकी चर्चा करते हुए रोम-रोम विनम्रता-पूर्वक नत हो जाना चाहिये था, परन्तु आ गया स्वर में तीखापना।

गोविन्द !

करूँ तो मैं क्या करूँ ? मैं इनका अपमान करने के विचार को विचारने का विचार स्वप्न में भी नहीं विचार सकता ? परन्तु आज इनको जब एक ओर माला-आसन-दक्षिणा की होड़ में तल्लीन देखता हूँ। दूसरी ओर इनके विद्या के स्तर, इनके व्यक्तिगत आचरण देखकर ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो ये जनमेजय के नाग-यज्ञ के अध्वर्यु और होता नहीं शंकर-विरोधी प्रजापति दक्ष के सती-दाहक यज्ञ के पुरोहित भृगु हों। ये प्रह्लाद को ताड़ित करने वाले षंडामर्क हों। ये स्वर्ण-प्राप्ति के लोभ में कौरव सेनापति कर्ण को आशीर्वाद दे रहे हों कि "जैसे भगवान गोविन्द चक्र धारण करके मधु-कैटभ को विदीर्ण करते हैं उसी प्रकार तुम भी कृष्ण और अर्जुन का शिरच्छेद करो।" ये इनाम के लालच में सूबा सरहिंद को माता गुजरी और छोटे साहिबजादों के छिपने की सूचना देने वाले गंगू हों। जब सारी संस्कृति को सूतक और पातक लग रहा हो, तब ये कोटिकुंडी यज्ञ की कल्पना कर रहे हैं। कहाँ है श्रद्धा का शाकल्य? कहां है त्याग और संयम की समिधा? कहाँ है विश्वास का घृत? धरती पर कौन सी सौभाग्यवती सुवेदी शेष बची हुई है जिस पर अवधराज के तरुण-रूपसम्पन्न-सुकुमार-महाबली, पुंडरीक विशालाक्ष, मृगछाला पर पीताम्बर का फेंटा कसे, फलमूलाहारी, तपस्वी, ब्रह्मचारी दोनों नवलकिशोर संकल्प निष्ठ होकर धनुष धारण करके पहरा दें ? आज इनसे कौन से मुख से कहूँ कि ओ युग के विश्वामित्रो ! चांडाल की उच्छिष्ट शेष बची हुई यह कुत्ते की एक टाँग छींके पर रखी हुई है। इसे ही इस गहन-अभावमयी रात्रि में हरण कर पितरों को बलि दो। उन्हें जागृत करो। राजसूय-अश्वमेघ यज्ञों के फल तुम्हारे द्वार पर खड़े होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

शबरी के अतिथि !

एक ओर तो आपके सनातन धर्म के भव्यागार की शिखर-माला और शिखरागारों की यह स्थिति है और दूसरी ओर है वह निश्श्रेणी-मालिका जो धरातल का आलिंगन आदिकाल से गगन मंडल से करा रही है।मेरा स्पष्ट तात्पर्य शास्त्र-भाषा के शूद्र, आज की लोकभाषा के हरिजन,और दंभियों तथा लम्पटों की भाषा में जिनको अछूत कहा जाता है, उनसे है। हमारे ऋषियों ने धर्म के सिद्धांतों का निर्माण मद पीकर नहीं किया। परब्रह्म का साक्षात्कार करके भी नहीं अपितु उसमें एकाकार होकर 'अहम् ब्रह्मास्मि' का केवल उद्घोष करके ही नहीं उसके तत्व के महत्व की सार्थकता को सांगोपांग युगों-युगों तक निरख कर परख कर विशुद्ध व्यावहारिकता के सुदृढ़ सैद्धांतिक शिला-मंडल पर खड़े हो कर किया है। भगवती श्रुति यही तो दुहरा रही है-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य: कृत: ।
ऊरु तदस्य यद्वैश्य: पदभ्यां शूद्रो अजायत ।।

(ब्राह्मण उस विराट पुरुष के मुख हैं। क्षत्रिय भुजा है। वैश्य उददार हैं और शूद्र चरण हैं।)

यह चारों वर्णों की सुविभाज्य एकरूपता का प्रतिपादक नहीं तो क्या है ? आपने स्वयं गीता में भी तो कहा है, "चातुर्वर्ण मया सृष्टम् गुण कर्म विभागश:" ।

जब गुण और कर्म से समाज का सुव्यवस्थित वैज्ञानिक विभाजन है तभी तो एक ही शरीर के विभिन्न अंगों की संज्ञा उन्हें दी गई। तो यह पूर्ण व्यवस्था फिर वर्ण-विद्वेष के रूप में कैसे परिवर्तित हो गई। वर्ग-समन्वय वर्ण-संघर्ष के रूप में कैसे परिवर्तित हो गया? गंगा वैतरिणी कैसे बन गई? बालमीकिं, रैदास,सेन,निषादराज गुह की संतानें वशिष्ठ-विश्वामित्र-रघु-दिलीप-चित्रगुप्त-उग्रसेन की संतानों की पूरक उनकी प्रतिद्वन्दी कैसे बन गई ? धन्वंतरि के हाथ का अमृत कलश

वास्तव में कालकूट बन गया अथवा देवताओं को भ्रमित कर उसका अपहरण करने के लिये किन्हीं राहू-केतुओं ने उसे कालकूट की संज्ञा दे दी ? क्षमा करना, जिस रामायण से निषादराज गुह की कथा निकाल दी जाए, भक्तिमती शवरी का प्रसंग छीन लिया जाए, चित्र-कूट के कोल-किरातों की गाथा पृथक करदी जाए, दंडकारण्य के जटायू और सागर तीर के सम्पाति की प्रशस्तियें निष्कासित कर दी जाये तो चाहे मुझे महारौरव या कुंभीपाकों में ही क्यों न अनन्त जन्मों तक निवास करना पड़े, मैं उस रामायण को उठाकर अग्नि में डाल दूंगा, क्योंकि फिर वह रामायण रह ही कहाँ जाएगी? आप ही ने तो कहा है कि खंडित-प्रतिमा का पूजन अशुभ होता है। हमारे हिन्दू समाज के यह अविभाज्य अंग जो अनंत-काल से सेवा-वृत्ति धारणकर साधिकार सस्नेह अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए धर्म के एक चरण को शेष तीनों चरणों के समान ही सबल बनाए बैठे हैं, उन्हें आज वे लोग भाई कहने चले हैं जो अपनी बहनों के भाई सिद्ध न हो सके। राष्ट्र को दुर्बल बनाकर छिन्न-भिन्न करने के लिए प्रजातन्त्र की प्राण-शक्ति मत-पद्धति को प्रभावित करने के लिये भारतमाता को पुनः उसी दासता की शृंखला में जकड़ने की दुरभिसंधि की साधना सिद्ध करने के लिये इस खंडित भारत की अखंडता को भी खंड-खंड करने के लिये धन-बल रूप-बल आदि के माध्यम से कुचक्र रच रहे हैं। दूसरी ओर इस मृग-मरीचिका में फँस कर कुछ हमारे भोले-भाले हरिजन-बन्धु भी उनकी हाँ में हाँ मिलाने के लिये चल पड़े हैं किन्तु उनको यह याद नहीं आ रहा है कि मरुस्थल में लगे हुए आक और धतूरे के वृक्ष भी अपने समय पर पुष्पित-पल्लवित होते हैं परन्तु गंगा के किनारे लगे हुए आम के वृक्ष की डाली भी मूल से पृथक होने पर वर्षा-काल में ही सूखकर ईंधन बन जाती है।

हमारा समाज जिसका एक स्वरूप है, सिद्धान्त है, स्नेहाधारक समन्वय है, उसके स्थान पर नवीन-नवीन रचनाओं की ऐसी अस्पष्ट

रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है जो किसी दुराचारी के द्वारहीन चौरासी-लाख के चक्रव्यूह के समान ही अभेद है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता? विश्वास न हो तो देख लीजिये यह स्वांग भी जो बड़े धूम-धड़ाके से हो रहा है कि एक दिन तो बड़े समारोह से मंदिर प्रवेश होता है लेकिन दूसरे दिन कोई उस मंदिर की ओर झांकता तक नहीं है। दूसरी ओरजहाँ पर्वतशिखरपर चढ़कर भगवान रामानुजाचार्य ने गुरु आज्ञा की अवहेलना भी शिरोधार्य कर सबको समभाव से महा मंत्र प्रदान किया वहाँ यह उद्घोष करने वाले महा-पुरुष भी अभी बैठे हैं कि 'यदि शूद्र के कान में मंत्र-प्रवेश कर जाए तो उसमें सीसा गला कर डाल दो'।

दामोदर !

अब इन्हें कौन समझाये कि बुद्धि के हिमालय पर्वतो! पढ़ो यह कथा जिसमें निषादराज गुह का पट्टाभिषेक वैदिक-मन्त्रों के उद्घोष के मध्य विभिन्न तीर्थों के जलों के कलशों से स्वयं वेदपाठी ब्राह्मणों के द्वारा प्रभु रामचन्द्र! आपके सानिध्य में किया गया। दूसरी ओर त्रिशंकु के अहं-यज्ञ में भाग लेने वाले ब्राह्मणों से वेदही नहीं छीन लिये गये बल्कि उन्हें शिखासूत्र से वंचित कर देश से निष्कासित भी कर दिया गया। माधव! आपतो एक भक्ति का ही संबंध मानते हो न,आप तो आडंबर-प्रिय नहीं हो, भावग्रही हो न? तो फिर आपकी व्यव-स्थाओं को अव्यवस्था में परिवर्तित करने वाले,आस्था पर प्रहार करने वाले कब तक अक्षत बैठे रहेंगे? इस ओर आप कब विचार करेंगे? अभी मैंने वर्ण-व्यवस्था के विषय में निवेदन किया। अब मैं वर्ग-व्यवस्था की ओर भी आपका ध्यान आकर्षित कर रहा हूँ। एक ओर अनावृष्टि के कारण हाहाकार हो रहा है और दूसरी ओर अतिवृष्टि के कारण चीत्कार हो रहा है। एक अजीर्ण के कारण मखमली गद्दों परतड़प-तड़प कर प्राण दे रहा है। दूसरा दाने-दाने के लिये तड़पता हुआ जेठ और वैसाख की लूओं में पौष और माघ के प्रबल हिमपातों में एक-एक स्वांस गिन रहा है। एकका खाली पड़ा महल उसे खाने को आ रहा है, दूसरे को उदययाचल से अस्ताचल तक के अखंड भूमिमंडल में पैर

रखने को एक भूखंड भी नहीं है। जहाँ कहा गया कि जिस समाज का यदि एकभी व्यक्ति भूखा सो जाएगा तो वह समाज का समाज उसके शाप से भस्म हो जाएगा वहाँ समाज की यह दशा अब कब तक देखते रहोगे? जब शान्ति से वितरण नहीं होता तब क्रांति कुरुक्षेत्र के समरांगण का निर्माण करती है। जिनके लिये सुविधाजुटाने का व्यामोह हृदय को आन्दोलित कर भावनाओं को झकझोर कर समर में उतारता है। उन्हीं को समय निराश्रित निराशा निशा में उन्हीं के शवों पर खड़ा कर देता है। जलांजलि देने वाले तिलांजलि लेने वाले बन जाते हैं।

नारायण!

ऐसी जटिल परिस्थितियों के गहन-अंधकार में अंततोगत्वा कहीं आशा-प्रकाश की किरण दिखती है तो वह देश की मनीषा, चेतना ही हो सकती है। अपने यहां गंभीर लेखक, इतिहासकार, साहित्यकार, कवि और समालोचक नहीं हैं, ऐसा भी नहीं है। उनमें विवेक का अभाव है, यह कहना भी उचित नहीं है। परन्तु उनमें से अनेकानेक की रचना देख कर यह लगता है कि जिस विचारधारा का ये प्रतिनिधित्व कर रहे हैं उसका बीज भारत-भूमि का विशुद्ध औरस-जातक नहीं है, वह कहीं न कहीं से आयात किया हुआ है अथवा उसमें संकरता का समिश्रण हो गया है। उसमें से गंगा और कावेरी की गंध ही नहीं आती अपितु जब अपने जाल-वायु अपनी परम्परागत शरणागत-वत्सलता से द्रवित होकर उसे पुष्ट कर आकाश में बिखेरने लगते हैं तो अपने जल-वायु-आकाश 'अपने ही हैं' इसमें भी कभी-कभी संदेह होने लगता है। जब क्रूर धर्मान्ध कुटिल आक्रान्ता तर्क को तिलांजलि देकर अत्यन्त सतर्कता से महान-विजेता और सम्राट ठहराये जाते हैं और भारतीय यती-सती-दानी-शूरमा-संत-भक्त-सम्राट या तो कल्पित अथवा अत्यन्त साधारण कोटि में केवल-मात्र गिनाये जाते हैं, तो ऐसा लगता कि मानों मेरी अवहेलना करके मेरी मां की छाती का दूध मेरे पालित भुजंग उसके रक्त के साथ का साथ पी

कर नागपंचमी का आयोजन स्थायी बनाने का षड़यंत्र कर रहे हैं। इन तथाकथित इतिहासकारों के स्रोत क्या हैं, मैं तो आज तक समझ नहीं पाया। यदि खेत को खोदने पर अगले वर्ष का बीज न मिले तो कहा जाये कि यहां पहले कभी खेती ही नहीं हुई। यदि किसी नगर की तीन ईटें उखाड़ने पर पर पांच ईंट और सात पत्थर न मिलें तो कहें कि यहां या तो कोई रहता ही नहीं था और यदि रहता भी था वह वनमानुष था जो कच्चा-आखेट खाता था। वृक्षों की छाल लपेटता था, और शायद उसके दुम भी थी क्योंकि एक 'साहब' विकासवाद का सनकी सिद्धांत घड़ पर हमारी छाती पर मूंग दलने के लिये रख गये हैं। यदि मेरे दादाजी के पिता जी का चित्र और उनके पगड़ी-अँगरखे का कोई फटा हुआ टुकड़ा, टूटे हुए जूते का सौ-साल पुराना पैतावा ढूंढ़ने पर भी घर में न मिले तो उन्हें प्रागैतिहासिक-युग का मानूं ? उनसे भी चार-पीढ़ी पूर्व के पूर्वज का नाम न मिले तो अपने को ही दुम-घिसा हुआ उन्हीं डार्विन साहब का तश्तरी में सजा हुआ अपने ही माता-पिता को दया-पूर्वक दिया हुआ भिक्षोपहार मानूं ? या उन पूर्वजों की 'दुर्बुद्धि' पर विलाप करूँ जो इस अनोखी पीढ़ी के दर्शन किये बिना ही आपके नाम का स्मरण करते हुए आपके स्वरूप में लय हो गये। इन धूर्तों के तर्कों का स्वांग देख-कर तो नौसिखिये-स्वांगी भी मुँह फेरकर हँसने के लिये बाध्य हो जाते हैं परन्तु ये आधुनिक मनीषा की अस्मिता के एकमात्र प्राणधन अपने फूहड़पन से फैले काजल को छिपाने के लिये अपने ही मुख पर अपना ही कोयला पीस-पीस कर तेल मिला-मिला कर मल-मल कर सुंदरता के मोह में बावले हुए जा रहे हैं।

वानर-चरवाह !

इन्हें अपने दुष्कृत्य का ध्यान न हो ऐसा नहीं है। जैसे रावण आपको भली-भांति जानता था कि 'आप क्या हो' और सत्य पूँछो तो आपके पिता महाराज दशरथ और माता कौशल्या से अधिक जानता

था परन्तु उसे तो किसो भी बहाने आपसे टकराना था, सो टकराया। पर इनकी स्थिति उससे भी और दो-पग आगे हैं। यह पाप है, ये जानते हैं। हम पापी हैं, ये जानते हैं। इसका प्रायश्चित गंगास्नान है, ये जानते हैं। पर करेंगे नहीं, अन्यथा इन्हीं खर-दूषणों में से कोई एक खड़ा होकर दूसरे को संकीर्ण मनोवृत्ति वाला, अनुदार बतायेगा दूसरा सुनेगा। सांप को रस्सी बतायेगा। पर सत्यवादी बने रहने के व्यामोह में विष की लहर को रस की फुहार कहेगा एक रस्सी को सांप बतायेगा। भयभीत होने का स्वांग कर निर्भीकता का नाश कर, प्राणों को छल लेगा। स्थिति क्या, जैसे कोई वेश्या की चौखट पर धनबल-रूप-कीर्ति गँवाकर दूसरे धन-बल-रूप-कीर्ति गँवाने को आतुर लम्पट के छुरे का घाव खाकर बिना मरमह-पट्टी कराये खून बहा-बहा कर शहीद होने का दिखावा करता हुआ किसी अनाथ-पशु की भाँति तड़प-तड़प कर प्राण दे रहा हो। अब इसका कोई निदान है? जाग कर भी निद्रा के पाखंड करने वाले को कैसे जगाया जाये? सोता हो तो उठा लिया जाये।

दैत्य-यज्ञ-विध्वंसक !

और छल में घोर छल, पाखंड में प्रचंड पाखंड देखिये। हमारी संस्कृति को अर्वाचीन, कपोल-कल्पित कह कर हमारों से ही हमारा उपहास कराने वाले ये विदेशी विज्ञान जगत के स्वयंभू सूर्य और चन्द्रमा जहाँ एक ओर हमारे वेद शास्त्र-पुराणों के एक-एक अक्षर को ब्रह्म-वाक्य मानकर उसके सत्य-तत्व के मूल में पैठने के भगीरथ-प्रयत्न में रत होकर चन्द्र-वृहस्पति-शुक्र-मंगल आदि लोकों को अपने उपग्रह भेज रहे हैं, रत्नाकर (समुद्र) का मंथन कर रहे हैं, हमारे पर्वतों पर पर्यटन का खेल दिखा-दिखा कर दुर्लभ जड़ी-बूटियों को प्राप्तकर असाध्य-रोगों की औषधियें प्रस्तुत कर अपार धन बटोर रहे हैं, पुष्पक-विमान से एरोप्लेन, आकाशवाणी से रेडियो, दिव्यदृष्टि से टेलीवीजन, प्राण-मयी प्रकृति से जड़-तत्वों की करुणा द्रवित कर अनेकानेक अनोखे-

अनोखे प्रयोग कर रहे हैं, वहीं हमें पाठ पढ़ा रहे हैं कि वेद तो गड-रियों के गीत हैं। पुराण तो कल्पित कथामाला है। भारतवर्ष का इतिहास तो बुद्ध से ही प्रारम्भ होता है। (इसमें भगवान बुद्ध के प्रति श्रद्धा हो ऐसा नहीं, अपितु उनके प्रधानत: अहिंसा-मूलक सिद्धांत के द्वारा भारतीय-पराक्रम को नपुंसकता में परिवर्तित करना ही उनका लक्ष्य है।) रामायण और महाभारत तो कभी हुई ही नहीं। कुछ ने कृपा करके माना है तो अयोध्या इंडो-नेशिया में और लंका मध्यप्रदेश में प्रकट करके दिखा दी। अब आप कहिये कौन सी तमसा के तट पर वन-गमन के समय प्रथम रात्रि को रहे थे? भरद्वाज इसी प्रयाग में मिले थे या यकार्ता के पास किसी स्तूप में? पंचवटी इसी नासिक में थी या मलयेशिया में? सुग्रीव से इसी कर्णाटक के ऋष्यमूक पर मिले थे या बैंकाक में? समुद्र यहीं रामेश्वरम् की स्थापना कर सेतु द्वारा पार किया था या सीता-हरण का 'गम गलत करने के लिये' मध्यप्रदेश के किसी तालाब-पोखर को पत्थरों से भरते रहे थे?

रमानिवास!

मेरी इन बातों से आपको लग रहा होगा कि मैं कोई मादक-मदक पीकर आपसे मखौल करने की धृष्टता कर रहा हूँ, परन्तु देव! जानकी को मां कहने वाला इतना नीच नहीं हो सकता, और न ही यह मखौल है। यह सत्य है। इन पर बड़ी-बड़ी पुस्तकें छपी हैं। हमारी भारत सरकार ने धन पानी की तरह बहा-बहा कर राष्ट्रीय-स्तर की गोष्ठियाँ कराई हैं। वहाँ ये निबंध ऐसी शांति के साथ सुने गये हैं जैसे कोई मुर्दों की सभा अर्धरात्रि के नीरव-श्मशान में प्रेत-प्रवचन जड़ होकर सुन रही हो। समाचार-पत्रों ने ऐसे छापा जैसे एक चिता की लपट दूसरी चिता की लपट से प्रतियोगिता ठान कर मचल-मचल कर लहर रही हो। इन 'महान्-विद्वानों' के शोध-ग्रन्थ अमरबेल की तरह सनातन सत्य इतिहास के हरित-उपवन की कथा वृक्ष-माला,

की हरियाली को धुमैली करते हुए फैल रहे हैं। एक दूसरे का प्रमाण देकर अपने सिद्धांत की पुष्टि कर रहे हैं। 'उष्ट्राणां विवाहेषु गीत गायन्ति गर्दभा:'। (ऊँटों के विवाह में गधे गीत गा रहे हैं।)

भारती-भर्तृ !

वाल्मीकि-वेदव्यास-कालिदास-माघ-भारवि - कंबन-कृत्तिवास-सूर-तुलसी-रहीम-रसखान-मीरा-भारतेन्दु-रत्नाकर-मैथिलीशरण के देश का कवि भाव-मय छंद के बंधन को तोड़कर अश्लील चुटकले लय-ताल से भांड़ों की भांति सुना रहा है। पार्वती-गरुड़-भरद्वाज-जनक-परीक्षित और जनमेजय के देश का श्रोता धृतराष्ट्र की भांति सब कुछ देखता हुआ भी मारीच की तरह रावण की वाणी सुन रहा है। सोने का हिरण बलात् बनकर न चाहते हुए भी सीता-संस्कृति के हरण का कारण बनकर अकारण मर रहा है। कुंभकर्ण की भाँति रावण की भर्त्सना करते हुए अकेला राम से जूझ रहा है। वानरों को खा रहा है। अपना जीवन गँवा रहा है। आँखों वाले अंधे बन कर शुभ-शकुनों के स्वप्नों की प्रतीक्षा में भरी दुपहरी को अर्ध-रात्रि मान कर पड़े हुए है। कहिये ! इन सरस्वती की कोख के उजालों से कौन-कौन से अंधतामिस्रों में क्रांति की चिंगारियां प्रस्फुटित होंगी ? ये तो बुद्धि-जीवी हैं न, सब खिड़कियाँ खोलकर बैठे हैं। नव के मोह में हवा के नये-नये झोकों का आनन्द ले रहे हैं। अब चाहे वह श्मशान से आ रही है या पिछवाड़े के घूरे से आ रही है। हां! मां के ठाकुरद्वारे की ओर का द्वार कसकर बंद कर रखा है क्योंकि वहां से कहीं अगरु-कर्पूर का धुंआ आ गया तो मार्क्स और फ्रायड कह गये हैं कि तुरत असाध्य एलर्जी हो जायेगी, जिसका कि इन बिचारों के पास कोई इलाज नहीं है। ये करें भी तो क्या करें ? उलूकों की महत्ता और शमादानों की टिमटिमाहट की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये तो सूर्योदय पर प्रतिबंध लगाना ही पड़ेगा। इसके लिये विशेष अध्यादेश जारी करना पड़े तो करना ही पड़ेगा आखिर संसार सूर्य की तानाशाही कब तक सहेगा ? चित्रकट में तो आपने चार्वाक का मुंह

तोड़ दिया था पर यहाँ इनका मुँह कौन बन्द करेगा ?

हरे !

पाप तो पहले भी हुए, कुछ कम नहीं हुए। पर वे सीमित-वर्ग में हुए। अधिकांशतः सीमित मात्रा में हुए। आज तो ऐसा लगता है जैसे कोई सीमा ही नहीं रही। कीचड़ तो पहले भी हुई, बहुत हुई। फिसलने वाले फिसले भी, निकालने वाले निकालकर भी ले गये। पर जो नहीं निकले उनके साथ निकालने वाले गठबंधन करके नहीं बैठे। आज तो सृष्टि कीचड़ में कीट की तरह लोट-लोट कर आनन्द ले रही है। यदि कोई उसे उसकी स्थिति का भान कराये तो यह उसी का जीवन समाप्त करने पर कटिबद्ध है। प्रत्येक दिशा में प्रत्येक स्तर पर पतन की पराकाष्ठा हो गई है। चरित्र तो कोष के संग्रहालय का भूसा भरा हुआ आदिम-काल के जंतु के निष्प्राण पंजर के समान एक प्रदर्शनीय वस्तु बनकर रह गया है। त्याग-तपस्या-अहिंसा-दया-प्रीति आदि तो पुरानी कुलीना महिलाओं की स्यापों की सी तीयल बन गई है, जिसे कुछ बड़े-बूढ़े समय-समय पर प्रयोग कर लेते हैं। नवीन-पीढ़ी तो आधुनिकाओं की भांति अभेद-बुद्धि से शव-यात्रा और वर-यात्रा दोनों में ही एक सा पहनावा पहिन रही है। मर्यादा टूट गई है। मर्यादा पुरुषोत्तम ! मर्यादा टूट गई है।

भू-भार-हरण !

यदि आप विचारते हो कि धरती फिर गौ का वेष धारण करके ब्रह्मलोक में जायेगी। ब्रह्माजी देव-सभा का आयोजन करेंगे। वहाँ सर्वसम्मत प्रस्ताव द्वारा वैकुंठ में यह देव-दल पधारकर 'जय-जय सुर-नायक जन सुखदायक प्रणतपाल भगवंता' आदि कहकर आपको द्रवित करेगा। आप उन्हें अवतार का आश्वासन देंगे। दशरथ पुत्रेष्ठि-यज्ञ का आयोजन करेंगे। आप प्रकट होंगे और फिर असुर-दमन होगा। तो हे जगन्नाथ ! आप स्पष्ट समझ लें कि आज धरती ब्रह्मलोक नहीं

जा सकती क्योंकि वह तो तल-अतल-वितल-सुतल-तलातल-रसातल चीरती हुई निरन्तर पाताल की ओर अग्रसर हो रही है। देवताओं के पाप ही आज हमारे सर्वनाश का पथ प्रशस्त कर रहे हैं। प्रह्लाद ने हिरण्यकशिपु के कार्य पूर्ण करने का निर्णय ले लिया है। विभीषण ने जानकी-हरण का विरोध करना बन्द कर दिया है। पांडवों ने वन-वास के स्थायित्व को नियति मान लिया है। वसुदेव-देवकियों ने निपूते मरने का विचार कर लिया है। अतः अब

एषा मही देव ! मही प्रसूतै—
र्महासुरैः पीडितशैलवंधा।
परायणं त्वां जगतामुपैति
भारावतारार्थमपारसार॥

(हे देव ! इस पृथ्वी के पर्वत रूपी मूलबंध इस पर उत्पन्न हुए असुरों के उत्पात से शिथिल हो गये हैं। अतः हे अमित पराक्रमी ! यह पृथ्वी अपना भार नष्ट कराने के लिये आपकी शरण में आयी है।) कौन कहेगा आपसे और आप भी किससे कहेंगे कि—

सुराश्च सकलास्स्वांशैरवतीर्य महीतले।
कुर्वन्तु युद्धमुन्मत्तैः पूर्वोत्पन्नैर्महासुरैः॥
ततः क्षयमशेषास्ते दैतेया धरणीतले।
प्रयास्यन्ति न सन्देहो मद्दृक्पात विचूर्णिताः॥

(सब देवगण अपने-अपने अंशों से पृथ्वी पर अवतार लेकर अपने से पूर्व उत्पन्न हुए उन्मत्त दैत्यों से युद्ध करें। तब मेरे दृष्टिपात से से दलित होकर पृथ्वीतल पर समस्त दैत्यगण निस्संदेह क्षीण हो जायेंगे।)

गोलोकधाम वासी !

अतः वर्तमान परिस्थिति-जन्य कालकूट की कराल ज्वालाओं से

आच्छादित धर्म-संस्कृति-साहित्य-रीति-नीति के अमृत-कलश को प्रकट करने के लिए स्वयं मंदराचल को गरुण पर रखकर, स्वयं कच्छप बनकर अपनी ही पीठ पर धारण कर, आकाश में उछल कर न चला जाये इस हेतु स्वयं ही त्रिभुवन का भार धारण कर उसे अनुशासित कर, घर्षण से नेतीस्वरूप वासुकी के मृत-कलेवर में प्राण-पुरुष के रूप में स्वयं प्रतिष्ठित होकर, इन मंथन करने वाले नष्टवीर्य देवमंडल में स्वयं अक्षय-वीर्योत्साह बनकर, स्वयं ही अमृत-कलश धारण कर धन्वंतरि के स्वरूप में प्रकट होने से ही समस्या का समाधान नहीं होगा अपितु भुवन-सम्मोहिनी मोहिनी छवि धारण कर इन दीन-देवताओं के मुखों में भी डालिये और सुदर्शन-चक्र धारण कर राहुओं के शिरच्छेद भी करते जाइये, तभी यह समुद्र-मंथन सफल होगा। यहाँ तो शकुनियों के पासे छत्र-मुकुट-चँवर-धन-धाम-धरती-स्वातंत्र्य ही हरण नहीं कर चुके अपितु अब तो संस्कृति द्रौपदी को भ्रष्ट करने के लिए अंधों की सभा में 'नमक-हलालों' की स्वामिभक्ति की छत्र-छाया में चीर-हरण का विधिवत् निर्विघ्न आयोजन हो रहा है।

अनंत !

इस पाप-दुश्शासन के असह्य दुश्शासन को भीमशासन की भाँति अलंघ्य अनुशासन प्रदान करने के लिये इस रजस्वला की शिर से उतरती हुई साड़ी में प्रविष्ट हो जाइये। पीताम्बर ! अपनी महिमा को दिगंबर होने से बचा लीजिये। शकुनि् के दांव पर यह युधिष्ठिर का मुकुट, अर्जुन का गांडीव, भीम की गदा नहीं रखी हुई है, यह दशरथ प्रदत्त भरत-संरक्षित वसिष्ठ-संस्थापित आपका सूर्य-मंडित मुकुट रखा हुआ है। रावण और वालि के सद्यः सुतप्त शोणित की रंजिनी रचा कर उनके वक्षस्थल के रास-मंडल में उन्मुक्त भाव से नृत्य रचाने वाली आपकी अमोघ शरावलियों का सुकेलि-पर्यंक भगवान परशुराम-प्रदत्त आपके महावैष्णवी और अगस्त्य-प्रदत्त विजय धनुषों की प्रतिष्ठा रखी है। प्रचंड-पातक-पुंज-प्राण-प्रकंपन कारी आपके प्रसिद्ध पांचजन्य की

अपराजेय निष्कं लक-कीर्ति पलायन करने को प्रस्तुत है। मां सीता तो परकीयों की लंका में अपहरण करके वंदिनी बनाई गई थी परन्तु यह संस्कृति सीता तो अपने ही देश में परकीयों द्वारा परकाय-प्रवेश की सुसिद्धि को कुमार्ग में प्रवृत्त कर स्वकीयों के ही मन-वाणी-बुद्धि-वेशभूषा-भाषा में प्रविष्ट कर कुसिद्धि प्राप्ति-हेतु बलि-वेदी पर अत्यन्त विधि-विधान पूर्ण षड्यंत्र के द्वारा सजा दी गई है। मेरे देश के भोले निवासी नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं ? उन्हें अपने प्राँत-जिले-नगर-गाँव की सीमा तो दिख रही है किन्तु भरत-भूमि की सिकुड़ती हुई धधकती हुई सीमा नहीं दिख रही है। उन्हें अपनी नाक पर उठती हुई मूर्खों की उँगली तो दिख रही है। परन्तु अपने शिर पर लटकती हुई धूर्तों की तलवार नहीं दीख रही। उनकी प्रांत-भक्ति राष्ट्र-भक्ति की हत्या करने की धुन में दीवानी होकर आत्म-हत्या करने की सज्जा स्वयं सजा रही है। पंथ-भक्ति धर्म के पंथ की पुष्प-वाटिका को कंट काटवी में परिवर्तित कर रही है।

शेषशायि !

इन अधमुंद कमल-विलोचनों को उघाड़कर देखो। अयोध्या-मथुरा-काशी-कांची-अवन्तिका-द्वारका की धरती अपनी पहचान खोती जा रही आपकी लीलास्थली पाप की केलिस्थली बन गई है। नरक-निकाय का संग्रहालय बन गई है। मेरे अंतःकरण की वेदना की यह संवेदना आपकी छवि का आपको दर्शन करने करानी वाली दर्पण-माला बन जाये, करुणा-वरुणालय ! यह वरदान दो। यह आपको आपकी आकृति, आपकी प्रकृति, आपकी कृति आपकी कीर्ति आपकी प्रण-विज्ञप्ति का भान करा दे। आपको स्मरण करा दे कि ऐसी भयं-कर परिस्थितियों में भारत भूमि पर सदैव आपके स्वयं पधारने की ही परम्परा रही है। अच्युत ! अपनी अच्युति को अबला मत बनने देना। आपकी शोभा की संबला इसकी प्रबलाभिव्यक्ति ही है। अब

अंत में फिर आपसे यही कहूँगा कि और क्या कहूँ ? जो वाणी कह सकती थी, कह चुकी। जो हृदय कह रहा है, वह आपका हृदय जानता है। जो ये भरी हुई आँख कह रही है वह तो शरणागत-वत्सल ! आपको आँख भव कर ही देखना पड़ेगा।

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम् ।
त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृ प्रहर्तृ
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ।।
भयानां भयं भीषणं भीषणानाम्,
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं,
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् ।।

आपका अपना ही
रामरंग

श्रीनृसिंह चतुर्दशी
२०३८ वि० सं०

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खंड

प्रथम-भुवन

नित्य-साकेत एवं साकेत

द्वितीय-भुवन

श्रीराम-राज्य की व्यवस्थायें

तृतीय-भुवन

श्रीराम-यात्रा

चतुर्थ-भुवन

श्रीजानकी-सीमन्तोन्नयन तथा मिथिला यात्रा

द्वितीय खंड

पंचम-भुवन

शतकंधर-वध

मंगलाचरण (शक्ति-वंदना) शतकंधर द्वारा श्रीराम-लक्ष्मण को वंदी बनाना, श्रीहनुमान का अयोध्या-आगमन, श्री जानकी का ससैन्य प्रस्थान, शतकंधर-पुरी में प्रवेश, शतकंधर का युद्धस्थल में प्रवेश, शतकंधर के दूत का श्री जानकी के पास आना, युद्ध, शतकंधर-पलायन, रघु-सेना का दुर्गप्रवेश, काली-मंडप में युद्ध , कैकेई-पराक्रम, शतकंधर-वध, अयोध्या-आगमन ।

षष्ठम-भुवन

श्रीजानकी-वनवास

मंगलाचरण (श्री गंगास्तवन), श्रीजानकी-विनोद, गुप्तचर-आगमन, श्रीराम का अंतर्द्वन्द, मंत्रणागार में, राघव-विलाप, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, राम, भरत, राम, लक्ष्मण के तर्क, राम का समाधान, भरत-शत्रुघ्न निर्गमन, सीता-वनगमन, गंगातट, सीता-संदेश, लक्ष्मण-प्रस्थान ।

सप्तम-भुवन

श्रीहीन अयोध्या

मंगलाचरण (आत्म-निवेदन),लक्ष्मण पथ में,कवि-ग्लानि, विनय, लक्ष्मण सरयू-तीर पर,राजप्रासाद में कुपित सुमित्रा,दीन वधुयें, संतप्त पालित विहग,विह्वला कौशल्या,अयोध्या,कुपित मातृ-शक्ति, राजसभा, वसिष्ठ, रौद्र ब्रह्मर्षि, सुग्रीवादि-आगमन, हनुमान-अंगद-गुह अनशन, सुविज्ञ केशरी, राम पद्मप्रासाद में, मां, विरही राजा और पुरी ।

अष्टम-भुवन

श्रीजानकी वन-निवास

मंगलाचरण (दशावतारस्तोत्र), लक्ष्मण-प्रस्थान, जानकी-आत्म-चिंतन, गंगास्नान, वाल्मीकि-दर्शन, भेंट, आश्रम-प्रवेश, आवास-निर्माण, तापस-कन्या-वार्ता, कल्याणी नंदा, जानकी-दिनचर्या।

विरहपदावलि

मेघदूत

लवकुश-जन्म, शत्रुघ्न-आगमन, जानकी-दर्शन, शिशु-क्रीड़ा, बाल्यावस्था, वाल्मीकि-कथन, पौगंडावस्था, धनुषों की प्राप्ति।

नवम-भुवन

लवणासुर-वध

मंगलाचरण (श्रीमारुति-बलस्मरण स्तोत्र), राजसभा, च्यवन-आगमन, लवण-अत्याचार वर्णन, शत्रुघ्न-कथन, बाणोपहार, शत्रुघ्न-प्रस्थान, शत्रुघ्न-लवण संवाद, युद्ध, लवण-वध, मथुरा-प्रवेश, श्रीशिवार्चन, मथुरा-निर्माण, श्री राम-आगमन, अयोध्या-गमन।

दशम-भुवन

राजसूय

प्रथम खंड :—मंगलाचरण(श्री तुलसी महिमा),श्री वशिष्ठ द्वारा राजसूय का प्रस्ताव, श्रीराम द्वारा असमर्थता-अभिव्यक्ति, भरत द्वारा राम का समर्थन, वसिष्ठ-कथन, राजसूय की तैयारियां,

स्वर्ण-सीता का निर्माण, भूमि पूजन, मंडप निर्माण, यज्ञारंभ, यज्ञ-सत्रान्तर्गत चिकित्सा-योग - ज्योतिष-खनन-कृषि-विषोपविष - उद्योग-राजनीति-व्यवस्था-संस्कृति-धर्म-साहित्य विवेचना ।

द्वितीय खंड :—सेनापति लक्ष्मण, अश्व-पूजन, गायन, लक्ष्मण-प्रतिज्ञा, सैन्य-प्रस्थान, दिग्विजय, प्रजा के उद्गार ।

तृतीय खंड :—लव-कुश द्वारा जानकी को यज्ञ का समाचार देना, सीता-शंका, वाल्मीकि द्वारा समाधान, वाल्मीकि का प्रस्थान, लव-कुश द्वारा अयोध्या-दर्शन, लव-कुश अंतःपुर में, महिलाओं द्वारा विचार-विमर्श, लव-कुश यज्ञ में, लवकुश का गायन (अग्नि परीक्षा), वसिष्ठ-लवकुश वार्तालाप, सक्रोध गायन ।

चतुर्थ खंड :— वाल्मीकि का अयोध्या से प्रस्थान, आश्रम में, रण-कौशल, अश्व-दर्शन, सैन्य-सम्मुख, लक्ष्मण-वार्तालाप, संघर्ष, लव-बंधन, कुश-प्रस्थान, युद्ध, लक्ष्मण-पराजय, अयोध्या में समाचार, रामाक्रोश, अंगद-हनुमान का गमन, रणांगण-प्रवेश, भेंट, संघर्ष, कपि-बंधन, सीता-दर्शन, सीता-लक्ष्मण भेंट, अंगद का अवध-गमन ।

पंचम खंड :— अंगद-भाषण, जनान्दोलन, भरत-प्रस्थान, तपोवन में भरत, विदा, जानकी का यज्ञ-प्रवेश, पूर्णाहुति, धरती-प्रवेश, लव-कुश कोप, अगस्त्य द्वारा शांति ।

एकादश-भुवन

कौशल्या-निर्वाण

मंगलाचरण, (भारत मां की जाई) कौशल्या-वंदना, दुखद-समाचार, मूर्च्छा, प्रलाप-विलाप, श्री रामागमन, कौशल्या निर्वाण, सुमित्रा का क्रोध, लक्ष्मण-हस्तक्षेप, पुनः आक्रोश, श्रीराम का पश्चाताप, कैकेई द्वारा सांत्वना-विलाप, शिविका, शवयात्रा, दिव्य-चिता, अन्त्येष्टि, वाल्मीकि द्वारा श्रीराम को लवकुश सौंपना ।

द्वादश-भुवन

सुमित्रा-कैकेई निर्वाण

प्रथम खंड :—मंगलाचरण, दिव्य-योग, समाधि में प्राण त्याग, वसिष्ठ द्वारा सुमित्रा-महिमा कथन,

द्वितीय खंड :—श्रीराम-कैकेई, मूर्च्छा, संवाद, मां द्वारा जानकी - महिमा - प्रतिपादन, वनवास के प्रति ग्लानि, राम द्वारा सांत्वना, भरत के मौन के प्रति विह्वलता, अचेतना, भरत-आगमन, अनोखी विवशतायें, अंतिम-समय, राम-विलाप, अन्त्येष्टि, शोक-सभा, राम का संताप, वशिष्ठ द्वारा राम-वनवास का रहस्योद्‌घाटन, वशिष्ठ की संपत्ति, वशिष्ठ द्वारा पुरोहित-पद का त्याग, शक्ति वासिष्ठि को पौरोहित्य-पद ।

त्रयोदश-भुवन

शैलूष-वध

मंगलाचरण,(भरत-महिमा,)कैकेयराज का पत्र (शैलूष-अत्याचार) कुपित राम, भरत-निवेदन, शक्ति-वासिष्ठि उद्‌बोधन, सेनापति भरत, सन्नद्ध सेना, राष्ट्र-रक्षा-कवचस्तोत्र, प्रस्थान, केकयराज से भेंट, शांति-कपोत, रिक्त-शिविर, कैकेय-नर्तकी, त्रिकूटा-गुहा, वितस्ता-तीर,शेषव्यूह, राघवी सेना का प्रलयंकर-व्यूह, युद्ध, आकाश-युद्ध, दुर्ग पर आक्रमण, तक्ष-पुष्कल का शिखर-गृह पर प्रयाण, शैलूष-विलास, वार्ता, तुमुल, कौटिल्य, वंदी तक्ष-पुष्कल (भरत-पुत्र) हनुमान-पराक्रम, शिखरध्वंस, दुर्ग-प्रवेश, घोर-युद्ध, शैलूष-पलायन, शैलूष-जल्पना, शैलूष-मूर्च्छा, युद्ध (कवित्त छंदों में) प्रासाद-घेराव, शैलूष द्वारा स्त्रियों को निर्देश और उसकी अवहेलना, भरत-शैलूष द्वन्द-युद्ध, शैलूष-वध, अश्वजित् द्वारा शैलूष के मस्तक पर प्रहार

और भरत द्वारा निषेध, शैलूष-पत्नी द्वारा पूर्व वृत्तान्त वर्णन, सती वैष्णवी-दर्शन, सिंधु-सागर संगम पर अस्थि-प्रवाह, अंतःपुर में भरत, शुद्धि-व्यवस्था एवं पुनर्वास, अश्वजित-शरीरत्याग, विजयी भरत का प्रस्थान, श्रीनगर-जम्बू-लवपुर-अमृतसर-कर्पूरस्थल-जलन्धर-सारकंडवन-कपिस्थल-इन्द्रप्रस्थ-लक्ष्मणपुर-अयोध्या, सेनापति भरत का स्वागत, श्रीराम की करुणा, सीता-वनवास के पश्चात् राम का प्रथम-भोजन, श्रीराम-हनुमान वार्ता (शैलूष-पतन का कारण)

चतुर्दश-भुवन

महाप्रयाण

मंगलाचरण, कनक भवन के आंगन में पौत्र-विनोद, मुनि-वेषी काल का आगमन, दुर्वासा-आगमन, लक्ष्मण-विदा, श्रीराम-कथन भरत-प्रति, शत्रुघ्न-प्रति, पुत्रों के प्रति, सचिवों के प्रति, राजपत्र, मांडवी-श्रुतिकीर्ति, पुत्रवधुयें जानकी के शयनागार में, सुग्रीव-विभीषणादि आगमन, सेवक-जन, पुत्रों का राज्याभिषेक, व्यवस्था, श्रीराम का आवेदन, अयोध्या के पथ पर, सरयू-तीर, कवि-संताप, सरस्वती-सांत्वना, स्तुति ।

परिशिष्ट

ॐ

मंगलाचरण

छप्पय

*विद्यावारिधि बुद्धि-परिधि प्रिय ऋद्धि-सिद्धि के ।
विघ्नहरण विघ्नेश मूल - वैभव विवृद्धि के ।।
तीर्थराज शिव-गंग भवानी-रवितनया के ।
व्यास-निर्झरी-क्षेत्र प्रफुल्लित - नेत्र दया के ।।
कीर्ति-आयतन के सु-तल, दंड सुयश ध्वजराज के ।
कर-मंडल मंगल - सकल, आप सूर्य गणराज के ।।१।।

देखो, निज शिशु केलि, स्वांग तव चला धारने ।
राम - नाम लिख पत्र चतुर्दश-भुवन नापने ।।
तवाकार से पीन, क्षीण मन का, गिरि - सा तन ।
गति विरहित जग-जीव, स्वल्प-मति मूषक, वाहन ।।
सिय-सियपति - गाथा-सुकवि, परम मनोरथ चित लिये ।
कठिन, सहज गिरिजातनय ! तनिक आपके चित दिये ।।२।।

---

*नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ।।
ऋग्वेद १०/११२/९

लगा काष्ठ की बांह छांह मय गरुड़ बना कर ।
चक्र-गदा-कज-कंज लिये, त्यों चढ़ा गगन पर ॥
वीर-व्यूह के मध्य, वेष निज घिरा देखकर ।
समा गये ज्यों शौरि, सूत में बन शंखस्वर ॥
वरद ! विनायक ! विरद निज, देखें त्याग सुमांद्य त्यों ।
रहे सदैव सदेव तव, प्रथम-मान्य-पद मान्य ज्यों ॥३॥

परम - मानिनी अंब ! भारती, त्याग मानसर ।
बौराया चित - हंस तांकता शून्य - सरोवर ॥
शब्द-अर्थ - कुल भँवर, छंद - झंझा धीरज - हर ।
अलंकार - पतवार ज्ञान - विरहित दुर्बल-कर ॥
कैसे मनुहारें करूं, लघु - जीवन जर्जर - तरी ।
हृदयासन निज - प्रिय कथा, कहो स्वयं वागीश्वरी ॥४॥

गुरु वशिष्ठ ऋषिश्रेष्ठ, गाधिकुल - रत्न मुनीश्वर ।
भरद्वाज - घटयोनि - अत्रि - वाल्मीकि कवीश्वर ॥
कौशल्या - केकई - सुमित्रा युत नृप दशरथ ।
स-कुल सुनयना - जनकराज भुवि ज्ञान-राजपथ ॥
भरत - लखन - रिपुदमन - श्रुतिकीर्ति - उर्मिला - मांडवी ।
मारुति पदपंकज नमन, जय - जय सरयू-जान्हवी ॥५॥

अंब अंजनी - पुण्यवान केशरी महामति ।
कीशराज - युवराज - बालिभामिनी - ऋक्षपति ॥
माल्यवान - कैकसी - विभीषण - सरमा - मयजा ।
त्रिजटा - वज्रज्वाल - सुपनखा - सती अंगजा ॥
ऋक्ष - रक्ष - कपि - साधुजन, प्रिया सहित गुह-व्यूह-पति ।
पल - पल पग - पग वंदना, दो प्रमुदित सिय-प्रिय सु-रति ॥६॥

करुणामयि ! मां - जनकदुलारी ! भूमिकुमारी ।
कनक-भवन की नित्य-स्वामिनी ! रघुपति-प्यारी ॥
तव सुदृष्टि वृष्टि की गिरा - गिरिजा-श्री झारी ।
ऋद्धि-सिद्धि-निधि सकल, केलि-उपवन की क्यारी ॥

एक हठीला बाल तव, खड़ा अंब ! तव द्वार पर।
तव प्रियतम - गाथा ललित, गायन का चित चाव भर ॥७॥

रघुपति कथा समुद्र, शंभु - अज - शेष - व्यास से ।
कल्पों में दो - लहर, लहर पाये समास से ॥
क्षीरोदधि कर मथन, एक मणि लाया मंदर ।
क्षारोदधि जल सहज जलद-पद पाता नभ पर ॥
केवल रवि - परिवह कृपा, भरे समर्पण - भाव मन।
त्यों, तव छवि वरदाभया, करे मुदित शिशु-मिष भुवन ॥८॥

दशरथ-राजकिशोर ! जानकीनाथ ! अवधपति ।
तव पद-रति-रत नृत्य करे प्रमुदित-चित मम-मति ॥
बने लेखनी रास-भूमि तव भावावलि की ।
भरी मधुर - मुस्कान छांव तव पलकावलि की ॥
मेरे मन-मति - चित-अहं, सगुण सु-गुण सर्वेश के।
अनुचर से अनुसरण-रत हों प्रभु ! तव प्रति-वेष के ॥९॥

यह कलि-काल कराल, काल-धावन अकाल का ।
फैला सूत्र-कषाल, क्रूर व्यामोह - जाल का ॥
माया-कुही भ्रमांड, सकल ब्रह्मांड तांकता ।
भुंड-दंभ ज्यों राहु, चन्द्र-मार्तण्ड फांकता ॥
निगल न पाता, भीति पर देता, नयन तरेरता।
पर्व-समय पर, गर्व से गौरव धूर्त बिखेरता ॥१०॥

कब तक यह उपहास अनाथों-दासों सा बन।
सहे झुकाकर शीश आपका धर्म सनातन ॥
रामरंग-मन मूर्ति मंजु तव यद्यपि रघुपति।
किन्तु समष्टि सु-हेतु अनिश्चित भी न तनिक मति ॥
त्रेता में धनु-बाण ज्यों, द्वापर मुरली-चक्र ज्यों।
इस कलि-हित तव भ्रकुटि सी, मधुर-प्रखर असि वक्र त्यों ॥११॥

जग को काल-कगार, आज विज्ञान खिलाता ।
यों परिभाषा बदल गई, रस, गरल कहाता ।।
खर-दूषण सम विश्व-शांति-विध्वंसकारि दल ।
हों समाप्त, जो सुधर न पायें, मलागार खल ।।
दैवी-भावावलि तुरग असुर-दमन - मन चंचला ।
राम ! धार श्री कल्कि छवि, करो स्व-सृष्टि समुज्ज्वला ।।१२।।

चंद्रमौलि - गिरिराजनंदिनी - ब्रह्मा - नारद ।
कागभुशुंडि-खगेश - शेष - वाल्मीकि विशारद ।।
याज्ञवल्क्य - हनुमान - विभीषण-तुलसी - कंबन ।
त्यागराज - मैथिलीशरण - लक्ष्मीनारायण ।।
ईश्वरप्रसाद आत्रेय श्री, रघुपतिभक्त - कपीन्द्र जय ।
निज गुरुकुल पद कमल तल, अजर-अमर - निर्भय त्रिवय ।।१३।।

आगम - निगम - पुराण - अमित रामायण मंडल ।
संत-गिरा, सद्काव्य, जनश्रुति प्रचलित भूतल ।।
वय-अनुभव, अनुमान, भारतादर्श - समर्थित ।
यत्र-तत्र लघु - सूत्र दैव - प्रेरणा समन्वित ।।
अनुकम्पा सियराम की, श्रीविग्रह चित - चेत का ।
गुरु-पितु - आशिश अवतरण, यह उत्तर-साकेत का ।।१४।।

भावना

श्री रामचन्द्र राजाधिराज मर्यादा पुरुषोत्तम की ।
यह कथा अखिल-लोकेश परातपर परब्रह्म ईश्वर की ।।
जो जन्म-जन्म से कल्प-कल्प से रहे भाव अन्तर के ।
हिय करें रमण, रमणीय-प्राण वे, वाणी-वीणा-स्वर के ।।

साधना

देव-दनुजों सी प्रबल–प्रवृत्ति,
हृदय सा सागर अगम-अपार।
मथानी जड़–मंदर सी बुद्धि,
बाल-चापल्य मथन व्यवहार॥

किया रस प्राप्ति हेतु उद्योग,
मिला जग–ज्वलित–हलाहल–घोर।
पी गया नीलकंठ सा धैर्य,
खिंचे फिर चित-- नेती के छोर॥

झूमती-गाती हाला उठी,
लगा होने कण-कण मदमत्त।
दनुज समझे यह ही रस श्रेष्ठ,
वासना और पूर्ति अविभक्त॥

हिले फिर सुतल-धरातल-व्योम,
रोम-रोमों से उठी हिलोर।
पूर्व का जागा रवि-रस-कलश,
अरुण–आभा बिखरी दिशि–छोर॥

पिलाती चली मोहिनी-भक्ति,
हुआ घट-घट रस-मानस-घाट।
पिया-न्हाये भर–भर ले गये,
खुल गये अक्षय-स्रोत विराट॥

दिखे कोई निमित्त सा कहीं,
किंतु कर्त्ता तो केवल राम।
महा-ममता के पारावार,
उन्हीं को बारम्बार प्रणाम॥

समर्पण

कनक–भवन के ठकुरानी-ठाकुर श्री सीताराम।
धूलि-धूसरित शिशु का सादर स्वीकृत करें प्रणाम॥
बिठा अंक पर्यंक, एक मन करते विविध–किलोल।
अपने से अपनी लीलायें सुनें, सुधारें बोल॥

प्रथम भुवन

सोरठा

वे सीतापति राम, जहां विराजे मुदित मन।
उपवन ललित-ललाम, चल लेखनि! उस अवध के॥

रोला

जिनमें करते रमण, योगिजन नित्य—निरन्तर।
निरावरण-सावरण-कलश ज्यों, सजल विमल सर॥
शब्द व्योम में, स्पर्श वायु में, रूप अग्नि में।
रस जल में, शुभ-गंध भूमि में, प्राण प्रकृति में॥
सूर्य-चन्द्र में ज्योति, शेष में शक्ति अपरिमित।
आदि-पुरुष, श्रुति सत्य, क्षितिज क्षितिजों से विस्तृत॥
अज-अद्वैत-अनादि अखिल-आनन्द-अंबुनिधि।
'द्वैताद्वैत-विशिष्ट-शुद्ध' अद्वैत द्वैत विधि॥
त्रैत, नास्ति-उद्घोष अस्ति अस्तित्व प्रखरतम।
कोटि—पथों के एक दिव्य-गन्तव्य-भव्यतम॥
नासिकाग्र पर जो, समाधि में देते दर्शन।
कमल-कर्णिका पर तुरीय की करते नर्तन॥
आदि-अनादि-अनन्त-अंत जो अगले-पिछले।
निराकार, आकार जगत के जिनसे निकले॥
शैवों के शिव, ब्रह्म वेद-तत्वज्ञ मनों के।
त्रिपिटिक के सिद्धार्थ, पउम-श्री जैन-जनों के॥
परतः स्वतः प्रमाण न्याय-पटु कर्ता धाता।
कर्म स्वतंत्र, समस्त तंत्र, फल-कुफल प्रदाता॥
धर्मद्रुम के बीज, जड़ों की मौन चेतना।
कल्पों के संकल्प, अल्प की मुखर अल्पना॥

शक्ति शक्ति, अनुरक्ति रीति, इति रति विरक्ति की।
महामहिम, महनीय-मधुरिमा मंजु-भक्ति की॥
ध्रुव-अध्रुव जग स्यात् किन्तु जगदीश्वर निश्चय।
एक स्वामि श्रीकांत, जीव ब्रह्मांड समुच्चय॥

सिद्धि—साधना—साध्य—साधकांतरा प्रेरणा।
कार्य कारणों के, कारण की कायिक रचना॥
सत्य सत्य के, सृष्टि-चक्र के केन्द्र सनातन।
प्रारब्धोदधि-घटज, भुवन-संकुल अनुशासन॥
निकल पूर्ण से पूर्ण, पूर्ण जो रहते केवल।
एक दीप की दीप्ति, दीप्त ज्यों करती छवि-दल॥

जगनिवास जग—हेतु, स्वयं साकार परात्पर।
रामचंद्र राजाधिराज, ईशों के ईश्वर॥

अखिल भुवन शुभ-भवन-संजवन शोभा, सुन्दर।
प्रिय कनीनिका—बिंदु, पिशुन-मन—सिंधु शमन-स्वर॥
नवरस में रस, स्वयं एक रस, रसस्वयंभू।
चरण सुतल, भुवि मध्य, समुन्नत शीर्ष ऊर्ध्व-भू॥
शिव समाधि की मूर्ति, पूर्ति श्रुति-कल्याणी की।
आदि-काव्य की सिद्धि, वृद्धि कोविद-वाणी की॥
कौशल्या-आनंद-ऋद्धि, निधि दशरथ-दृग की।
भारत—भूमि सुतीर्थ—खानि शुचि, पदस्पर्श की॥
गाधितनय के यज्ञराज की शुभ-पूर्णाहुति।
मिथिलाधिप-मन-गगन-गहन—तम—तरुण—तरणि द्युति॥
सिय-कर—कंज सुकंज-माल अलि-ललना-मधुकर।
भ्रम—पंकिल-भृगुनाथ—हृदय-सर—शरद् मनोहर॥

तिलक प्रात, कर श्रवण, न तिलभर मस मुस्काई।
उसी समय वन-गमन, न लघु मुख-श्री मुरझाई॥
चले अवध के भवन अयन-तरुओं से तज कर।
पाने इष्ट, स-विरति ज्ञान ज्यों चले स्व-पथ पर॥

त्यों कर सरयू-नमन, सु-मन तमसा दुलराते।
करते गंगा धवल, प्रेम-सरि गिरा न्हिलाते॥
यमुना-श्याम-तरंग, नाभि की त्रिवलि लजाते।
चित्रकूट पर रमे देव-मुनि-मन हर्षाते॥

मिले जहां पर भरत, भरत क्या भक्ति स्वयं ही।
महाराग-वैराग मोह-निर्मोह धर्म ही॥

कंदुक कोसलपीठ, युगल रघु-बाल खेलते।
विहँस-विहँस एक से एक बहुभांति-झेलते॥

किसे विजेता विजित कहें ? तू तनिक बता री।
जिसने दीं पादुका कि जिसने शिर पर धारी॥

महाकाल सा काल-भाल पर जो चढ़ धाया।
या विष को कर अमृत, शंभु सा जो मुस्काया॥

जिसने धनु-अवरोह, भूमि का भार उतारा।
अभय रही भुवि, जान जिसे आरोह, सहारा॥

पाकर जो आदेश, हँसा बन विपिन-विलासी।
रहा कि चंपक—भवन, भ्रमर सा सहज उदासी॥

क्षत-विक्षत कर समर, 'भरत' कह अक्षत उतरा।
'राम-राम' जप या कि शून्य जो ध्रुव सा उभरा॥

प्रकट गंग से राम, जगत से करी ठिठोली।
हृदय-कमंडलु भरत-दुहिण सम गंगा धोली॥

एक एक में, एक—एक से भी, पर बढ़कर।
यहां हुई मति मूढ़, गूढ़ यह गाथा पढ़कर॥

किसे कहूं छवि-नवल किसे अभिनव-वातायन।
रची राम ने या भरत कि ने यह रामायण॥

यदि भारत में छवि न भरत की आई होती।
तो रामायण ओढ़ महाभारत को सोती॥

राम राम ही, भरत भरत ही, दोनों अनुपम।
संस्कृति-सुमन सुगन्धि-शुभा दोनों सर्वोत्तम॥

यह अद्भुत-छवि मंजु, बनाती बुद्धि बावली।
आलि ! देख वह कुंज, वहीं छवि वही, सांवली ।।
भरतलाल के उत्तरीय पर, सश्री-रघुवर।
राम-राज्य ही मूर्ति-मान ज्यों भरत-भूमि पर ।।
चतुशत-संवत् पूर्व, जहां तव रचा सगाई।
दादा तुलसी गये, वहीं तो वह अमराई ।।
कुछ सोई, कुछ उठी, पलक अधमुंदी मसलती।
देश-काल-वश आंख-मिचौली अगणित करती ।।
करती विविध-किलोल, लोल-लहरों में लहरी।
चिथड़ों उघड़ी कभी, कुसुम्भी-साड़ी फहरी ।।
पर जब निकली, चीर पंक, निकली पंकज सी।
थिरकी पत्र अनंत, काम-कांता मलयज सी ।।
किये अमित शृंगार, कांति अधिकाधिक पाई।
पाया रस प्रत्येक, हृदय-पय पी तरुणाई ।।
यद्यपि कुछ वे रूप, न जो कुछ कुछ को भाये।
गुँथे सुमन गुण मंजु, भावना विहँस सजाये ।।
श्रुतियों की शिशु, आदि-सुकवि की बाला नवला।
व्यासदेव की प्रिया, चंचला-अचला अचला ।।
सूरदास की सखी, त्रिकुटि-नटनी कबीर की।
प्रेम-मूर्ति प्रत्यक्ष, मेड़ताणी—सुपीर की ।।
केशव की राधिका, चंडिका भूषण-भट की।
सरस-नागरी रसिक-बिहारी-मन-नटवर की ।।
भारतेन्दु की विमल—धवलिमा भरी ज्योत्स्ना।
रत्नाकर की उक्ति-शुक्ति-मुक्तिका-अल्पना ।।
कुछ हैं अन्य अनेक, न अनुचित जिनकी चर्चा।
किंतु न जाने, लगे किसे, यह कैसी अर्चा ।।

दोहा

सम्मुख ज्योतिर्मय सुपथ, धसें व्यूह क्यों व्यर्थ।
स्वामी-स्नेही मातु-पितु, सीताराम समर्थ ।।

रोला

ठिठक न पल भर हेलि ! चपल चंचल प्रतिपल चल ।
देख स्पष्ट निज-लक्ष्य, जहां मिलते नभ-भूतल ॥

ग्राम—नगर—पुर—सरित—सरोवर—सागर-—गिरिवर ।
गहन-विजन-कांतार भरे हिंसक—पशु–परिकर ॥

ग्रौर ग्रन्य जंजाल, जाल कितने भी डालें ।
रहते किंतु न साथ, दीप्त—तमहर तम-काले ॥

मन में यही विचार, चली चल लक्ष्य सामने ।
मम हित तव, तव हेतु जीव यह, रचे राम ने ॥

देख-देख वह, ठहर-ठहर, कैसा जल-प्लावन ।
पथ में पसरा पड़ा शाप किसका, नद सा बन ॥

भव-सागर-सेतु

भवसागर की नहर, देख वह देख ग्रगम-जल ।
प्राचीरों सी लहर, तैरते मकर-उरग दल ॥
कैसा स्वर घनघोर, सृष्टियाँ ज्यों टकरातीं ।
कैसा रूप कराल, काल-माला बल खातीं ॥
ग्रहा ! देख दो नाव, क्षितिज से चली ग्रा रहीं ।
नहीं, दिखीं, वे वही पनहियां बही ग्रा रहीं ॥
जिनको कुंभनदास, सींकरी गये पहन कर ।
हो भँवरों से पार, लहर बजरों पर चढ़ कर ॥
किंतु इधर तो देख, प्रवाहों में भी निश्चल ।
खड़े दुखंडे महा-सेतु, के स्तम्भ, चीर तल ॥
लगीं शिला यों, सेतु, शैल लग रहा ग्रखंडित ।
चित्रित रत्न विचित्र पच्चिकारी से मंडित ॥
कितना उन्नत, छलक न लगती एक छींट भर ।
कितना विस्तृत, रहे नाच दल के दल गाकर ॥
कितना दृढ़, रथ-शकट–मालिका ग्रमित जा रहीं ।
कितना भव्य, न छोर तनिक छू बाढ पा रहीं ॥

छत पर छत, पर पथिक अकेले नीचे चलते।
ऊपर फिरते यान, विमान उतरते चढ़ते॥
वलभी-जालीदार युगल—दिशि ललित-झरोखे।
सजे अनेकों द्वार, एक से एक अनोखे॥
पृथक-पृथक छवि-नाम, पृथक ही पृथक सु-सज्जा।
घूंघट वंदनवार, खड़ी कुल-वधू स-लज्जा॥
पुष्टि-मार्ग वह ललित, जहां से सीढ़ी चढ़तीं।
प्रमुख चेतना—पौरि—कोर तक, गति सी बढ़तीं॥
अद्वितीय वैशिष्ट्य देख, क्या परम—निराला।
अश्रुत—दिव्य—अलक्ष्य लक्ष्य, ज्यों पाता पाला॥
आ तो फिर बढ़ चलें, मुहूर्त किसे दिखलाना।
ढलने को मध्यान्ह निरर्थक समय लगाना॥
पड़े यहां निश्रेणि-श्रेणिका क्या-क्या बिखरे।
खड़ीं कौन ये, लिये चँवर कर निखरे-निखरे॥
ये सुसेतु—निश्रेणि, या कि अद्भुत—प्रदर्शनी।
यह नीचे क्या रखी, मटकिया सुंदर कितनी॥
यहां गई रख कौन, कहां फिर चली गई वह।
पहचानी, पहचान, बताऊँ, वही-वही यह॥
श्रीयुत् परमानंद दास की श्री ठकुरानी।
जिसको रख निज—शीश, मंजु ब्रज-वीथि सुहानी॥
गई बेचने दही, नाम गोरस का भूली।
डाल बांह में बांह, दिव्य प्रिय-छवि-रस झूली॥

दोहा

अध—मुँद—दृग, अटपट—गिरा, डग-मग बोली बाल।
"लो कोउ ठाकुर सांवरो, नंदराय कौ लाल॥"

रोला

अब भी जानी या न, कहो, यह किसकी गागर।
वही भरा नवनीत, चखा जो ठाकुर नागर॥

लें उसकी आ प्रथम प्रसादी, क्षण भर तो हम।
राग-रागिनी भरें राग—रस, करें विगत–श्रम॥

वह इकतारा सूरदास का स्वर-रस-सागर।
हुआ अनंग अनंग, विमोहित जिस पर होकर॥

उस व्रज—रज से सना, लोट जिसमें सर्वेश्वर।
ब्रजराजेश्वर बना, त्रिभंगी—छवि धारण कर॥

रखा धरा पर वही, लगा लें उर, प्रणाम कर।
बने नित्य–साकेत राम का, हृदय—मनोहर॥

वहीं घूंघरू वही, धार जो मीराबाई।
प्रेम-सरित के तीर, रात आधी ही धाई॥

नाची तज कुल-कान, कुसुम्भी—साड़ी फहरा।
गिरिधर-नागर—वेणु—रेणु लहरी जग लहरा॥

क्षुद्रघंटिका कलित–काकुली—माल पिरोलें।
'गौर–श्याम' ध्वनि–दिव्य, उठा कर 'हरि-हरि' बोलें॥

'राम-दुल्हनिया' लूट ले गई सकल–बजरिया।
लाया खींच जुलाह किंतु निज सफल—चदरिया॥

कैसी भीनी बुनी, धार, रच फाग–फगुनिया।
ज्यों की त्यों धर गया, बनालें पाग चदरिया॥

सोपानों के छोर, बँधे बनकर अवलंबन।
इधर सूत्र हरिदास—स्वामि का नूपुर-मंडन॥

गुरु-नानक की उधर सुमरनी, मनके उज्ज्वल।
यही नरोत्तम-पात्र, भरा मितवा–नैनन—जल॥

आ–आ लें मन रंग, अंग-प्रत्यंग लगालें।
जन्मों के दारिद्र्य दहन की तपन बुझालें॥

देख, थैलियां–बृहत्, पीन श्री के वक्षज से।
सांवरिया ने भात भरा, नरसी का जिनसे॥

खुले हाथ, मन खोल, बोल पर बोल, लुटाओ।
सकल-कामना-सिद्ध, स्पर्श-मणि-महल चिनाओ।।

पिंजरे में शुक वही, रि! गणिका जिसे पढ़ा कर।
जा पहुँची गोलोक, यान निर्विघ्न बढ़ाकर।।

एकनाथ का कलश, जनाबाई की चक्की।
ज्ञानेश्वर की भित्ति, अ-भित्ति अचल-चल पक्की।।

खड़ीं तीन की तीन, मसहरी वे मामा की।
बिखरी मुहरें पड़ीं, देख रांका-बांका की।।

वह भगवी कौपीन, टँगी स्वामी-समर्थ की।
यह वह कूंडी धरी, उधर रैदास-भक्त की।।

जिसमें धो मृत-चार्म, उतारी हरि-पद-धोवन।
चार-युगों के चार-जनेऊ हृदय-सुशोभन।।

किये निमिष में प्रकट, निकट वह रापी अद्भुत।
वह सुजान-उपधान, घनानंद का शोणित-युत।।

तुकाराम का नाम लिखीं, वे बहियें मोटीं।
भरो कटोरी नामदेव की, घी की रोटीं।।

निचुड़ा कितनी बार, टपकता वह पीताम्बर।
जिससे पूंछें अश्रु ताज के, साश्रु अंक—भर।।

कुल्ला लोल-किलोल, चतुर्दिक जिसके करता।
मानों हरि का हृदय, रास वृंदावन रचता।।
तुर्की टोपी अहा! लटकता फुँदना न्यारा।
दिल्ली देख मसान, जिसे रसखान उतारा।।

चनन-चउकिया विरह—बेल का शोभित बिरवा।
पाला हृदय रहीम, नेह-पुरवा दृग-निरवा।।
चित्रकूट के घाट बैठ, घिस जिसपर चंदन।
जो बाबा ने दिया, लिया हँसकर रघुनंदन।।

किया तिलक निज-भाल, मुकुर में देखी शोभा।
अरी! उपल यह वही, अलख, लख जिसको लोभा।।

अब भी चंदन शेष, लगा कुछ कोर-छोर पर।
मैं भी कर लूं तिलक तनिक, निज सजा पोर पर।।

कितना शीतल, हुए त्रिताप विपल में कंपित।
कितना उज्ज्वल, हृदय-गुहा ज्यों सूर्य नवोदित।।
ज्ञान-द्वार मां ! यही, यहीं से भक्ति राज-पथ।
होता है प्रारम्भ, खड़े कितने सज्जित रथ।।
इनमें चढ़ते कौन, न जाने भाग्यवान जन।"
"चल-चल अपने मार्ग, दिखा मत, रुक कर, बचपन।।"

दोहा

"बोल पड़ी मां ! सत्य तुम, सत्य कि देखा स्वप्न।
दिखी न छवि, वह यत्न जो, देखी आज अ-यत्न।।
अब तक जाना था यही, तुम रसना सी मूक।
श्रवण पड़ी प्रत्यक्षतः, वाणि ! सुवाणी कूक।।

रोला

क्या बोलूं सुन बोल आपके, हुआ दिवाना।
हुआ हृदय विश्वास, सिद्धि सम्मुख पहचाना।।
कहा 'लेखनी-हला-अली' कैसा दुर्भागा।
अब तव प्रभा-प्रभाव, घोर—तमसा से जागा।।
मां ! मां ! मुझे सम्हाल, गगन में उड़ा जा रहा।
क्षीर-सिंधु के वितल, शिला-गति लगा जा रहा।।
दबा जा रहा क्षुधा-त्रसित युग का, अन्नाचल।
जन्म-जन्म की छान, छीनते चिंतामणि-दल।।
लो आंचल में छिपा, देख ले जग न अनावृत।
होंगी मेरे हेतु अन्यथा आप अनादृत।।
जान बाल—चापल्य, क्षमा कर जननि ! बताना।
थीं क्या मुझसे रुष्ट, बोलना या अब जाना।।"
हँसी ठठाकर, हाथ फिराती हुई माथ पर।
"बता, बताऊँ तुझे, मुझे क्या आता, क्यों कर।।
नहीं बोलना मात्र, जानती हँसना-गाना।
रोना-सोना स्वयं जागना और जगाना।।

छिपे खोज, छिप, रूंठ, मना मौनों को, मनना।
जिन्हें किया पय—पुष्ट, उन्हीं से आंचल करना॥

आती शिला-समाधि, लजाती मन—गति गति से।
होती क्षत लघु सुमन, परम अक्षत पवि—क्षति से॥

वृद्धा——प्रौढ़ा——बाल षोड़शी—कला नायिका।
यौवन ज्ञाताज्ञात कृष्ण—शुक्लाभिसारिका॥

हस्तिनियां——चित्रिणियां——शंखिनिया——पद्मिनियां।
नहीं स्वकीया मात्र, परम परकीया छवियां॥

कोरे-गोरे पत्र, समझते काले करती।
इस मसि मैं नहा—नहा नव नित्य निखरती॥

दोहा

यह उद्वर्तन-परत सी, गणपति–जननी-अंब।
व्यास—कीर्ति-रंगायनी, रंगायन—अवलंब॥

रोला

युग-युग की साधना, कर्म-कालिन्दी कविता।
मिलती भुजभर, राम-कृपा सुर-सरिता ललिता॥

गौर-श्याम का मिलन, गौर प्रति श्याम समर्पण।
अद्भुत दृश्य विलोक, हरित होता मम कण-कण॥

होती शाश्वत-सत्त्व-महाश्वेता रोमांचित।
निराकार ही हो जाती आकार समाहित॥

जहाँ मालती अटा, साँवली जटा—घटा में।
तीर्थराज साहित्य, सुशोभित शंभु-छटा में॥

वत्स ! देख, इस महा-छटा में तन्वंगी-छवि।
वह मैं शिशु-शशिकला, जिसे खोजा करते कवि॥

देख, दिखी या नहीं, विभूति, अलक-अवगुंठन।
करके कितने यत्न, छिपा बैठे वे श्रीमन॥

बुद्धि-चित्त-मन-अहं निकर का, यह न विदारण।
यह पलकों का पुत्र! पुतलियों को संरक्षण।।

दृश्य-दृष्टि संमिलन, पुलिन सी स्वतः सिमटतीं।
क्रम-क्रम से ज्यों चांद्रि, चंद्र में समा, प्रकटतीं।।

होता समुदित ज्ञान, हृदय-नभ प्रमुदित होता।
रामानुग्रह-चंद्र, भक्तजन–अघ-तम खोता।।

ढ़लता कुटिल कुतर्क-तरणि, निष्ठा-निशि बढ़ती।
हुई सुशीतल भाव-पवन, दिशि-दिशि से चलती।।
पंक्ति तारिका बनीं, उभरतीं शब्द-तालिका।
प्रिया-संग प्रेयेव, पंक्तियां छंद-मालिका।।
जुड़ते उधर प्रसंग, निशानी-छवि से सुन्दर।
खिलता इधर प्रबंध, कुमुद-कुल पूरित सरवर।।
मधुरस से, रस-नवल, रसीली रजनी करते।
चकाचौंध से क्लान्त, चित्त की पीड़ा हरते।।
रात्रि एक ज्यों, किंतु भोगते निज—निज रुचि जन।
एक, दिवस की थकन मिटाते, मौन शवासन।।
मोह विवश हो एक, थकाते और थका तन।
थकन मूल को एक, ब्याज में दे देते मन।।
कुछ विभूतियां विरल, दृष्टि में वे भी आतीं।
जिन पर मोहित हुई, पूर्णिमा सरक न पातीं।।"

दोहा

"वाणि! सुवाणी आपकी, करती चित विभ्रांत।
आप अमित छवि कह गईं, अपनी सहज, सुशांत।।
भरा एक में एक पर, प्रबल-विरोधाभास।
ज्यों-ज्यों मति हल खोजती, पाश निरखती पास।।

रोला

पहले तो यह कहो, आप परकीया किसकी।
मां होकर भी, स्वयं स्वकीया बनती किनकी॥

यदि समुचित मम—हेतु, स्वमौन-मर्म कुछ खोलो।
इन यानों से रोक दिया, क्यों, फिर मां ! बोलो॥"

"तव प्रश्नों का वत्स ! सुनो, क्रम ठीक नहीं है।
किंतु न इसका अर्थ, कि तव भ्रम ठीक नहीं है॥

सुनो बताती प्रथम, अभी तक मौन रही क्यों।
सुनती, चलती रही, हृदय की हृदय रखी क्यों॥

तनिक विचारो आप, प्रथम मुझसे क्या बोले।
'चल-लेखनि-अलि-हेलि' सजा लाये ज्यों डोले॥

कहते आये वार-बार, 'री-अरी' देख ले।
क्या जाने सम्बन्ध, ज्ञान-द्वारे से पहले॥

'मैं सुविवेकी पुरुष और यह अबला श्यामल।
मम दासी सी क्रीत, विजड़—निर्मित जड़ केवल'॥

दारु-कामिनी रूप, अतः तव संकेतों पर।
कितने दिन से नाच रही हूं, मौन धार कर॥

यद्यपि तुमने राम रूप—गुण इतने गाये।
फिर भी समुचित भाव, न तव-प्रति मन में आये॥

ज्यों-ज्यों बढ़ते गये दिशा में प्रभु-उपवन की।
त्यों—त्यों घटने लगीं कुशंकायें तो मन की॥

किंतु न पूरी तरह हृदय आश्वस्त कर सकी।
स्वर तो उठने लगे, न रसना रंच कह सकी॥

झलक नित्य साकेतधाम—उपवन पावन की।
देख, तुरत झनझना उठीं, झांझन अंतर की॥

दबे सभी भव-सिंधु-लहरियों के भीषण-स्वर।
शंका-व्यूह, सियार—यूह से चले हूह कर॥

गृह—कारज, गिरि-गुहा विघ्न सिंहों के गर्जन।
लोक मोह के क्रूर, छलावों के भ्रम-नर्तन॥
बांकी—झांकी देख, राम राजा की कण भर।
हृदय देख तव अभय, तिरोहित दुर्गुण तस्कर॥
सेतु-राज शुभ—दर्श, नवल जीवन संचारण।
ज्ञान—द्वार-सोपान, अलौकिक ही सम्मोहन॥
'मां' सुनते ही पुत्र! हुई मैं परम दिवानी।
भवसागर—तट, ज्ञान-घाट सब सिमटा पानी॥

जब देखे, ये खड़े हुए ऊँचे—ऊँचे रथ।
जान गई यह वही, 'राम—ठगिनी' रोके पथ॥
खड़ी, जिन्होंने मदन—जयी विज्ञान—विशारद।
पल में जीते परम—भागवत मुनिवर नारद॥
धरे रह गये ज्ञान—-ध्यान क्या ऋषि, प्रभु के भी।
कितने कौतुक करा गई परमेश्वर से भी॥
क्या करती, क्या पथभ्रष्ट हो जाने देती।
जिसने मां कह दिया, नष्ट हो जाने देती॥
देकर काला नाग, काल से खुला खिलाती।
क्या यशुमति मर गई, पूतना दूध पिलाती॥
बोल पड़ी मैं, मौन धार क्या पुण्य कमाती।
वत्स विपद पर धेनु, वनाधिप से भिड़ जाती॥
देख बताती 'भाग्यवान' जो इनमें चढ़ते।
जाते कहां विमान, कौन इनको ले बढ़ते॥

यह माया का घोर—व्यूह अत्यन्त भयंकर।
त्रिभुवन—मोहक वेष, पसारा पसरा दुस्तर॥
हरि-माया स्वयमेव, हरावल खड़ी सँवर कर।
कुटिल—भृकुटि, मुस्कान अधर के अरुण छोर पर॥
कठिन साधना सिद्ध, सुरों के जो अक्षय--वर।
बना उन्हीं के, हाथ—हाथ में अमित प्रखर—शर॥
तांक रही हैं, लक्ष्य भेद हित, अपलक तत्पर।
दिखने भर में यान, यान ये उनके पद-चर॥

लहराता अत्यग्र, व्यग्र जो स्वर्णिम स्यन्दन।
सूत स्वयं स्वर्गेश, कर रहे कैसे वंदन।।

एक ओर ऋतु-राज मलयजी ध्वजा उठाये।
प्रतिहारी रतिनाथ, सुमन शर—चाप चढ़ाये।।

पार्श्व—भाग उपधान, करस्थल पर कपोल धर।
अधलेटी सी पड़ी उर्वशी, नयन मूंद कर।।

रंभा दर्पण मग्न, मेनका तनियां कसती।
उधर सुंद—उपसुंद नाट्य की नटी मटकती।।
लटकीं रूखीं लटें, पलटकर झटक हटकती।
ये तिलोत्तमा पुष्प—मालिका लिये विहँसती।।

लेती अहिवल्लरी—पल्लवी—पिप्पलिका रस।
शंख-सुवर्णाकार ग्रीव, लगती अरुणिम नस।।

पारदर्शकी वसन, पवन अपसर्पन करते।
भरे सोमरस कलश, हरित मणि चषक छलकते।।

बजा रहे गन्धर्व, वाद्य अगणित मिल—मिलकर।
दे यति—गति—तुक—ताल गा रहे सस्वर किन्नर।।

बस इनका गन्तव्य, स्वर्ग का नंदन-कानन।
सर्वाधिक सम्मान जहां आधा इंद्रासन।।

कल्पवृक्ष की छांव अप्सराओं की काया।
चूस पुण्य का रक्त, नखत सा धूलि समाया।।

उठा तनिक भूकंप, खड़ा सत-मँजला लेटा।
चौरासी का भरो भार ढो-ढो कर पेटा।।

यह जो पीछे खड़ा, दूसरा यान देखते।
अश्व इंद्रियों सरिस, परस्पर क्रीड़ा करते।।

चंचल मन से धर्मराज ये रास सम्हाले।
बार—बार कह रहे, 'अरे आओ बैठालें'।।

जहां न आवागमन, जहां का गया न आया।
दिव्य मोक्ष—निर्वाण, तेज में तेज समाया।।

क्या गृह, गृहपति अकर—अचरण-अवदन—अवाणी।
हो अवलम्बित अखिल अलख पर कैसे, प्राणी।।

निराकार को अहा! महा महिमा कल्याणी।
मिली धूलि में धूलि, मिला पानी में पानी ॥

कैसा ब्रह्मानंद, बिछौने फूंको सोओो।
पड़े—पड़े ही रहे, कल्प भर हँसो न रोओ॥
यही सच्चिदानंद, कहें फिर किसे यातना।
गृह-विषयक ज्यों जन्म—वंदि की दीन-कल्पना॥

एक कुसीदक, एक न्चोर चौरासी—लख का।
जीव स्वामि रह गया, दीन-वृष कोल्हू—हल का॥

सर्वशक्तिसम्पन्न ईश, दर्शक नैयायिक।
निराकार का मौन, मानसिक—वाचिक—कायिक॥

सोरठा

भार्या-विरहित क्लीव, रंक पंगु जिसका पिता।
उसके सम्मुख जीव, उस निरीह बाला सरिस॥

दोहा

जो ले दुलहिन स्वप्न, बनती यमपुर-वासिनी।
या कुसंग-वश भग्न, पुर-वधु वारविलासिनी॥

रोला

और पंक्ति की पंक्ति, दूर तक खड़ीं अनेकों।
सजे एक से एक, सभी को जी भर देखो॥
सत्यलोक से ब्रह्म-लोक पल में ले जाते।
नागलोक के भोग, निमिष में सुलभ कराते॥
कोटि-कोटि ब्रह्मांड, असंख्यों लोक पड़े हैं।
एक-एक के हेतु, अनेकों सजे खड़े हैं॥
कर लो कहीं प्रवास, न हो सकता निवास पर।
मिल सकता निःशुल्क, कहीं भी सौख्य न पल भर॥

कटा ग्राँट ज्यों हाट, रत्न-शिल कुछ भी भरले ।
त्यों मिलते जग—भोग सु-पुण्य-राशि के बदले ।।
कर्म--भूमि का भूमि-कर्म ही मुद्रा संचित ।
ग्राय-स्रोत कुछ स्वांस, ग्रपव्यय लगे ग्रसीमित ।।
ज्यों-त्योंकर यदि जीव दीन यह, कुछ जोड़े भी ।
खड़े लूटने देव-दस्यु ये, कुछ छोड़ें भी ।।
मानार्कपित-चित्त हठीला, हठ से टोका ।
मौन भंग कर तुम्हें, कुपथ जाने से रोका ।।
ग्रब सुन सुत ! परकीय-स्वकीय व्यथा का विवरण ।
ससम्मान सब प्रथम, सदा करते ग्रावाहन ।।
परम-विनय ग्रवलोक, द्रवित-चित परम-मानिनी ।
होती हूं प्रत्यक्ष, शब्द-ब्रह्म की भामिनी ।।
पुन: याचिका जान; दयावश कुछ लाते घर ।
जुटा-जुटा कर सूत्र सतत, बुन झीनी चादर ।।
साधुभाव से स्वयं ग्रोढ़कर, स्वयं उढ़ाकर ।
सो जाते हैं सेज, सुमन मिलते मुट्ठी भर ।।
पाणिग्रहिता जान, प्रीति कुछ घोर जिता कर ।
हाट-हाट के ग्रलंकार—ग्रनमोल चुरा कर ।।
जार-भाव से सजा, दिखाते नचा-नचा कर ।
बनते साहूकार, दंभ—मिथ्या दर्शाकर ।।
कुछ खांडे की छांह, ब्याह सा रच के लाते ।
परदायत सी बना, पौर बहु-पौर बिठाते ।।
रवि—शशि की भी किरण, पूंछ कर ही लख-पाती ।
जा कट जाते ग्राप, चिता मेरे सज जाती ।।
लौकिक—वैदिक सकल स्वल्प, ग्राचार निभा कर ।
रीति—नीति से व्याह, पालकी में बैठा कर ।।
लाते, सजकर स्वयं सजाते रिझा रिझाकर ।
ग्रहंकार-वासना, प्रेम की झलक पलक भर ।।
कुछ सात्त्विक-जन, मात्र शुद्ध—स्वामिनी भाव से ।
सेवा करते कर्म—वचन—मन पूर्ण चाव से ।।

स्वामि—कृपा की कोर, लक्ष्य दुर्भेद्य बेधते।
भाव—शून्य—जन, विविध—भाव से उन्हें देखते॥

कुछ हैं अन्य अनेक, भाव जिनके विचित्र ही।
रही साथ, पर समझ न पाई कुछ चरित्र ही॥

मति चपला सी चमक, जाड्य—घन में खो जाती।
क्षितिज—गर्भ में, दिशा—दिशा में रव फैलाती॥

पिता समझती, भ्रात निकलते, स्वामी बनते।
पुत्र बताते, किंतु जार—सम लुक—छिप लखते॥

उन्हें कहूं क्या, मौन विषय में उनके समुचित।
'महापुरुष' कुछ और, उचित ही जिनका अनुचित॥

कभी न मेरे बने, न मुझको अपनी जाना।
अवसर के अनुकूल लक्ष्य, संसार रिझाना॥

अतिशय प्रिय बन, किसी बालिका को बहकाना।
थका—थका दिन—रात, कौर दे, युवा बनाना॥

दस—दिन कर श्रृंगार, स्वशैया—हाट सजाना।
फिर—फिर जिस—तिस द्वार, मोल के बोल बढ़ाना॥

मौन—मनों की शांत-अग्नि पर तैल चढ़ाना।
दे बलि, पा वर—द्रव्य, तमस में घुल—मिल जाना॥

फिर हो जाना प्रकट, यही दुश्चक्र चलाना।
अंतक जाते कांप, अंत वह अंतिम पाना॥

पहचाने या नहीं, सखा कुछ रहे तुम्हारे।
किस के होते वे, न किसी के, भार हमारे॥

राशि-माँस के गिद्ध, शूर कवि—सम्मेलन के।
कुछ वृक षोड़श—कला, जीमते शव वन—वन के॥"

"कवि सम्मेलन अंब! आपकी पुण्य—अर्चना।
क्यों करतीं स्वयमेव आप इनकी प्रवंचना॥

रस-रस के कवि अमित, सुना कर निज-निज रचना।
करते इनमें भाव—भाव से तव सुवंदना॥

दोहा

तव छवि पुष्पित मध्यमें, सितता, मैल न रंच।
दिखते ज्यों वाणी-सभा, कवि-सम्मेलन मंच॥"

रोला

"प्रारम्भिक ध्वनि मात्र कि वीणा 'वादिनि! वर दे।'
फिर जाने भगवान, कौन क्या—क्या कुछ बक दे॥
किस आयोजक—संयोजक के अंकुश चलते।
जब मद पी गजराज, वसंती-बाग मसलते॥
कहीं श्लेष अश्लील, कहीं संकेत घिनौने।
तने धूम्र-उल्लोच, राख से भरे बिछौने॥
'वाह—आह' के घोष, ठाट निज—निज यों उठते।
भरी हाट, दल बाँध पथिक को ज्यों ठग ठगते॥
सब आयोजक—वृंद वत्स! क्या धुले दूध के।
ये सोने के हिरण, छै—पदे हरित-दूब के॥
कवि—सम्मेलन मंच, आज प्रहसन प्रपंच के।
पंकज विरहित ग्रीष्म—ताल ज्यों गर्त पंक के॥
देख रही हूं तुझे, न कुछ संतोष हो रहा।
क्या कह रही सहर्ष, न मेरा हृदय रो रहा॥
मेरे ही कर रहे. अरे! मम घोर दुर्दशा।
लगती इनकी पंक्ति, वदन पर कषा कर्कशा॥
यति—गति-छंद विहीन, दोष है तो भी छोड़ो।
पर न्यूनातिन्यून सुरुचि—छवि तो मत तोड़ो॥
भव दल—दल में फँसे, भावना बना स्वैरिणी।
सिद्धों सा पाखंड, किंतु साधना वैरिणी॥
मन का तुझको जान, बात कुछ कह दी मन की।
बहुत दिनों से बनी, चिता—भू पंच—तपन की॥
चल जाने दे, व्यर्थ हृदय निज वत्स। दुखा मत।
तुझे मिला हरि—मार्ग, बावले! चित्त सुखामत॥

मैं माँ हूं रे ! सहज-भाव से सब सहती हूं।
अब जो सुखद सुपुत्र, बात उनकी कहती हूं ॥
जो जननी—स्वामिनी मुझे सर्वस्व मानते।
मम स्वभाव के भाव, सत्य—सिद्धांत जानते ॥
सद्गुरु-सम्मत सत्व-शास्त्र संकुल-अनुमोदित।
मर्यादित विश्वास—बुद्धि, श्रद्धा से प्रेरित ॥
दिव्य—भव्य मम नाम—गुणों के करते गायन।
इसी लोक में उन्हें, दिया करती हूं दर्शन ॥
धरा—धूलि से तुरत अंक में उठा, मोद भर।
करती मज्जन मुदित, सरस कर उनके अन्तर ॥
ब्रह्मलोक की शांति, जगत की श्रांति भुला कर।
करती मुखर निवास, मानसर मान निरन्तर ॥
फिर मम पुण्य—प्रसाद, नम्र वे प्रिय शिशु मेरे।
गाते संस्कृति-गीत, घेर माया के घेरे ॥
बना गये यह सेतु, पुत्र ! तुझ से स्वजनों हित।
बढ़ चल मेरे लाल ! लगा हरि-चरणों में चित ॥
ज्ञान—द्वार से परे, रथावलियों के पीछे।
पथ—प्रशस्त जा रहा, चलो, कुछ कर दृग नीचे ॥

मुक्ति—द्वार

सोरठा

यह प्रिय ! मुक्तिद्वार, सदन-अजामिल पौरिये।
श्री-हरि-नाम प्रहार, खड़े पाप-शिल काटकर ॥"

रोला

"कर लूं चरणस्पर्श, निमिष भर मां ! रुक जाओ"।
कहा वक्ष से लगा "अरे प्रिय ! स्वागत आओ ॥
आओ, बैठो, मंजु वैष्णवी—फुलवारी में।
केश सुखाती मुक्ति-मंजरी चौबारी में ॥

कुंज—कुंज में बिछीं ग्रमित ग्रासन्दीं न्यारीं।
बैठे हैं ग्राचार्य, गा रहीं श्रुति—पिक प्यारीं॥

सिद्धान्तों के स-फल सुकोमल ग्रंश उठातीं।
मिला चोंच में चोंच, श्रुतिस्मृति डिंभ चुगातीं॥

करतीं पुष्ट—बलिष्ठ—वयस्क, स्वयं के सम ही।
सारे खग-परिवार, मुदित ये निगमागम ही॥

नीचे कागभुशुण्डि, सु-रिसते ग्रंश उठाते।
निज ग्रधिपति को गिरा चषक में घोल पिलाते॥

वज्रासन, ग्राचार्य—प्रवर शंकर से शंकर।
ग्रग्नि—शिखा सा ऊर्ध्व—दंड, निर्भीक यतीश्वर॥

सुनते स्वर कुछ शून्य, शून्य में देते उत्तर।
"मां! तेरा उद्धार करेगा तेरा शंकर॥"

नीलासन पर शुभ्रहीर विकसित शतदल से।
प्रभु—रामानुज, क्षीर-सिंधु में शेष धवल से॥
रोम-रोम से मंत्र—राज को लुटा रहे हैं।
जग-जीवों को सतत सुपथ पर जुटा रहे हैं॥

मरकत—पीठ—विशाल, सु-श्यामल श्री-विग्रह-वर।
प्रकट स्वयं श्रीनाथ, हरित गिरि-गोवर्धन पर॥
वही वल्लभाचार्य महाप्रभु, मुदित सुशोभन।
नंदलाल की बाल—केलि लखते हृदयांगन॥

वे वैदूर्य—सुवेदि, ललित माणिक्य—प्रभा से।
केतु-कुंड पर ऊर्ध्व—वन्हि निर्धूम शिखा से॥

विमल राधिका-श्याम सु-राग—पराग—चषक से।
द्वैताद्वैताचार्य ग्रार्य-निम्बार्क प्रणव से॥
गोमेदक—पदपीठ, रजत-मुक्तामय ग्रासन।
चीर कनक के कोर, जड़ीं विद्रुम—मणि कण-कण॥

बैठे श्रीमन्,—मध्व, उठाये उभय—ग्रँगुलियां।
स्वामी हरि, मैं दास, ग्रनोखो दोनों छवियां॥
जिनकी सीता शक्ति, ग्रंजनीलाल प्रेरणा।
रामानंदी तिलक, ग्रंग-प्रत्यंग ग्रल्पना॥

शब्द-ब्रह्म सामर्थ्य प्रकट की शंख, नाद-कर।
रामानंदाचार्य, धर्म—रवि—मेरु-धराधर ॥

ये हैं आर्य-समाज-प्रवर्तक दयानंद-ऋषि।
की युग की अभिशप्त, पल्लवित-पुष्पित श्रुति—कृषि ॥
वृषादित्य सा ब्रह्मचर्य का तेज वदन पर।
ज्यों स्वयंमेव मृगेन्द्र भाव, गिरि पर हरि धर कर ॥
परवर्ती आचार्य अनेकों, घेर-घेर कर।
करते जीव कृतार्थ, वचन सुनकर शुभ सुन्दर ॥
बैठो—बैठो आप'' कहा मां ने ''चलने दो।
मार्ग अधिक, लघु समय, स्वामि-दर्शन करने दो ॥
मिल बैठेगें पुनः, अभी दो प्रियो! विदाई।''
लगा लिये निज-वक्ष, आंख सब की भर आई ॥
''चलो पुत्र! इन धर्म-सुपुत्रों का कर वंदन।
रखा इन्हीं ने कठिन परिस्थिति धर्म सु—जीवन ॥''
किया सभी का नमन, धरा पर फिर—फिर गिर कर।
उठा सभी ने लिया, अशीषें दीं कौली भर ॥

''बढ़े चलो सुत! शीघ्र, अलौकिक दृश्य देखते।''
''मां! ये बालक कौन, खेल क्या खुला खेलते ॥''
''ये हैं सनत्कुमार—सनातन—सनक—सनदंन।
वह ध्रुव वह प्रहलाद, सुधन्वा करता नर्तन ॥
वे उत्तर—अभिमन्यु, देख ये गोरा—बादल।
गुरु—पुत्रों में अष्टमेश वे करते हलचल ॥
साहिब—जादे बड़े उधर, जो जूझे रण में।
चुने गये जो भित्ति, हुए भयभीत न मन में ॥
बस षट—अष्ट वसंत इन्होंने देखे भू पर।
वरण मृत्यु ने किया, स्वयं स्हेराबंदी कर।''
''गुरुकुल की ये युगल—सलौने अंतिम—बातीं।
लिये गोद में किसे, अभी आँखें मिचियातीं ॥''
''सैनप सद्योजात, प्रथम—साके के अंतिम।
छुआ न माँ का दूध, नहाये शोणित रिमझिम ॥

ग्रहा—ग्रहा क्या दृश्य, एक ने काल भगाया।
ग्रौर शिवा पर शीश, ग्रन्य ने स्वयं चढ़ाया॥

इन मृकंडु—सुत वीर—हकीकत की क्या जोड़ी।
क्या दूं इन पर वार, ग्रलौकिक वस्तु निगोड़ी॥

ये शकुन्तला--पुत्र विलोको, क्रीड़ा करना।
'मुख खोलो मृगराज ! तनिक कर लूँ रद गणना॥'

दाब कांख में सिंह—शावकों को शशकों सम।
ग्रधलेटे से भरत, हमारे बाल नृपोत्तम॥"

"सादर ग्रंब ! प्रणाम" पदों में पड़ा लिपटकर।
"बेटा ग्रष्टावक्र" गोद में लिया पलट कर॥

"वक्र ग्रभी तक ग्रंग, न क्यों सीधे हो पाये।
ये ग्रश्विनीकुमार किसी भी काम न ग्राये॥

धन्वन्तरी-सुषेण, हुए क्या सारे ग्रसफल।"
"मां ! ये मेरे चिन्ह, इन्हें रहने दो निश्चल॥

फिर क्या 'ग्रष्टावक्र' वक्र यदि यही न रहते।
दूषणारि की कृपा, विदूषण भूषण बनते॥

यह नचिकेता मित्र, देख मां ! मेरा प्यारा।
फिरता सिंह समान इसी का लिये सहारा॥

ग्राग्रो ग्रौर ग्रनेक सभी को ग्रभी बुलाता।"
"ग्ररे ! नहीं रे ठहर, दिवस ढ़लने को ग्राता॥

ग्रब जाने दे उधर, लौटकर पुनः मिलेगें।
चल-चल पुत्र ! तुरंत, ग्रन्यथा ग्रभी घिरेगें॥

चलें लाडले ! चलें, ग्ररे ! इनको प्रणाम कर।
ये सब तेरे ज्येष्ठ, चरण-रज इनकी शिर धर॥"

कर सबका ग्रभिनमन, पुनः ले—ले ग्रभिनन्दन।
फिर—फिर लखतीं चलीं, विभाजित हुग्रा लिये मन।

नयन पूछती हुईं, हाथ कंधे पर धर कर।
तभी सामने दृष्टि पड़ी सत्संग—द्वार पर॥

सत्संग-द्वार

वे हैं उग्रश्रवा—लोमहर्षण पितु--नन्दन।
सूत-वंश के युगल सूर्य—शशि चित्ताकर्षण॥
शौनकादि-मुनि सहित शुभासन बिछा द्वार पर।
कहते कलित पुराण-कथावलि, अमित चाव भर॥
उठे सकल नत मुदित "अम्बिके! स्वागत आओ।
निज शिशुओं पर मुखर कृपा—जलधर बरसाओ॥
"चिरंजीव यशवान समादृत रहे सदा कुल।
कहो—कहो हरि कथा, शेष है अभी अमित पुल॥

दोहा

"हंसराज विरहित गमन, क्यों कैसे मां! आज।"
"राम—कथा लेने नवल, चली सुतो! तव काज॥"

रोला

"अहा-अहा तुम धन्य, चलीं मां स्वयं साथ में।
अभी कई पथ-कठिन, थमा दो हाथ, हाथ में॥
नव—लेखन के हेतु लेखनी उठी, उठे स्वर।
करते भाव-विभोर भोर-रवि सम नभ--अंतर॥
बजी हमारे चरित सु-नायक के घर थाली।
गर्भ--प्रसव को झेल, लाल की देखी लाली॥
गाती कविता उषा, हृदय की हरित वनाली।
'गई—गई' रे गई, तमस की तमसा काली॥'
किंतु हमारे लिये विकट-संकट तब होता।
जब कोई कवि, तनिक संतुलन पलभर खोता॥
तरणि-तरुणिमा, त्विषा-तड़ित की अस्थिर लगती।
मृगमरीचिका सु—ह्रद, गंग वैतरणी बनती॥

भाव पाहुने, भ्रमित—बुद्धि कुटनी बहकाती।
कर मन स्वामी विमुख, सुमति-वधु हरण कराती॥
वधु सह शांति—विभूति भरा, घर-द्वार उजड़ता।
उस निर्जन पर पुनः कुट्टनी-प्यार उमड़ता॥
प्रगतिशील नव-विधा उठा कहीं से पुंश्चली।
वधु सी देती बसा, बना चर, जार—मंडली॥
कल की दासी, सहज स्वामिनी का पद पाती।
घर कर बारह—बाट, रूप की हाट सजाती॥
स्वामिभक्त-चर सरिस किंतु संस्कार-सनातन।
रखते गौरव स्मरण, पड़े स्मृति—पौर पुरातन॥
भटके स्वामि—सु—भाव, समय फिरते, जब फिरते।
प्रथम समुन्नत—समय समान पदों में गिरते॥
स्मरण कराते, सकल स्वामिनी के गुण-वैभव।
होते प्रभु में उदित, नवल-उत्साह शौर्य-नव॥
कुटनी रानी कुटिल जार, चर स्वयं सुटकते।
कण—कण के कालुष्य कीच—समुदाय सिमटते॥
जुटते साधन तुरत, सिद्ध होती सुसाधना।
सुतल—गगन को चीर, प्रकटती सिद्धि कामना॥
मिल जाता सत्संग, मित्रवर भालू—वानर।
आती कृश—वधु लौट, दस्यु—लंका फुंकवाकर॥
इस संकट का मूल, विचारो तो लघु-कारण।
बिना अंब का सदन, भक्ति से हीन हुआ मन॥
हो गृह वृद्धा एक, सामने वधु क्यों आये।
आये अतिथि अनेक, पियें खायें फिर जायें॥
सदन—भित्ति में सेंध न लगती, परिजन रहते।
त्यों ईश्वर-रत बुद्धि, स्वांमीं खल ठग सम॥
कभी धर्म-मर्याद, सास सी लगे कर्कशा।
लगने दो, होगी न सुमति—वधु रंच दुर्दशा॥
जीव ईश का अंश, फिरे व्यापारों में घिर।
लौटे कितनी रात, शयन भोजन स्थिर-निश्चितथिर॥

दो कह लेगी आप, न एक, एक कह पाये।
जब तक आंखें उठीं, कौन जो आंख मिलाये ।।

कुलटा--कुटिला—मलिन बुद्धि है बिना भक्ति के।
सकल इंद्रिया शून्य, बिना ज्यों प्राण-शक्ति के ।।

और अधिक क्या शंभु—स्वभू, सुर—ज्येष्ठ सनातन।
बिना भक्ति के काल—पाकशाला के ईंधन ।।

किंतु बिना सत्संग, भक्ति रीती थाली सो।
सद्य—छिन्न--पल्लवित कल्पतरु की डाली सी ।।

अशरण-शरण अकारण-कारण करुणा-सागर।
देते जिसको राम, जानकर स्वजन, कृपा कर ।।

पाता वह सत्संग, देव—पद से भी दुर्लभ।
भरे अन्यथा कीट—पतंग अनेक, अतल—नभ ।।

भेद-बुद्धि से रहित सु-श्रद्धामय विश्वासी।
पाता निर्मल—चित्त सहज, नर पद अविनाशी ।।

दोहा

एक समानान्तर युगल, रेखाओं की रेख।
हटो बिंदु से बाल भर, होगी गति-पथ मेख ।।
हटो दूर दिशि तो, वही, पसरा सुरसा-तुंड।
लघु अंतर लेगा छिपा, स्वान्तर मारुति-झुंड ।।

रोला

इसी भांति हे वत्स ! तनिक मतभेद उभर—कर।
करते वह छवि, चीन्ह न पाते स्वजन परस्पर ।।
मुख सँवारने व्याज, कुमति—दुष्टा का आंचल।
फैलाता, मुख मंजु कंज-नयनों का काजल ।।
कुमति–सुमति रण सदा, सुमति जय-मणि से सजती।
करी हुई साधना, अजर, वह कभी न मरती ।।

अंहकार, अपसर्प शत्रु सा, उससे बचना।
कब क्या करदे, विनय—कवच पहने ही रहना॥
मैं कर्ता, 'कवि कर्म' अहं यह, ज्यों चित आया।
हीरा आया हाथ, कांच के मोल गंवाया॥

शब्द—अर्थ विज्ञान, प्रबंध-विधान अनोखा।
अलंकार छंदादि भावना—भाव झरोखा॥
कल्पों के संकल्प, विकल्प अल्प खा जाता।
चूका कण भर ध्यान, समाधि गर्त में पाता॥

नववादों के चक्र—व्यूह में निगुरा-बालक।
गिरता, ज्यों घिर श्वान-झुंड गजपति दल-चालक॥
गिरे न चिंत विशेष, ज्ञान हो पर गिरने का।
शोच क्षुद्र शुनि—छद्म, मृगाधिप-अरि चिरने का॥

त्यों पर—वाद विमोह, और भी अधिक भयंकर।
इधर मृत्यु पशु-तुल्य, आत्मा—हत्या उस दिशि, पर॥
ज्यों कुल्टा पति मार, सकल शृंगार सजाती।
अरती कध जिस मीत हेतु रिपु उसको पाती॥

सजी सद्य शृंगार, लिये शव विजन-सदन में।
क्या कुछ किससे कहे, हुई व्यामोहित मन में॥
मलिन वदन शव लिये, चिता में जा चढ़ जाती।
उठतीं लपटें तीव्र, विकल 'हा—हा' चिल्लाती॥

फेंक भागती दूर, प्रशंसक निंदक बनते।
जाते दोनों-लोक, दिवस—निशि तन—मन जलते॥
त्यों सिद्धांत विहीन 'नये' के मोह, दीन-कवि।
रह जाता है रजक-श्वान जैसा त्रिशंकु-छवि॥

संभवतः कुछ उक्ति लगीं हों कटु-सी मनको।
सत्य, न इनमें स्थान किंतु लघु भी कटु-पन को॥
हो जितना ज्वर अधिक, स्वाद उतना ही फीका।
सकल स्वाद-हित प्रथम, चिरात चाहिये तीखा॥

प्रभु का लीला-गान, हमारा मधुर प्राण-धन ।
पल-पलका सौभाग्य, स्वांस-गति का अवलंबन ।।
तुमसे प्रिय ! अतएव, मात्र इतना आवेदन ।
जो जी चाहे लिखो, मिला प्रभु के मन में मन ।।
नेमि-नाभि से जुड़े अरे, यदि दृढ़ता से प्रिय ।
तो प्रति-पंथ सदैव, रहेगा स्यन्दन सक्रिय ।।
नवरस-नीरस स्वयं, सरस हरि रसिकेश्वर से ।
सकल-जगत की विधा, वैध श्री अवधेश्वर से ।।
नाम-रूप-गुण-विभव, उन्हीं के गाते जाओ ।
भांति-भांति के भाव, सहज यश पाते जाओ ।।

दोहा

सर जल सर सरि-वारि सरि, जाये सरिपति नीर ।
रचे हमारी रंजिनी, सुन्दर गौर शरीर ।।

रोला

गाओ हाथ पसार, सुमन चुन इष्ट सजाओ ।
बने लोक-परलोक, सुगन्ध सहज शुचि पाओ ।।
करता है सत्संग, दृष्टि दिव्या मन निर्मल ।
कठपुतली-सा नृत्य, विभूति-राशि का प्रतिपल ।।
निज करतल की रंग भूमि फिर लखते जाओ ।
बँट विकार-दल डोर, स्वयं अविकार नचाओ ।।
तब कविता के छंद, मंत्र-भूषण बन जाते ।
सिद्ध-सिद्धि समुदाय, धारने को ललचाते ।।
कहे जगत तज सकुच, कहो वह कथा राम की ।
छटा सेतु के पार, विलोको परम - धाम की ।।

साथ तुम्हारे अंब - प्रकट ही कृपा राम की ।
सींचो रस से रसा, सनातन प्रिया राम की ।।
जननी की आशीष, हमारी सत्व कामना ।
करें राम स्वीकार, तुम्हारी काव्य-अर्चना ।।
करें सिद्ध सियराम, तुम्हारी स्तुत्य-साधना ।
प्रिय-जन-हृदय-सुवास, सुवासित करे वासना ।।"
माँ का पूजन किया, उतारी दिव्य-आरती ।
भक्ति-ज्ञान - सत्संग, हुई प्रत्यक्ष भारती ।।
करुणाप्लावित शुभ्र स्वतेजोराशि समुज्ज्वल ।
सतत् साधना-सिद्धि, स्वयं ही सम्मुख सुविमल ।।
स्वतः जुड़े, कर-युगल, झुका शिर पद्म-पदों पर ।
होते-होते विगत चेतना, लिया अंक भर ।।
लगीं अंग प्रत्यंग फेरने पुनः-पुनः कर ।
रोम-रोम बज उठे, उठे अन्तर अभिनव-स्वर ।।
होकर एकाकार सकल स्वर बोले "हे माँ ।"
"हाँ सुत! हूँ तव पास" "क्षमा करदे-करदे माँ ।।"
"कैसी किससे क्षमा, क्षमा भी दूं तो, किसको ।
उसको, लेकर हाथ हाथ में लाई जिसको ।।
उठ सुत ! हो चैतन्य, निकल अंतर से बाहर ।"
खुली, खुली के खुली आँख रह गईनिरख कर ।।
छविक्याछवि,शशि-राशि,क्षितिजसुषमाअंबरकी ।
वे, जो थीं रजमयी रजत - प्रतिमा अन्तर की ।।

दोहा

रस - सारावलि सी सरस, अधर - मंद मुस्कान ।
श्यामा सुषमा निरुपमा, अपनी ही उपमान ।।

रोला

शुद्ध भक्तिमय ब्रह्मपात्र ब्रह्मद्रव, सागर ।
कमठराज, रोमांच - ओष हिम-कोष मनोहर ॥
आर्त-आरती-शिखा-शिखर-मंदर, तमिस्त्र-हर ।
शरद्-तरुणिमा - धवल-माल-नेती मंथन-कर ॥
कमल - प्रकाशक भास-वेष विश्वास - पुरन्दर ।
कुमुद-विकासक चांद्रि-छटा बलिराज अमित-कर ॥
सादर मथें विनम्र-भाव, कर आत्म-समर्पण ।
जन्म-जन्म में रत्न-रत्न प्रकटें लघु-लघु कण ॥
कामधेनु की कोख सरिस हो चित अति पावन ।
चिन्तामणि-समुदाय सजाये, अंतर - आंगन ॥
करे पुण्य-रज-राशि, श्याम-रति-काम प्रार्थना ।
दिखे दया कर रमा, राम की दीप्त-अल्पना ॥
रघुपति के ही करुण-तरुण शतदल से लोचन ।
परम कृपा कर, करें स्वयं स्वस्नेह प्रकाशन ॥

दोहा

करती फिर भी स्वयं ही, निज तारल्य-सुपूर्ति ।
मधुर मुखर सम्मुख लखो, परम अलौकिक मूर्ति ॥

रोला

उत्तरीय, ज्यों नभ - निरभ्र, दामिनी दमकती ।
मान-सरोवर-लहर रुचिर रवि-निकर चमकती ॥
विमल अंग प्रत्यंग, हीर-मुक्तावलि भूषित ।
मस्तक कुंद किरीट, भाल सिंदूर सुशोभित ॥
वीणा गाती स्वतः, पुस्तिका ऋचा सुनाती ।
रही सुमरनी सरक, स्वयं सुस्मिति मुस्काती ॥
वरद-अभय-आह्वान-ग्रहण मुद्रायें पल-पल ।
बदल-बदल हँस रहीं, गंग ज्यों बहती कल-कल ॥

जिनका प्रखर प्रकाश, प्रकाशक संमद-परिकर ।
भरता ज्ञानालोक-अलौकिक कण-कण परिसर ।।
निज जननी को देख, बुद्धि-चित-अहंकार-मन ।
दिव्य भावना भरे, गा उठे करते नर्तन ।।

शार्दूलविक्रीडितम्

मां ! ब्रह्माणि! सुवाणि ! ब्रह्मतनये ! ब्रह्माम्बिके ! ब्राह्मिके ।
ब्रह्मांडाजिरलास्यिके ! सुरसिके ! ब्रह्मद्रवे ! शारदे ।।
वीणावादिनि ! हंसगामिनि ! शुभे ! हंसासिने ! हाँसिके ।
वैदेहीश - कथा स्वबाल - मुख से त्रैलोक्य - सौख्या रिसा ।।

दोहा

दे मुख का तांबूल मुख, बारम्बार दुलार ।
बोलीं निर्मल स्नेह से, "पुत्र ! निहार-निहार ।।

रोला

कदली वन सा नवल देख वह कदली-मंडप ।
यूप-यूप में बँधे, अलौकिक पुष्पित - पादप ।।
भाँति-भाँति के पृथक-पृथक पुष्पों के मन्दिर ।
विषय-विषय के विदुष विराजे, शमितों से घिर ।।
छत्र-दंड से तने, छत्र से तने सुपल्लव ।
एक-छत्र प्रभु व्यास-देव का मुखरित वैभव ।।
दक्षिण श्री शुकदेव, वाम-दिशि वैशम्पायन ।
मध्य-भाग में स्वयं विराजे अति उच्चासन ।।
पांडव-वंश-प्रदीप प्रीति उद्दीप्त शिखा सम ।
ये उत्तराकुमार, धरा कर - बद्ध नृपोत्तम ।।
कलि के प्रथम नृपाल, कौर भी पहले कलि के ।
मिला भागवत-चरित, सुफल में इनकी बलि के ।।

कुछ पीछे वे नाग-यज्ञ -यजमान अ-संशय ।
किया पूर्ण पितु-श्राद्ध, सुपुत्र-श्रेष्ठ जनमेजय ।।
याज्ञवल्क्य के साथ पंडिता गार्गी शोभित ।
दम्पति मन-मति सरिस, एक से एक प्रकाशित ।।
एक-कुंड करकेलि, सरित ज्यों दिशि-दिशि बहती ।
ये कहते वे सुनती - वे सुनते ये कहती ।।
भरद्वाज-मिथिलेश विराजे निकट चकित-चित ।
ज्यों वाससंती-विपिन अलौकिक मलयज सुरभित ।।
जपा-कुसुम का लाल, उषा का वह विमान-सा ।
मां का चोला टँगा शीश पर, शुभ वितान सा ।।
श्रीफल - मौली - पंचसुपल्लव, घट-आवेष्ठित ।
वे मेधा मुनि-श्रेष्ठ, भवानी किये समाहित ।।
श्री - भगवती - चरित्र चाव से सुना रहे त्यों ।
कन्यावाणी - सुधा मरुस्थल जिला रहे ज्यों ।।
वही भूपवर - सुरथ, समाधि-वैश्य-कुल भूषण ।
बैठे हैं, सौभाग्य-गगन के नव शशि-पूषण ।।
वेदशिरा - अंगिरा - पंतजलि वे कणाद हैं ।
ऋष्यशृंग-उत्तंक परे वे पिप्पलाद हैं ।।
वातस्कंध - विशाख - उदरशांडिल्य-कृषीबल ।
जैगीषव्य - शमीक - प्रचेता - पर्वत - देवल ।।
कश्यप-मरुत-मरीचि - च्यवन - दुर्वासा-कर्दम ।
अत्रि-अगस्त्य-पुलस्त्य-रैभ्य -आस्तीक-दीर्घत्तम ।।
शंख-लिखित-क्रतु-असित-कण्व-गालव-उद्दालक ।
जरत्कारु-सावर्णि - पराशर-ताण्ड्य -विभांडक ।।
बालखिल्य-मेघातिथि- भालुकि- गौतम-क्रोधन ।
कक्षीवान - कहोल - पवित्रपाणि - भांडायन ।।
महाप्रभु श्री रामचरण ये रामस्नेही ।
निकट रामजन - वीतराग वे परम - विदेही ।।
संतदास वे कृपाराम, दिलशुद्धराम ये ।
इधर स्वरूपा सतत् जप रही मधुर-नाम ये ।।

वे शठकोपाचार्य - यामुनाचार्य- विष्णुचित ।
वे श्री वेंकटनाथ - पोयगे - नीलन सुस्मित ॥
परमहंस श्री रामकृष्ण प्रभु - ऋषभदेव सम ।
ज्यों मुखरित जड़-भरत-हृदय मारुत-सुत विक्रम ॥
हँसते-रोते वृक्ष-वृक्ष पर चढ़े, उतरते ।
ग्वाल - दृष्टि से हांक लगा कर जगत टेरते ॥
"हो ली रे! आरती, प्रसादी खुली खिलाती हो ।
आओ रे जग-जीव ! तुम्हें मां खड़ी बुलाती ॥"
अंश-अंश चुन रही, रासमणि रानी नीचे ।
"मां! दो, मां! दो" बोल, लग रहे कितने पीछे ॥
करते इधर विनोद विवेकानन्द मोद भर ।
क्या वाणी, ज्यों उतर रही गंगा, धरती पर ॥
रामतीर्थ वे गज़ल-शेर में मंत्र रहे भर ।
चुग मुक्ता - वेदान्त काग, गा रहे हंस-स्वर ॥
वे गुरु - गोरखनाथ, मछंदर जगा रहे हैं ।
गंगा को गांगेय - सलिल से न्हिला रहे हैं ॥
बाबा - बालकनाथ, धूत सरभंग अनेकों ।
लगा भस्म कनफड़े बजाते चिमटे देखो ॥
उदासीन श्रीचन्द, साथ में बाबा हरिहर ।
वे महर्षि अरविंद, विचरते मां को लेकर ॥
सरमद - सुथरेशाह, नामधारी - सतनामी ।
प्राणनाथ को खड़े घेर कर, अमित प्रणामी ॥
ये नागे बलवान, ढूंढ़ते, हुए दिगम्बर ।
"आ माया ! छिप गई कौन सा चीर दिगन्तर ॥"
वे वैरागी-सन्यासी - बटु वे भंडारी ।
जलभरिये - पौरिये - पाकिये - सेवादारी ॥
संगतिये नाथद्वारे के भील - लुटेरे ।
दांडी - वाले अमरनाथ - छड़ियों के चेरे ॥
संत - महंत - मसंद - देवदासियाँ - पुजारी ।
कूके, जात्री, तीर्थ - क्षेत्र के सत् - व्यापारी ॥

लीलाओं के रूप, स्वयंसेवक मेलों के ।
करुण - सुधारक सत्याग्रही - सुभट जेलों के ।।

शौर्य द्वार

सोरठा

वह प्रिय ! शौर्यद्वार, धार अमित शस्त्रास्त्र शुभ ।
किये सुभट - शृंगार, लव-कुश सीता-सुत खड़े ।।

रोला

कनक-पीठ पर बिछा, अखंडित मृगपति-अंबर ।
मनु-शतरूपा ज्यों वसंतऋतु नवसंवत्सर ।।
धर्म - अर्थ - नृपनीति - राष्ट्र गौरव-वैभव पर ।
चर्चायें कर रहे राज - ऋषियों से घिर कर ।।
कल्प-कल्पकेअमित-अमित मनु, निज-निजआसन ।
करते विषय-कलाप सूक्ष्म - पाण्डित्य - प्रदर्शन ।।
वे इक्ष्वाकु - विकुक्षि - पुरुरवा-पृथु-मांधाता ।
रघु-अज-सगर-दिलीप - भगीरथ गंगादाता ।।
रंतिदेव- शिवि - हरिश्चन्द्र-रोहिताश्व-ययाती ।
उग्रसेन - अजमीढ - मयूरध्वज - शर्याती ।।
त्रसद्दस्यु - कृतवीर्य-द्रुह्यु - यदु-अनु-तुर्वसु-पुरु ।
शांतुन-हस्ति-प्रतीप-पांडु - धृतराष्ट्र-विदुर-कुरु ।।
शूरसेन-वसुदेव- नन्द - कृप - द्रोण- भीष्म-नल ।
भीम-नकुल-सहदेव-युधिष्ठिर -अर्जुन हरि-बल ।।
दिवोदास - दुष्यंत - भुमन्यु - ऋचीक-प्रतर्दन ।
द्रुपद - विराट -अलर्क - नहुष-मुचुकुंद-संवरण ।।
अंबरीष -ऋतुपर्ण - सुरातिथि-नृग-सृंजय-जय ।
रोमपाद -अनरण्य -शैव्य-भीष्मक-निमि-केकय ।।

दोहा

देख ! अचल सा वक्ष वह, जिससे कर पवि-नाद ।
अलक्षेन्द्र सा भट भिड़ा, उतरा समरोन्माद ।।

रोला

अबला - राखी कसी, वही भुज, उसी वक्ष धर ।
फिरते पौरुष-परिधि, अपर-दिशि वे पुरु-नरवर ।।
मुँदे कमल में भ्रमर, चढ़े शशिशेखर-शिर ज्यों ।
मौर्यराज के अंक, सजी रानी हेलन त्यों ।।
बांध रहे जो शिखा, शांतचित पूर्ण-मनोरथ ।
वही आर्य चाणक्य, यावनी-निशि प्रभात-पथ ।।
हूण-वक्ष क्षतजात-रंजनी खड्ग-लेखिनी ।
भारत - शौर्य- प्रशस्ति स्वर्णिमाक्षर सु-मेदिनी ।।
लिखी, वही सम्राट - यशोधर्मन असि धारे ।
ज्यों लालिमा प्रियांक, विलोचन त्यों रत्नारे ।।
बन पतंग शक-मुंड उड़े, जिनकी शर- डोरी ।
यही विक्रमादित्य, लिये वधु-कीर्ति-किशोरी ।।
वे सम्राट समुद्रगुप्त, गंभीर जलधि से ।
प्रथा प्रकट की, राज-सूय की ुप्त अवधि से ।।
स्कंद-कुमार कुमार - स्कंद से, गुप्त वंशधर ।
किये जिन्होंने सफल - समर आक्राँता-भू पर ।।
पुष्यमित्र वे अग्नि-मित्र, वसुमित्र सहित प्रिय ।
वासुदेव कानिष्कि वासुदेवार्चन - सक्रिय ।।
खारवेल - खेगॉर - शातकर्णी वे नृपवर ।
चोलराज-राजेन्द्र - कंबु - कौण्डिन्य खड्गधर ।।
श्री जय-शंकरदेव - देव हरपाल देवगिरि ।
सेनदेव कैकेय - वीर शैलेन्द्र नृकेहरि ।।
वे नृप लक्ष्मणसेन बंग - भू के दृग - तारे ।
भूली जिनके समर, मुगल सरि-माल किनारे ।।

दोहा

संयासी होकर गये, गजारूढ रण - क्षेत्र ।
स्वामी विद्यारण्य वे, खुले धर्म के नेत्र ॥

रोला

तिरुमल-हरिहर-बुक्क प्रवर-भट घोर-समर के ।
कृष्णदेव वे रामराय, नप विजयनगर के ॥
म्लेच्छ - मुंडिका गेंद, कौतुकांगन संगर का ।
जो खेले चौगान, घोष करते हर-हर का ॥
वे दाहर-खुम्माण - भीमसी - बप्पारावल ।
अजयपाल-जयपाल- राव राजा सूरजमल ॥
ये वसंत के युवक-पलाशक-तरु से सांगा ।
भेंट अठासी घाव, काल ने जीवन मांगा ॥
झुनसाती नयनाग्नि, जवाहरबाई सिकता ।
बैठी पन्ना - धाय, उरोजों से पय रिसता ॥
झाला - मन्ना, चंड-वीर, हम्मीर हठीला ।
कुंभा, दुर्गादास धीर राठौर सजीला ॥
वे शक्तावत सुभट, भीलपति, चूंडा-मोकल ।
अमरसिंह राठौर-राव जोधा - वे पीथल ॥
जयमल - फत्ता - राजसिंह-राजा टोडरमल ।
चपतराय-कुणाल-सारवाहन वे बीसल ॥
खुसरू-देवल मिथुन, देख ! वह परम अनोखा ।
अघ पर किया प्रहार, ठाट से खाकर धोखा ॥
लेकर युगल कटार, नयन बांके मटकाती ।
शीश फकेरे, नृत्य नोलदेवी दिखलाती ॥
लिये चषक, हरदौल लाड़ला वैसे फिरता ।
राजसूय यजमान, ज्वाल-माला ज्यों घिरता ॥
आल्हा-ऊदल इधर, जमाये मूर्ख मंडली ।
निज काजल, निज हाथ मसल, की कीर्ति सांवली ॥

एक मूर्ख यह और, पिथौरा मींज रहा कर ।
नागों को पय पिला, पड़ा है धर्म-नाम पर ।।
बैठे काका कान्ह निकट पट्टिका लपेटे ।
नभ को संयमराय, इधर लखते अधलेटे ।।
उधर राय चामुंड, बेड़ियां खोल पहनते ।
अधमुँद दृग कैमास-लंगरीराय निरखते ।।

दोहा

उधर मांजता सेतु-शिल, खड्ग कहर-कंठीर ।
इधर जांचता शिंजिनी, खड़ा चंद्रपुंडीर ।।

रोला

सार्थक कर्म पुनीत, अर्थ का संगम सुंदर ।
ज्यों मिलते कलि पुनः राम-सुग्रीव परस्पर ।।
भाला टिका प्रताप, अर्बुदाचल से दिखते ।
सादर भामाशाह, सुमत-धन वर्पण करते ।।
छत्रसाल के कंध रखे कर, खड़े शिवाजी ।
ये बाजीप्रभु - साहु-राव बाजी - संभाजी ।।
लेकर गढ़ की भेंट, गये घर महाकाल के ।
ये ताना जी मुकुट-शुभ्र हिन्दवी-भाल के ।।
ये हेमू - विश्वासकुमार - सदाशिव भाहू ।
पानीपत रण-गगन, शत्रु-शशि दल के राहू ।।
घिरे चर्तुदश - सहस-सती - दल-ज्योति-पुंज से ।
शिव सम राणा रत्नसिंह ये यज्ञ - कुंड से ।।
मध्य-पीठ कर्पूर-शिखा सी प्रखर-प्रज्ज्वलित ।
पूर्णाहुति फल सरिस, पद्मिनी रानी शोभित ।।
वे गुरु हरगोविन्द, सुनहरी-कलगी धारे ।
कसे अमीरी-पीरी की, कटि युगल कटारे ।।
शिखा-सूत्र गौ-विप्र हेतु, दी स्वयं शिराहुति ।
नवम-पिता प्रत्यक्ष, अकाल-पुरुष की ज्यों द्युति ।।

तरे गंग सी तप्त-कटाह-तैल-वैतरणी ।
वे गुरु - अर्जुन देव, सरकती शांत-सुमरनी ।।
दशम - पिता गोविन्द, तेग से देग हिलाते ।
गुरु - चेला बन आप, बंधुता-अमृत छकाते ।।
वह भाई मतिदास, चूम जो आरा प्यारा ।
भ्रमित-पथिक-जन हेतु. बना ध्रुव-तारा न्यारा ।।
बैठा भाई शूर-शिरोमणि देख दयाला ।
गिरा न निकली गिरी, देग में गया उबाला ।।
वे ही दुर्गावती साथ चेन्नमा रानी ।
करती ललित-विनोद, वहीं लक्ष्मी-मरदानी ।।
उमा-रमा-शारदा रक्त-कुंभों में न्हाईं ।
महाकाल की सजा-सजा कर थाली आईं ।।
राज्य-हर्ष के मध्य, राज्य-श्री वही मुदित-मन ।
जीवित बली सी खड़ी, न जली धर्म के कारण ।।
यति-गति सी ये युगल सहेलीं चुंदर-मुंदर ।
विस्मित-सस्मित परम सलौनी देख, मनोहर ।।

दोहा

पालित पुत्री पेशवा-की यह मैना-बाल ।
तनिक न मुख खुलवा सकीं, जिसका, ज्वाल-कराल ।।

रोला

ये नाना ये राव, देखते, बहन छबीली ।
कहते बारम्बार, 'जीत तू गई हठीली ।।'
तनी मूंछ उत्तान, खड़ी ज्यों प्रखर-दुधारी ।
तांत्या - टोपे खड़ा, तड़ित-ताटंक - पुजारी ।।
कुंवरसिंह वर-वीर धीर जैसे नर-नाहर ।
ज्यों उतरे ऋक्षेश-भीष्म हो सद्य, धरा पर ।।

सत्तावन स्वातंत्र्य-मंत्र-अक्षर सैनिक-दल ।
मंगल पांडे प्रथम प्रणव से सजे हरावल ॥
हिमगिरि की चट्टान, तरीं पा जिसकी पदरज ।
यह जोरावर सिंह, अनुज पौरुष का अग्रज ॥
इधर ठट्ट के ठट्ट पांड्य-गांधार-पंचनद ।
शाक्य - लिच्छवी - चोल- डोगरे-मालव-अंधक ॥
कंबुज - शुंग - कलिंग - गोरखे - क्षुद्रक - गूजर ।
गुह - अहीर - यौधेय - तमिल-बंगांग-जाट नर ॥
कंघा - केश - कृपाण-काछनी - कड़ा धार कर ।
गुरु नानक के शिष्य, धम-संरक्षण-तत्पर ॥
दशम-पिता के सिक्ख, खालसा-पंथ पथिक-वर ।
गुँजा रहे 'सत्-श्री-अकाल' से गगन निरन्तर ॥
कहीं गौड़ - गहलोत - कहीं चंदेले - सेंगर ।
सीसौदिये - पँवार - टांक - खींची-बड़गूजर ॥
कछवाये - चौहान - सांखले - हाड़े- तोमर ।
सोलंकी - परमार - मैढ़ अलबेले - गुर्जर ॥
यदुवंशी - परिहार - कहीं राठौर नवेले ।
भाटी - मोयल कहीं, कहीं सोढ़े - बुंदेले ॥
रण-भू-शिल भोंसले, सिंधिया कहीं होल्कर ।
दइयां-गायकवाड़, अनेकों शस्त्र धार कर ॥
करते 'हर-हर' घोष, 'जयति-मारुति' 'जय काली' ।
'जय-जय राजा राम-जानकी' 'खप्पर वाली' ॥
रखे हथेली शीश, जूझते विकट-रणांगण ।
करते शिव - देवाधिदेव का शोणित-अर्चन ॥
धर्म - भूमि, रिपु-वृंद-मान-मद करते मर्दन ।
ये आये, वैकुंठ-धाम में करने नर्तन ॥
देश-धर्म के हेतु, आग से हँस कर खेले ।
बना वक्ष निज ढाल, अनेकों संकट झेले ॥

संकीर्तन द्वार

दोहा

'अहा-अहा मां ! झूमते, दिशि-दिशि कितने राग ।
मानों वाद्य - वसंत-ऋतु, आया अश्रुत - फाग ॥

रोला

परज - देवगांधार - धमार - मल्हार - भैरवी ।
भैरव - आसावरी -बिलावल - सुहा - मालवी ॥
मालकौंस-नट - मारु - कान्हड़ा - जयजयवंती ।
गौरी - गुजरी - दीप - रामकलिका - वासंती ॥
पंचम-धैवत-षड्ज, कहीं सप्तम गुंजारित ।
वीणा-वेणु - मृदंग - झांझ-घुंघरू झंकारित ॥
कितने सुंदर-नृत्य, रोम-रोमों में थिरकन ।
स्वांस-स्वांस पर ताल दे रही धड़कन-धडकन ॥"
"यह संकीर्तन - द्वार अनोखा, परम - दुलारे ।
वेदों के भावार्थ नाचते, ध्वनि-तन धारे ॥
थिरक रहे चैतन्य, पौर पर सुध-बुध खोकर ।
गूंज रहा भू-गगन एक 'हरि-हरि-हरि-हरि' स्वर ॥
दिशा-दिशा में न्याय-नीति से विधिवत् बँटते ।
मद्यप से दृग चढ़े, बढ़े, फिर पीछे हटते ॥
प्रेम-त्रिपथगा-अमृत विलोल किलोलें रचते ।
मानों परमानंद, ब्रह्म - घट मंजुल भरते ॥
ये प्रभु नित्यानंद-जघाई और मघाई ।
आगे श्री हरिदास यवन, अद्भुत-छवि छाई ॥"
"मैं भी नाचूं अंब ! हुआ जाता चंचल मन ।"
"बढ़ता चल, प्रिय पुत्र! मुदित-मन करता नर्तन ॥
भरी भूमि-भामिनी वाटिका-मालाओं से ।
वही भगवती-भक्ति, घिरी ब्रज-बालाओं से ॥

ललिता-चंद्रावली-विशाखा सकल षोड़शी ।
कैसा करतीं नृत्य, अनोखी लगी होड़ सी ।।
अपलक लखतीं जिसे, दृष्टियां-अमित स-नीरा ।
बजा रही षड़ताल, मध्य में मेरी मीरा ।।
दान-मान-उद्धार, उधर उद्धव की लीला ।
गोवर्धन सा उठा, तना क्या, सुपट सजीला ।।
यह लिलिहारी, यह मनिहारी, यह वन-भोजन ।
यह श्यामल-वेणी से कालिय का मद-मर्दन ।।
यह दावानल-पान, नंद - बाबा का मज्जन ।
चीर-हरण ये, लोक-लाज के ललित प्रदर्शन ।।
अघ-बक-शकट-प्रलंब, बावली पड़ी पूतना ।
ये मुष्टिक-चाणूर मल्ल, यह धनुष टूटना ।।
गिरा कुवलयापीड़, उधर वह कंस लुढकता ।
केशी बन, क्या मुदित गोपिका-देह बिदकता ।।
गोपी एक कदंब, एक चढ़ वेणु बजाती ।
दृग-कर-ध्वनि संकेत, एक ज्यों धेनु बुलाती ।।
महारास रच रहीं, बनीं बहु कृष्ण-राधिका ।
काट रहीं भव-रज्जु - ग्रन्थियां सुपथ-बाधिका ।।
बजा-बजा करतालि, अनेकों नाच रहीं ये ।
जगत-जयी-भट सरिस, अनोखी गाज रहीं ये ।।
बार-बार यह बेर बांटती, शबरी फिरती ।
विदुरानी धर हाथ कान पर आहट सुनती ।।
गुह को कोल-किरात-भिल्ल गण घेर नाचते ।
ये सुतीक्ष्ण-मुनि मींच-मींच दृग, हृदय झांकते ।।
ये उद्धव - शरभंग, खड़े यें नरसीम्हेता ।
क्या सत्युग की छटा, मिले कलि-द्वापर-त्रेता ।।
नामदेव ये नामवार - आल्वार - पुरन्दर ।
'जय-जय-जय सिय - राम' गा रहे भालू-बंदर ।।
इनके पीछे दूर, ज्ञान-विज्ञान विशारद ।
वीण - वीचि-तल्लीन. नवीन-मीन से नारद ।।

खड़े रागिनी - राग सपरिकर, इन्हें घेरकर ।
मूर्तिमान यति-गति-आरोहण - अवरोहण स्वर ।।
कल्प-कल्प के, लोक-लोक के, विधि-हरि-शंकर ।
कितने इंद्र-कुबेर-वरुण - यम-दिशिराजेश्वर ।।
कितने दिनकर-प्रखर, पसारे ध्रुव-निशिकर कर ।
तीर्थंकर - अवतार - दूत - गुरुगण - पैगम्बर ।।
कितने गाते नाम, नाचते सुधि-बुधि खोकर ।
कितने परिचित किंतु अपरिचित भी कितने स्वर ।।
कोलाहल भी अमित, शांति भी अमित मुदित चित ।
अंग-अंग में ललक किंतु मन चपल, अविचलित ।।
पहुंचे, पहुंचे हुए अनेकों नाम-पंथ से ।
किसी रूप से, किसी यत्न से, किसी मंत्र से ।।
उत्तर सही सदैव सकल प्रश्नों के मिलते ।
शेष अकाल प्रसून, काल-प्रतिकूल बिखरते ।।
इधर खड़ा प्रहलाद, प्रीति लख जिसकी ईश्वर ।
हुए खंभ से प्रकट, देह अद्भुत धारण कर ।।
गद्-गद् होता हृदय, छलक सो आंखें आती ।
पल-पल अंतर्मुखी चेतना हो-हो जाती ।।
मातृ-भक्त को शयन-कक्ष में वधु ले जाती ।
करते-करते केलि, अंब-स्मृति दीप जगाती ।।
गमन-आगमन, निशा काटता, मां-तिय प्यारा ।
प्रभु-गुण गाते, जीव देखता, त्यों जग सारा ।।
नहीं अघाते, चाव-चाव त्यों फिर-फिर कहते ।
कल्प-कल्प के वीर-असुर वैसे ही सुनते ।।
वंशीधर के कमल-नयन की भृकुटी बांकी ।
इनके अंतर बसी, वीर-रस की बन झांकी ।।
पांचजन्य - शारंग - सुकौमोदकी - सुदर्शन ।
रत्नतसरु-असि दीप्ति-विनिंदक नंदक-स्पर्शन ।।
भाला - मूषल - शूल - नखों का ले आस्वादन ।
काट चुके ये जन्म-जन्म के संचित - बंधन ।।

विकट-भक्त ये सभी, चतुर्भुज प्रभु-स्वरूप में ।
पशु बन-बनकर बँधे, समर-मख-महा यूप में ॥
"सुंदर भुज-आजानु, शस्त्र भी अगणित धारे ।
सोते रहते मौन, सदा ही चरण पसारे ॥
कहते क्या-क्या भुवन, श्रवण सब मेरे सुनते ।
कभी न देखा किंतु इन्हें या इनको उठते ॥"
खेले मायानाथ, देख माया-मन नाटक ।
समय-समय पर बने, यही जब-तब खल-नायक ॥
इनको तनिक निहार, सकल जग-मंच-प्रकपन ।
देव-क्रोध का सु-वर रूप, कैसा मन-मोहन ॥
वह विलोक मारीच, दृगों में धनुधर-छवि धर ।
भरता हुआ कुलांच, दौड़ता ठिठक-ठिठक कर ॥
मुड़-मुड़, फिर-फिर रहा खोज ज्यों परमस्नेही ।
वैदेही - व्यामोह - विमोहित - वरद - विदेही ॥
बलि-बाली बलवान - बाण - अर्जुन सहस्रभुज ।
वह विराट का हृदय-रोग दशशिर, गत-भव-रुज ॥
झर-झर झरते नयन, यही क्या लगता रावण ।
सहला-सहला वक्ष, हृदय से लगा विभीषण ॥
"लगी लात अति कठिन" अश्रु भर, झुक-झुक जाता ।
"नहीं-नहीं" कह अनुज, स्वयं झुक, शीश झुकाता ॥
तंद्रिल - पलकें, तरल - नयन लेता अँगड़ाई ।
कुंभकर्ण यह दृश्य देखता, रोक रुलाई ॥
अहिरावण की जंघ, किये काका-आलिंगन ।
कभी लेटता, कभी बैठता अक्षय, मुद-मन ॥
मेघनाद निज शीश स्पर्श कर, भुजा चूमता ।
कालनेमि 'हनुमान जयति' कह उधर झूमता ॥
शंखचूड़ के संग, इधर वह खड़ा जलन्धर ।
करते प्रभु की बात, कनखियों में मुस्काकर ॥
भूमि - भार उद्धार - नाट्य का सूत्रधार यह ।
बैठा चौसर बिछा, शकुनि गांधार-राज यह ॥

'हरि के द्यूत-स्वरूप' लिये पासों को कर में ।
रास-रसिक को रास, इसी ने दी द्वापर में ॥
वे दुर्योधन देख, दुशासन - दिनकरनंदन ।
सिंधुराज शिर उठा, देखता नभ रवि - स्यंदन ॥
यह लेटा है शल्य, तनिक इससे बचकर चल ।
देख-देख वह कंस, मान-सर का निर्मल जल ॥
ये वक-अघ - तृण-शकट - व्योम-केशी - प्रलंब भट ।
शल-तोषल-चाणूर मल्ल, मुष्टिक बल-जल-घट ॥
जरासंघ के संधि-भाग की विकट संधि पर ।
यह पौण्ड्रक हँस रहा, काष्ठ-कर मसल-मसलकर ॥
दंतवक्र को गिना रहा, शिशुपाल दुर्वचन ।
काल-रूप प्रभु-रोष-चरण जो चढ़े, सुमन बन ॥
हो इस तरु की ओट, देख, सुन, तनिक ठिठक कर ।
करते वार्ता मधुर दितिज, क्या भावों में भर ॥
"शैल - सिंधु - सर - सरित - ग्राम-पुर पूरित धरती ।
कब कैसे ली उठा, दिखी बस उठती - उठती ॥
बाल - करों में गेंद सरीखी दंष्ट्राओं पर ।
कैसे कौतुक कुशल, बने भी तो क्या शूकर ॥"
"चल, बहुतों ने लखे, अरे ! शूकर बहु तेरे ।
देखे तो क्या, पढ़े-सुने कब नर-हरि मेरे ॥
अरे ! नयन क्या नयन, तरुण - तड़िता संघर्षण ।
प्रलय-घनों सी घनी अयालें उड़तीं क्षण-क्षण ॥
नख क्या, आरे चक्र-सुदर्शन के से क्वारे ।
अट्टहास, ज्यों सप्त - सिन्धु की ज्वर - मद ज्वारे ॥
किंतु बंधु ! आश्चर्य, अंक क्या अंक, अंक ही ।
कितना शीतल मृदुल, हिमंचल-मय मयंक ही ॥
जब तक थामा नहीं, तभी तक रहा सशंकित ।
फिर तुझसे क्या कहूँ, आज भी चित रोमांचित ॥
इतनी सुंदर मृत्यु, अरे ! झूठा समझेगा ।
सुनकर जग में दुष्ट, कठिन परिहास करेगा ॥"

"रुको न, कृपया बंधु ! बात प्रिय कहते जाओ ।
प्रियतम-पूर्वाभ्यास, प्रलय का ललित सुनाओ ॥"
"हिरण्याक्ष ! तव रोम-रोम की प्राण शक्तियां ।
निकल-निकलयों खड़ीहुईं, ज्यों नवल-युवतियां ॥
तव भाभी सी, प्रथम-दिवस की सी अति सुंदर ।
लगी मृत्यु, वरमाल लिये सखियों से घिर कर ॥
धीरे - धीरे तीक्ष्ण - कटाक्षों का सम्मोहन ।
करते - करते, स्वयं किया बढ़कर आलिंगन ॥
मेरे दृग मिच गये, गया छिप रूप भयंकर ।
शैया प्रभु का अंक, रोष बन गया निशाकर ॥"
मां की आंखें भरीं, ठेलती बोली "चल-चल ।
देख हँस रहा रक्त-बीज वह पूरा पागल ॥
चंड-मुंड, ये शुंभ-निशुंभ, शूर महिषासुर ।
धूम्र विलोचन-त्रिपुर-तार-मधु-कैटभ - चिक्षुर ॥
नमन दूर से मौन-मौन कर, निकल-निकल चल ।
क्या लीला दें रचा विहँस, इनको लगता पल ॥

दोहा

ग्रहण-काल में राहु प्रति, ज्यों जग करता दान ।
विघ्न-निवारण हेतु त्यों, समुचित इनका मान ॥

भारती द्वार

दोहा

परम निराला देख मम, मंजु भारती - द्वार ।
अगणित विधि - शैली रचित, आंगन शिखराधार ॥

रोला

सुदृढ़-शिला श्रुति नींव, ईंट वेदांग-उपनिषद ।
ब्राह्मणग्रन्थ-पुराण-भाष्य - टीकावलि सुविशद ।।
संस्कृत - ग्रन्थ सुलेप, रंग भाषा - भाषा के ।
रस-दिवि भाव-सुगंध, सत्त्व-शाश्वत आशा के ।।
चंपू-बारी, श्रव्य-द्वार, नाटक - कंगूरे ।
खंड - झरोखे - महा - द्वार बहु पूरे - पूरे ।।
भाण-नाटिका-गीति-लास्य -प्रहसन मय रूपक ।
समवकार-व्यायोग-अंक - डिभ - त्रोटक-सट्टक ।।
यति-गति-सतुक-सताल, समूर्त सुगीति व्यंजना ।
भांति-भांति के छंद, गणित से अविजित रचना ।।
अंचलीय बोलियाँ, ललित संरचनावलियां ।
कहीं फूल सी खिलीं, कहीं अब चटकीं कलियां ।।
सफल फूलतीं कहीं, कहीं बौराईं फलियाँ ।
कहीं जटायें धँसीं, विहँसतीं लतिका - गलियां ।।
पत्रावलियाँ हरित, पात कुछ-पीले-पीले ।
कुछ न्हाये, कुछ न्हाये से, कुछ कुछ-कुछ गीले ।।
देख-देख सुन ! ललित-लाडले, लट-घुँघरारी ।
धोती चुन्नट दार, अँगरखी जरद-किनारी ।।
खड़ा द्वार पर भारतेन्दु वह मेरा प्यारा ।
जिसने बंदी-सदन 'अंब' कह, प्रथम पुकारा ।।
इधर माधवी, उधर मल्लिका शोभा पातीं ।
चरण-धूलि-सिंदूर, मांग में मुदित सजातीं ।।
कालिन्दी कालिमा, हरितिमा सरस्वती की ।
काशी आकर हुई, शुभ्रता विष्णुपदी की ।।

मिलीं कहीं से भी त्यों ये माधवी - मल्लिका ।
भारतेन्दु की किंतु कला अब, कलित सु-रसिका ।।
धार-सार को परख, सुभट-गण मोल चुकाते ।
नाटक के नट मटक, म्यान की चटक दिखाते ।।
इस विस्तृत संजवन मध्य बहु पृथक, सिमटकर ।
कुछ घिर कर, कुछ घिरे-घिरे ही घेर-घेर कर ।।
कुछ बैठे, कुछ खड़े, पड़े अधलेटे, लेटे ।
कुछ पटकों को परे पटक, कुछ फेंट लपेटे ।।
वे सुरवाणी संस्कृत के कवि जन-जन वंदित ।
संस्कृति-रक्षक, विषय-विषय के अद्भुत-पंडित ।।
वे बैठै वाल्मीकि, विश्व के पूज्य आदि-कवि ।
अधमुँद-पलकें, अधर-विकंपन, झूम रही छवि ।।
कालिदास-भवभूति - भर्तृहरि - नैषध-भारवि ।
कल्हण-दंडी-बाण - महीधर - माघ महाकवि ।।
ये वे पंडितराज, लवंगी सहित मोद में ।
जिन्हें भगवती - गंग, बिठा ले गईं गोद में ।।
मम्मट - भल्लट - सुभट-गुणाढ्य-भट्ट नारायण ।
नृप कुलशेखर - पुष्पदंत - लीलाशुक - सायण ।।
शब्द-ब्रह्म के, अग्नि - शुद्ध शुभ-वस्त्राभूषण ।
कोषकार ये अमर, पाणिनी रचा व्याकरण ।।
ये कविवर जयदेव, माधुरी - मूर्ति-मनोहर ।
रसस्रोत की सरस-सरित के, रिसते निर्झर ।।
नाट्य - शास्त्र के आद्य-प्रणेता, आर्य भरत ये ।
वे मधुसूदन सरस्वती - धोयी - कुंतक ये ।।
अप्पय दीक्षित-भास-विशाख-गद्य गति शूद्रक ।
वे बैठे यामुनाचार्य, युगलोक विचिन्तक ।।
देख, गणक वाराह मिहिर, विज्ञान विशारद ।
बैठाये भूगोल - खगोल इन्होंने संसद ।।

ताँक रहा वह व्योम, ग्रार्य भट-खोया-खोया ।
परलोकों में बीज, कीर्ति का जिसने बोया ।।
पिता - पुत्र वे बैठे, नेमादित्य - त्रिविक्रम :
वे गोस्वामी जीव - रूप, दोनों ही अनुपम ।।
चक्र - ग्रालबंदार - शबरस्वामी - घटखर्पर ।
उत्पलदेव - जयंत - वेंकटाध्वरि - क्षेमेश्वर ।।
केशव भट्ट - अनंत भट्ट - रुद्रट -बाणेश्वर ।
वीर राघवाचार्य तीर्थ - विजयध्वज श्रीधर ।।
मित्र मिश्र - दैवज्ञ सूर्य - भामह - गोवर्धन ।
सोमदेव-बुधस्वामि-पुलिंद - प्रजापति - वामन ।।
मेरुतुंग - चिंतामणि भट्ट - कृशाश्व - शिलाली ।
वादिराज - अमरूक - राजशेखर - वनमाली ।।
किन्हें बताऊँ, किन्हें छोड़ दूं, कठिन समस्या ।
करते गये तपस्या, करते लौट तपस्या ।।

सोरठा

संस्कृति - भवनाधार संस्कृत - ग्रंथ-समूह प्रिय ।
उनके रचनाकार, विदुष विश्वकर्मा विपुल ।।
इनकी ही शुभ-राह, बहु भाषा-भाषी कुशल ।
राष्ट्रात्मा की बांह - गहे खड़े, पुरुषप्रवर ।।

रोला

यद्यपि बहु - षडयंत्र, कुचक्री नित्य रचाते ।
संस्कृत को मृत बता, विदेशी भाषा लाते ।।
देखे बँगला, तमिल यावनी की बारी से ।
पढ़ें मराठी, ग्रांध्र ग्रांगली की जारी से ।।
गुजराती से मिले असमिया सिंधु पार कर ।
कन्नड को गुरुमुखी विलोके आशंका भर ।।

बुंदेली - मालवी - मैथिली - राजस्थानी ।
अवधी - हरियाणवी - डोगरी - ब्रज कल्याणी ।।
करें परस्पर तुमुल, अपरिचय के जंगल में ।
बल से अविजित, विजय करें छन्न से क्षण भर में ।।
खान - पान - आचार सकल व्यवहार-वेष भी ।
राष्ट्र-भक्ति हो विदा, गिरा के साथ शेष भी ।।
दुरभिसंधि यह ठान, योजनाबद्ध रीति से ।
दग्ध स्वरजु ले चले, डराने सर्प-भीति से ।।
कुछ भोले, कुछ मूर्ख, धूर्तता से घबराकर ।
कुछ अधकचरे पोच, स्वगौरव-मान बुलाकर ।।
देशातमा का हनन, षंड इठलाकर करते ।
होकर सिंह-कुमार, स्यार का पानी भरते ।।
उन रतौंधियों हेतु, मात्र साहित्य सु-अंजन ।
देख विराजे वही, सिद्ध - साहित्यकार गण ।।
वह गलमुच्छेदार, दुधारी प्रखर परखता ।
शोणित-मसि में न्हिला लेखनी, रासों रचता ।।
हिन्दी का कवि-आदि, सु-भट्ट चंद्रवरदाई ।
रंगभूमि - रणभूमि एक सी प्रीति निभाई ।।
जगनिक-नरपति नाल्ह-लाल वे सूरज मिश्रण ।
यह बैठा मम समर - वेष का भूषण, भूषण ।।
ले मम कर से वीण, इसी ने खड्ग थमाई ।
जपा-कुसुम में गूंथ, मुंड - माला पहनाई ।।
खोल चंद्रमा-खचित भाल का दृग, प्रलयंकर ।
युग की सुस्मिति शुष्क, जलद-घोषों से दी भर ।।
कालरात्रि में महातेज की छवि छिटका दी ।
बड़वानल की बेल, शांत - दधि में लहरा दी ।।
देख अनंत कु-मौन पुस्तिका - माला ले ली ।
महाकाल के वक्ष, बनाकर काली ठेली ।।
उस अकाल में दिया, कलेऊ-थाल काल को ।
स्वयं किये उपवास, न झुकने दिया भाल को ।।

आर दृश्य यह देख, अरे ! क्या अद्भुत-न्यारा ।
नाच रहे रसराज, रूप रख कैसा न्यारा ।।
बांधे बांकी शिखा, त्रिभा दिशि-दिशि फैलाते ।
बैठे विट्ठलनाथ गुसाईं वे मुस्काते ।।
व्रज बाला - व्रज भूमि-व्रजेश्वर-व्रज भाषा के ।
धर्माधार ललाम, अमर संस्कृति - आशा के ।।
जिन्हें घेर कर मधुर-मधुर पद, कवि-ऋषि गाते ।
कल्पवृक्ष पर विहग-वेष, ज्यों सुर मँडराते ।।
जिनकी पनहीं, अभी तैरती देख आ रहे ।
ये वे कुंभनदास, चाव से भरे गा रहे ।।
इकतारे का तार, चतुर्भुज दास रहे कस ।
छीत स्वामि-गोविंद स्वामि पी रहे विहँस, रस ।।
दोहा-रोला दिशाव्यूह, पहले लघु फिर गुरु ।
गीत गुनगुना, भंवर नाचते, बांधे घूंघुरु ।।
गाते त्यों, यें नंददास मानसी-तीर्थ पर ।
सुनते परमानंददास त्यों हर्ष-हर्ष कर ।।
गौर-श्याम के तरल दृगों की पुतली श्यामल ।
प्रथम चंद्र की किरण सरिस, स्वर-लहरी उज्ज्वल ।।
शनैः-शनैः बढ़, शरद्-पूर्णिमा बनती जाती ।
सूरदास मन मंजु, युगल-छवि रास रचाती ।।
वे स्वामी हरिदास, बावरा बैजू बैठा ।
हारा जिससे तानसेन स्वर सागर पैठा ।।
वे श्री हितहरिवंश, खवास निकुंज-केलि के ।
सुमन, राधिकारमण-सुरति की अमर-वेलि के ।।

दोहा

सखी - भाव पँचरँग-चुनर, नवल नागरीदास ।
लगा हृदय छवि-सांवरी, करती ताज विलास ।।

रोला

चंद्रसखी वह बालकृष्ण छवि छनी, छबीली ।
बनीठनी वह बनी-ठनी हरि-प्रिय गर्वीली ।।
वह प्रतापबालिका, सु-रानी रूपकुमारी ।
युगल-प्रिया, यह राम-प्रिया, निज-निज प्यारी ।।
हारे सकल प्रपंच, विजय पा गई अकेली ।
फिर भी आंसू भरी, मंजुकेशी अलबेली ।।
चरणदास के पास विराजी सहजोबाई ।
अनुजा-शिष्या-सखी, 'कृष्ण-कृष्णा' छवि छाई ।।
समाधिस्थ स्थिर-प्रज्ञ बहिर्मुखि अन्तर्मुखि दे ।
लौकिक प्रेम अपंग, अनंग अलौकिक गति दे ।।
जग को जग की सौंप सुजान, सुजान-शिरोमणि ।
घनानंद गा रहा, रँगीला निज धुन, निज-ध्वनि ।।
वह नानक का देख, अटा पर अटा ठिकाना ।
करता बाला चँवर, गीत गाता मरदाना ।।
बैठे अंगद, अमरदास, प्रिय ! रामदास वे ।
वे सप्तम हरिराय. जाप-रत अग्रदास वे ।।
ये हैं नाभादास, अंक में प्रियादास त्यों ।
भक्त-भक्ति-भगवंत वसंती-वन पलाश ज्यों ।।
स्वामी रामानंद, समीप कबीर संत-वर ।
वे पलटू - रैदास - मलूका - दादू - सुंदर ।।
बुल्लेशाह - नजीर - शेख - आलम ये मीरन ।
मौज़दीन -मकसूद -नफीस खलीली - वहज़न ।।
सैयद कासिमअली-अली खां - प्रेमी बरकत ।
नूर मुहम्मद - खुसरो - दरिया साहब-फरहत ।।
रज्जब- तालिबशाह - करीमबख्श ये यारी ।
कारेखां - मंसूर - दीन दरवेश - भिखारी ।।

आदिल-वाहिद-काज़िम-कायम - ख़ालस-मंभन ।
पनपदास-अफ़सोस- गुलाल - वृंद - जगजीवन ।।
ये इंशा - यकरंग - लतीफहुसैन - गरिबवा ।
काजी अशरफ-भीखा-धरणी - दूलन - मितवा ।।
मुल्ला अब्दुल कादिर - शेख़ फरीद - वसाली ।
ये बेदिल-चकबस्त, गज़ब की चोट निराली ।।
लाल अमरसिंह लालपुरी वे राय अमानत ।
ये वाज़िन्द - मसीह, इधर उस्मान गान-रत ।।

दोहा

शाहजहां का लाडला, वह दाराहशिकोह ।
उपनिषदावलि भाष्य-रत, त्याग सल्तनत-मोह ।।

रोला

वे विद्यापति, सरस पंक्ति-दे रहीं सुनाई ।
गाता पिक, मैथिली-विपिन वासंती छाई ।।
चिन्तामणि-मतिराम-बिहारी- रसनिधि-केशव ।
प्रकट नरोत्तमदास द्वारकापति के वैभव ।।
महाराज रघुराजसिंह वे रींवा वाले ।
ये गिरिधर कविराय कुंडली कलित सम्हाले ।।
हितवृन्दावन चचा-ग्वाल-ठाकुर - पद्माकर ।
सूरमदनमोहन - सेनापति - भट्ट गदाधर ।।
व्यास-गंग-श्रीभट्ट-रसिक भगवत नारायण ।
गोकुलेश - गोपिकादास - पुरुषोत्तम - कुनबन ।।
ललितकिशोरी - महापात्र नरहरि बंदीजन ।
सबलसिंह चौहान रचयिता सबल भरत-रण ।।
होलराय-हरिराम-देव कवि कुल चूडामणि ।
अष्टछाप के कृष्णदास, मणिधर सुन्दर फणि ।।
नीलकंठ - रसलीन - गुमानमिश्र वे बेनी ।
भाषा भरत मिलाप मंच की, युगल नसेनी ।।

राजा लक्ष्मणसिंह, सितारे - हिंद निराले ।
व्यास अंबिकादत्त, सदल सुखसागर वाले ।।
श्रद्धाराम फिलौरी, लल्लूलाल सुपंडित ।
बालकृष्ण भट्ट-श्रीधर पाठक वे प्रमुदित चित ।।
मानस टीकाकार मिश्र ज्वालाप्रसाद ये ।
राम-श्याम निष्पक्ष समालोचना लास्य ये ।।
पंडित माधव शुक्ल, प्रेमघन सरिस प्रेमघन ।
वे लाला भगवानदीन, ये मिश्रबंधुजन ।।
गुरु कामताप्रसाद, सलौना यह रत्नाकर ।
राधाचरण गुसाईं, वे प्रसाद जयशंकर ।।
वे ठाकुर गोपालशरण-हरिऔध - निराला ।
प्रेमचन्द - वृन्दावनलाल - सुभद्रा बाला ।।
महावीर द्विवेदी - शंकर शर्मा - अजमेरी ।
रामनरेश त्रिपाठी - माखनलाल - गुलेरी ।।
चतुरसेन आचार्य - रामधारीसिंह दिनकर ।
बालकृष्ण शर्मा नवीन शिव-डमरू के स्वर ।।
साथ अनुज सिय-रामशरण, सियराम-चरणचित ।
दो 'उत्तर-साकेत' जिन्होंने संज्ञा प्रमुदित ।।
खडी-खड़ी बोली को, तुलसी फिर से फेरे ।
खड़े मैथिलीशरण देख ! वे दद्दा तेरे ।।"
"दो पल रुकना अंब" बिना ही पाये उत्तर ।
चीर भीड अज्ञात-ज्ञात, जा गिरा पदों पर ।।
चकित मुदित हो उठे, कंठ से उठा लगाया ।
"अरे पुत्र ! तू यहाँ, कहाँ से कैसे आया ।।"
"दद्दा ! तव आशीष, कृपा रघुनाथ नाथ की ।
मानस के संस्कार, छत्र माँ बनी माथ की ।।
कलि का कलुषित जीव, घिरा जंजाल जाल से ।
लाई मिटा कु-अंक, प्रसवनी स्वयं भाल से ।।
कितने संचित - कर्म, न किये कुकर्म कौन से ।
जाने अंबा-राम, कि किये सुकर्म कौन से ।।

लगता दद्दा! कभी-कभी मैं स्वप्न लख रहा।
करतल पर मंदार, भेद ब्रह्मांड फल रहा।।
दिल्ली मीनाबाग, आपके शुभ-निवास पर।
सकुचाता सा गया, आप बोले हर्षाकर।।
मैं अर्पित हो गया, आपने ग्रहण कर लिया।
'कहो-सुनाओ' बोल, स्नेह से भुजा भर लिया।।
बोले गद्-गद् कंठ आप, अनिमेष अचानक।
"यह 'उत्तर-साकेत' ग्रन्थ का मधुर-कथानक।।
सुन्दर-सुन्दर पुत्र!, पुत्र! लिख, सुन्दर-सुन्दर।"
वही आपके सिद्ध-शब्द आधार रूप धर।।
खडे हो गये सुदृढ़-सुघड आधार-स्तम्भ बन।
उठता भावों भरा भवन उन पर मन-भावन।।
शब्द-ब्रह्म श्री राम, महामाया-सिय रचना।
करते कलित किलोल, जहाँ रिसता रस झरना।।
धार-धार को धार, धा रहीं कितनी धारा।
नवरस नव-रस सरस, स्वरस सा सु-रस पसारा।।
पसरे ऋषि-मन भ्रमर, पसारे हिय-मुख पीते।
यह माया से अभय अमर धरती पर जीते।।
उस रस की, इस एक बूंद से हुआ बावला।
लिये बिरवना खड़ा, बनी मां कृपा-थाँवला।।
रामानुग्रह भरी चली पुरवा अलबेली।
भाव-भावना मोर-मोरनी कर अठखेली।।
उतरे पंख पसार, प्रगति पाई गति मंथर।
कल के रीते मेघ, शाप देकर मृदंग पर।।
लगे जगाने गीत, नाचने लगे मुदित मन।
गगन-सदन के सजन, परसने लगे धरा-तन।।
छिटक चला कार्पण्य, लगा औदार्य छहरने।
धूरि-धूसरित चूनर, हरितिमा लगी हरने।।
श्रवण-क्षितिज तक खिंचा चाप-सतरंगा मंडल।
अभिमंत्रित शर-निकर सरिस सरसे बादल-दल।।

गया धरा वांझत्व, ससत्त्वा हुई प्रहर्षित।
लगी खिलाने छंद-प्रसंग-भुवन भू-मति नित।।

दोहा

यह उत्तर-साकेत जग, हृदय-बुद्धि उपहार।
'राम-कथा' गृह नाम पर, परिजन प्रीत्याधार।।
लो दद्दा! निज अंक में, स्वयं सुधार-सँवार।
करिये स्वाशिष स्वकुल-यश, धरती पर साकार।।"

रोला

"समझा-समझा पुत्र! सुखद तेरी विनम्रता।
राम-कृपा के बिना, न ऐसी सुलभ सरलता।।
मेरी शुभ - कामना, निरंतर साथ तुम्हारे।
चलो चलें उस ठौर, जहाँ प्रिय पूज्य हमारे।।"
धर कंधे पर हाथ, थपकियां देते गद-गद।
ले दद्दा चल पड़े, पूंछते नयन, बढ़ा पद।।
कर वाणी को नमन, सुवाणी सुन मुस्काते।
नत-दृग उत्तर, नमित-नयन प्रत्युत्तर पाते।।
बढ़े, मंच अति - भव्य पड़ा सम्मुख दिखलाई।
दद्दा बोले, आँख अंबिका की भर आई।।
"ये रसखान-रहीम मध्य में मुदित गुंसाई।
ज्यों श्रद्धा - विश्वास भक्ति-तटिनी लहराई।।
कालिन्दी-भारती-जान्हवी करतीं संगम।
हिन्दु-बंग-मरु मिलन, कुमारी - क्षेत्र विहंगम।।
गुणत्रयी होती प्रतीत ये गुणातीत सी।
पावस-शरद्-वसंत त्रिवेणी, सगुण प्रीत सी।।
साधक-साधन मध्य साधना - सिद्ध, राव से।
वंदन-अर्चन मध्य समर्पण महाभाव से।।

यह अक्षय-वट कल्पवृक्ष के मध्य सृष्टि-वन ।
यह छंदालंकार सहित प्रगटित रामायण ।।

विनय-नीति-उत्साह, समस्या जय कर, गाजे ।
भक्त-भक्ति-भगवंत धार आकार विराजे ।।
ललित नाम-गुण मध्य, अलौकिक रूप सुहावन ।
ले कपीश-लंकेश स्वयं रघुपति जन-पावन ।।
करुण-शांत-शृंगार, वचन-मन-कर्म सम्मिलित ।
बना छत्र नभ, पीठि अतल, आसन भू विस्तृत ।।
मूर्तिमान कवित्य विराजा राजेश्वर छवि ।
इनकी उपमा यही, किसे उपमान कहे कवि ।।
उठे दूर से देख, मंच से कूदे सत्वर ।
गिरे धरा पर, गूंज उठे, 'जय जननी' के स्वर ।।
उठा हृदय से लगा, न्हिलाये लोचन-धारा ।
देख-जीव निज चरण, स्वानुगत हृदय विचारा ।।

लगा कंठ से पुनः-पुनः आपाद निहारा ।
क्या जाने क्या जान, भरे जी पुनः दुलारा ।।

बोले "सीताराम सार, सुत ! निगमागम का ।
भव्य भास्वरित दीप, भवा-भव-हृदय-सदन का ।।

यह अमोल-अनमोल नाम, भजता-भजता जा ।
नभ-चुंबी विघ्नाद्रि समाते तल, लखता जा ।।
श्यामल-अरुणिम मृदुल युगल पद-कंज मनोहर ।
सुन्दर, सेवक सुलभ, सुखद, जग-दुरित दमन कर ।।
उनका धरता ध्यान, विपल-पल पग-पग पथ पर ।
बढ़ना जा प्रिय ! जगत हँसाता, हँसता मन भर ।।
ऋद्धि-सिद्ध सी मुखर बनेगी, मौन शिलायें ।
सीय-व्यथा दी बना जिन्होने पुण्य-कथायें ।।
चित्रकूट के छत्र, सु-आसन केवट मन-के ।
ऋष्यमूक के तिलक, चँवर-वर दंडक-वन के ।।
सेतु-राज के जनक, त्रिकूटाचल के शुभ वर ।
स्वप्न लंक के, किष्किधा के सगुण गुणाकर ।।

भरत-भाल की मुकुट, पादुका पावन जिनकी ।
ज्योतित ग्रकलुष कुलिश-सुरेख गिद्ध हृद-हृद की ॥
आलोकित त्रैलोक्य, नखद्युति जिनकी करती ।
शव-जीवों में सहज, ज्ञान - संजीवनि भरती ॥
दुर्बल - दीन - अनाथ 'रामबोला' भरमाया ।
चार-चने पा भीख, मुदित, फल परिकर पाया ॥

दोहा

गगन - छदन ओहार-दिशि, पथ-पथ पदरज-सद्म ।
पाया अमराट्टालिका, जानकीश - पद - पद्म ॥

रोला

उन चरणों का स्मरण, सदा मुद-मंगलकारी ।
करते दुर्लभ सुलभ, शैल रज, रिपु हितकारी ॥
स्वार्पित की न कदापि सह्य रघुपति को दूरी ।
अशरण - शरण - कृपालु, बाल-हठ करते पूरी ॥
सकल-असंभव, सहज-सुसंभव, प्रिय! भव-प्रिय से ।
कार्य कराते अगम, सुगमता से, निष्क्रिय से ॥
जा सुत! हो तव सुपथ अकंटक, शुभ मंगल मय ।
करे वरण नित कीर्ति-विभूति-नीति-संस्कृति-जय ॥"
झुका शीश, आशीश ग्रहण कर चारों-जन की ।
चले, भरा मन, द्रवित कोर लख नयन-नयन की ॥
तज नैहर प्रिय-सदन गमन रत वधु-बाला सी ।
सजल नयन, मन चाव, मौन सस्मिता उदासी ॥
चित्तवृत्ति हो गई, सुकोमल सुदृढ़ भाव मय ।
मिलन-विरह, संकोच-मोह सम्मिलन समुच्चय ॥
रस में रस मिल गये, भाव में भाव समाये ।
किसका कितना कहाँ अंश, क्या सिन्धु बताये ॥

देखा भावावेश भव्य, माँ ने थामा कर ।
"दो पग का बस सेतु और वे सम्मुख रघुवर ।।
चल सचेत हो पुत्र ! देख वे कौन आ रहे ।
कैसा अद्भुत वेष, देख ! क्या गीत गा रहे ।।"
देखा, गौर - शरीर, चीर अटपटे लपेटे ।
हल्दी-कुंकुम - क्षार-मलय - सिंदूर समेटे ।।
एक नयन रतनार, एक अँखिया कजरारी ।
एक पलक अधमुँदी, एक में भरी खुमारी ।।
किन्तु युगल-दृग सरस-विशद-कारुण्य छलकता ।
एक श्रवण ताटंक, एक में बाला फबता ।।
माला अस्तव्यस्त एक दिशि, सुघड़ एक-दिशि ।
बँधीं एक दिशि लटें, एक दिशि जटा अर्धरिसि ।।
एक मत्त-शुंडाल-तुंड-सी भुज लहराती ।
ललित मालती माल एक, बल खा-खा जाती ।।
एक चरण की धमक, सकुच सी धरती जाती ।
एक चरण को ललक, स्पर्श करते सकुचाती ।।
मधुर हास में अट्टहास होता परिवर्तित ।
लगती वाणी कहीं सुपरिचित कहीं अपरिचित ।।
शाबर-सूत्र समान शब्द जो पहला लगता ।
सुन्दर व्याख्या सरिस, वही अगले क्षण बनता ।।

दोहा

मौन नमन कर कह सका, जीव न लघु मुख खोल ।
लोचन एक तरेर कर, उठे प्रथम वे बोल ।।

रोला

"क्यों रे तेरे इष्ट कल्कि - भगवान सदा से ।
फिर ये सीताराम, दिखाई पड़े कहाँ से ।।
लोकेषणा ने किया अरे ! तव चित व्यामोहित ।
रचता राम-चरित्र, जानकर कल्कि अ-प्रचलित ।।

जो न इष्ट का सगा, सगा फिर होगा किसका ।
कनक-रत्नमय कलश, न होता सदा अमृत का ।।

जिसका अंतर कुटिल, करेगा क्या किसका हित ।
लगा न पाया इष्ट-देव में ही जो निज-चित ।।"

जड़वत् हो सकपका गया, क्या कहूं, न सूझा ।
देखी माँ दृग मूंद, दृगों ने ज्यों उठ बूझा ।।

कहा न कुछ, ये कौन, प्रश्न किस भाँति कर रहे ।
कारण विरहित घोर-रोष क्यों व्यर्थ भर रहे ।।

कैसा अद्‌भुत भेद, कल्कि-हरि-राम-कृष्ण प्रति ।
प्रभुरत - सुमति -सुपथ-पौर यह कैसी दुर्मति ।।

साहस सकल समेट, स्वयं सहमा-सा बोला ।
"सिद्धि-पर्व पंचांग, देवता ! कैसा खोला ।।
हरि के नाम अनंत-अभेद, भेद किस क्षण से ।
युग-युग से यह सुना सदा हरिजन सु-वदन से ।।

करें देवता ! क्षमा, बहक यदि जिह्वा जाये ।
इस पथ, इस वय पाप, जीव यदि स्वल्प छिपाये ।।
मेरे गुरुवर पूज्य पाद लक्ष्मीनारायण ।
परमहंस जातिस्मर तन-मन एक आचरण ।।
मातृ - भूमि पर देख विदेशी - वृन्द कु-शासन ।
बाल-वृद्ध ग्रामीण-नागरिक महिला-युवजन ।।
निजमति, निजगति, शक्ति और सामर्थ्य सोचकर ।
कूद पड़े स्वातंत्र्य समर में अति उमंग भर ।।
ज्यों प्रभात की सुखद समीरण के चलते ही ।
भरती दिशि-दिशि गंध, प्रसून-निकर हिलते ही ।।
त्यों ही अगणित क्षेत्र-क्षेत्र के चले भरत-जन ।
कुछ सत्याग्रह मार्ग, किये कुछ आयुध धारण ।।
मम गुरुवर को क्रान्ति-कारियों का पथ भाया ।
भरी दुपहरी बड़े-लाट पर गोला आया ।।
बचा भाग्यवश लाट, किन्तु वे मेरे गुरुवर ।
कारागृह में दिये डाल शृंखला पिन्हाकर ।।

अंग्रेजों की असह यातना सहते - सहते ।
कुछ नास्तिक बन गये निराशा-उदधि उछलते ।।
दिखते हैं सुस्पष्ट, परमुखापेक्षी अब भी ।
किन्तु अग्नि-तप हुए सिद्ध कुंदन कुछ तब भी ।।
वे माँ सिय-वसुदेव-देवकी गति के ज्ञाता ।
रहे व्यथा में व्यथाहारि हरि से रख नाता ।।

दोहा

भारत मां के शत्रु का, भीषण कारागार ।
बना सुखद वैकुंठ-सा, सुनकर करुण - पुकार ।।

रोला

हरि व्यापक सर्वत्र, प्रगट होते निज कारण ।
करे मृषा शिव-वचन, जना किस जननी ने जन ।।
निज गुरु बालमुकुंद देव मारुति-स्वरूप से ।
पाया कल्की-नाम, जपा मन-बुद्धि-चित्त से ।।
की कर रुदन पुकार, नाथ ! क्या सत्य नहीं तुम ।
हो यदि तुम, तो यहाँ नहीं हो, कहाँ, कहीं तुम ।।
क्या केवल प्रहलाद हेतु ही खंबा फटता ।
क्या केवल ध्रुव हेतु आपका आसन हिलता ।।
सीता ही के हेतु, सधु पर पुल बन सकता ।
अर्जुन का ही यान, आपसे बस चल सकता ।।
क्या तव छाती ढाल, विभीषण ही की केवल ।
थकी कि भुजा विशाल एकगिरि धर करकरतल ।।
क्या शिव-मीरा हेतु मात्र, विष रस हो सकता ।
क्या निज पातक एक अजामिल ही धो सकता ।।
किसका शकुन विचार 'हरे' गजराज पुकारा ।
द्रुपदसुता ने 'कृष्ण' किसे कर दिखा उचारा ।।
किसको दिखा मुहूर्त, गिरे चेटी के अंडे ।
धूं-धूं फूंकी लंक, बांध कपि किसके गंडे ।।

व्यासादिक की या कि सकल ये कथा कल्पना ।
जन्म-मृत्यु सब मात्र, प्रकृति की ही संरचना ।।
जीव-जगत यह दृश्य, पंचतत्व की वृष्टि का ।
कोई स्वामी नहीं, सत्य क्या, सत्य सृष्टि का ।।
क्या यह भारत-भूमि बनी, दासी बनने को ।
करा-करा अपमान सदा लुटने-पिटने को ।।
वेद-शास्त्र ये हरम - हमामों में जलने को ।
खंडित होने हेतु देव, मंदिर ढ़हने को ।।
तीर्थ, मुक्ति हित नहीं, मनोरंजन के साधन ।
यज्ञ-श्राद्ध-जप-पाठ अज्ञता के विज्ञापन ।।
जो चाहे वह बने, हमारा शासक आकर ।
जायें कुछ दे शीश, जिय कुछ शीश झुकाकर ।।
गुप्तवास कुछ करें, घास की खाकर रोटी ।
दीवारों में दबें, खिचाकर बोटी-बोटी ।।
जौहर - ज्वाला हेतु बनी सुन्दरता पावन ।
कोल्हू पिरने हेतु बना स्वातन्त्र्य-सुभट तन ।।
पशुविधान-अपमान कलंक -पंक मय सारा ।
दो हजार बी. सी. का बस इतिहास हमारा ।।
धर्म-कर्म, यह राष्ट्र-भक्ति केवल कोरा भ्रम ।
पाप-पुण्य, परलोक-लोक, तम में कटुतम तम ।।
क्या सच है, क्या झूठ, आप यदि हो तो बोलो ।
दिखो न यदि प्रत्यक्ष, स्वप्न में तो मुख खोलो ।।"
हुए निशा के दिवस, दिवस-निशि मासों बीते ।
बने श्रवण पाषाण, रुदन करते दृग रीते ।।
एक दिवस की निशा, पधारा वह सुन्दर क्षण ।
उठा जगमगा काल-कोठरी का प्रति कण-कण ।।

एक साथ हो गये उदित, ज्यों शत रविमंडल ।
दिखी ज्योति-शतपत्र, ज्योति शुभ-शीतल-श्यामल ।।
शनैः-शनैः आ पास, हाथ मस्तक पर रखकर ।
बोली साशा गिरा शोक-संदेह-मोह हर ।।
"देख पुत्र ! मैं खड़ा उसी विधि तन कर धारण ।
ज्यों कहतीं भागवत - महाभारत - रामायण ।।
जो तव मन में आज, प्रथम ही आई मम मन ।
खड़े युद्ध पर युद्ध विश्व में करने नर्तन ।।
टिक न सकेगा भरत-भूमि पर वैरी-परिकर ।
सहित सहायक निकर, सिमटने को त्यों तत्पर ।।
लिखा धूलि पर लेख, धूलि ज्यों बनता अविकल ।
जग मानेगा आज न तो कल, रह प्रिय-अविचल ।।
होगें कारागार सकल ये सिद्ध तपोवन ।
सहन-शक्ति साधना, क्रूर प्रतिबंध-सुसाधन ।।
किसी दृष्टि से न्यून नहीं बंदी, तापस से ।
होती केवल हानि, ग्लानि-मय निज मानस से ।।
पीड़ित की 'हा' किसी प्रार्थना से क्या कम है ।
पर्व-वल्लरी-मूल, अमावस्या का तम है ।।
बढ़ता दंभान्याय दिनोंदिन ज्यों दनु-दलका ।
होता त्यों-त्यों पुष्ट वपुष, मम महारोष का ।।
निर्वासन ही, नवल निवासों का निर्माता ।
यह सनाथ है सृष्टि, सभी का एक विधाता ।।
खल बलि पशु से खड़े चर रहे, पाकर पूजन ।
पुत्र ! निरखना अभी इन्हीं का पावक नर्तन ।।
छिपता आज न सूर्य-राज्य में जिसके, कहते ।
वे देखेगें सकल सूर्य कल, पल-पल छिपते ।।

विधि-विधान विपरीत, नरक जब बनती धरती ।
परिवर्तन संकल्प लिये तव शक्ति उतरती ।।
जंघ - प्रदर्शन पाप, काटता जंघा-भंजन ।
बंदिनियों की स्वांस-प्रभंजन लंक-प्रकंपन ।।
शाश्वत् संस्कृति-धर्म - सत्यसाहित्य-सुशिक्षा ।
आत्मघात कर रहे, हलाहल की ले भिक्षा ।।
महाकालिका रुदन प्रसव-पीड़ा से करती ।
महाकाल के सदन महाचेतना प्रकटती ।।
सदा बीज तरु बने, आज तरु बीज बनेगा ।
युग परिवर्तन हेतु, प्रथम यह क्रम बदलेगा ।।
प्रथम, प्रथम प्राक्ट्य, हुई लीला तदनन्तर ।
पहले लीला आज और पीछे लीलाधर ।।
ब्रह्मा-विष्णु-महेश, रहा क्रम यही सृष्टि का ।
अब 'संहार-सुधार - जन्म' क्रम दुष्ट-दृष्टिका ।।
बना तथागत भिक्षु, जगत को दया न आयी ।
शांति-अहिंसा - भ्रातृभाव की हँसी उड़ायी ।।
अब मैं काल कराल कल्कि, कलि-काल भयंकर ।
ले परमाणु-कटार, चढ़ा विज्ञान-अश्व पर ।।
लेने जय थ शीश, सूर्य ज्यों छिपकर प्रकटा ।
लहराता यूनियन-जैक, त्यों लखना, लिपटा ।।

दोहा

कते हाथ के सूत का, बुना हाथ त्रयरंग ।
मध्य सुदर्शन - चक्र मम, षोडश कला अभंग ।।
लालकिले के शिखर पर, काश्मीरी - द्विजराज ।
फहरायेगा देखना, प्रबल सिंह सा गाज ।।"

रोला

हुई ज्योति-ध्वनि अस्त, तुरत ही खुले विलोचन ।
परम ज्योति मय दिखा, वंदिगृह का प्रति कण-कण ।।

ग्राज विश्व - इतिहास सकल गाता यह गाथा ।
उठा ग्रलौकिक - शक्ति - शक्ति से भारत-माथा ।।

वे मेरे गुरु देव, जिन्होंने निगमागम - पुर ।
कल्कि - भवन निर्माण किया, मम हित मेरे उर ।।

बहुखंडा, बहु - वक्ष युक्त वातायन-आंगन ।
सब विधि सब ऋतु सुखद-सुलभ-सुर दुर्लभ साधन ।।
राजकुंवर सा अभय, खेलता जिसमें फिरता ।
कभी विचरता अजिर, कभी शशि-शाला चढ़ता ।।
दूर-दूर तक डगर - डगर प्रिय-पुर की लखता ।
भरता अचरज कभी, कभी स्वयमेव विहँसता ।।
एक दिवस श्री कल्कि-भवन के वातायन का ।
पा झोंका प्रभु-कृपा-दृष्टि की ललित पवन का ।।
लहरा ग्रांचल तनिक, भक्ति के पीत वसन का ।
देखा तुलसी कुंज, केलि - गृह रमा - रमण का ।।
भरी राग-संकोच देख निज शिशु की चित-गति ।
बोल पड़े गुरुदेव कृपाकर स्वयं महामति ।।
'सुत ! निश्चित् यह दृश्य, शंभु-ग्रज-सुर-मुनि भावन ।
पद्मापति प्रभु कल्कि रूप यह परम सु-पावन ।।
भवित मधुर - गोलोक, न कारागृह - एकाकी ।
कल्की प्रभु की देख, विमल रघुनंदन - झांकी ।।
शुभाशीश, ग्रादेश प्राप्त कर, निज गुरुवर के ।
ग्राया दर्शन हेतु, गीत गाने रघुवर के ।।
लाईं कृपया मातु, सभी ने मुदित दुलारा ।
एक न्यूनता शेष बची थी, जिससे हारा ।।
नाथ ! भवानी नाथ ! उमा के कपट बटुक-वर ।
पृथा - पुत्र के परम - कौतुकी प्रभु, किरात हर ।।

नहीं दिखे थे आशुतोष शंकर करुणाकर ।
आज धन्य मैं महादेव के दर्शन पाकर ।।"
दिशा झनझना उठीं, शैलजा उठीं खिलखिला ।
कमल-दृगों में उठी करुणिमा द्रवित झिलमिला ।।
गिरा पदों पर जीव, उठाकर शिशु दुलराया ।
गद्-गद् वाणी पुनः-पुनः ले कंठ लगाया ।।
दिखी अलौकिक विमल अर्धनारीश्वर की छवि ।
शरद्-गगन में मधुर मिलन, ज्यों करते शशि-रवि ।।

महाशौर्य - माधुर्य - कांति - ऐश्वर्य एक रस ।
ब्रह्म-प्रकृति संवर्त-सृष्टि रति-विरति कीर्ति-यश ।।
भक्ति-ज्ञान क्षिति-क्षितिज केन्द्र विस्तार असीमित ।
हर - गौरी निर्द्वन्द्व द्वन्द से अन्योन्याश्रित ।।
कटि डाले कर एक, फिराते एक शीश पर ।
बोले परम प्रसन्न हुए अतिशय मुस्काकर ।।
"हम आये थे नहीं परीक्षा तव प्रिय! लेने ।
भेद-वाद को तव निमित्त शुभ शिक्षा देने ।।
अस्वाभाविक नहीं, पुत्र! संकोच तुम्हारा ।
शंकित-चित तव हेतु, उमा ने आज निहारा ।।
मैं उतरा यह जान कि गिरिजा, गिरि पर ठहरीं ।
अब देखा अर्धांग, पुत्र - हित प्रमुदित उभरीं ।।
धर्म - स्नेह कर्तव्य और अधिकार जानतीं ।
पति-सुत की मर्याद प्रकाराकार जानतीं ।।
रहीं भवानी भवन पूर्ण, अर्धांग विराजीं ।
कहाँ परीक्षा यहाँ, सदेह सफलता गाजी ।।
जिस पर मां की कृपा, विघ्न भी उसके साधन ।
करती जीव सजीव, स्वजीवन से दे जीवन ।।
जिसकी ममता, सकल विषमतायें हर लेती ।
वह माँ ही, जो दुःख सहन कर सुख ही देती ।।
अंकुर करते हरित, स्वयं पड़ जाती पीली ।
लाल लालिमा हेतु, बिछौनी सोती गीली ।।

भरा अभावों गर्भवास, निज महा-भाव से ।
करती सुखद सु-वास, सरस मन, चाव-चाव से ।।
सकल देह में अस्थि कठोर, कुलिश सी फैलीं ।
परम मृदुल यह उदर, यहीं प्राणों की थैलीं ।।
हिय वितान के तले, सुकोमल बिछा बिछौने ।
जाग-जाग दश - मास, सुलाती सजल सलौने ।।
बाल जागरण पूर्व, हृदय घट धवल क्षीर भर ।
अस्थि-चर्म मय लोक-प्रसवनी होती तत्पर ।।
फिर यह ममतामयी, स्वयं जगदंबा ठहरी ।
क्या प्रिय-प्रिय-प्रिय हेतु दुराती ? ममता गगरी ।।"
शंकर कहते रहे, उधर बह चले दृगंचल ।
गया क्षीर में भीग, दिव्य रक्ताम्बर-अंचल ।।
वत्सलता वश हुईं युगल मातृका विह्वला ।
शंभु - विलोचन उठी चमचमा चपला सजला ।।

दोहा

सहसा ही मन मंजरीं, विहँसीं हृदय निकुंज ।
कूंकी रसना कोकिला, देख माधवी - पुंज ।।

हरिगीतिका

"जय आशुतोष ! कृपालु शंकर ! राग-ऋतु मृत्युंजयी ।
गिरिराजनंदिनि ! अंबिके ! रघुनाथ - रति-गाथा लयी ।।
भावेश - भव्य - भवेश - भैरव - भूतनाथ - सुहावने ।
सज, तव वचन तन-त्राण तन-मन, सुजन जग-रण भट बने ।।
हरि-भक्ति के आचार्य वर ! प्रभु पार्वतीश्वर ! जयति-जय ।
दानी-शिरोमणि सरल-उर विभु चंद्रशेखर ! जयति जय ।।
कंदर्प-दर्प-विदहन कर ! संशय शमन ! हर ! जयति-जय ।
भस्मांग-राग ! भुजंग-भूषण ! त्रिपथगा धर ! जयति-जय ।।

कर्पूर - क्षीर - सुहीर - हिम - रूपा स्वरूपा धवलिमा ।
त्रय नयन - आंगन खेलती, श्वेता - अरुणिमा - करुणिमा ।।

त्रय - ताप-हारि ! त्रिशूलधारि ! सुगंगवारि जटाटवी ।
लटकीं लटें, कटि अटपटीं ज्यों बाट भटकीं भैरवीं ।।

गज - ऋक्ष - मृग - मृगराज पट-पट्टी, दुपट्टी तन लसी ।
ज्यों सृष्टि लख कर प्रलय, आकर प्रलयकर-आकर बसी ।।

मुख, शर्वरीश - सुपर्व - छवि, करदर्प - माला कंठ में ।
शैवाल से समृणाल नलिनी लिपट, लिपटी शंख में ।।

तव शुभ्रता सा हरि-हृदय, हरि-हृदय सी तव शुभ्रता ।
तव कंठ सी हरि-नीलिमा, तव कंठ, हरि नीलम लता ।।

श्री राम के साकेत तुम, तव, राम तुहिन-निकेत इव ।
शिव राम के, या राम शिव के, राम शिव से राम - शिव ।।

'रामेश्वरम्' का अर्थ, केवल आप या वे जानते ।
'रामेश्वरम्' का अर्थ हम, 'रामेश्वरम्' ही मानते ।।

श्री राम के स्वामी - सखा - सेवक - सचिव - सर्वस्व तुम ।
तुम सिद्धि, राघव सिद्ध, राघव सिद्धि, या शिव सिद्ध तुम ।।

दो नाम तव, दो रूप तव, पर दो कहाँ, तुम एक ही ।
कोई कहे अविवेक मम, यह पर परम, सुविवेक ही ।।

जननी - जनक मेरे शिवा-शिव, शिशु बना द्विज दीजिये ।
हे गुरुर्गुरु ! यह कल्कि-कुल का बाल अपना लीजिये ।।

श्री राम सम्बन्धी सरस, तव दिव्य - दंपति के कथन ।
सज्जन-हृदय-रंजन करे, मम लेखनी के बन वचन ।।

खोटा-खरा कि बुरा-भला, कैलासपति ! हूं आपका ।
वरदान दो शिशु को वरद ! पाऊँ सहज, पथ राम का ।।"

दोहा

दृग हरषे, हुलसा हृदय, अधर घिरे मुस्कान ।
अलक हिलीं रोमांच-मय, हुए शंभु भगवान ।।

कंठ, प्रेम परिपूर्ण सर, करुणा, पंकज-पुंज ।
थाम चेतना-कर गिरा, निकली वदन निकुंज ।।
तन-मन सरस, सरस वसन, सरस वचन रस-झारि ।
राम-राम-प्रभु कर स्मरण, बोले प्रभु त्रिपुरारि ।।
"भरत भाव, शत्रुघ्न बल, लक्ष्मण व्रत-समवाय ।
सीय-स्नेह, राघव कृपा, हो हनुमान सहाय ।।
वेद-पुराण-सुशास्त्र पथ, गुरु-सिद्धांत प्रकाश ।
संत-वचन-स्यंदन विचर, ममाशीष सोल्लास ।।"

हुए मोहिनी डालकर, शंकर अंतर्धान ।
नवलाशा ले चित्त में, किया पुनः प्रस्थान ।।

सामीप्य द्वार

रोला

"सेतु-राज का द्वार, पुत्र ! सामीप्य-द्वार ये ।
ऋद्धि-सिद्धियें खड़ीं, लिये कर, दिव्य-हार ये ।।

हमें उतरता देख, लगीं वे सत्वर चढ़ने ।
अभिनंदन - अभिनमन, परस्पर लगे लहरने ।।

बाजे बजने लगे, सुमन-घन लगे बरसने ।
उगे पगों में पंख, लगे सोपान सिमटने ।।

दृश्य उभरने लगे, अकल्पित कल्पनाओं के ।
पसरे लोक अनेक, विषय बन अल्पनाओं के ।।

ऋतु-ऋतु की बहु जाति-जात-सुमनावलि विकसित ।
राग-रागिनी भरी, भ्रमर-माला से विलसित ।।

चलती मंद समीर, वाद्य-ध्वनि सी आल्हादित ।
नत-रत शाखा सुपद, दलावलि नूपुर झंकृत ।।

विपुल-कमल-दल, विमल-सलिल से भरे सरोवर ।
रंग-भूमि में बिछे, सुचित्रित ज्यों पाटम्बर ।।

केलि-सलों सी मीन-जालिका वीचि मचलतीं ।
पुलिनों पर मृग-मिथुन-मालिका पुलकित चरतीं ।।

कामधेनु बहु, कल्प-लताओं के आंगन में ।
करतीं वत्स सुतृप्त, अदिति सी नंदन-वन में ॥
पिक - शुक - शिखि-सारिका-चकोरक-चातक-खंजन ।
चकवा-चटक - चिरैया रव, करता सम्मोहन ॥
लगता, प्रमुदित प्रकृति - भगवती करती नर्तन ।
चेतन का चेतना, अचेतन करती अर्चन ॥
होकर भाव - विभोर, परम रस भरी भावना ।
अति सकाम, निष्काम - हृदय कर रही वंदना ॥
दिव्य मालती - कुंज मध्य तुलसी - उपवन के ।
शोभित मध्य सुमेरु, युगल - दिशि माला-मनके ॥
वल्लरियों के द्वार - वितान - निचुल - वातायन ।
वंदनवार-पताक - छत्र - चामर - सिंहासन ॥
कुवलय-किसलय बिछे, बिछा ज्यों मंजु-बिछावन ।
स्वर्ण - शुभ्र केतकीस्तबक, उपधान - सुहावन ॥
सोन-जुही पद-पीठ, चित्रकारी केशर की ।
वेदी, बकुल - कदंब - कुंद - कुब्जक चंपक की ॥

दोहा

श्री वैदेही वाम - दिशि, वीरासन श्रीराम ।
ज्यों रति-प्रमद प्रदीप्ति-शम, शंकर - अंतर - धाम ॥
परम निकट बैठे भरत, सम्मुख पवनकुमार ।
पाया सेवा - त्याग ज्यों, अजर - अमर आधार ॥
चुनते वे सौमित्रिगण सुमन, राम - दिशि देख ।
केन्द्राकर्षित वक्र, शुभ, ज्यों सुवृत्त परिरेख ॥
लेते बीड़ा सीय से, प्रमुदित राम, निहार ।
यही समय, सुत ! कर नमन, जाकर कुंजद्वार ॥"

रोला

बलि-पशु जैसे खुला, खुले युग-के बंधन ।
गिरा द्वार पर दौड़ दंड-वत्, करने वंदन ।।
"नाथ ! नाथ ! रघुनाथ ! जानकीनाथ ! जयति-जय ।
इस अनाथ के साथ, हाथ निज रख, हरिये भय ।।"
पा प्रभु का संकेत, पवनसुत अति हर्षाकर ।
चले, ले चले जीव पड़ा निर्जीव उठाकर ।।
ला प्रभु-सम्मुख रखा, स्वयं कर-कमल फिराकर ।
लगे देखने मोद सहित, सिय-गोद बिठाकर ।।
माँ ने भी त्यों लगा, हृदय से अभय बनाया ।
ज्यों सु-काक शिशु, घूक-भीत, रवि-करुणा पाया ।।
लगी लौटने शनैः-शनैः ज्यों बाह्य - चेतना ।
भरत - लषण - रिपुदमनलाल की, की सु-वंदना ।।
पवन-तनय प्रति पुनः झुकाया मस्तक, सादर ।
दी सब ने आशीश, सुखद - संकेत मधुर - स्वर ।।
खोज - दृष्टि से इधर - उधर दृग देख घूमते ।
बोले रघुपति "देख, पुत्र ! यह रही" झूमते ।।
देखी शीतल-चांद्रि, कोटि रवि-राशि, अमित छवि ।
हँसे राम "तव यही आदि-लेखनी अरे ! कवि ।।

दोहा

ले, कर, कर क्रीड़ा मुदित, प्रिय ! साहित्याराम ।
सम्मुख लक्ष्य अलक्ष्य लख, बन छवि - गंध सुधाम ।।
अब बोलूंगा तव गिरा, देखे जग तव दृष्टि ।
कृपा-दृष्टि अपनी पुनः, प्रकटूँगा तव - सृष्टि ।।

मन को मन, हिय को हृदय, दे स्वचित्त ममचित्त ।
मुझे निरख, मुझको विरच, पा नित तृप्ति - अतृप्त ॥"

कथा-प्रवेश

सोरठा

"प्रियवर भरत ! निहार, ललित प्रतीची लालिमा ।
चले सांध्य-शृंगार, सु-सफल करने दिवसपति ॥

रोला

मुँदता अधमुँद-कमल, कुमुद-कुल अधमुँद विकसित ।
वाण-प्रस्थ वय युगल-पीढि ज्यों, विधि-विधि विगलित ॥
प्रजातंत्र में समझ, विपक्षी-दल का जन-बल ।
सत्ता सौंप, सु-पक्ष बैठता ज्यों नत-निश्छल ॥
तारा-दल का जान आगमन गगन-सदन में ।
लगे बैठने कमल विरक्ति भरे त्यों मन में ॥
गृहपति से व्यापार-विरत हो, विहग लौटते ।
शिशु-सम नीड़-अलिंद, पतत्री-डिंभ झूमते ॥
पितर-चंचु-कर भरी, विविध-सामग्री लख कर ।
करते वटु-जग मधुर, केलि-कर, सरक-चिहुक कर ॥
स्वर्णिम शिविका देख ! सूर्यवदनी की पीलीं ।
चकवी नैहर चलीं, रँगीली-अँखियाँ गीलीं ॥

सदन द्वार सर पार, मार कर मन, चकवा वर ।
रवि-गुरु लख, गृह कुंज लौटता, मौन ग्राह भर ।।
सायं-संध्या हेतु उपक्रम मुनि-जन करते ।
ज्यों चैती-भंडार चतुर व्यवहर्ता भरते ।।
जगा रहीं अंगार-धानिका पाक गृहणियां ।
ज्यों जय-दशमी मना, चलीं विजिगीषु पृतनियां ।।
कुल-गुरु किरण समेट रहे त्यों शनैः-शनैः कर ।
ज्यों संयासोद्योग सहज करता, कुलीन नर ।।

दोहा

स्वतः चंद्रिका ले रही, रवि-गभस्तिका स्थान ।
अप्रयास ज्यों सास-पद, पाती सु-वधु स-मान ।।

रोला

निकल रहे वृक-व्याघ्र, तमस लख तज-तज कंदर ।
भ्रष्टारक्षी-क्षेत्र, टोह ज्यों लेते तस्कर ।।
नृप-दुर्बलता जान, साहु ज्यों शीघ्र लौटते ।
त्यों मृग गगन विलोक, चले निज कुंज दौड़ते ।।
कमल-कोष में मत्त-भ्रमर त्यों बंद हो रहे ।
ज्यों व्यामोहित-वृद्ध, संपदा-अंध हो रहे ।।
दौड-दौड़ कर शशक, खोजते तृण त्यों फिरते ।
ज्यों व्यसनी नर, अमित समस्या-चिंता घिरते ।।
ममता की प्रतिमूर्ति सुरभियाँ घोष रँभातीं ।
वत्स-माल, लख ग्वाल दोहनी धोते, धातीं ।।
सीते ! हुआ विलंब, अंब पथ लखती होंगी ।
हुआ राम स्वच्छंद, हृदय में कहती होंगी ।।"

समझ स्वामि-संकेत, उठीं सिय पट सम्हाल कर ।
निकले सभी निकुंज-द्वार से क्रमशः बाहर ॥
सांध्य-क्रिया कर सकल, हुए सत्वर ही तत्पर ।
यान सजा कर सजे, सकल सेवक-गण उठकर ॥

दिव्य-भव्य आकार, स्तम्भ बहु तप्त स्वर्ण के ।
अगणित अश्रुत रत्न-अलंकृत वर्ण-वर्ण के ॥

मेरु-शिखर सा शिखर, वितान गगन-गंगा सा ।
बिछा बिछावन चारु, चैत्ररथ बहुरंगा सा ॥

स्वर्णिम - गैरिक - पीत विमल - ज्वाला-बाला सा ।
सूर्यांकित ध्वजराज, नवल रवि-कर-माला सा ॥

रत्न - दंड कज - रज्जु - बद्ध कोमल पाटम्बर ।
सार्वभौम रघुवंश - कीर्ति-वधु का प्रियतम वर ॥
पवन-प्रवाह अनंत - गगन में लहर - लहर कर ।
वंदन करता, वंश-देव का फहर - फहर कर ॥
स्यन्दन - हृदय - प्रदेश, वेदिका अद्भुत सुंदर ।
रवि ही उतरे भूमि, पृष्ठ रवि-छवि त्यों मनहर ॥

चँवर चतुर्दिक, शुभ्र लहरते, छत्र छहरता ।
बार-बार बहुरंग छटा, मणि - परिकर करता ॥
आसन्दी, पदपीठ, विपुल उपधान सुकोमल ।
मधुर-घंटिका, विविध-रागिनी - रंजित कल-कल ॥
जगती - बृहती - पंक्ति - अनुष्टुप - त्रिष्टुप-उष्णिक ।
गायत्री, सप्ताश्व जुते गति - मान अलौकिक ॥
मानों निर्गुण अचल हिरण्य - गर्भ स्यन्दन में ।
भरने आये छंद, सृष्टि अभिनव त्रिभुवन में ॥

क्षौम-सुशुभ्र अयाल, पवन करता अठखेलीं ।
अंग-अंग पर थपीं, ललित मैथिली - हथेलीं ॥
मणि-मय कंठे कंठ, जानु पद मुखर - पैंजनीं ।
कसा रत्न-मय साज, नवीन दुकूल बैंजनीं ॥

कर्णफूल, मथपाट, मानसर - हंस - कलंगीं ।
सुभग - सुडौल शरीर, लहरतीं पुच्छ तिरंगीं ।।
बार - बार हिनहिना, पुतलियां घुमा - घुमा कर ।
मुदित देखते, राम विराजें, चलें उड़ाकर ।।
आये श्री रघुवीर, दिखाया सिय ने दर्पण ।
शस्त्र चढ़ाकर चढ़े यान में प्रथम शत्रुहन ।।
सूक्ष्म-निरीक्षण सकल-व्यवस्था का पल में कर ।
खड़े हुए कर-वद्ध, समझ संकेत नृपति-वर ।।
हाथ बढ़ाया सीय-दिशा, पट उठा जानकी ।
चढ़ीं थाम भुज, शनैः-शनैः प्रिय-प्राणधाम की ।।
उठीं कँगनियां खनक, पैजनीं उठीं झंझना ।
झूम उठे ताटंक, करधनी उठी छंछना ।।
अवधेश्वर को चढ़ा, चढ़े सौमित्रि-भरत फिर ।
हुए पवनसुत उछल सारथी - सुस्थल सुस्थिर ।।
मुस्काकर सिय-राम विराजे, आ वेदी पर ।
पृष्ट-देश केकयी-कुँवर वर चँवर धार कर ।।
खड़े हुए ले व्यजन, शक्ररिपु-मान - विभंजन ।
सुखद शंख - उद्‌घोष कर उठे शत्रुनिषूदन ।।
अश्व हिनहिना उठे, उठीं घनघना घंटियां ।
सुमन बरसने लगे, भरीं जय-ध्वनि दिग्वलियां ।।
घटिका भर में लगा, सूर्य - गृह-कलश चमकने ।
लगे कँगूरे, कोट नगर - परकोट प्रकटने ।।
निखर उठीं प्राचीर - परिधि, परिखा लहराई ।
क्षितिज - सरित से पुरी - नागरी उभरी, न्हाई ।।
"जन्म, भूमि जय देवि ! अयोध्ये ! प्रसवनि ! रानी ।"
गूंजी प्रभु के साथ, सभी की प्रमुदित - वाणी ।।
वजा शंख, फिर बिछा, यंत्र-चालित-पुल पल में ।
नरसिंहे - भेरियां - तुरहियां जागीं नभ में ।।

बजे घंट - घडियाल - मृदंग - झाँझ - शहनाई ।
स्वागत करने स्वयं अयोध्या ज्यों चल आई ।।
बढ़ा सेतु से यान, पार कर परिखा विस्तृत ।
लगे दागने द्वार पाल - गण गोले, हर्षित ।।

दोहा

प्रमुख - पौर से नगर में, हुए प्रविष्ट महीप ।
डगर - डगर में जग उठे, प्रतिमा - दंड - प्रदीप ।।

रोला

शिल्पि-पल्लि-दल बसे, साल से सट यों सुस्थिर ।
ज्यों साधन-सम्पन्न, विश्वकर्मा के मंदिर ।।
कुंभकार - व्योकार - कहार - ठठेरे - बारी ।
गोप - भाट - नट - वास्तुकार-तेली-मनिहारी ।।
छीपी - माली - छिपी - कोइरी - कुरमी - कोरी ।
अंतवसायी - सूत - वर्धकी - धुनक - अघोरी ।।
चर्मकार - धरकार - रजक - जावाल - व्याध दल ।
क्षेत्र - भूमि के पास बसे, कृषि - जीवी मंडल ।।
करने भूपति-नमन लगे, सब निकल - निकल कर ।
मुदित - नयन प्रतिनमन चले करते नृपाल-वर ।।
चला विकासोद्योग - क्षेत्र मुनि - आश्रम उपवन ।
भैषज्यास्पद - घोष सुघोष, लांघता स्यन्दन ।।
भरी मंडियाँ अन्न - तैल - घृत - ईंधन - दालें ।
थोक खाद्य फल - फूल - शाक - मेवादि - मसाले ।।
भारक - वाहक - पयद - पिंजरों में खग सुपठित ।
कहीं खड़े ले कोल, छाल-मृगमद विक्रय हित ।।
देश-देश के वणिक, वस्तुयें बहु ले-दे कर ।
आते - जाते व्योम - सरित - तल खेवे खेकर ।।

ठेले - बहँगी - शकट - उष्ट्र - गवली-खर - खच्चर ।
लादी विपुल उतार, जा रहे बहु लद-लद कर ।।
भारवाह - वैतनिक - श्रमिक - रोकड़िये - बौरे ।
कारिन्दे - आढ़ती कार्य-रत चौरे - चौरे ।।

नृपति-आगमन जान, हुए - छिड़काव सकल-पथ ।
बढ़ीं उमंगे उमग, चला ज्यों-ज्यों बढ़ता रथ ।।
गूंजे पथ - पल्लिका - वीथिका - सरणी-कूंचे ।
चला हाट से यान, उठे जन मुदित समूचे ।।

जन-पथ हुआ प्रविष्ट, प्रशस्त युगल-पथ विस्तृत ।
सजे अमित शिफ, मध्य मर्मरी - पटरी शोभित ।।
स्वर्णिम सूर्य - सुदंड, दीपिकात्रयी विभासित ।
हय-गय-शिविका - यान समुच्चय पथ परिपूरित ।।

उच्च कोण - पट्टिकां, अभय पादात विचरते ।
सजीं हाट हटरीव, विपुल क्रय - विक्रय चलते ।।
अंगराग - आलता - महावर - म्हेंदी - उबटन ।
कंकतिका - वेणियां - मौलियां - चुटिका - दर्पण ।।

ईंगुर - सेंदुर - रंग - वारिभव - कुंकुम - चंदन ।
अबरक - बिंदिया - मंजु विबंधन - पूत प्रसाधन ।।
लगा वजाजा एक ओर, पट टँगे फैल कर ।
देश - देश के रंग - बिरंगे दुर्लभ अंबर ।।

आसन्दी - मसहरीं - सुमुकुरित - दीप दंडिकां ।
यंत्र - नियंत्रित धातु - काष्ठ निर्मित संपुटिकां ।।
छत्र-चतुष्का - प्रोण्ठ - वितान - व्यजन वैतानिक ।
वहु आकार - प्रकार, सदन, सामग्री स्वर्गिक ।।

सद्य - विनिर्मित कहीं सजे मिष्ठान्न स्वाद मय ।
उष्ण - शीत - कुरकुरे - मृदुल - चरचरे-दीप्त चय ।।
संधित - पानक - पाग - चाणिका - चक्षण - पर्पट ।
दूध - दही - नवनीत - तक्र - मावा - पनीर घट ।।

कहीं सरस फल, कहीं फलों के रस, तरकारी।
कहीं गिलौरी सजीं रुपहली - कनक किनारी॥
घन - कुबेर से, स्वर्ण-वणिक उपधान लगाये।
विक्रय करते तुला, सुवर्ण - सु-पत्र तपाये॥
कहीं काटते रजत, बरस कर घनन - घनन घन।
लेते - देते श्रेष्ठि, नौलियां करतीं छन - छन॥
कहीं परखते रत्न, पारखी मुकुर लगाकर।
अलंकार - निर्माण कहीं हो रहा निरन्तर॥
मीनाकारी कहीं जड़ाव - उजाल निखरते।
सरल - पत्र पर, विषम - प्राकृतिक दृश्य उभरते॥

सोरठा

निज गौरव साकार, कलाराधना - रत श्रमित,।
स्वर्णकार शृंगार, भारत - मां का कर रहे,॥

रोला

कर्णफूल - हथफूल - फूल मस्तक के फूले।
कंठी - हार - हमेल - पहुँचिये - कड़े - कड़ूले॥
किंकणियाँ - मुद्रिका - चरण चौंकियाँ - सुनूपुर।
बिछुवे - कुंजीस्तबक - गुँथे घुंघरू, स्वर सुमधुर॥
कहीं अटा तक अटे सुपात्र ताम्र - पीतल के।
कहीं वाद्य, शस्त्रास्त्र, विचित्र - चित्र बहु मँढ़के॥
कहीं खिलौने चपल - मुखर बहु जाति - जाति के।
हाट-हाट में लगे ठाट बहु भांति - भांति के॥
सकल वस्तुयें सुलभ, राजधानी राघव की।
अश्रुत - अलख-असीम, सीम त्रिभुवन - वैभव की॥
सरल पंक्ति की पंक्ति, एक सीं पण्य निम्न - तल।
नभ- चुम्बी आवास, विपुल - तल ऊपर केवल॥

पण्य - वीथि की ओर खुले, वलभी - चौबारे ।
जाल-रन्ध्र अति रुचिर, आयताकार किनारे ।।
श्री - पड़ाव से पटे, पटाव शुंड पर प्यारे ।
सुदृढ़ शिलामय स्तम्भ, मनोहर दृश्य सँवारे ।।
चढ़ी छतों तक हरित - फलित - पुष्पित वल्लरियां ।
उतर घटा से अटा मिलीं, ज्यों शाकम्भरियां ।।
ऐसे चित्र सजीव प्राकृतिक, भित्ति - भित्ति पर ।
सृष्टा हुआ अदृश्य स्वयं, लख ज्यों सकुचाकर ।।
सुनकर रथ - निर्घोष, वाद्य - वृंदों के सुस्वर ।
सजीं सकल शृंगार, त्याग गृह-काज, चाव भर ।।
लगीं झाँकने कुल-वधु, वातायन - वातायन ।
मानो उमड़ी पुरी - प्रिया, लख प्रिय - शुभागमन ।।
दर्श-लालसा लिये, झुकीं ललनायें सादर ।
भूल गये आभरण, विभा - वैभव पसराकर ।।
बिंदिया लाल सुभाल, सजा सिंदूर सुहावन ।
बंदी - बेसर - कर्णफूल - शिरफूल शुभानन ।।
गुंफित नवल प्रसून, झलकती वेणी आंचल ।
सजे एक से एक सटे, श्यामाओं के दल ।।
लगा, मांगलिक - पर्व, अलपना - रंजित आंगन ।
पंक्ति-बद्ध ज्यों सजे, कनक-घट अमित सुहावन ।।
रत्न - दक्षिणा युत पचरंगी मौल्यावेष्ठित ।
पंच - सुपल्लव मध्य, हरित - श्री फल संशोभित ।।
सुने, न देखे किंतु पद्म से पद्म प्रकटते ।
अवध - वीथि पर दिखे, अमित आश्चर्य हुलसते ।।

सोरठा

एक-एक कज पीत, सालि - श्याम-शतदल युगल ।
अरुण पद्म सुस्फीत, कज - केशर कलिका सुतनु ।।

रोला

नृपति सवारी भव्य, देखतीं नारी प्रमुदित ।
हृदय हर्ष, मन चाव, लगे यों नेत्र प्रफुल्लित ।।
ज्यों रवि-गमन विलोक, सरस सरसिज सकुचाये ।
रविकुल - -रवि पथ देख, पुनः द्विगुणित मुस्काये ।।

नभ रजनी, रवि भूमि, कमल-घन अंतराल में ।
दिखा न लघु उपमान-तंतु विधि-रचित जाल में ।।
कनक - रत्न - मय राम - यान यों हुआ पुष्प - मय ।
सावन - फागुन - जेठ - कुँआर मिले कर निश्चय ।।
बढ़ता पग - पग ठहर - ठहर कर रथ पथ - पथ से ।
मुड़ा राजपथ-दिशा, हृदय ज्यों मिला सुचित से ।।

लगे चतुष्पथ - त्रिपथ, अमित उद्यान फुहारे ।
रंग - बिरंगे रत्न - मंच बहु न्यारे - न्यारे ।।
कनक - दंड मणि - दीप, विभायें हँसतीं मुखरित ।
ज्यों प्रिय - प्रति साकार रमा हो रही समर्पित ।।
अभिनंदन - अभिनमन, राम जन - जन का लेते ।
दान - मान - सम्मान - अभयता - मुदिता देते ।।
उतरे राजद्वार निकट हनुमान, यान से ।
जहां खड़े भट-सुभट - सचिव गण विधि विधान से ।।
पौर - जानपद - श्रेष्ठि - विविध चर - उच्चारक्षक ।
शिल्प - कला - उद्योग - विभागादिक संचालक ।।
यथा - योग्य नृप मिले सभी से चलते - चलते ।
राज - प्रजा का कुशल - क्षेम, संकेत समझते ।।

पहुंचे राजद्वार, अनुग - गण लगे ठिठकने ।
कुछ बढ़ आये तुरत, सहज कुछ लगे छिटकने ।।
विज्ञ - प्रखर - विश्वासपात्र कुछ प्रेष साथ ले ।
बढ़े राम रघुराज, भरत का हाथ-हाथ ले ।।

पहुँचे मार छलांग, फँलागीं कई सीढ़ियाँ ।
जहाँ खड़ी थीं, लिये आरती - थाल जननियाँ ।।
राम-वाम सिय-लखन, भरत-सूदन दक्षिण - कर ।
पृष्ट अंजनी लाल खड़े अति प्रमुदित सादर ।।
सब की सरिस सु-भाव, सरस - आरती उतारी ।
गूंजा जय-निर्घोष, सुरस सरि ज्यों हुंकारी ।।
मांओं ने नृप - रीति निभा कर, खील बिखेरीं ।
स्वयं चटा मधुपर्क, श्वेत अंचलियाँ फेरीं ।।
दशरथ-महिषीं खड़ीं हुईं, आंचल पसार कर ।
रखा भाल से मुकुट स्वयं नृप ने उतार कर ।।
विह्वलता - वार्धक्य लगीं जननियां कांपने ।
देख भरत - संकेत जानकी, बढ़ीं थामने ।।
गिरे पदों पर बंधु, हृदय से लगा दुलारे ।
मिले धेनुकुल - वत्स, दिवस का जुआ उतारे ।।
फिरीं प्रथम केकई, थाम कर सिया-राम कर ।
मुड़ीं सुमित्रा भरत - प्रभंजनतनय बांह भर ।।
ले लक्ष्मण - शत्रुघ्न, चलीं पीछे हरि- जननी ।
ज्यों तरती सह भक्ति, मुक्ति त्रिगुणी - वैतरणी ।।
पा मां का निर्देश, चले निज भवन बंधुजन ।
वधुयें पीछे लगीं, ललित परछांई सी वन ।।
पहुँच भवन, शस्त्रास्त्र उतार, खोल कटि-पटका ।
बैठे मुदित पलंग, प्रलंब भुजायें झटका ।।
बैठ प्रियायें पास, लगीं प्रिय-तन सहलाने ।
खोल विभूषण मंजु, सुमंचक लगीं सजाने ।।
लगीं बोलने मधुर-मधुर हँस-हँस सकुचा कर ।
जो न गिरा कह सकीं, नयन कह गये बुझाकर ।।
करते विविध - विनोद नहाकर, सजे - सजाये ।
उत्तरीय ले चले, चलीं आंचल सरकाये ।।

इतने में प्रभु - गिरा मंजु, आंगन में खनकी ।
"अरे प्रियो ! आह्वान कर रही गंध, अमृत की ।।"

पहुँचे भरत तुरंत, युगल - सौमित्रि सकुचते ।
लपकीं वधुयें नमित, विनोदी राम विहँसते ।।
अनुचर - गण से ठहर - ठहर कुल - कुशल पूंछते ।
सुनते, करते स्मरण, पुनः हँस, कंध थपकते ।।
पहुँचे पाकागार, प्रथम लख आंजनेय को ।
बोले "सूंघा, कीश-प्रवर ! कुछ खाद्य - पेय को ।।
मां ! लंका में इन्हीं देवता के प्रसाद से ।
भर पाये हम उदर, निरापद सदाल्हाद से ।।
दशकंधर ने वृक्ष - सरों में गरल डालकर ।
सोचा था, रण बिना सौंप दूं सभी काल - कर ।।
ताड़ गई कौटिल्य, कीश की घ्राण - शक्ति पर ।
पार हुए हम कालकूट के कूट विपिन - चर ।।
खुला एक दिन भेद, देख आधे - आधे फल ।
लक्ष्मण बोले "आर्य ! कौन-सा यह कपि-कौशल ।।"
लख साहस - संकोच - सुसेवा इनकी अद्भुत ।
भोज - यज्ञ के गणप, सुनिश्चित किये मरुतसुत ।।
इन्हें अग्र कर, किया कार्य जो, हुए सफल हम ।
क्या कर पाते तुमुल, तुम्हारे अज्ञ, युगल हम ।।
ले लेती बलि सत्य, कालिका अहिरावण की ।
बिन संजीवनि स्वप्न - सुछवि बनती लक्ष्मण की ।।
रहे रणस्थल अभय, इन्हीं के शौर्य - कोट त्यों ।
पीते प्रमुदित स्तन्य, तवांचल की सुओट ज्यों ।।
ये दो थल ही मिले, जगत में निश्चल - निश्छल ।
जब भी दे विधि जन्म, मिलें ये दोनों संबल ।।
प्रकट किया यह कीश, अंजनी - मां ने मम हित ।
सिद्ध करूँ किस भांति, किंतु यह निश्चित, निश्चित ।।

जग में यह पुतलीव श्याम, मां! राम तुम्हारा ।
आया, बनने मात्र कीश - लोचन - बंजारा ॥
ये इनके पट - पलक, न केवल झप - झप करते ।
महाशौर्य - माधुर्य प्राण दे, जीवित रखते ॥
जीव जीव का, प्राण प्राण का, परम - दुलारा ।
पूर्व - जन्म का पुण्य, पांचवां बंधु हमारा ॥

दोहा

धर्म - पुत्र तव अंबिके, संकोची हनुमान ।
अशन - वसन - मज्जन - शयन, रखना निशि-दिन ध्यान ॥

सोरठा

नहीं मात्र रामैव, भरत - लखन - सिय - जग सकल ।
जिसके ऋणी सदैव, श्रेष्ठि - श्रेष्ठ मारुति वही ॥"

दोहा

बोले कपि गद्-गद् गिरा, प्रभु - पद, पंकज थाम ।
"यही चरण रघुनाथ! तव, सकल भुवन जय - धाम ॥
यायावर अति भीत - चित, धन-पुर - प्रिया विहीन ।
ऐसे लघु सुग्रीव का, अति लघु चाकर दीन ॥
वही कीश मैं, जो मिला, ऋष्यमूक द्विज - वेष ।
शेष बुद्धि - बल - चातुरी, तव प्रसाद अवधेश ॥"
कपि की देख विनम्रता, निश्छल निर्मल भाव ।
परिजन - अहं - अजात ही, हुआ विदग्ध अ - घाव ॥

रोला

पाक - विशारद - सूत, अमित पकवान लगाकर ।
देते, देतीं तुरत - तुरत वधु थाल सजा कर ॥

लेतीं माता, देख-देख चौकी पर धरतीं ।
कहतीं धीरे पुनः, मुदित वधु ला-ला रखतीं ।।
हुईं अंब सन्तुष्ट, व्यवस्था उचित देखकर ।
बोलीं "भोजन करो प्रेम से, सकल बंधुवर ।।
रिपुसूदन से जान, अतिथि-जन भोजन-आसन ।
"करें प्रियो ! स्वीकार, अन्न-प्रभु का आमंत्रण ।।"
सकल, मधुर-कटु-तिक्त-अम्ल-काषाय-लवण मय ।
लेने लगे पदार्थ, जोड़-कर कहते 'जय-जय' ।।
बाल-व्यजन ले, लगीं जननियां प्रमुदित झलने ।
खनकातीं मंजीर-वलय, वधु लगीं परसने ।।
'हां-हां' 'हूं-हूं' मध्य, सरस रुष-हास भरे मुख ।
करते विविध विलंब, बंधु पाते भोजन-सुख ।।
निज थाली से मध्य-मध्य में उठा-उठा कर ।
रखते ज ते थाल-थाल हँस-हंसकर रघुवर ।।
नटते, मान प्रसाद, प्रथम ही किन्तु उठाते ।
शीश हिला रघुनाथ ठहाके पुनः लगाते ।।
लखकर रुचिर विनोद, अंब प्रमुदित मुस्कातीं ।
साग्रह बारम्बार, लड़ातीं-लाड़ खिलातीं ।।
डाल थाल जल पिया, रखा फिर तुरत शीश पर ।
हँसे सकल खिलखिला, कीश-कौतुक विलोक कर ।।
उठे झुका कर शीश अन्नमय प्रभु को सादर ।
चले उपरने लिये भृत्य झारियां उठाकर ।।
पहुँचे मंत्रागार, चबाते पान सुगंधित ।
मंत्री-मंडल सकल प्रथम था जहां उपस्थित ।।
प्रहर-रात्रि तक राज-काज का सूक्ष्म विवेचन ।
कर, अवधेश्वर उठे, सभा का हुआ विसर्जन ।।
विदा किये हनुमान, चले कपि कर अभिवादन ।
माताओं के पास गये प्रभु लिये बंधुजन ।।

खड़ीं हुईं वधु उतर पलँग से, चरण दबातीं ।
बैठीं उठकर अंब, स्नेह - संकुल मुस्कातीं ।।
बैठे राघव - बंधु, नमनकर पैतानों पर ।
बैठीं वधुजन भूमि, पीठ कुछ तिरछी सी कर ।।
झुकीं, कनक - झारियां झुकाकर ले शीतल-जल ।
लगीं पिलाने अंब, पूंछतीं मुख निज आंचल ।।
चरण चांपते बंधु, लगे पुर - क्रिया सुनाने ।
अंतःपुर - पुर प्रतिक्रिया, मां लगीं बताने ।।
"आये प्रसवनि ! भिषक कहो अब कैसी पीड़ा ।"
बोली केकयसुता "काल करता है क्रीड़ा ।।"
यह पीड़ा, यह अंग - अंग शैथिल्य पनपता ।
सुदृढ़ कर रहा प्राण - मृत्यु की प्रबल - रसिकता ।।
क्या औषधि लूं, कटा - चिरा अब सूखा ईंधन ।
चिता चढ़ाना, किसी दिवस चारों रघुनन्दन ।।"
"नहीं- नहीं माँ ! बात अभी मत ऐसी करना ।
अभी झुलाना तुम्हें मैथिली - माँ का पलना ।।
सकुचाये पर तुरत, भरत-दिशि लख रिपुसूदन ।
मँझली बोली "दिया टोक ले पहले ही क्षण ।।
लगता भरत निहार, हुआ विधि वृद्ध बिचारा ।
श्वशुर बनाते बना गया, प्रिय पुत्र हमारा ।।"
"नहीं सुमित्रा ! नहीं, भरत को मत कह ऐसा ।
अक्षय-वट क्षय झेल, रहा वैसे का वैसा ।।
महिमाच्युत हो आदि-विधान न, यही सोच कर ।
खड़ा रहा गया पत्र - पुष्प - फल अंतर में भर ।।
प्रभु ने देखे भरत झुके, झुकते लक्ष्मण को ।
कैकेई के सरस टीसते, रिसते व्रण को ।।
वैदेही की विपद्-वन्हि को दीपक बनते ।
त्रय-वधु अंतर - भाव, हृदय - मस्तिष्क उलझते ।।

सूर्य - किरण सी प्रखर प्रकट सी, अटी घटा में ।
राज - मातृ अनुरूप कौशिला, विमल छटा में ।।
देखा सबने किंतु, राम को स्वाभाविक चित ।
दृग घन, सावन मन मयूर से नाचे हर्षित ।।
मां बोली "निशि अर्ध बीतने चली लाडली ।
नयनावलि रत्नार सुतों की हुई सांवली ।।
राजकाज से थकित, करें विश्राम कुँवर - गण ।
उचित - उचित कह, उठीं शेष जननी भी तत्क्षण ।।
देख राम - निर्देश, उठे सब, कर - कर वंदन ।
चले राम - रिपुदमन, केकई के आश्रय वन ।।
भरत - लखन ले चले, इसी विधि मँझली मां को ।
पदस्पर्श कर चलीं भगिनियें लिये सिया को ।।
पहुँचा माँ को वास, सहज प्रभु - आयसु लेकर ।
गये बंधु - जन, कनक - भवन आये श्री रघुवर ।।
मुदित प्रकृति की, मुदित प्रकृति सी हुईं जानकी ।
की अगवानी प्रथम - दिवस सम कृपाधाम की ।।
उत्तरीय ले, चरण धुला, आचमन कराया ।
आंचल से पद पूंछ, स्वयं तांबूल खिलाया ।।
रत्न - दंड उल्लोच, चंद्रिका स्मर - शर - परिकर ।
मृदुल - बिछावन, बिछी धूप सी धवली चादर ।।
सजे सुगंधित पुष्पहार - ओहार मनोहर ।
रघुपति - शयनागार, छिपा नंदन - वन आकर ।।
दशरथराजकिशोर राम की शैया सुन्दर ।
लगा, नवल सिय खड़ी, सुहागिन अवगुंठन कर ।।
बैठायीं अति निकट, थाम कर प्रिया मंजु - कर ।
बैठीं अति संकुचित, सिमट आनंद अमित भर ।।
क्षीर-सिंधु ज्यों रमा, शौरि के चरण दबातीं ।
त्यों ले प्रभु - पद - अंक हुईं प्रमुदित सुख पातीं ।।

इतने में यों लगा, द्वार पर परछांई सी ।
हिलती - डुलती, तनिक सिमटती, सकुचाई सी ।।
उठे तुरत प्रभु लपक, पलक में पट सरकाया ।
रहे ठगे से खड़े, खड़ी जननी को पाया ।।

"क्यों मां ! कैसे, कहो, विराजो, आओ-आओ ।
कहो-कहो, क्यों किया कष्ट, क्या बात, बताओ ।।",
"नहीं-नहीं कुछ नहीं, चली मैं यों ही आई ।"
"यों ही तो मां ! नहीं, समस्या ही कुछ लाई ।।"
वैदेही ले चलीं सास की बांह थाम कर ।
बैठे भू सिय - राम, बिठा मां को आसन पर ।।
बार - बार प्रभु लगे पूंछने आग्रह करते ।
"ना-ना" करते अधर, नयन पर "हाँ-हाँ" कहते ।।
प्रभु बोले "तव स्वास्थ्य-राज - पुर - घर की बातें ।
लौटे करके अभी, सभी सुन स्वयं सुनाते ।।
कुछ रहस्य है माँ ! अवश्य, जो आप छिपातीं ।
राम न विश्वसनीय, इसी से नहीं बतातीं ।।"
"नहीं-नहीं रे राम ! बात कुछ हो बतलाऊँ ।"
प्रभु ने दी निज शपथ, कहा "क्या कहूँ, छिपाऊँ ।।
अच्छा पूँछू राम ! किंतु सच - सच बतलाना ।
उलझी गुत्थी एक, चाहती हूँ सुलझाना ।।
विश्वामित्र - वसिष्ठ - निशाचर - वानर - लक्ष्मण ।
सब जग कहता, वधा राम ने रण में रावण ।।

दोहा

अविश्वास कैसे करूँ, पर न हृदय विश्वास ।
क्या रावण मारा गया, तेरे समर - विलास ।।"

रोला

हाथ फिराती पुनः-पुनः प्रभु के कोमल तन ।
बोली माँ कौशिला, परम संकोच भरे मन ॥
"तुममें अंतर-बाह्य न दिखती कहीं निठुरता ।
किंतु कठिन वे कर्म हुए किस भाँति, जटिलता ॥
समझेगा निज हृदय बावली मां, वृद्धापन ।
किंतु न पाया पचा स्व शंका परम हठी मन ॥
वधे ताड़का – सुभुज सहित बहु सुभट निशाचर ।
फेंका सागर - पार, क्रूर मारीच अफर - शर ॥
रावण - बाण कराल नृपति दल उठा न पाया ।
क्षण में वह शिव - चाप, क्षोणि - तृण-क्षीण बनाया ॥
क्षात्र-सृष्टि - संवर्त विश्व-विख्यात परशुधर ।
चले गये तप हेतु विपिन निज चाप सौंप कर ॥
मिथिलेश्वर ने देख मनोहर - छवि, कन्या दी ।
बनी युगों से शिला, अहिल्या सहज उठा दी ॥
सोचा तब तो यही, सिद्ध - मुनि कार्य सँवारे ।
यश ले आये' लूट लाडले लाल हमारे ॥
किन्तु सुना जिस दिवस, वधा रण में दशकंधर ।
जागी शंका पुनः पुरातन, नवल-कलेवर ॥
देखा मैंने स्वयं, राम ! उस दशकंधर को ।
होते उसके साथ, अवध पथ - पथ संगर को ॥
कज्जल-शैल विशाल वज्र-तन, भुजा शुंड सीं ।
धूम्रकेतु से केश, आँख प्रलयाग्नि कुंड सीं ॥
हँसी, हँसी क्या, घोर प्रलय - घन-मंडल-गर्जन ।
सैन्य, सप्त पाथोधि समुच्चय अंतक - नर्तन ॥
उतर-उतर कर देव-यूथ, यद्यपि रण करते ।
पर वे दिखे सदैव दशानन से लघु पड़ते ॥

कर नभ - वाणी श्रवण, कठिन - वर ले ब्रह्मासे ।
हुआ निशाचर दूर क्रूर कर कर्म, यहां से ।।
वर्षों उसकी खड़ग - हस्त परछाईं सी पर ।
देखा करते भीत, अवय - वय पुर नारी - नर ।।
अवध - देश में करुण, स्वजन - हीनाओं के स्वर ।
करने देते थे न असन दिव, शयन निशा भर ।।
करता भी तो कौन ? कौन - सा था ऐसा घर ।
जूझा उस संग्राम, न जिसका एक - एक नर ।।
फिर वे परिघाघात, अनल के प्रबल ववंडर ।
जिनकी अव तक छाप छपी कुल- देव- शिखर पर ।।
रावण का अभियान, काल - भैरव का गर्जन ।
रावण का अभियान, चंड - चंडी का नर्तन ।।
रावण का अभियान, सतत रोदन का अर्जन ।
रावण का अभियान, प्रलय का प्रत्यावर्तन ।।
उस रावण से किया, राम ने समर सामने ।
इसी राम ने किया, किया या किसी राम ने ।।
निश्चित् तूने राम ! नहीं, रण नहीं किया है ।
किया शंभु ने स्वयं तुझे तो नाम दिया है ।।
सत्य - सत्य कह, वत्स ! कभी तू रण कर सकता ।
तुझसे वह खल घोर, भीरु रे ! क्या मर सकता ।।
वता - वता सिय ! सत्य, अरी ! मैं झूठ बोलती ।"
हँसे राम, पर रहीं मैथिली हँसी रोकती ।।
"आज वता दे सत्य, पराक्रम किसका प्रियवर ।
परिजन - प्रियजन सहित, मरा वह कैसे निशिचर ।।
राम ! सत्य कह, उचित अंव से नहीं छिपाना ।
तेरी तुझसे बात, मुझे क्यों, किसे वताना ।।

दोहा

मां - पत्नी दो ! ही जगत, स्नेह - सनाह समान ।
ऊषर - अन्तर रोपतीं, बिरवों सी मुस्कान ।।

रोला

अन्य तीसरा यहां, अपत्य ! कौन है बतला ।
फिर क्यों प्रिय-सुकुमार ! नृपाल ! मौन है, बतला ।।"
हँसे नमित मुख राम, तनिक तिरछे निरखी सिय ।
मलीं हाथ से आंख, पुनः रुक-रुक कर प्रिय - प्रिय ।।
बोले दशभालारि "अंब ! मुझको भी शंका ।
पूंछ न पाया, पहुंच गयीं तुम कैसे लंका ।।"
"मैं लंका कब गयी" "सुनो तो तनिक, निमिष भर ।
हम मृगया को गये, ले गया तव वधु निशिचर ।।
सुधि लाये हनुमान, सजा कपि - सैन्य कपीश्वर ।
चढ़े कनकपुर शीघ्र सिंधु पर सेतु बांधकर ।।
मध्य भाग हम चले, बोलते 'हर - हर शंकर' ।
यद्यपि कपि ने सकल नगर को प्रथम जलाकर ।।
अंगद ने पद जमा, शत्रु - उत्साह लिया हर ।
उतरे फिर भी समर - भूमि में, घोर निशाचर ।।
कालनेमि - अतिकाय - अकंपन - कुमुख - महोदर ।
देवान्तक - कुलिशरद - अतलरावण प्रलयंकर ।।
मारे सब - नल-नील कीश - अंगद - कपि-पति ने ।
चीर किसी को दिया ऋक्षपति की द्युति - गति ने ।।
दधिमुख - द्विविद - मयंद - सुषेण-निसठ-सठ बांके ।
अद्भुत विक्रम दिखा, निशाचर यमपुर हांके ।।
करा वंश विध्वंस, दशानन रण में आया ।
आ कपि-जन ने तभी अंबिके ! मुझे उठाया ।।

लगा चलाने बाण, लगे कुछ प्रखर वक्ष पर ।
घोर क्रोध में भरा, दशानन चला गरज कर ।।
लेकर दश-दश चाप, चढ़ा कर ग्रमित-ग्रमित शर ।
ढका पुरन्दर-यान, दिवस की दी तमसा कर ।।
ऐसा तिमिर ग्रपार, न दिखता निज कर पसरा ।
घायल भुजग समान डोलता बिफरा - बिफरा ।।"
बोली जननी भीत "हुग्रा फिर क्या, हाँ बतला ।"
"वश में ग्राया नहीं किसी के, ऐसा मचला ।।
लक्ष्मण को मैं दिखा न, मुझ को दिखा न लक्ष्मण ।
यों रण सुने ग्रनेक, न ऐसा लखा महारण ।।
पीस तड़ित, बत्तीस त्वरित धाया दशकंधर ।
'जो तेरा प्रिय मनुज ! स्मरण कर ले शठ! पल भर ।।'
ज्यों उसने 'प्रिय' कहा, प्रियास्मृति तेरी ग्राई ।
तव ग्राशिष प्रत्येक, पड़ी प्रत्यक्ष सुनाई ।।
'जब तक रवि-शशि गगन, ग्रमर रह राम ! धरा पर ।
जब तक हिमगिरि-विन्ध्य, ग्रजर रह राम ! धरा पर ।।
जब तक होता रहे गंग-सागर का संगम ।
कल्प-कल्प जी राम ! प्रकृति जब तक जड़ जंगम ।।
फैला नाभि - सुघोष, नहीं रे ! मानव मरता ।
जीता तुझको जीत, जियेगा, खल ! क्या बकता ।।
तभी एक कर खड्ग, ग्रन्य में रीता खप्पर ।
भरे विलोचन, तरल ज्वाल-मलिका भयंकर ।।
ज्यों रणचंडी - वेष, सूर्यकुल - लक्ष्मी धाई ।
त्यों तू माता स्वयं समर में पड़ी दिखाई ।।"
माँ बोली "फिर" कहा राम "फिर तू ज्यों ग्राई ।
शव में शिव सी दीप्त-उमंगावलि लहराई ।।
कब निषंग से निकल धनुष पर चढ़, शर छूटे ।
कैसे किसके-लगे, दशो शिर कैसे टूटे ।।

रहा चढ़ाता अँधाधुंद मैं तो, शर पर शर ।
कौन चलाता रहा, न जाने सफर कि निष्फर ॥

स्वप्न कि जागृत दृश्य, अभी तक हृदय न निश्चय ।
सुना कीश-उद्घोष "राम-राघव की जय-जय ॥

रावण-हंता रामचंद्र की जय-जय-जय-जय ।
जय सीतापति ! किये देव - ऋषि-मुनि-जन निर्भय ॥"

देखा, सम्मुख खंड-खंड भू पर दशकंधर ।
दिखीं न तुम फिर, रहा देखता मैं बौरा कर ॥

मुझे बताओ, पहुँच गईं तुम लंका कैसे ।
किसे सुनाकर कहो, मिटाऊँ शंका कैसे ॥"

विह्वल स्वर सुत थपक, पुनः बोली "हट-पगले ।
ले मैं जाती लंक, बात नव सीते ! सुन ले ॥

कैसे बचकर निकल गया, क्या चतुर राम तू ।
मुझे बनाने चला, पूर्ण कर देव - काम तू ॥"

मुस्काईं मैथिली, चरण प्रभु लगे दबाने ।
मां बोली "कर शयन, निशा क्यों लगा गँवाने ॥

अति विह्वल माँ उठी, राम लौटे पहुँचाकर ।
"बात बनाना जगत, आप से सीखे रघुवर ॥"

"नहीं - नहीं वैदेहि ! भेद तू नहीं जानती ।"
"सत्य-सत्य तव पार्श्व, स्वयं को मूढ़ मानती ॥"

"करो प्रिये ! अब शयन" राम के मुँदे विलोचन ।
ठगी रह गईं सीय, देखतीं अपलक छविघन ॥

दोहा

खिंचे मंजु - पट मधुर स्वर, करते बारम्बार ।
हुए कमल में अलि अचल, मान निशा-मनुहार ॥

अरुण-श्याम सियपति - चरण, शोभित श्री-कर अंक ।
त्रिभुवन को त्रय-ताप से, सदा करें निश्शंक ।।
माँ लेखनि ! कल प्रात का, लिखने को संवाद ।
निशि प्रमुदित विश्रामकर, ले प्रभु - रति आल्हाद ।।
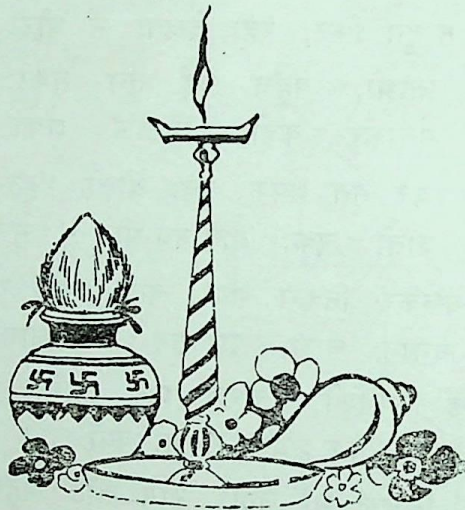
द्वितीय भुवन

वंदना

छप्पय

बजते नूपुर मधुर, मनोहर कंगन बोले ।
खिलते रत्न-प्रदीप, पसरते द्युति-घन बोले ।।
उठते गंध-पयोद, सु-वर्ण आवरण बोले ।
मुदिता-ममता मूर्ति देख ज्यों कण-कण बोले ।।
जागो रे जग-जीव-जन ! वेला हुई विहान की ।
सकल सिद्धियों की सदन, जागीं जननी जानकी ।।

ऊर्मिका

बज उठीं पैंजनियां मृदु मंजु,
कँगनियां करतीं लोल किलोल ।
राजरानी जागीं मैथिली,
राम - राजेश्वर की जय बोल ।।

तनिक आंचल सरका कर माथ,
छुए अछवाये से प्रिय - चरण ।
प्रभाती उठे गुन - गुना अधर,
किये मणि - अवगुंठन संवरण ।।

ललित उजियाली फैली भवन,
सँवारा निजकर पूजा - स्थान ।
क्रिया कर प्रात - काल की सकल,
लगीं करने वैदेही स्नान ।।

धारकर चारों चोर पुनीत,
प्रकाशित लिये आरती-थाल ।
सूर्य कुल - देवी का कर नमन,
चलीं भरकर सिंदूर सुभाल ।।

विलोके शैया पर प्राणेश,
निरखते मुदित, उठाकर माथ ।
आरती ली प्रभु ने उठ स्वयं,
देव - वंदन कर जोड़े हाथ ।।

प्रिया को प्रमुदित चित्त निहार,
किया धरती को पुनः प्रणाम ।
पादुकाओं पर रखते चरण,
धरा पर उतरे धीरे राम ।।

प्रिया ने ताम्र - पात्र कर दिया,
किया प्रिय उषा - पान स-विधान ।
हुए प्रभु निवृत्त, न्हिलाने लगे,
विविध उबटन मल, अनुग-सुजान ।।

सुगंधित अंगराग प्रत्यंग—
लगाकर, पहिन धौत - परिधान ।
सदन - मंदिर कर नित्यार्चना,
किया त्रय - बंधु सहित प्रस्थान ।।

झपकते पलक खुला नृप - यान,
तुरत जा पहुँचा सरयू - तीर ।
शुद्ध कर राज-घाट निज हाथ,
खड़े कर स्नान - ध्यान कपि वीर ।

सलिल में उतर, अचल से बैठ,
नहाये पुत्र - भाव रघुवीर ।
किये अर्पित बहु मधु - पय कलश,
सुमन - दीपावलि सजा सु-नीर ।।

करी संध्या तारों की छांह,
जपी गायत्री प्राणायाम ।
युगल - कौशेय तिलक तन धार,
लगे धर्मध्वज से श्री राम ।।

वेद - पाठी द्विज-दल का अमित—
दान से, कर विनम्र सम्मान ।
शिवार्चन कर नागेश्वर - धाम,
वशिष्ठाश्रम - दिशि किया प्रयाण ।।

फैलने लगा उषा - आरुण्य,
लगा खिलने पंकज - तारुण्य ।
भैरवी, भ्रमरावलि गा उठी,
कुमुदिनी चली भरी कारुण्य ।।

सुगंधित - शीतल - मंद समीर,
कर उठी तरुवर - राजि किलोल ।
चले नीड़ों से मुदित विहंग,
गुँजाते दश - दिशि मंजुल बोल ।।

हो गया विदा विपिन - आलस्य,
सुमन - मिष विहँसे नयन - निकुंज ।
त्वरा सी भरने लगे सु-केलि,
कुरंगम - शशक - प्लवंगम पुंज ।।

"अरुण-जल खिले कमल-कुल विपुल,
लहरते भावों भरे मृणाल ।
लखो तो सम्मुख, प्रियवर भरत !
धरा को सजा चूनरी लाल ।।

बांह फैला सादर - सस्नेह,
प्रकृति निज संतति रही निहार ।
पूरकर पूरे - पूरे चौक,
हार से सजा, हार - सिंगार ।।

स्वच्छ प्रक्षालित होते सदन,
पद्मजा के ज्यों शुभ पद - पद्म ।
ध्वस्त कर तिमिर, लखन ! अवलोक,
चन्द्रमा चले प्रतीची सद्म ।।

जगातीं वैश्वानर को अरणि,
उठाती शाखायें पवमान ।
मन्दिरों की घंटध्वनि रमा,
जगाती नारायण भगवान ।।

उठे कुलगुरु प्राची - प्रासाद,
उषा ने खोले कमल - कपाट ।
यज्ञ के धूम्र - ववंडर चले,
निमंत्रित करने सुर, नभ - घाट ।।

सींचकर वृन्दावन शत्रुघ्न !
उठातीं मुनितियां, कुबेर ।
सृष्टि, सृष्टा की रही सँवार,
शारदा बटुक - स्वरों के फेर ।।

दिशायें क्रिया - शील हो गईं,
प्रगट करतीं फिरतीं वक-पांत ।
प्रभंजनलाल ! निहारो तनिक,
विधाता का मांगलिक प्रभात ।।"

पुनः बोले, "प्रियवर शत्रुघ्न!
चलाग्रो धीरे - धीरे यान ।
वशिष्ठाश्रम का सीमारम्भ,
दृश्य ये बतला रहे महान ।।

खेलते मृग, मृगेन्द्र के ग्रंक,
मृगी - पय पीते, सिंह - किशोर ।
भुजग - मालायें शिव सम धार,
चंन्द्रिका - नर्तन करते मोर ।।

गईं दोहन हित, मख-भू धेनु,
रँभाते वत्स, रँभाना छोड़ ।
सिंहनी का स्वर सुन, सस्नेह,
रँभाते पुनः मुदित, मुख मोड़ ।।

वेद-मंत्रों की ध्वनि सुस्पष्ट—
ग्रा रही शनैः-शनैः कर पास ।
ब्रह्मचारी ले-समिधा भार,
नंदि - गण से धाते सोल्लास ।।

वीनतीं मुनि - कन्या शाकल्य,
कूटतीं बाला विविध प्रकार ।
देखकर देतीं ऋषि - पत्नियां,
मिलातीं कुछ श्रुति-विधि ग्रनुसार ।।

सद्य-विड्डोलित, घृत की महक—
बाँटते दिशि-दिशि तप्त कटाह ।
सुगंधित करतीं औषधि विमल,
पवन का शीतल-मंद प्रवाह ।।

राजसूयादिक यज्ञ ग्रनेक,
किये रघु-पुरुषों ने स-विधान ।
उन्हीं के पुण्यस्मृतिस्वरूप,
खड़े ये भव्यस्तम्भ महान ।।

मरुतसुत ! वह सुमध्य में खड़ा,
कला की मूर्ति, मूर्ति-मय यूप ।
हमारे आदि - पुरुष मनुदेव,
जगत के आदि-नृपति अनुरूप ।।

सृष्टि - सम्मानित लेखोत्कीर्ण—
प्रकाशित, प्रखर-प्रशस्ति प्रशस्त ।
फहरता जिसका ध्वज गगनांक,
निरखता प्रथमोदय - अंतऽस्त ।।

विभाजित की वर्षों में मही,
महाद्वीपों को दिये सुनाम ।
प्रलय पश्चात् हुई प्रख्यात—
मेदिनी, जिनसे 'पृथ्वी' नाम ।।

धारती धरती जो निज गर्भ—
ब्रह्म से, महानिशा में रत्न ।
सार्थक रत्न-गर्भिणी नाम—
किया, प्रगटा-कर अमित प्रयत्न ।।

देहिनी दोहन की, बन वत्स,
किया प्रचलित फिर से कृषि-कर्म ।
वेन-खल - पंक, सुपंकज विमल,
रसा के रसिक रसोमय धर्म ।।

किये शत-क्रतु, न शतक्रतु बने,
न भोगा, भोगा का लघु-भोग ।
बनाकर श्रवण-स्रोत, सर-रोम,
भरे हरि-कथा-सरित संयोग ।।

स्वक्रीड़ा, क्रीड़ा-कांता स्थिरा—
जिन्होंने की साकार अ-दंभ ।
उन्हीं प्रभु पृथु का मरकत-लता—
लसित, सुललित वह कीर्तिस्तम्भ ।।

दिव्य काकुस्त्थदेव का स्तूप,
सजा स्वर्गाधिप वृषभस्कंध ।
कालकेयों के वक्ष सुपट्ट,
रक्त मसि लिखा, स्वकीर्ति प्रबंध ।।

जहाँ तक पसरे सातों सिंधु,
चलाचल उदयास्ताचल मध्य ।
सभी युवनाश्व-सुवन मतिमान,
सु-मांधाता का राज्य, अवश्य ।।

'दस्युओ ! त्रिभुवन मेरी प्रजा,
कदाचित पाई, यदि लघु-त्रास ।
धर्म का वर, बन कर मम शाप—
करेगा तव समूल कुल-नाश ।।'

गूँजती जिनकी गुरु-गंभीर—
गिरा, हरती त्रिभुवन की क्लांति ।
पीड़ितों को देती सुख शांति,
पीड़कों की करती इति शांति ।।

पुरन्दर का पीकर अंगुष्ठ,
बढ़े जो मांधाता मतिमान ।
उन्हीं का यह प्रवाल-मय प्रखर,
प्रबल सुस्मारक कपि ! धीमान ।।

कंठ ज्यों नीलकंठ का तना,
पर्व के सागर सा उत्ताल ।
नीलमणि मंडित उज्ज्वल सकल,
सगर नृप का वह स्तम्भ, विशाल ।।

सांख्य-मुनि मस्तक-नयन प्रतीक,
धधकता जिस पर कृत्रिम-नेत्र ।
आज भी देता ज्यों उपदेश,
दग्ध होता यों मद का क्षेत्र ।।

शैलपति - शृंग सरिस उत्तुंग,
वज्र सा वज्र-रंग वज्रांग ।
रहा लहरा, जल जिसके भाल,
भाल-शशि का शुभ-शुभ्र - जटांग ।।

भगीरथ भूपति का वह भव्य—
भास्वरित भाव-भरा यश-केतु ।
धरा पर धारा, धरी उतार—
जान्हवी की, भव-सागर सेतु ।।

अधर सा लटका त्रिपथ, त्रिखंड,
धरा पर लेटा जैसा स्तम्भ ।
कर रहा गुरुकुल की वंदना,
सभय ज्यों नृप-त्रिशंकु का दंभ ।।

मढ़ा मृत-कर्पट वह ध्वज-स्तम्भ,
पुष्परागावलि पटा, सपाट ।
गाड़ श्री हरिश्चंद्र-नृप गये,
बिके जिनके सुत-दारा हाट ।।

नंदिनी आनंदित सी खड़ी,
वंदना करता सिंह सभीत ।
कर रहा जिसके शीर्ष, सुहास—
अलौकिक-दृश्य कपीश ! पुनीत ।।

हमारे पूर्व पुरुष प्रख्यात,
चक्रवर्ती सम्राट - दिलीप ।
उन्हीं का वह, वर विजयस्तूप,
उन्हीं की गौ-शक्ति का प्रदीप ।।

बनाया सूर्य - वंश, रघुवंश,
शौर्य की सीमा वे रघुराज ।
वज्र-व्रण लिया पदक सा वक्ष,
गर्वगत करी, गाज कर गाज ।।

यज्ञ - सैन्धव का करते हरण,
शक्र की बींध शरों से बांह ।
अमरपति मृतक तुल्य कर दिये,
कल्प-तरु की धधका दी छांह ।।

शची ने प्रियतम मांगे, बांध—
सूत्र जिन नृप की भुज-आजानु ।
उन्हीं रघु का रवि-रत्नस्तम्भ,
खड़ा गर्वोन्नत, ज्वलित-कृशानु ।।

रागयुक् सुमन, सुधांशुभ शाख,
हरित-मणि थाल नवल मंदार ।
स्तम्भ बन, तन्वंगी सी खड़ी,
स्वयं हरिणी ही नव-शृंगार ।।

शौर्य - माधुर्य - परिधि संश्वर्य,
पितामह अज भूपति का केन्द्र ।
स्नेह से जिनके हारा सिंधु,
धैर्य से धसका धरा, धरेन्द्र ।।

और वे महाराज पितु - देव,
सत्य के मूर्तिमान अवतार ।
दशों - दिशि जिनके रथ ने किया,
अभयता से ममता - व्यवहार ।।

काल की खुली कसौटी हुए—
सिद्ध प्रत्येक प्रकार, सुवीर ।
महारणवीर, महाप्रणवीर,
दान - सम्मान वीर, अति - धीर ।।

इन्द्र ने सिंहासन पर जिन्हें—
बिठाया साग्रह, भर कर बांह ।
स्वयं उठ, स्वयं शक्र को बिठा—
आ गये निज सरयू की छांह ।।

रहे तो, रहा देखता विश्व,
गये, रह गया देखता विश्व ।
दिखाया, कैसे वास - प्रवास,
ह्रस्व क्यों दीर्घ, दीर्घ यों ह्रस्व ।।

उन्हीं का यह नव - रत्नस्तम्भ,
सजा स्वर्णिम - स्यन्दन से भाल ।"
हुई प्रभु की वाणी अवरुद्ध,
मुँदे पल भर दृग तरल विशाल ।।

भरत बोले "ठहरो शत्रुघ्न !
यज्ञशाला का सम्मुख द्वार ।
भगवती अरुन्धती के साथ,
विराजे गुरुवर भरे दुलार ।।

विश्व-कल्याणी - विधि स-विधान,
वेदिका, एकासन - आसीन ।
विमल वैभव से घृत - शाकल्य,
पुष्प - समिधादिक सजे नवीन =

दीप्त - वैश्वानर ज्यों मख-कुंड,
धधकता ब्रह्म - तेज साकार ।
जटा क्या, सकल शुभ्रता सिमट—
विश्व की, बैठो एकाकार ।।

कुशासन पर मृगेन्द्र - पट बिछा,
कसा कटि - तट मृग - चर्म सुवर्म ।
विराजा ज्यों धरती पर प्रकट,
स्वयं सम्राट वेष, सद्धर्म ।।

श्मश्रु - पट पाटम्बर हिल रहे,
बजाती त्यों प्रवया स्मिति - थाल ।
हृदय के विमल प्रसूति - प्रकोष्ठ,
सूत्र-शिशु ज्यों जनती श्रुति-बाल ।।

ब्रह्म-ऋषि-शिशुओं के, ऋषि मुदित--
कर रहे जातकर्म संस्कार ।
पालकर, करते मुनिगण पुष्ट,
झुलाते बटु - स्वर बारम्बार ।।

ऋचायें रचा रही हैं रास,
संहिता निभा रहीं सहचर्य ।
उपनिषद् बढ़ा रहे साम्राज्य,
पा रहे हैं पुराण ऐश्वर्य ।।

छंद-ज्योतिष - व्याकरण - निरुक्त—
कल्प - शिक्षा - मीमांसा - न्याय ।
हर रहा विश्व - गगन अघ-ज्वलन,
आर्य - साहित्य - चन्द्र स-निकाय ।।

जान-रघुकुल मणि का आगमन,
उठे बटु - बाणप्रस्थ - गृहस्थ ।
देख कुल - गुरु सम्मुख आसीन,
दंड - वत् लेटे बंधु समस्त ।।

उठे विह्वल ऋषिराज वशिष्ठ,
हृदय से लगा लिये श्री राम ।
दुलारे बार - बार त्रय - बंधु,
दूर से कपि का देख प्रणाम ।।

चपलता से दौडे वैरंचि,
भरे बरबस कपिवर भुज - माल ।
"हुए, होंगें, हैं भक्त अनेक,
भक्ति -आचार्य किंतु कपि लाल ।।"

ब्रह्म - ज्ञानी! वशिष्ठ भगवान,
भूल कर सकल ज्ञान - विज्ञान ।
कह सके रुंधे कंठ से मात्र,
"धन्य रे धन्य - धन्य हनुमान ।।"

ढका कपिवर का भूरा गात्र,
विप्र के शुभ्र कपर्दक - कोष ।
जमीं ज्यों सोंधीं मृतका - शीश,
प्रकृति - आशीश, अचंचल ओष ।।

हुए सच्चिदानन्द सानन्द,
सिंधु से निकली सरित, विलुप्त ।
हुए समुपस्थित सकल निमग्न,
गगन पछताने लगे विमुक्त ।।

स्नेह - भर अरुन्धती भी लगी,
थपकने पवन - पुत्र के स्कंध ।
विरति-रति ज्ञान- शक्ति का मिलन,
जीव - ईश्वर का सा अनुबंध ।।

प्रकृति, मर्यादा सी स्वयमेव,
कराती हुई, सकुच, पार्थक्य ।
ब्रह्म में जीव, जीव में ब्रह्म,
समाई, देख ऐक्य सार्थक्य ।।

निरख आकार - हीन स्वाकार,
ठगा सा गया, स्वयं साकार ।
रहा, लख लोकालोक अमार,
सु-वामन का वामन-विस्तार ।।

युगल - जन के दृग द्वारे बंद,
न पाया ब्रह्म - अंड का द्वार ।
स्वामि हैं किंकर्तव्य - विमूढ़,
बढ़ी माया करने विस्तार ।।

ब्रह्म की हुई शक्ति चैतन्य,
कर उठे भ्राता, जय - जय कार ।
ज्ञान को विकल वंदि सा देख,
भक्ति ने खोला पंचम द्वार ।।

बाह्य - चेतना लौटने लगी,
पृथक से हुए महर्षि - कपीश ।
राम - रवि की पा अरुणा- उषा,
ओष के, बनने लगे नदीश ।।

नयन - निर्झरिणी झरता नीर,
पल्लवित हुए रोम प्रति रोम ।
कीश ने, ऋषि में लखे त्रिकाल,
कीश में, ऋषि ने लखे त्रि-व्योम ।।

युगल ने त्रिभुवन का त्रैगुण्य,
राम में देखा, करता नृत्य ।
युगल, ज्यों आये प्रभु-कर-युगल,
एक गुरु बने, फिर भृत्य ।।

हुए सब पल में प्राकृत-चित्त,
विराजे वेदी पुनः वशिष्ठ ।
न समझा जगत, अलौकिक मर्म,
परम वैशिष्ट्य, वरिष्ठ-कनिष्ठ ।।

लगीं पड़ने आहुति, ज्यों हुए—
राम, यजमानासन आसीन ।
मंत्र-ध्वनि गगन गुँजाने लगीं,
लगे सुर पाने भोग नवीन ।।

श्रुवा धनु, आहुतियां शर-निकर,
कुंड रण, मंत्र घोष टंकार ।
लगे करने प्रभु-भुज आजानु,
जगत - दुरितत्व - दनुज संहार ।।

उठे पूर्णाहुति कर रघुनाथ,
नमित शिर, पाकर यज्ञ-प्रसाद ।
स्वर्णमंडित सुपुष्ट बहु धेनु-
दान कीं, भर कर अमिताल्हाद ।।

स्वस्ति वाचन मुनि करने लगे,
लगीं झर-झर झरने जल-झारि ।
लगा, ज्यों करते अवभृथ-स्नान,
सिंचे प्रभु त्यों संकल्प-सुवारि ।।

धूम्र से सजे विलोचन सजल,
धुले ज्यों शतदल, शरद-फुहार ।
सजल विग्रह, करुणालय हृदय,
लगा, गोलोक गंग अवतार ।।

थाम राजाधिराज का हाथ,
उटज की ओर चले मुनिनाथ ।
भगवती अरुन्धती, ऋषि प्रमुख,
बंधुगण, पवन-तनय ले साथ ।।

विराजे मर्यादा अनुसार,
"सुनाओ समाचार रघुनाथ ।"
"आपकी महती कृपा, कृपालु !"
छुआ ऋषि ने फिर नृप का माथ ।।

"एक ही समाचार, निशि सुना,
गया द्विज मारा, लंका एक ।
यही चिंता है, यह क्यों हुआ,
सुप्त या लुप्त लंक-सुविवेक ।।

कहेगा क्या सारा संसार,
किया बस स्त्री-हित ही संहार ।
क्रूरता की रघुवंशी परिधि,
न निशिचर पाये तनिक सुधार ।।

विभीषण के होते यह हुआ,
विभीषण भी क्या ऐसा हुआ ।
नहीं, हम समझे जिन्हें समाप्त,
तत्व वे उभरे, यह क्या हुआ ।।"

"नहीं, यह नहीं, तनिक भी नहीं,
और ही बात हुई रघुनाथ ।
बना स्वातंत्र्य यहाँ स्वाच्छंद्य,
माथ को घाव दे गया हाथ ।।

परशुधर ने होकर क्रोधांध,
किया क्षत्रिय - वध बारम्बार ।
ब्राह्मणों का कर-कर अभिषेक,
रजोगुण दिया असीम उभार ।।

रजस पर यह सत्त्वाज्ञ प्रहार,
तमोमय खुला पतन का द्वार ।
समय बलवान, उसी ने किया,
जगत में रावण का विस्तार ।।

विश्रवा ऋषि का वह ब्रह्मांश,
जन्म लेकर पुलस्त्य के वंश ।
वेद का अद्वितीय विद्वान,
अंत में राक्षस बना नृशंस ।।

स्वर्णपुर - वैभव शंकर - सुवर,
न कर पाये, जिसको संतुष्ट ।
कामनानल, पा भोगाहार,
हुआ सम्पुष्ट दिनों-दिन दुष्ट ।।

सकल प्रतिफल तव सम्मुख वत्स !
मरा कैसा, होकर निर्वंश ।
न मरता क्यों, जब ऋषि स्वयमेव,
कह उठे 'ऋषि न' निशाचर-अंश ।।

जाति से मान-प्राप्ति तो कठिन,
कठिन उससे, उसका अपमान ।
भयंकर उससे भी प्रतिशोध,
चित्त बन जाता चिता समान ।।

धधकने लगते ईंधन बने,
शांति - सुख - परम्परा - परिवार ।
लक्ष्य रह जाता केवल एक,
घोर प्रतिवाद, घोर प्रतिकार ।

हुआ यह दशकंधर के साथ,
कैकसी निभा न सकी समाज ।
धर्म का धार अधूरा रूप,
विश्रवा से भी छूटी लाज ॥

कंटकों की भू शैया पड़ा,
बीज गदराया, कंटक-अंक ।
अपावन - क्षेत्र खिला नव-पुष्प,
विमल-ऋषि कुल का बना कलंक ॥

अकंटक चला बनाने पंथ,
बन गया कंटक रूप परन्तु ।
सुमाली - माली का कौटिल्य,
बना दृढ़ रज्जु, बँधे मृदु-तंतु ॥

कोढ़ में खाज सरिस मय-दनुज,
कर गया पूर्ति, रही जो शेष ।
कलित ऋषि-कुल की कोंपल फला,
कुलिश-तरु, कुत्सित रावण - शेष ॥

फूल सा फूला अत्याचार,
गंध सा फैला हाहाकार ।
पत्र सा लहरा भ्रष्टाचार,
फला फल सा खल पापाचार ॥

विश्रवा उदासीन से रहे,
चाह कर भी, बोले न विशेष ।
उभर कर पल-पल ही अत्युग्र,
उग्रता उठी अहं - परिवेश ॥

हीनता-भाव, कुजन्म स्वभाव,
कुसंग - प्रभाव, सुसंग - ग्रभाव ।
संगठन - शून्य देव-नर निकर,
हार का हृदय, पुरातन घाव ।।

धधकती बांबी पुरवा चली,
मिले प्लव, रँगे स्वाति-रस रंग ।
परिस्थिति-देश-काल यह भूप!
बनाते रज को काल-भुजंग ।।

दशों-दिशि का विज्ञान-निधान,
बना दशशिर त्यों रावण घोर ।
रुलाने लगा लोक, व्रण-अ्रघ-
बढ़ा ग्रंतर, ग्रंतर की ओर ।।

किये ज्यों-ज्यों नित नव्य निदान,
बना त्यों-त्यों ग्रसाध्य अति रोग ।
हुआ दुर्बल विराट का गात्र,
लगाने लगा भोग ही भोग ।।

राज्य - दंडाभिमान कर - अमित,
लिये नय-न्याय बिसार, अपथ्य ।
ग्रंत में ऋषि-कुल रक्त-कुपथ्य,
मांग ही बैठा ग्रंध, असभ्य ।।

दे गया देने को आदेश,
किंतु शोणित-घट देख अनेक ।
विकंपित विरूपाक्ष हो गया,
हुग्रा जागृत, सोता सुविवेक ।।

न क्यों होता, राघव! वह रक्त,
न था रण-रक्त, न बलि का रक्त ।
न साधारण दुर्घटना - रक्त,
न संध्याग्रों का उपमा-रक्त ।।

विश्व - कल्याण - कामना - लीन,
साधना - पीन कुबंधन - क्षीण ।
नाचता कर-तल, काल त्रिताल,
मंत्र - दृष्टा परमोदासीन ।।

ब्रह्म - चिंतन - रत ब्रह्म - स्वरूप,
अगुण-गुण सर्वांगीण प्रवीण ।
अहिंसक, कपट - कुटिलता - हीन,
बाह्य-अंतर जिनका अमलीन ।।

रक्त वह उन मुनि-जन का विमल,
दिया कुछ ने तो आँखें मींच ।
न जिनकी खुलवा सके समाधि,
अभीप्सित लिया देह से खींच ।।

सिद्ध-साधन बन, साधक बने,
तपोवन में थे जो परिवार ।
गये जब लेने उन का रक्त,
भयंकर था वह हाहाकार ।।

न आई तनिक दया, सुन घोर,
बाल-महिलाओं का चित्कार ।
गर्भिणी - मलिनी - सद्य प्रसूति,
नवोढ़ा - नमिता - तैलाचार ।।

खेलते, गुरुकुल जाते मुदित,
अंक पय पीते, सद्योत्पन्न ।
दीन-पुरुषों की फिर क्या बात,
न छोड़े रोगी - मरणासन्न ।।

रक्त दो - शोणित दो-दो लहू,
राक्षसाधिप का है आदेश ।
फिरा करते ध्वनि करते यही,
उन दिनों निशि-दिन वन-वन प्रेष ।।

रक्त-घट सर्वाधिक दे कौन,
छिड़ी असुरों में स्पर्धा घोर ।
कई चल देते होते भोर,
कई निशि का ही करते भोर ॥

अमुक के आये इतने कलश,
प्रकाशित होती पट्ट-प्रशस्ति ।
लंक-जन हो अधीर पूंछते,
प्रगति की, है क्या नव-विज्ञप्ति ॥

नरान्तक - देवान्तक - अतिकाय,
कुलिशरद-खर - दूषण - घननाद ।
कुमुख - अहिरावण-त्रिशिर - प्रहस्त,
अंकपन - अक्षयादि क्रव्याद ॥

मूल नामों की विस्मृति हुई,
हुईं इतनीं उपाधि प्रख्यात ।
यज्ञ-विध्वंस, रक्त - अभियान,
तपस्वी - भक्षण, हरण - बलात् ॥

कौणपों की दिनचर्या बने,
राज्यमुद्रांकित जगकुख्यात् ।
दंडकारण्य जनस्थानादि,
तपोवन तुमने देखे तात ॥

किंतु इति पाता अति प्रत्येक,
कुहू-राका दोनों का अंत ।
विकंपित-भीत हुआ दशशीश,
देख वे शोणित-कलश अनन्त ॥

सचिव-परिषद् में किया विचार,
करें क्या, इतना संचित रक्त ।
न्याय की परिधि पुनः अन्याय,
न कर पाया सुनीति अभिव्यक्त ॥

शीश पर करती भावी नृत्य,
तुरत ही बोली एक उपाय ।
विसर्जित जनक-राज्य में करें,
अपरिमित शोणित-कुंभ-निकाय ।।

विमानों-यानों में भर कलश,
निशाचर-गण निशीथिनी-काल ।
जनक के विजन-विपिन के कुंड—
सिला सब लोहू, दी रज डाल ।।

प्रकृति की कैसी लीला हुई,
पड़ा शोणित में कैसे प्राण ।
जनक-जनपति हल-फाल अकाल,
प्रगट कर लाया सिया प्रमाण ।।

अपरिमित रूप, अपरिमित तत्व,
अपरिमित अपरा - परा सुशक्ति ।
अपरिमित भरी हृदय अनुरक्ति,
अपरिमित गुण-गुण विलग विरक्ति ।।

सुकोमलता- निर्मलता लता,
पूर्ण ऐश्वर्य - मयी, छवि - पुंज ।
विश्व-जय-कलित-कीर्ति-फल - फली,
राम ! तव यश तरु ललित निकुंज ।।

अनेकों ने क्या, नृप ने स्वयं,
कहा मुझसे प्रत्येक प्रकार ।
रोक लें, सीता वन जा रही,
विपिन की विपदा व्यथा अपार ।।

रोकता, रुक जाते नृप-प्राण,
जानता था मैं भी यह तत्व ।
किन्तु अत्यल्प स्वार्थ से अधिक,
भरत ! परमार्थ सदा स-महत्त्व ।।

देखते, रघुनंदन के पास,
जानकी खड़ी हुई, उस काल ।
मोह-सिंह से ज्यों लक्ष्य-स्ववत्स,
चली लेने गौ, बन विकराल ।।

समुन्नत-भाल नमित-दृग, किंतु—
विनय - अवगुंठन दृढ़ - संकल्प ।
सिंधु-दिशि जाती कल्लोलिनी,
विघ्न-गिरिमाल बनाती तल्प ।।

शम्भु की पलकावलि में वंदि,
मचलती सी संवर्तक - ज्वाल ।
गिरा सी गुंजित ब्रह्मा-श्रवण,
कुमुदिनी मुकुलित ब्रह्म - मृणाल ।।

देखती हरि-नृप को श्री-दृष्टि,
सुरासुर- परिजन सिंधु - विशाल ।
अलौकिक - अद्‌भुत - अनुपम-अकथ,
लगी सिय, सिय सी ही उस काल ।।

खड़ी - मृतिका में मृतिका-जनी,
मिलाने रज में स्वर्णिम लंक ।
भरे रुद्राणी का सा रोष,
अरुणिमा लिये भृकुटियां वंक ।।

देख भू-भार - हरण का कार्य,
देव-वर का स्वरूप, सुक्रोध ।
नमन कर, मन ही मन रह गया,
मौन धारण कर, बना अबोध ।।

न जिसने कभी मांग की स्वल्प,
स्वर्ण-मृग वह ही बैठी मांग ।
विश्व - उद्धार - नाट्य - नट-नटी,
लषण ने लखा, विविध-रस स्वांग ।।"

झुकाया प्रभु ने सकुचा शीश,
'धन्य' ध्वनि गूंजी साधु-निकाय ।
राम बोले "द्विज-हत्या हुई,
हमारा क्या करणीय उपाय ।।"

"हुए विषयान्तर क्या राजेन्द्र !"
गिरा गूंजी गुरु की गंभीर ।
"चरित तव ऐसा ही हैं तात !
आदि-मरु करता हरित-सनीर ।।

सूत्र - अन्वेषी मुझ सा अ-रस,
हो गया अनायास बैताल ।
असंभव कुछ न, किसी भी काल
मूक कवि बने, कौन किस काल ।।

मन - हरण कंठाभरण चरित्र,
सरस-सर तव, सदैव सर्वत्र ।
शारदा का श्रम हरता रहे,
न वाणी रमे राम ! अन्यत्र ।।

विविध रस-रूप भावना भरा,
विविध - भाषा आकार - प्रकार ।
करें हँस कर ब्रह्माणी-हंस,
दिवस-निशि हंसासक्त विहार ।।

कहें वध, आत्मघात या घात,
मरा है इतना निश्चित्, विप्र ।
विचारें, कर विचार सब आप,
सुनें, संवाद मिला जो क्षिप्र ।।

परशुधर के क्षत्रिय - विध्वंस,
क्षुद्र-द्विज कुछ पाये अहमंश ।
मनस्वी ऋषि-विप्रों के यत्न,
छांटते रहे दंभ के दंश ।।

भक्ति तो भक्ति, ज्ञान भी दबा,
बन गये कर्म-कांड पाखंड ।
अग्रजन्मा - भूसुर - श्रुतिवास,
रह गये मात्र, कुभोग-कुभंड ॥

नृपति-बालायें अबला बनी,
बिलखतीं भूखीं, हुए कुवेष ।
दयाकर कर, दो विप्रो ! वस्त्रान्न,
याचना करतीं खोले केश ॥

बुझाने गई पेट की आग,
बुझ गया शुभ सतीत्व शुचि-दीप ।
गई तन ढ़कने जिन से हाय !
उन्हीं ने डाला तन में पीप ॥

शास्त्र-अनुमोदित-योग नियोग,
बना कुछ विप्राधम व्यवसाय ।
पुण्य की परिभाषा कह भोग,
भोगने लगे कुटिल अति-काय ॥

बना षड़यंत्र, मंत्र की आड़,
यज्ञ में पशु-बलि कर्म-विधान ।
उन्हीं ने जोड़े क्षेपक छद्म,
किया कौशल से मदिरा-पान ॥

पकाने लगीं मांस, यज्ञाग्नि,
पालने लगीं देह, मख-धेनु ।
हुईं मखशाला, भोगागार,
बनी पंकज-जननी, मरु - रेणु ॥

हाट में बेचो नारी-पुत्र,
विप्र हैं हम, दो हमको-दान ।
इसी आपाधापी में चला,
मनुज-बलि का दुर्दनुज विधान ॥

स्नेह - ममता - समता - वात्सल्य,
छिप गये इसी पाप की ओट ।
शौर्य प्रकटा, औरस-बलि हेतु,
परख कर मुद्रा, बांधे पोट ।।

और, द्विज-सुत कह, वध से पृथक—
हुए जब क्रूर-कर्म चांडाल ।
दक्षिणा-लोभ पिता ही स्वयं,
जन्म-दाता तब खड्ग सम्हाल ।।

खड़ा हो गया, कहूं क्या राम !
द्विजों ने जो-जो किये अनर्थ ।
सताई धरती किस-किस भाँति,
दनुज लगता, उस द्विज का अर्थ ।।

इसी से होकर दुखित अगस्त्य,
बस गये दक्षिण के कांतार ।
छिपे वाल्मीकि गहन-वल्मीकि,
च्यवन को लगा सुगम आगार ।।

गये गौतम सदेह विधि-लोक,
बसे कश्यप गिरि-सागर पार ।
हुआ प्रिय-कौशिक से मतभेद—
हमारा, यह उसका आधार ।।

अत्रि जा चित्रकूट पर रमे,
वृहस्पति हुए स्वर्ग के मात्र ।
लगे निर्द्वन्द विचरने शुक्र,
स्वर्णमय लेकर भिक्षा-पात्र

प्रकारान्तर से रहा सुपूज्य,
सदा ही अब तक ब्राह्मण-वंश ।
उचित भी है, होता है ग्राह्य,
विलग कर गलित, ललित का अंश ।।

स्वाति का जो जल दुर्लभ परम,
शुक्ति में करता मुक्तोत्पत्ति ।
वही भुजगों में भरकर गरल,
विश्व को देता विषम-विपत्ति ।।

राम के हठी राम ! वे विप्र,
न सीखे राम-नम्रता पाठ ।
फले-फूले उस तरु से फैल,
सफल होता जो बनकर काठ ।।

और फिर तव लोकोत्तर भाव,
बना कुछ जिन, विप्रों का दंभ ।
उन्हीं में से जा लंका गिरा,
एक धुन खाया मलयज-स्तम्भ ।।

हुआ यह, एक दिवस द्विज एक,
मूढ़-वाचाल-वक्र स-घमंड ।
भ्रमण करता-करता तव सेतु,
जा चढ़ा, लघु त्रिकूट के खंड ।।

तलहटी में दशशीश-समाधि-
दिखी, देखे कुछ जलते दीप ।
समादर को समझा विद्रोह,
कह उठा "जल रे रक्ष-महीप ।।

विपल-पल तिल-तिल कर के दुष्ट !
चोर-द्विज द्वेषी-खल पापिष्ठ ।
श्वान की भांति सुलाकर गया,
हमारा लघु-सेवक द्विज-निष्ठ ।।

मरे को पूजो कितना दुष्ट !
न होगा पर यह जीवित दुष्ट ।
देखता हूँ लंका में अभी,
टपकता टप-टप इसका कुष्ट ।।"

हुए उत्तेजित कुछ, कुछ युवक,
लगे निबटाने वृद्ध, विवाद ।
किन्तु वह द्विज करता दुर्वाद,
लगा करने द्विजपन का नाद ।।

निशाचर बोले 'चलिये आप,
हमारे पूज्य-नृपति के पास।'
विभीषण के सम्मुख भी सरुष,
सभा में से करता परिहास ।।

जा-चढ़ा अगम दुर्ग के शिखर,
धरा पर फेंका ध्वज को खींच ।
विभीषण नत शिर कहता रहा,
"मुदित हों मुदित देव" इस बीच ।।

सजी थी जहाँ शतघ्नी अचल,
उछलता वहां आ गया मूढ़ ।
विप्र लघु क्या यंत्रों का ज्ञान,
कहाँ का क्या रहस्य है गूढ़ ।।

प्रज्ज्वलित अग्नि-दंडिका उठा,
नाल में दी सम्मुख से डाल ।
उड़ाता अपना कण-कण स्वयं,
उड़ा ले गया अनेक कपाल ।।

दूर जन-साधरण की बात,
हुआ नृप भी घायल गंभीर ।
विभीषण धन्य, प्रजा-निज हित न,
हुआ उस द्विज के हेतु अधीर ।।

खड़ा, जो-जो समाधि के पास,
खोज वह-वह निशिचर प्रत्येक ।
चला दंडित करने को स्वयं,
सचिव-गण किंतु सभय सविवेक ।।

विभीषण को समझा नृप-नीति,
सभी को बंदीगृह में डाल।
डाल शिविका में लाये उठा,
धरा से निशिचरनाथ निढ़ाल ।।

न औषधि ली, न अन्नजल लिया,
सकल तन बांध लिया स्वयमेव ।
किया सचिवों ने निर्णय अंत,
'न्याय लें चल रघुपति से देव' ।।

आ गये होंगे अथवा अभी-
आ गये, आयेगा संदेश ।।
हो गई आज अत्यधिक देर,
पधारें राज-सभा अवधेश ।"

उठे गुरुवर के संग समस्त,
नमन कर, पा गुरु-चरणाशीश ।
हुए रघुराज स्यन्दनारूढ़,
बढ़ाये तुरग तुरन्त अहीश।

लांघ वन-प्रांत नगर में-हुआ—
नृपति का ज्यों ही यान प्रविष्ट ।
विलोके, व्याकुल पथ-पथ खड़े,
नागरिक अमित, नमित-शिर शिष्ट ।।

गये प्रभु समझ मौन-संकेत,
पधारे निश्चित् ही रक्षेश ।
भरा जन-संकुल राजद्वार,
देखकर, की शीघ्रता विशेष ।।

विभाजित होती जैसे सरित,
देखकर तरणी का अभियान ।
मध्य का मार्ग हुआ त्यों-रिक्त,
उठा 'जय-जय' का घोष महान ।।

विमूर्च्छित-क्षुधित-तृषित - विक्षिप्त,
रक्त-रंजित अतिशय कृश-काय ।
विभीषण लखा द्वार पर पड़ा,
"दंड दो, दंड स्वामि ! रघुराय ।।

विप्र - हत्यारा राक्षस - अधम,
आपका अपराधी मैं नाथ ।
प्राण ले लो खल के रघुनाथ !"
बिलखता, भूमि पटकता माथ ।।

दौड़ प्रभु चले, पवनसुत दौड़,
सम्हाले गिरते-गिरते अस्त्र,
अंक में बरबस प्रिय को भरा,
पूछने लगे घाव निज वस्त्र ।।

"नहीं प्रभु ! नहीं, करें मत स्पर्श,
ब्रह्म - हत्यारा हूँ अति-नीच ।"
खोल बंधन पल में तत्काल,
सखा को दिया दृगों से सींच ।।

"विभीषण ! उठो-उठो प्रिय बंधु !
क्षमा दो, मुझ से हुआ विलंब ।
जान्हवी से तुम पावन परम,
धरा पर धर्मध्वज के खंब ।।

कहे, तुम पापी, पापी कौन,
पाप-सागर के तुम घटयोनि ।
धर्म के क्षीर-सिंधु प्रत्यक्ष,
उगाये पंकज पंकिल-क्षोणि ।।

सूर्य हों अस्ताचल से उदय,
चंद्रमा बरसायें अंगार ।
धरा धारण करने में शेष—
सर्वथा हों असमर्थाधार ।।

अमृत पी-पीकर हों मृत देव,
सत्य शाश्वत् हों सकल असत्य ।
प्राण-प्रिय ! पर तुम मेरे सखा,
सर्वथा सदा शून्य दुष्कृत्य ।।

लगायें विधि भा चाहे प्रकट,
आप में किंचित पापारोप ।।
जला डालेगा ईंधन जान,
उन्हें भी रामचंद्र का कोप ।।"

लिटा, सादर सस्नेह निजांक,
कराये स्वयं सकल उपचार ।
करा उत्सादन-मार्जन विविध,
सजा नव परिधानालंकार ।।

बिठाया अर्धासन कर थाम
पिन्हा कर अपना स्वयं किरीट ।
विभीषण का ले पहिना स्वयं,
सजे ज्यों रवि शिव, शिव रवि-पीठ ।।

कर उठी सकल सभा जयकार,
विभीषण की न गई पर ग्लानि ।
"भक्त-वत्सलता तो तव धन्य,
किंतु यह मर्यादा की हानि ।।

कहेगा त्रिभुवन, जिसके शीश,
ब्रह्म-हत्या का था गुरु-पाप ।।
बिना समझे बूझे, निज-जान,
उसे अपनाया अपने आप ।।

आपके प्रति पुरुषोत्तम कभी,
किसी ने की कल्पना मलीन ।
शूल यह, बन कर प्रखर त्रिशूल,
हृदय को देगा घाव नवीन ।।

आपसे यही विनय रघुनाथ !
आज को लें प्रभु ! आज समेट ।
फले कल जिससे गरल-प्रसून,
करे क्यों वह भविष्य को भेंट ।।

निशाचर कुल मेरा कुख्यात,
न होगा काजल काला और ।
धवल-यश छुए न पंक-कलंक,
आपका रामचन्द्र ! सिरमौर ।।

न कल कहदे कोई अंजान,
किया अनदेखा ब्राह्मण-घात ।
आज सह लूंगा सब आघात,
असह कल होगी लघु भी बात ।।

आपकी निष्कलंक निष्कलुष,
न्याय-कारिणी सुपरिषद् बैठ ।
देखकर घटनाचक्र समस्त,
न्याय के अंतस्तल में पैठ ।।

अभी यह प्रभु ! तव कृपा-किरीट,
बना मेरे मन पर गुरु-भार ।
अलौकिक तव सु-प्रीति प्रति नमित,
विचारें पर लौकिक-व्यवहार ।।

आपकी मर्यादा, मम-हेतु,
नाथ ! है समुचित यही उपाय ।
वेदविद् - बुद्धिमान - नीतिज्ञ,
पात्र अनदेखा कर, दें न्याय ।।

निवेदन तव पद-पंकज नाथ !
न माने मम मौखर्य-अनीति ।
निभालें शरणागत की प्रीति,
करें उज्ज्वल दिनकर-कुल-रीति ।।"

स्वतः गंभीर, हुए गंभीर,
"इन्हें न्यायालय में सौमित्र ।
उपस्थित करो, बताकर सकल,
घटा जो अघटित लंक-चरित्र ।।"

विभीषण उठे, उतारा मुकुट,
भरत ने लिया नवाकर माथ ।
बढ़े प्रभु को कर मुदित प्रणाम,
घेर कर चले सुभट-गण साथ ।।

चतुर्वर्णों के न्यायाधीश,
जहाँ बैठे थे नय-वय वृद्ध ।
खड़े हो गये विभीषण वहीं,
"कहें अपराध, करें फिर सिद्ध ।।"

तनिक ज्यों बोले न्यायाधीश,
विभीषण बोले जोड़े हाथ ।
"हुआ मम लंका में द्विज-घात,
दंड दे, कर दें न्याय सनाथ ।।"

"परिस्थितियां क्या, करिये स्पष्ट"
"स्पष्ट ही गिरा लंक द्विज-रक्त ।
प्रजा, राजा का ही प्रतिबिम्ब,
और क्या करूँ स्पष्टता व्यक्त ।।

दंड दें वह, विधान को देख,
रहे मर्यादित, मुदित भविष्य ।
लोकहित व्याज, न भागें श्वान,
उठाकर पावन देव-हविष्य ।।"

"और निज निर्दोषिता निमित्त,
कहें जो कुछ कहना हो अन्य ।"
"नहीं कुछ नहीं, स्वतः प्रत्यक्ष,
विचारे आप विचार अनन्य ।।"

हुए गंभीर अधीर मनीषि,
नमित शिर करने लगे विचार ।
सभा में तत्क्षण हुए प्रविष्ट,
वसिष्ठाश्रम के वर मुनि चार ।।

"आप दें यदि श्रीमन ! आदेश,
निवेदन करें तपस्वी सत्य ।
हुआ जो कुछ, कुल-गुरु को विदित,
प्रणिधि-गण से सान्वेषण-तथ्य ।।"

बताया घटना-चक्र समस्त,
विज्ञ मुनियों ने सांगोपांग ।
दृष्टि से हटी,अटी भ्रम-घटा,
प्रकट छिटका दिवसेश-छटांग ।।

तथ्य ज्यों सम्मुख आने लगे,
प्रगटने लगे सत्य, पा सत्य ।
"बिना पातक प्रायश्चित किया,"
कह उठे नैयायिक गण "धन्य ।।

आप अभिनंदनीय लंकेश !
आपसे सम्मानित सम्मान ।
आपकी नम्र-नीति नृप ! भव्य,
हमारा वामन-रूप विधान ।।

न जिसमें किंचित् पंक-कलंक
उसे क्या स्वच्छ करें, श्रम व्यर्थ ।।
किंतु नियमानुसार क्यों नहीं,
अर्चना करें स्वपुण्य सु-अर्थ ।।

दिया क्या रामचंद्र ने कार्य,
पिसें हम, पिसे हुए को पीस ।
आप निर्दोषी को निर्दोष,
बतायें क्या केवल अवनीश ।।

पुण्य में पाप, जल गये हाथ,
होम-रत उपरोहित के हाथ ।
कहेंगे, कुछ कहना है हमें,
मिलेंगे जब हमसे रघुनाथ ।।

किंतु न्यायानुसार निर्णीत,
हमारा निर्विरोध निर्घोष ।
निशाचरराज विभीषण आप,
सर्वथा सिद्ध हुए निर्दोष ।।"

सुभट-गण सिमटे, सादर सचिव,
ले चले राज-सभा की ओर ।
बिठा शिविका में चामर-छत्र—
ढुलाते, जयध्वनि करते घोर ।।

पिन्हाया पाकर प्रभु-संकेत—
भरत ने मुकुट, पहुँच कर द्वार ।
बिठाया, उठकर प्रमुदित पुनः,
राम ने भुज भर बारम्बार ।।

राजकुल-पुरी-प्रजा की सकल,
कुशल-मंगल पूँछी रघुनाथ ।
"आपकी कृपा-निकेतन ! कृपा,"
विभीषण बोले जोड़े हाथ ।।

निवेदन प्रतिहारी ने किया,
"मिला है समाचार रघुनाथ ।
आ रहे हैं सुग्रीव कपीश,
नहाकर तीर्थराज शुचिपाथ ।।"

हुई प्रभु सहित सभा त्यों मुदित,
शरद्-सर उतरा नवल वसंत ।
सुहृद की हुई सुहृदता सत्य,
हृदय हरषा आनंद अनंत ।।

नाद, तुरही का हुआ विशिष्ट,
अवध का गूँज उठा आकाश ।
कपीश्वर का वर व्योम-विमान,
गगन में करता विविध-विलास ।।

बजाता वाद्य-वृंद सानंद,
सुमन बरसाता बारम्बार ।
दृष्टिगोचर सहसा ही हुआ,
धरा से भी गूँजी जयकार ।।

सचिव-परिषद् के साथ त्रिबंधु,
चले अगवानी करने क्षेत्र ।
रुका पुर-परिक्रमा कर यान,
झुके ज्यों कमल-वदन अलि-नेत्र ।।

सचिव सह उतरे मुदित कपीश,
मिले क्रमशः रघु बांह पसार ।
पवनसुत उठा लगाये हृदय,
बही कपियों के दृग जल-धार ।।

गिरा, तज कंठ-हंस मुख-कंज,
सुमानस करने लगी विहार ।
बिठाकर चले सुसज्जित यान,
कुशल कह, सुनते बारम्बार ।।

बरसते सुमन, गरजते वाद्य,
शतघ्नी करने लगीं प्रणाम ।
कामिनी वर्षण करने लगीं,
अरगजा लगा मिटाने घाम ।।

द्वार-सम्मुख प्रिय-सखा विलोक,
विभीषण सहित उठे श्रीराम ।
हृदय से लगा लिया सप्रीति,
पौर पर करत-हुआ प्रणाम ।।

विभीषण मिले भुजा भर मुदित,
लगे करने द्विज मंत्रोच्चार ।
सचिव-गण स्वागत करते विविध,
लेप कर मलय, पिन्हाकर हार ।।

निजासन बिठा युगल-प्रिय, बैठ,
रखे युग-कंध, युगल निज हाथ ।
युगल-लोकों के अयुगल नाथ,
लगे करने प्रिय-युगल सनाथ ।।

पूँछने लगे कीश-कुल कुशल,
बता निज कुशल, सकल संक्षिप्त ।
राजमर्यादा से हो पृथक,
उभय-प्रति हुए अज्ञ से लिप्त ।।

नमित-संकुचित-मुदित अति भरत,
लखन-संकेत सरक प्रभु पास ।
मंद वाणी बोले कर-बद्ध,
"लखें मध्योत्तर व्योम-विलास ।।"

हिला मस्तक बोले रघुनाथ,
"तनिक भी रहा न मुझको ध्यान ।
करें रघु-पाकालय सुपुनीत—
स्वजूंठन, उठें अतिथि भगवान ।।"

भरी मृदुता में ममता मृदुल,
गिरा - रस - लता-मदिर-मकरंद ।
हुए मतवालों से प्रिय - युगल,
यही रघुनंद, सत्य रघुचंद ।

उठे प्रभु, हुई विसर्जित सभा,
चले गृह, सखा स्वपरिकर साथ ।
पुकारे प्रतिहारी पंचांग,
चले अंत.पुर श्री रघुनाथ ।।

पौर वासन्ती प्रतिहारिणी,
लगीं बिखराने गंध-सुगाथ ।
पधारे "अवध-नाथ श्री पंच,
देव श्री महाराज रघुनाथ ।।

पिका सी कूकीं परिचारिका,
सुपौरी बौरी सी नव-बाल ।
गुँजातीं आंगन अनुगामिनी,
कामिनी-लता हिलीं तत्काल ।।

रानियों की सहचरियाँ लगीं,
किलकने कलिका सी सोपान ।।
झाँकने वधुयें लगीं गवाक्ष,
प्रफुल्लित किंशुक-राशि समान ।।

मालियों से पाचक संभ्रमित,
सुशोभित करते पाकाराम ।
पधारे प्रभु ऋतुराज वसंत,
अंब फुलवारी, फली सुकाम ।।

जननियों के प्रति झुके समस्त,
मुदित आशिश दी बारम्बार ।।
राम सम हृदय लगा कपि-रक्ष,
कुशलता पूँछी पुनः दुलार ।।

विभीषण के व्रण देखे बँधे,
शतघ्नी-क्षत होंगे गंभीर ।
किसी ने कहा न कुछ भी अधिक,
हुईं पर जननी सकल अधीर ।।

सुमित्रा बोली "जा बावले !
भरा ऐसी भावुकता मध्य ।
व्यर्थ में ही यों आया चढ़ा,
आप अपने शोणित का अर्घ्य ।।

और कुछ हो जाता तो बता,
किसी का क्या कुछ जाता अज्ञ ।"
"अंब ! क्यों हो जाता, यह बता,
पता रखते जिसका सर्वज्ञ ।।

जिन्होंने दशशिर की रण मध्य,
यमस्वर सी प्रलयंकर सेल ।
ठेल कर मुझे, वक्ष निज तान,
मंद मुस्काते ही ली झेल ।।

अंबिके ! पलट चुका युग आज,
धरोहर प्रभु की अब ये प्राण ।
रहा रसना सा लंका-दशन,
नाम का धार सुदृढ़ तन-त्राण ।।

हिमाचल पदनख से भी न्यून,
सिंधु लगता, कर-गर्त समान ।
दिशा लिपटीं कटि, बन कोपीन,
न अंबर, अंगुल युगल प्रमाण ।।

राम के बिना विभीषण कीट,
बहुत भटका जगती की कीच ।
चढ़ा अब शिव शिर, कुटिल भुजंग,
कहेगा कौन नीच, वह नीच ।।

कल्पतरु तले, स्पर्शमणि-सद्म,
कौन सा लोह, रहेगा लोह ।
दिया रघुपति ने अब निज मोह,
करेगा क्या व्यामोहित मोह ।।

स्वांग से भीड़ें होतीं भ्रमित,
अविचलित रहता नट का पूत ।
डरें ईंधन, हरिजन की नित्य,
बिछाते शैया यम के दूत ।।

जान रघुनाथ-चरण-निर्माल्य,
सजाता तिलक-मुकुट नित भाल ।
इसे छूकर क्यों काल-कुकौर—
बनेगा, ऐसा मूर्ख न काल ।।

दिया संसारों से संसार,
बांधने-बँधने की दृढ़-शक्ति ।
हृदय की निधि दी यही निकाल,
एक भावुकता भरी सुभक्ति ।

उसे यदि अंब ! कहेगी व्यर्थ,
विभीषण ही होगा तो व्यर्थ ।
क्षमा करना मैं समझा नहीं,
तुम्हारे मातु ! व्यर्थ का अर्थ ।।

न लक्ष्मण जननी का यह व्यर्थ—
निरर्थक, परमसार्थक व्यर्थ ।
स्वार्थ परमार्थ किये नवलार्थ,
तोल चित-तुला, अतुल दे अर्थ ।

कहा जिसने, यदि जाते राम,
तुम्हारा तात ! अवध क्या काम ।
सिद्ध युवती सु-सुतवती हुई,
सत्य-प्रिय नृप की प्रिया ललाम ।।

दाहिने, वामा होकर किये,
वाम कर से जिसने विधि-धाम ।
दिया रामायण को निज शक्ति,
भक्ति-मय अभिनव नव-आयाम ।।

प्रणम्या मँझली मैया वही,
'व्यर्थ' कह गई, न निश्चित व्यर्थ ।
मात्र इतना अन्तर है किंतु—
न समझी, मम लघु बुद्धि सु-अर्थ ।।"

थाल ले आईं दासीं सजा,
रानियां लगीं परसने भात ।
पूंछने मां कौशल्या लगीं,
कुशलता की कपीश से बात ।।

"कहो अंगद कैसा सुग्रीव !
किया या नहीं अभी तक व्याह ।"
"ठीक है, रह कुमार लख रहा,
पवन-सुत वर-यात्रा की राह ।।"

हँसे प्रभु, सकुचाये हनुमान,
हँस पड़ा वातावरण समस्त ।
अंब का पा प्रमुदित संकेत,
हुए सब मंत्रपाठ में व्यस्त ।।

शांत हो भोजन करने लगे,
कराने लगीं अंब हठ ठान ।
तृप्त हो पुनः-पुनः सब उठे,
चले, ले सुखद सुगंधित पान ।।

सभी प्रभु के विश्रामागार,
विराजे लगा-लगा उपधान ।
लगे चर्चायें करने विविध,
डालने लगीं पलक व्यवधान ।।

"मिलेंगे यहीं विगत अपराह्न,
सभी कुछ समय करें विश्राम ।"
चले सब पाकर प्रभु-निर्देश,
चरों ने खींचे सुपट ललाम ।।

भरत - शत्रुघ्न ले चले थाम—
विभीषण को देते आधार ।
कपीश्वर को ले लक्ष्मण-कीश,
चले पहुँचाने सौख्यागार ।।

मार्ग में कर लक्ष्मण को विदा,
कपीश्वर बोले "प्रिय हनुमान ।
चलो, बैठें चलकर कुछ समय,
भवन के किसी शांत-उद्यान ।।"

'पार्श्व में कनक-भवन के एक—
सघन-कदली वन है कपिराज ।
वहीं सुस्फटिक-शिला पर स्वामि !
कृपा कर जायें आप विराज ।।"

बिछाने उत्तरीय ज्यों लगे,
शिला पर निज मारुत-सुत वीर ।
"नहीं यह नहीं-नहीं हनुमान !
नहीं इस योग्य तवोत्तर-चीर ।।

बनालूं यदि इसकी मैं पाग,
न्यून तब भी इसका सम्मान ।
कहीं रख सकता उस पर पैर,
धार जो चुके स्वयं भगवान ।।"

विराजे स्वच्छ-शिला कपिराज,
बिठाया ले मारुति का हाथ ।
दबाने चरण चले हनुमान,
उठे कह "राम-राम" कपिनाथ ।।

"अमल शतदल कलिका सी कलित,
अँगुलियां ये तव मृदुल कपीश ।
खिलाते अलि-मिथुनावलि बना,
युगल निज पद जिनमें जगदीश ।।

बने तव कर-शतदल का नवल,
सजल सरवर सा मेरा भाल ।
क्षमा इस शाखामृग की करो—
अनय, है विनय अंजनीलाल ।।"

परस्पर झुके युगल कपि सजल,
कहूँ क्या, गंगा यमुना कौन ।
बनाने निकलीं प्रेम-प्रयाग,
लीन हो गई शारदा मौन ।।

छिपे वातायन-पट सियराम,
देखकर अलख-अलौकिक स्नेह ।
हुए नव-ब्रह्मद्रव सम द्रवित,
बन गये ईश, सदेह विदेह ।।

देख अक्षयवट सलिल-समाधि,
अमर मुनि सा कवि हो दिग्भ्रांत ।
लगा करने माया का स्तवन,
चित्त-उद्वेलन करता शांत ।।

पूंछ दृग गद्-गद् कंठ, सुकंठ—
कह उठा "छला गया हनुमान ।
मात्र भू-खंड, नरक के कुंड—
सौंप, ले आये रघुपति प्राण ।।

एक दिन हुआ दग्ध मृत बालि,
किंतु तव वीर ! विपुल विरहाग्नि ।
भूनती रोम-रोम पल-विपल,
सजल धान्य ज्यों काष्ठ मंदाग्नि ।।

राम का प्रेम खींचता इधर,
खींचता उधर राम-निर्देश ।
ईश-माया की कलित किलोल,
किला यह कपि त्रिशंकु सा शेष ।।

सोचता रहता हूँ हर समय,
हृदय में उठते भाव विशेष ।
देख प्रभु से तव यह सामीप्य,
अनमने मन में उठता द्वेष ।।

कभी पछताता हा, रे भाग्य—
कांच को हीरा बैठा मान ।
सोचता कभी ग्रहण की अहा,
मुकुट-मणि मम, प्रभु ने पहिचान ।।

किसी क्षण भर जाता अभिमान,
राम का प्रिय, मेरा हनुमान ।
विहँसता कभी, मुकुट में रत्न,
धूलि में धसी रह गई खान ।।

कभी होता जब परम अधीर,
न जाने कौन बँधाता धीर ।
राम के साथ राम के हेतु,
धरा पर उतरा मारुति वीर ।।"

राम को क्या शाश्वत वनवास—
चाहता देना, तू कपि क्रूर ।
पवनसुत शाश्वत् राम-निवास,
न क्या संदेह हुआ तव दूर ।।

दिखाया और सभा के मध्य,
बता किसने वक्षस्थल चीर ।
विराजे प्रमुदित रवि से उदित,
और किसके हिय सिय-रघुवीर ।।

सींचते माली उपवन मात्र,
न करते पर फल-फूल प्रयोग ।
प्रिया सरिता सागर की सदा,
पिता पर्वत कब करते भोग ।।

राम के हेतु हुए हनुमान,
हुए हनुमान हेतु श्री राम ।
धनी ले गया धरोहर, साहु !
पैर फैला, कर तू विश्राम ।'

स्वकन्या स्वकर दान दे, किन्तु,
न पाती भुला अंत्र दिन-रात ।
उसी विधि होकर भी संतुष्ट,
सोचता ही रहता हूँ तात।"

लगे फिर होने कीश अधीर,
बँधाते हुए परस्पर धीर ।
पूंछने लगे दृगों से नीर,
बहाते हुए दृगों से नीर ।।

हिचकियें भरते बोले "नाथ!
कहीं भी रहूँ, किसी भी स्थान ।
किंतु कहलाऊँगा सर्वदा,
आप ही का चाकर हनुमान ।।

प्राप्त श्री रघुपति का सामीप्य,
हुआ प्रभु ! सब तव पुण्य-प्रताप ।
क्षुद्र कपि पादपीठ में मात्र,
रखें पद कृपया राम कि आप ।।"

"नहीं, तुम मम किरीट-मणि सखा !
स्वामि हम दोनों के रघुनाथ।
तुम्हारे ही प्रिय पुण्य-प्रभाव,
विश्व में आज उठा यह माथ ।।

अन्यथा क्षुधा-तृषा से विकल,
अनाथों सा फिरता दिन-रात।
बालि के भय से किसने करी,
एक भी दिवस, एक भी बात ।

तुम्हीं ने निज प्रलम्ब-भुज-छांह,
सुगम की, दुर्गम जीवन-राह ।
बनाया कल का वानर-क्षुद्र,
आज का राम-सखा कपि-नाह ।।

बना भी दूं यदि निज तन-चर्म,
तुम्हारे प्राणाधिक ! पद-त्राण।
तुम्हारे उपकारों से उऋण,
न होंगे तब भी किंचित् प्राण।।

एक ही तुमसे विनय सुमित्र !
न बिसरा देना मेरा ध्यान।
कराते रहना प्रभु को स्मरण,
भीख समझो या दो वरदान।"

"अबल भू-भुजग-भाल पर नाथ !
न डालो भव्य-भूमि का भार।
आपको प्रायः कर प्रभु स्मरण,
बहाया करते हैं जलधार।।

न गाते लखन-जानकी मात्र,
अवध में तव सुकीर्ति के गीत।
प्रभाती के अविभाजित अंग,
नित्य बंदी गाते सप्रीत।।

नहीं विश्वास, नाथ! निज श्रवण —
श्रवण करना प्रातः-संगीत।
राम-रघुपति प्रशस्ति से पूर्व,
गूँजती तव जय, यहाँ सु-रीत।।"

"अवधपति की अनुकम्पा अमित,
सजाया कीट, किरीट स्वभाल।
न देखा, दोष स्वप्न में एक,
निभाया लघुता-प्रभुता काल।।

बितादी वर्षा-शरद् समस्त,
भुला सिय-सुधि हो भोगासक्त।
गया जब, वही अभय-कर उठा,
वही वाणी बोले विश्वस्त।।

आज भी दिया वही सम्मान,
न माना मन में लघु-आधीन ।
प्रफुल्लित उठे, मुदित-मन मिले,
किया हर्षित स्वासन आसीन ।।

चला था जिसका लेने पक्ष,
लखा वह लंकेश्वर निर्भीत ।
सोचता हूँ, क्या कारण कहूँ,
आगया क्यों, कैसे अविनीत ।।

भेंट से पहिले जाऊँ भाग,
विचारेंगे क्या रघुकुलनाथ ।
भेंट यदि करूँ, कहूँ क्या हेतु,
उठेगा कैसे सम्मुख माथ ।।

फँसा कैसी द्विविधा में हाय,
विकट-संकट में हूँ निरुपाय ।
विचारो तो कुछ निश्छल-युक्ति,
मान के साथ मान रह जाय ।।"

हँसे मन ही मन में हनुमान,
"न माये ! कोई तव उपमान ।
ईश का अंश दीन यह जीव,
बनाया वक्र भुजंग समान ।।

स्वप्न में भी रिपु तक का नहीं,
गिराया जिन रघुपति ने मान ।
रचाकर निश्छलता का स्वांग,
चला छलने वह, वे भगवान ।।"

प्रकट बोले, मुद्रा गंभीर,
हाथ में ले कपिपति का हाथ ।
"युक्ति है एक, कहें कर-बद्ध,
पधारें किष्किधा रघुनाथ ।।"

"बात बन गई, बात बन गई,"
दबाकर बोले कपिपति हाथ ।
"चलो हनुमान ! चलो प्रिय-सखा !
बाट लखते होंगे रघुनाथ ।।"

सुभट दिग्विजयों से किलकार,
चले कपि-युगल दिये गल-बांह ।
विराजे अंत:पुर में जहाँ,
जानकी सहित जानकीनाह ।।

मिले पथ में त्रिबंधु-लंकेश,
विहँसते पहुँचे प्रभु के पास ।
नमन कर कीं आसन्दी ग्रहण,
जानकी बोलीं मंद सुहास ।।

"कुशल हैं सरमा-त्रिजटा सखीं,
सुभद्रा मंदोदरी-शरीर ।
न्यून की कुछ औषधि ने व्यथा,
घाव तो नहीं अधिक गंभीर ।।"

"काल की डाढ़ हिँडोले डाल,
झूलते वे निश्शंक त्रिकाल ।
राजरानी - राजेश्वर जिन्हें,
कृपा से करते रहें निहाल ।।"

"और कपिनाथ ! आपके यहाँ,
रुमा-तारादि देवियां मुदित ।
मिलीं इन दिनों अंजनी अंब,"
पूँछते हुए, हुआ चित व्यथित ।।

एक ही साथ सभी की दृष्टि,
उठी अंजनीलाल की ओर ।
ओष को करते कोष विलीन,
भोर के कमल, सजल सी कोर ।।

अन-दिखी सी कर मारुति-दृष्टि,
जान प्रिय-मन बोले रघुनाथ ।
"अंजनी-अंबा के पद-पद्म,
न छू पाये ये श्यामल-हाथ ।।

और छूते भी तो किस भांति,
भुला ही जब बैठे कपिनाथ ।
भूलना इनका आदि-स्वभाव,
न होती प्रकृति किसी के हाथ ।।"

लखन से मिलतीं-मिलतीं पलक,
गिरीं प्रभु की बिखराती हास ।
पवनसुत ने धीरे से चरण-
दबाया कपिपति के हो पास ।।

"छीन ली मेरे मुख की बात,"
तुरत बोले चैतन्य कपीश ।
'अंब-दर्शन के साथ पुनीत—
करें निज किष्किधा अवनीश ।

विनय करने मैं केवल यही,
उपस्थित हुआ यहाँ रघुनाथ ।
दास पर कृपा, स्व-प्रण की पूर्ति,
करें प्रभु ! प्रिय-परिजन के साथ ।।"

विभीषण बोले "हाँ, प्रभु करें,
कपीश्वर-आवेदन स्वीकार ।
पुरानी परम्परा निज निभा,
करें फिर लंका का उद्धार ।।

हँसे, लख वैदेही को राम,
हँसीं कुछ वैदेही लख राम ।
झांक अन्तर में पवनकुमार,
रह गये खींचे प्राणायाम ।।

लगे लखने आतुर प्रिय-युगल,
झुकाये पलक रहे त्रय-भ्रात ।
उठाकर दृग बोले रघुनाथ,
"समझ में सकल आ गई बात ।।

बंधुओ ! कहो चलोगे कौन,
करो वैदेहि ! तुम्हीं निर्देश ।"
भरत-दिशि करतीं मृदु संकेत,
सकुचतीं सिमटातीं परिवेश ।

जानकी बोलीं शोभा अमित,
श्याम के संग पधारें श्याम ।
जहाँ प्रभु आप, वहीं हनुमान,
विश्व-विख्यात सुमंत्र-ललाम ।।

और क्या कहे किंकरी दीन,
कौतुकी कर दोगे परिहास ।"
"तवेच्छाधीन किया या नहीं,
पार कर सागर लंक-प्रवास ।।"

"सत्य है सत्यवादि-कुल-पुत्र,
असत कह कर क्यों बनूं असत्य ।
आपसे छिपा कौन-सा तत्व,
छिपाऊँ कह कर जिसको तथ्य ।।"

दिव्य-दम्पती दृष्टि की दिव्य—
दिव्यता कौंधी सबकी दृष्टि ।
पुनः माया-पट लिपट विराट,
लगे करने मर्यादा-सृष्टि ।।

"सखाओ ! शिरोधार्य तव कथन,
किंतु रघुकुल, कुलगुरु-आधीन ।
चलो, आते होंगे गुरुदेव
उठे सब प्रभु सह प्रभु-लवलीन ।।

पधारा तुरत सकल रनिवास,
हुए प्रभु खड़े, मंत्रगृह-द्वार ।
दिखे स्यन्दनारूढ़ गुरुदेव,
प्रकट ज्यों ब्रह्म-तेज साकार ।।

भरे गंभीर-मृदुल मुस्कान,
राम के नतस्कंध रख हाथ ।
भगवती अरुन्धती के साथ,
पांवड़ों पर उतरे मुनिनाथ ।।

दंड-वत् गिरे भूमि पर सभी,
उठे, पाकर प्रमुदित आशीश ।
लगाये हृदय, कुशलता पूँछ,
पुनः मुनि ने लंकेश-कपीश ।।

विराजे उच्चासन गुरुदेव,
पार्श्व वधु अंबाओं के साथ ।
धरा पर बैठे सचिव-कपीश—
विभीषण-अनुजों सह रघुनाथ ।।

सुनाने मुनिवर लगे पुराण,
लगे सुनने सब सुरुचि समेत ।
"कहो प्रिय ! कहो" समुन्नत हुए,
देख रिपुसूदन नयन स-हेत ।।

"क्षमा करना-अविनय गुरुदेव !
आज आश्रम पर प्रातः काल ।
हुए किस भव्य-विभाव विभोर,
लगे जब हृदय अंजनीलाल ।।

आपकी देखीं छवियें अमित,
आज तक देव ! अनेकों बार ।
आज का सा विह्वलता-विभव,
अलौकिक - अद्भुत - अपरम्पार ।।

न देखा जगती-तल में कहीं,
आप में लखा आज जो राग ।
अकथ-अनुराग अपूर्व-विराग,
अलौकिक संगमराज प्रयाग ।।"

"सत्य है, सत्य-सत्य प्रिय-वत्स !
अलौकिक रागराज वह राग ।
न उपमा, नोपमेय-उपमान,
अनोखा अद्भुत प्रेम-प्रयाग ।।

जहां पर ऊँच-नीच द्विज-शूद्र,
गृही-तापस स्त्री-पुरुष अभेद ।
एक दिन फँसा एक पल भूल,
रहेगा प्रलय-प्रलय तक खेद ।।

हटा मैं निज गुरु-पद से तनिक,
भरत का तुरत हुआ अधिकार ।
उठाकर अमित-हानि अग्लानि,
हृदय की सही उचित दुत्कार ।।

न गुरुता है पैतृक संपत्ति—
किसी की, समझा उस दिन मर्म ।
जन्मना कोई गुरु-लघु नहीं,
सभी का है निर्माता कर्म ।।

शुभाशुभ उचितानुचित सुवत्स !
पाप क्या पुण्य, पुण्य क्या पाप ।
ज्ञान की है अतिशय गति सूक्ष्म—
सतत-चिंतन जिसका परिमाप ।।

कनक-कुंडल तिल-तंडुल न्याय,
सर्वथा तात ! यहाँ अग्राह्य ।
सूक्ष्म कुछ नीर-क्षीर सुविवेक,
अन्ततः वह भी रहता बाह्य ।।

पुष्प की गंध, गंध का पुष्प,
कार्य कारण का मात्र विकार ।
अमर आत्मा है देहाधीन,
कि करती है स्वातंत्र्य-विहार ।।

अप्रभावित है यदि वह सदा,
प्रभावित क्यों उससे आधार ।
गगन का मुक्त विहग किस हेतु,
देह-पिंजरे करता स्वीकार ।

कर्म करने में जीव स्वतंत्र,
भोगने में फल, क्यों न स्वतंत्र ।
जीव-माया ईश्वर के अंश,
पृथक दोनों के हैं पर तंत्र ।।

नियामक यदि दोनों का एक,
विधा क्यों विविधा न्यायान्याय ।
सृष्टि-संचालन के ये कर्म,
कर रहा है क्या, ईश-निकाय ।।

प्रश्न फिर गुरुतम ईश्वर कौन,
तुरत प्रत्युत्तर होते मौन ।
मूढ़ सा रह जाता है जीव,
कह रहा कौन, सुन रहा कौन ।।

भ्रांतियों भरा, क्लान्तियों भरा,
विजन में रोता जीव अनाथ ।
बनाने को तब उसे सनाथ,
अचानक कौन थामता हाथ ।।

ईश वह यदि, अपने से विमुख,
कभी क्यों करता अपना अंश ।
ईश वह यदि न, ईश से अधिक—
कौन करता, ईशांशी ध्वंस ।।

कहें यदि, यह माया का खेल,
देखता क्यों तटस्थ बन ईश ।
कहें क्या पातिव्रत्य स्वातंत्र्य,
ईश पृथका माया कि निरीश ।।

पृथक यदि दोनों का अस्तित्व,
पृथक दोनों की कलित-किलोल ।
कर रहे पदाघात ये क्रूर,
जीव को बना स्वकंदुक गोल ।।

हुआ फिर सर्वाधिक अन्याय—
केन्द्र यह आस्तिक जन का ईश ।
नास्तिकों की अमान्यता श्रेष्ठ,
उचित ही त्रिभुवन रहे अनीश ।।

कल्पना आगम - निगम-पुराण,
लोक-परलोक पुण्य औ पाप ।
पुनः मानव-दानव के भेद,
नष्ट ही होते अपने आप ।।

जिसे जो भाये, वह ही पंथ,
न कोई पंथ सुपंथ-कुपंथ ।
भोग हित मनुज, मनुज हित भोग,
भोग का जो शिक्षक, वह ग्रंथ ।।

वस्त्र फिर लोक-लाज हित कहाँ—
प्रदर्शन जग-वैभव के मात्र ।
सदन-कंदरा, नगर-वन विजन,
अभक्ष्य कि भक्ष्य पंक या पात्र ।।

अर्चना - अविनय मानव-कीट,
प्रसवनी-तनुजा तिया समान ।
मिलेगा न्याय-नीति-यम-नियम—
धर्म को कहां धरा पर स्थान ।।

इंद्रियाँ लोक, भोग परलोक,
देह ही सृष्टि, प्रलय ही अंत ।
कार्यक्रम इस जीवन का यही,
जन्म से मृत्यु-काल पर्यन्त ।।

देव-दुर्लभ इस तन के मात्र,
श्वान-शूकर-खर ही आदर्श ।
सकल अन्वेषण - अनुसंधान—
व्यर्थ वैज्ञानिक चरमोत्कर्ष ।।

सत्य क्या, सत्यातय असत्य,
परे इससे भी कोई सत्य ।
ज्ञान - विज्ञान - बुद्धि - मन - चित्त,
तर्क - परिमाण-प्रमाण अगम्य ।।

चले ज्यों-ज्यों सुलझाने विदुष,
उलझती त्यों-त्यों गई प्रहेलि ।
काल ने बुना, गुणों का जाल,
ग्रंथि कस गई बुद्धि की केलि ।।

लिये अनखुली-अधखुली दृष्टि,
तर्क-बैसाखी पथ-अनुमान ।
न पाकर लक्ष्य 'नेति' कह मौन,
गिरे पथ-कुपथ पराजय मान ।।

सिद्ध-ऋषि गण की दुर्गति देख,
हृदय के कोमल वज्राधार ।
कह उठे कागभुशुण्डि-प्रवीण,
ज्ञान का पथ कृपाण की धार ।।

तनिक पग बिचला, फिसला जीव,
हुआ खंडित अखंड का खंड ।
शून्य में झोंका खाकर एक,
नीड़ के सहित नभग का अंड ।।

फूटता पल में गिर कर भूमि,
बिलखता खग अ-गेह निर्वंश ।
धूल की चिर-समाधि में लीन,
अचेतन होते अंशी-अंश ॥

उठाकर ज्ञान-ग्रीव गति गर्व,
उड़ो मत व्यर्थ, असीमित व्योम ।
प्रसवनी भक्ति-कृपा से जीव !
देख निज करतल पर रवि-सोम ॥

दोहा

जहाँ पतन का भय नहीं, झंझा मंद बयार ।
भूमि-डोल डोले बने, प्रलय-पयोद फुहार ॥

प्रकृति-प्रतिकूल चित्त-अनुकूल,
मृदुल-मंजुल करती व्यवहार ।
अलख-अविचल-अगम्य वह ईश,
जहाँ सम्मुख होता साकार ॥

जीव के होकर मनोनुकूल,
नाचता-गाता फिरता साथ ।
हँसी में हँसता, रोता रुदन,
अज्ञ सा डाल हाथ में हाथ ॥

ज्ञान का स्ववश, प्रेम से स्ववश,
भक्ति का चमत्कार प्रत्यक्ष ।
नाचता निर्गुण पवि सा निठुर,
दारु-नर सा रति-तंतु समक्ष ॥

किसी से कहता गुरु-पितु-मातु,
किसी को बंधु-पुत्र-प्रिय प्राण ।
किसी पर मधुर-माधुरी डाल,
किसी पर करता शर संधान ॥

वेद का निराकार-अविकार,
एक होकर स्वरूप बहु धार।
भावना का अंतर-स्वर निरख,
किया करता तत्सम व्यवहार॥

स्वयं जल निर्मल-शीतल-धवल,
किंतु पा धरा-धूलि का संग।
बदल लेता तुरंत निज स्वाद-
गंध-गति - रीति - रूप - स्वर-रंग॥

सरलता भरा, अमलता भरा,
स्नेह का सा अक्षय-भंडार।
ज्ञान की चट्टानों को चीर,
लहरता है वह नीलाधार॥

असह :सा उसका प्रखर-प्रवाह,
न सह पाती अनम्र-तरुमाल।
बहाता काम रसाल स्ववेग,
ढ़हाता अश्रम द्वेष तमाल॥

गिराता लोभ ढाक-वट-निंब,
स्वयं ही गिर जाता व्यथि ताल।
लोटते मोह शिशुपा-वृंद,
न रह पाते दृढ़ मत्सर साल॥

किंतु इस प्रेम-प्रलय में अभय,
झुकाये क्षीण-लचीली देह।
अकेला अ-फलफूल निष्काम,
खड़ा रह जाता वेत्र स्वगेह॥

लगाना पर ज्यों इसमें व्यर्थ,
वेग पर, पक्षपात-आरोप।
वेत्र का मात्र समर्पण-भाव
वेग की करता प्रकृति विलोप॥

वेत्रवत् ईश्वर-प्रति निज अहं,
समर्पित करते जो सुविनीत ।
परम सौभाग्यवान वे जीव,
हृदय ईश्वर का लेते जीत ।।

बाधिका नहीं, साधिका बनी,
चारिका, मुदित-मातृका वेष ।
महामाया ईश्वर के शेष—
अंश को, देती बना अशेष ।।

देव दुर्लभ पदार्थ वह मोक्ष,
न करता चतुर-जीव स्वीकार ।
कमल-पल्लव सम रह कर विलग,
भोग-सर में पाकर विस्तार ।।

लहरता रहता, किंतु न लहर—
एक भी छू पाती है अंग ।
खिलाये रखती सदा सयत्न,
सूर्य-प्रभु पद रति-दीप्ति अभंग ।।

भक्ति रूपा माया भगवती,
हटकती दुरित द्विरद दुर्दान्त ।
प्रेम सर का शुभ वातावरण,
न होने देती कभी अशांत ।।

मनीषी मुनि यदि कोई कभी,
भावना लेकर परम-पुनीत ।
याचना करता, पूजन निमित,
सौंप देती स्वयमेव स-प्रीत ।।

खिला जाता, जाने से पूर्व,
किंतु वह कमल, कमल कुल विपुल ।
लौटता जग का कर कल्याण,
पुनः अधिकाधिक प्रमुदित स्वकुल ।।

मोक्ष विश्रामस्थल अविवाद,
न यों पर यह संसृति सविषाद ।
न यह क्लेशों का करुण-निनाद,
सृष्टि-कर्ता का यह जय-नाद ।।

विश्व यह, कर्ता की कृति श्रेष्ठ,
भागते केवल जो भग्नाश ।
वही भग्नाश, न भगवत्-हेतु-
हृदय में जिनके दृढ़-विश्वास ।।

बिना श्रद्धा कैसा विश्वास,
बिना विश्वास असंभव प्रीति ।
सत्त्व-मय जहाँ प्रीति महनीय,
वहाँ पग-पग रमणीय प्रदीप्ति ।।

जहाँ पर हो प्रदीप्ति रमणीय,
वहाँ कैसे, किसको वैराग्य ।
किंतु फिर भी दुर्दैव-विपाक,
कहीं हो तनिक उदित दुर्भाग्य ।।

पाप कौटिल्य, क्रूर कालुष्य,
बने मानव, दानव साकार ।।
सच्चिदानंद अवेष अशेष,
ग्रहण करता विधि-विधि अवतार ।।

प्रार्थनायें तत्हेतु निमित्त,
न कारण, केवल मात्र निमित्त ।
जितातीं वे, विराट तव चित्त—
हेतु अर्पित हम सब का चित्त ।।

बना अब तक न दृष्टि का विषय,
स्वामि सक्रीय, दास निष्क्रीय ।
उतरते भक्ति-युक्त वे जीव,
ईश के जो हो चुके स्वकीय ।।

अग्रमामी अनुगामी बने,
बना लीलानुसार सम्बन्ध ।
सिद्ध भी समझ न पाते सहज,
जीव-ईश्वर का यह अनुबंध ।।

कहीं पूज्यातिपूज्य, संकुचित,
कहीं अधमाधम निस्संकोच ।
कहीं साथी-संघाती मुदित,
कहीं विरहाकुल विकल स-सोच ।।

गिरा वह, वेद-विज्ञ विद्वान,
बुद्धि को गँवा, न पायें अर्थ ।
रूप वे, यदि उनके अनुरूप—
समझ लें समझो सकल अनर्थ ।।

नाट्य वह, नाटक के नट अमित,
सिमट रह जायें ठाट समेट ।
सिद्धि वह, साधनहीन-मलीन—
बना दें सिद्ध-शिरोमणि, भेंट ।।

बना दे क्यों न, न कुछ आश्चर्य,
ईश से दीप्त ईश के अंश ।
न खाते, सिंह मांस उच्छिष्ट,
न चुगते, अन्न बुभुक्षित हंस ।।

उन्हीं में से यदि कोई मिले—
भाग्य, सौभाग्य मिले पहिचान ।
घोर-दुर्भाग्य, जान कर सत्य,
सकुचवश रह जाये पाषाण ।।

परम सौभाग्य, मिले फिर भाग्य,
गँवायेगा दुर्भागा कौन ।"
हुए गद्-गद् गुरु ज्यों सुरसरित,
जन्हु के हुई उदर में मौन ।।

केकई बौली, "फिर गुरुदेव,"
"राजमाते ! फिर क्या संवाद ।
ग्रा गया चित्रकूट-पथ याद,
साथ ही आया याद निषाद ॥

प्रेम की मूर्ति, विनय की पूर्ति;
नीति-माला का सगुण सुमेरु ॥
भक्ति के दिव्य शरद्-दिवसीय,
भव्य-सर का सुकुमार पखेरू ॥

देवसरि-तट का वह मल्लाह,
धर्म का अकलुष कुलिश-सनाह ।
समुज्ज्वल हृदय, स्वल्प से शब्द,
धेनु-मुख का तन्वंग-प्रवाह ॥

मिला जब शृंगबेरपुर निकट,
धरा पर गिर कर किया प्रणाम ।
गिरा बैठी ग्राशिष दे मौन,
हृदय बोला "देखा रवि-धाम ॥"

कहा मन में "चल मज्जन करें,"
चित्त बोला "हाँ, है तो ठीक ।"
बुद्धि बोली "विचार लो विप्र,"
अहम् बोला "सर्वथा अलीक ॥"

इसी असमंजस घिरा वशिष्ठ,
भरत ने पूँछा "ये हैं कौन ।"
"राम का सखा" मात्र कह गिरा,
दबी गुरुता-गौरव-शिल मौन ॥

भरत तो राम-सखा सुन, दौड़—
मिले भर भुजा, यान को त्याग ।
निमिष में यमज सहोदर बने,
ठगा सा ठोंक रह गया भाग ॥

लजाया लोक-लाज वश रहा,
लजाता रहा हृदय सग्लानि ।
न भेंटा राम-भद्र का सखा,
लाभ में बदले कैसे हानि ।।

हुई अन्तर्यामी की कृपा,
सुनी अंतर की करुण-पुकार ।
बना बानक पहिले से श्रेष्ठ,
मिले जब राघव पहली बार ।

तुम्हें शत्रुघ्न ! छोड़ सिय पास,
भरत-लक्ष्मण को ले रघुनाथ ।
पधारे अगवानी के हेतु,
सखा गुह लगा साथ ही साथ ।।

सभी की भांति, सभी के साथ,
पुनः वह करने लगा प्रणाम ।
मुझे आते लख अपने पास,
सुनाने लगा विनय-वश नाम ।।

लगा हटने, बचने के निमित,
जान ऋषि केवल मुझे पुनीत ।
लगा मैं भी बढ़ने उस भांति,
क्योंकि उस क्षण था स्वयं सभीत ।।

लोक-लज्जा की प्रस्तर-भित्ति,
खिलखिला बिखरी होकर खील ।
किंतु समझा निषाद, यह वृद्ध –
आ रहा, कुछ परिचय में ढील ।।

सुनाने लगा पुनः निज नाम,
जाति-वंशावलि फिर निज ग्राम ।
स्नेह ही जिस क्षण हो दिख रहा,
नाम-कुल से उस क्षण क्या काम ।।

लपक कर लिया हृदय से लगा,
बुझ गई युगों-युगों की प्यास ।
रत्न का मूल्य मिले शतगुणा,
कौन जौहरी फिर रहे उदास ॥

अलौकिक सा वह गुह का प्रेम,
बना गुह की प्रतिमूर्ति समान ।
हुआ फिर आज उदय मम पुण्य,
हुई स्मृति जागृत लख हनुमान ॥

उसी दिन सम भूला शत्रुघ्न !
सकल मर्यादायें मैं आज ।
दक्षिणाजीवी उपरोहित्य,
दक्षिणा-दिया स्नेह रघुराज ॥

न कर स्वीकार, करूँ क्या कहो,
विमल इस रवि-रवि का अपमान ।
मुझे तो इस घर कीधूलि भी,
शंभु की विमल-विभूति समान ॥

यहाँ का पद्मयोनि ने किया,
पुरोहित जिस क्षण मुझे नियुक्त,
कहा, 'यह कहाँ पुरोहित कर्म,
कहा मैं जगत-प्रपंच-विमुक्त' ॥

'न कर तू किंचित् सुत ! संकोच,
मुक्ति की होगी जहाँ विमुक्ति ।
ब्रह्म लेगा जिसमें अवतार,
उसी कुल-हित तव वत्स! नियुक्ति' ॥

भक्ति-सर सरस निमज्जन हेतु,
चला यह साथ वेद-विज्ञान ।
पृथक हैं भक्ति ज्ञान, वे अज्ञ,
अज्ञता-वश जो बैठे प्रान ॥

ज्ञान के बिना मूर्खता भक्ति,
भक्ति के बिना अचेतन ज्ञान ।
परस्पर ये परिपूरक-रूप,
नाम वास्तव मैं इनका प्राण ।।

भक्ति है ज्ञान गगन की क्षितिज,
भक्ति भू का सुमेरु है ज्ञान ।
ज्ञान है वेदों का उत्थान,
भक्ति है वेदों की पहिचान ।।

ज्ञान आधार, भक्ति है शिखर,
भक्ति सरसिज, सुरभित-सर ज्ञान ।
भक्ति है श्रद्धा दाक्षायणी,
ज्ञान विश्वास शंभु भगवान ।।

ज्ञान है नेत्र, भक्ति है ज्योति,
भक्ति है गंध ज्ञान है घ्राण ।
ज्ञान है रत्न, भक्ति है मूल्य,
भक्ति है सुपथ, पथिक है ज्ञान ।।

भक्ति है परब्रह्म का हृदय,
ज्ञान है परब्रह्म की बुद्धि ।
सारतः यह अपृथका - केलि,
विशिष्टाद्वैत प्रकार विशुद्धि ।।

ज्ञानलय सविनय, विनिमय भक्ति,
समर्पण एक, समर्पित एक ।
युगल का सूक्ष्म भेद दे दिखा,
सहज ही सुलभ न वह सुविवेक ।।"

मौन दो क्षण हो बोले पुनः
"दिखे गुह इसके परमादर्श ।
गहन धारा, फहरा पतवार,
पा लिया जिसने चरमोत्कर्ष ।।

त्रिवेणी नपी इधर इस ओर,
त्रिवेणी नपी उधर उस ओर—
छोर क्या थमा इधर, उस ओर,
हुश्रा प्रत्यक्ष, प्रतीक्षित छोर ।।

इधर दी कुल को आजीविका,
किये जीवित कुरु के कुल उधर ।
एक दो-भुज वाले ने किये,
चतुर्भुज-रूप निकर के निकर ।।

जगत ने सींची जिसकी छांह,
जगत की सींची उसने छांह ।।
घृणा-गिरि से क्या देखा कहीं,
स्नेह का ऐसा सरस प्रवाह ।।

ज्ञान के यंत्र-छिद्र में लगे,
भक्ति-कुंजी हिय-छवि अनुसार ।
मान तज मुक्ति-कामिनी मुदित,
खोलती कलुष-कुलिशमय द्वार ।।

भक्ति का अपरम्पार प्रभाव,
ज्ञान का अ्रपरिमाण शृंगार ।
विनय-मय स्व-कर्तव्य निर्वाह,
कीट को करती कमलागार ।।

न झुलसा तनिक, न दुर्बल हुश्रा,
दिव्य दनुजास्त्रों से जो कल्प ।
अमृत-सिंचित वह मृत-वत् हुश्रा,
नहुष सा धीर, अहंकृति स्वल्प ।।

इन्द्र के शीर्षासन से गिरा,
इन्द्र, शीर्षासन से इहलोक ।
कल्पतरु-कामधेनु हो मौन,
पतन को तनिक न पाये रोक ।।

अहम् की इसी भीति से भीत,
मनीषी रहते, लखकर ज्ञान ।
पिये पय, लगा भक्ति के हृदय,
कौन निर्भय फिर ज्ञान समान ।।

ज्ञान का प्रखर-खड्ग ले हाथ,
भवानी-रूप भगवती-भक्ति ।
चढ़े श्रुति-सिंहस्कन्ध, सशक्त—
न सम्मुख टिकती तमसासक्ति ।।

धूम्रलोचन मद, मोह निशुंभ,
शुंभ ही काम रूप साकार ।
लोभ ही रक्तबीज दुर्दान्त,
चंड-मुंडादि क्रोध परिवार ।।

इन्हीं के मुंडों की उर माल,
अहं का खंडित हाथ कपाल ।
कुटिल-खल-दंभ तरल बन भरा,
सरल-अनुराग-रंग रँग लाल ।।

कहीं जगदम्बा पीती रक्त,
दिखाती रीती जीभ निकाल,
विश्व से खप्पर में विश्वास—
मांगती, बना साक्षि शशिभाल ।।

लगा हिम-शैल-बालिका-भाल,
कालिकापन ज्यों क्रूर-कलंक ।
श्याम-श्यामता हृदय में देख,
मूढ़ ही कहते मलिन मयंक ।।

शुष्क ज्ञानी त्यों कहते भूल,
भक्ति में भरा निरा पाखंड ।
भक्ति की ओट बरतते अनय,
दुष्ट-अहिरावण से उद्दंड ।।

स्वयं पातालवासिनी उन्हें,
दंड देने के हित पाताल ।
धँसा करती, उन ही की अग्नि—
चाटती, उनका कटा कपाल ।।

तमिस्राकृति करती भक्ति की,
कुकृत-रत कुमति, तमोमयि-वृत्ति ।
न फँसती कभी सुमति इस व्यूह,
कुमति की ज्ञानद्वार निवृत्ति ।।

दुराने को निज दुर्गुण कुटिल,
दिखाने को सद्भावासक्ति ।
भुलाने को जग, कहते नीच,
'हमारी भक्ति, तामसी भक्ति'।।

सूर्य तो क्यों तम का अस्तित्व,
चन्द्र तो कैसी तपती वायु ।
सत्य चिंतामणि, क्या दारिद्रय,
सिद्ध-रस तो असिद्ध क्यों आयु ।।

अचलता अंगद-पद पर्याय,
शेष कपि, शेष शेष में प्राण ।
तभी तक वैदेही वंदिनी,
वंदि-गृह जब तक राघव-बाण ।।

इसी विधि तथ्य समझलो वत्स !
ज्ञान से शून्य कदापि न भक्ति ।
विभासित जिससे ज्योति समस्त,
ज्ञान वह ईश्वर की अभिव्यक्ति ।

उसी की छवि, ऋतु भेद-विभेद,
ज्योति की ज्योतिर्मय सुज्योति ।
सामने जिनके रवि-शशि राशि,
मात्र लगती क्षुद्रा खद्योति ।।

कौन वह दो सिर वाला तमस,
डटे इस महा-ज्योति की राह ।
कौन सा भैरव का वह श्वान,
सुलाये मृ.पति-वधु निज बाँह ॥

तामसी कभी न होती भक्ति,
तमसघातिनी तामसी-भक्ति ।
उसी की परम-शक्ति की लखी,
चर्म-चक्षु से दिव्य अभिव्यक्ति ॥

ज्ञान-भक्ति का सु-संगमराज,
लगा संगम का सत्य निषाद ।
भरा आल्हाद कर रहा कर्म,
मानकर संचित-कर्म-प्रसाद ॥

शब्द क्या, अनायास कर रहे,
नृत्य ज्यों श्रुतियों के सिद्धांत ।
विनय क्या, तुली ताल दे रही,
शक्ति साकार स्वयं अश्रांत ॥

कर्म क्या, सकल सनातन धर्म—
खड़ा बन कर सुकर्म का दास ।
रूप क्या, ज्यों झाड़ी में छिपा,
क्षुद्र सा बेर सकेर मिठास ॥

आज फिर प्रातः उसकी याद—
आ गई, लख मारुति को पास ।
रूप कुछ बदले, वह ही रूप,
वही श्रद्धा, शाश्वत् विश्वास ॥

स्नेह निश्छल, निश्चल उत्साह,
भावना का निर्मल आवेग ।
ज्ञान-विज्ञान अभेदा - भक्ति,
नम्रता-वश लौटाना नेग ॥

वस्तुतः दिव्य-लोक के शुद्ध,
जीव ये, कर्म-कुबंधन-क्षीण ।
धरा पर अवतारों के साथ,
उसी विधि आते उतर प्रवीण ।।

व्यवस्था-रक्षण हित जिस भांति,
अधीक्षक जाते कारागार ।
ज्ञान के स्थूल नियम से परे,
हृदय का सूक्ष्म-स्वभाव निहार ।।

मुक्त होतों को करते बंदि,
बंदि को करते क्षमा प्रदान ।
ज्ञान से पृथक, एक है और,
सूक्ष्म-अति प्रिय ! विज्ञान-विधान ।।

कोटि गोदान किया प्रति-दिवस,
गिरे फिर भी नृप गिरगिट-योनि ।
चढ़ गई गणिका सजे विमान,
रह गई खड़ी देखती क्षोणि ।।

गाधि-सुत श्वान-मांस हित चले,
बरसने लगे तुरन्त पयोद ।
अजामिल की क्षीणध्वनि हुए,
क्षीण यम-दूतों के उद्योग ।।

विचारो, स्थूल-दृष्टि से सभी,
सिद्ध होते ये यदपि न न्याय ।
किंतु ये सत्य-न्याय के प्राण,
चित्त-चेतना-अहम् समवाय ।।

कर गया दूषित पुण्य-प्रसाद,
नृपति नृग का विष रूप प्रमाद ।
निराशा का विक्षिप्त विषाद,
दे गया गणिका को आल्हाद ।।

ग्लानि से भरा गाधि-सुत दैन्य,
द्रवित दुर्दैव हो गया देख ।
नाम का अविनाशी-संस्कार,
विपल में लीला भाल-कुलेख ।।

बाह्य भूषा-भाषा पर गये,
समझ लो सर्वनाश है पास ।
गुणों के अस्ताचल ये, जहां—
श्रांत-सिद्धांत - तिमिरहर - वास ।।

कहाँ रवि का सुयोग्य शिष्यत्व,
कहाँ भग्नाश-मीत साचिव्य ।
कहाँ पूरे पुर का प्रद्दहन,
कहाँ कुछ संरक्षण दायित्व ।।

कहाँ यह ललित-कला-कुल ज्ञान—
कहाँ वह प्रलयंकर-संहार ।
कहाँ ये क्षीण-सूक्ष्म से वचन,
कहाँ वे नभ-भेदी हुंकार ।।

कहाँ ये नमित-नयन अध-खुले,
कहाँ वह उठी हुई लांगूल ।
न पड़ते ताल-तलैया भँवर,
अजाखुर-अवटी का क्या कूल ।।

लहरती सिंधु - गामिनी सरित,
सिंधु में रत्नों की व्युत्पत्ति ।
स्वल्प में, महापुरुष ये वत्स !,
सगुण की गुणातीत निष्पत्ति ।।

करें किस मरुस्थली को तरल,
बांध दे किस सागर पर सेतु ।
ढूढ़लें किस निर्जन में स्वजन,
त्याग दें कौन स्वजन किस हेतु ।।

छीन लें किसका पैतृक-छत्र,
सजा दें कब किरीट से कीट ।
करादें किस लोमश का अंत,
काल कब लीलें, कृपा-कृपीट् ।।

इन्हीं राघव की महिमा अमित,
जान पाये, समर्थ वह कौन ।
वाणियां विविध भाँति की बांट,
सुन रहे स्वयं धार कर मौन ।।

सहायक नर-लीला के आप,
भाग्य-शाली हो जीव विमुक्त ।।
जानते उतना आप स्वरूप,
चाहते ये जो रहे न गुप्त ।।

इन्हीं सम आप सभी की तात !
अमित-माया का है विस्तार ।
दिव्य-गन्तव्यस्थल से आप—
उतर आये, ये लाए उतार ।।"

हुई गुरुवर की गद्-गद् गिरा,
गिरा का स्वकर सिरा सा थाम ।
"पधारे ये लंकेश-कपीश,"
कह उठे धीरे से श्री राम ।।

'विदित लंका-लंकेश प्रसंग,
सुने न्यायाधीशों की बात ।
ध्यान दें, क्यों लंका में हुआ,
अकल्पित-अद्भुत यह उत्पात ।।

और कारण हों कितने, किंतु—
प्रगट कारण तव-निर्मित सेतु ।
मित्रता उचित, न अनुचित परिधि,
युगल सोचें युग-युग के हेतु ।।

मुझे था करना बस संकेत,
विचारें समुचित आप उपाय ।।
"विनय, यदि दें आज्ञा कुछ आर्य !"
"झुका मस्तक बोले कपिराय ।।

"कहो कपिपति" बोले मुनि-श्रेष्ठ,
'करें नृप, दास-कुटीर सनाथ ।"
"उचित ही है जायें रघुनाथ,
धर्म-नय-निपुण भरत के साथ ।।

युगल सौमित्रि सम्हालें अवध,
न बाहर अब तक सके पधार ।"
केकई बोली "चौदह वर्ष,
हुआ बाहर ही का उद्धार ।।"

राम बोले "माँ ! आकर शीघ्र,
करूँगा तव पद-पंकज नमन ।"
कहा मुनि ने करना है तुम्हें,
शीघ्र ही अश्वमेध का यजन ।।

अतः उसका आकार-प्रकार,
हृदय निर्धार, प्रचार-प्रसार ।
निमंत्रित करते आना राम !,
सभी को यथा-योग्य सत्कार ।।"

उठे गुरु, उठे नमन हित सकल,
चले गुरु आश्रम, दे आशीश ।
गया महिलामंडल रनिवास,
निजासन फिर बैठे जगदीश ।।

"लखन ! शत्रुघ्न सहित तुम बंधु,
सम्हालो सकल राज्य का कार्य ।
मंत्रिपरिषद् - मातायें तथा,
शीश पर अभय-छत्र आचार्य ।।

युगल हो बुद्धिमान नय-निपुण,
अधिक समझाना तुमको व्यर्थ ।
मात्र इतना ही मित्र-अमित्र,
करें रघुवंश राम का अर्थ ।।

विविध-विधि भावी-मख की सकल,
रूप-रेखा विचार रघुनाथ ।
सांध्यकृत हेतु उठे अवधेश,
सचिव-परिषद् अनुजों के साथ ।।

लौटकर अंतःपुर में मिले,
नृपति से मुदित एक ही संग ।
पधारे भोजनकर सब साथ,
देखने रंग-भूमि का रंग ।।

प्रहर-निशि गये लौट रघुनाथ,
कराकर मित्रों को विश्राम ।
जननियें भेंट, अनुज कर विदा,
जानकी-भवन पधारे राम ।।

उठे प्रभु, प्रात-क्रिया कर सकल—
नहाये पावन सरयू-नीर ।।
पूजकर श्री नागेश्वरनाथ,
गये गुरुवर-आश्रम रघुवीर ।।

यज्ञ कर, सुन सुन्दर उपदेश,
दक्षिणा से द्विज-दल सम्मान ।
प्राप्त कर गुरुवर का आशीश,
अयाचक किये सुयाचक दान ।।

पधारे अनुज-सखा गण साथ,
राजप्रासाद राम भगवान ।
विभीषण ने आवेदन किया,
"सुसज्जित है देवेश ! विमान ।।"

कराया माँ ने स्वल्पाहार,
किया वैदेही ने शृंगार ।
सजाये लक्ष्मण ने शस्त्रास्त्र,
अनुज ने किया सुपथ-विस्तार ॥

जननियें सजा आरती थाल,
लगीं करने सुमंगलाचार ।
दासियाँ लगीं पूरने चौक,
द्वार पर फहरा वंदनवार ॥

बज उठे भेरी-शंख-मृदंग—
पखावज - घुंघरू - झांझ-सितार ।
नयी वय के बटु-द्विज समुदाय,
कर उठे हर्षित वेदोच्चार ॥

बिखरने लाजा-अक्षत लगे,
बरसने नभ से लगे प्रसून ।
उठा जन-सिंधु जयस्वर ज्वार,
लगीं पर्वोम्बुधि-ध्वनियें न्यून ॥

बांध मंत्राभिषिक्त शुभ-सूत्र,
भुजा पर अरुन्धती ने दिया ।
सवत्सा चली नंदिनी अग्र,
साथ ही स्वर्ण-नांद ले सिया ॥

यज्ञ का पूत विभूति-सुबिंदु,
लगाया स्रुक से गुरु ने भाल ।
कुमारीं ले जलझारी चलीं,
नारियल सजे पल्लवित-डाल ॥

तिलक पर तिलक लगाने लगीं,
अंबिका भरीं-भरीं चित चाव ।
ललकने लगीं कोर की पोर,
सभी के लघु वियोग को छांव ॥

वचन से कीं परितोषित अब,
मैथिली की नयनों से शांत ।
अभय कीं उठा भुजा आजानु,
प्रजावलि दिग्दिगन्त की कांत ।।

ढुलाने लगे चँवर सौमित्रि,
भरत ने तान दिया शिर छत्र ,
पार्श्व-पट ले कपीश-लंकेश—
बढ़े, 'जय' बाढ़ बढ़ी सर्वत्र ।।

बनाने लगे सचिव-गण मार्ग,
मरुतसुत लगे दिखाने राह ।
भवन-गिरि शोभा-सरि जन-लहर,
प्रफुल्लित पुष्पक सागर-थाह ।।

नगर के बाहर जहाँ विमान—
खड़ा था. पहुँचे रघुकुलकेतु ।
धनाधिप के चाकर बहु यक्ष,
बढ़े सादर स्वागत के हेतु ।।

समर्पित महाविष्णु को करी,
चैत्ररथ-सुमनों की वन-माल ।
"मुदित हैं श्री कुबेर अलकेश,"
"मुदित, नृप राम! शीश शशिभाल ।।"

लखा प्रभु ने पहले से अधिक,
व्यवस्थित सज्जित पुष्पकयान ।
वढ़ाती है स्वतंत्रता सदा,
सभी का सुयश-रूप-गुण-मान ।।

अलौकिक-आभामय अति दिव्य,
विभा-भाला का दिव्य निकुंज ।
चतुर्दिक रुचिर रचाते रास—
विविध-विधि छिटक-छिटक छवि-पुंज ।।

द्वार-वातायन चारों ओर,
लगे आसन-आसन्दीं छोर ।
पारदर्शी-पट पवन-प्रसंग—
केलि कर, करते चित्त विभोर ।।

मध्य में स्वर्णिम सुन्दर शिखर,
रत्न - कंगूरे अष्टाकार ।
सूर्य को घेर मुदित ज्यों खड़े,
स्व-ध्वज फहरा ग्रह-गण साकार ।।

बुला रिपुदमन-लखन को पास,
हाथ से नृप-मुद्रिका उतार ।
राम ने दी अनुजों को सौंप,
शीश सहलाकर परम दुलार ।।

गजानन मना राम रघुवीर,
यान पर बढ़े भरत के साथ ।
लखन-रिपुदमन भुजा भर भेंट,
चले लंका-किष्किधानाथ ।।

लगे ज्यों पवनतनय आ हृदय,
बरसने लगे नयन-घन नीर ।
"परम-संकोची स्वामि-स्वभाव,
शीघ्र तुम लौटा लाना वीर ।।"

धैर्य दे, भरे-कंठ शिर हिला,
पूँछते दृग केसरीकुमार ।
यान पर चढ़े, राम ने किये—
यक्षगण विदा, रखे चर चार ।।

विभीषण ने फहराया शीघ्र—
शिखर रघुकुल-ध्वजराज नवीन ।
छत्र-मंडित वेदी पर हुए—
भरत के साथ राम आसीन ।।

नसेनी खिंची, पंख हिल उठे,
हुआ पल में गतिमान विमान ।
घंटिका इस कौतुक से बजी,
लगा किन्नरीं छेड़तीं तान ।।

बिखरने लगे गीत, गति संग,
गगन ज्यों गाते हों गन्धर्व ।
फहरने अंचल से पट लगे,
नाचतीं ज्यों अप्सरा सगर्व ।।

गगन में स्वर्ग मिलन हित चला,
धरा का स्वर्ग भरा अति हर्ष ।
दिखाने व्योम-सूर्य को चला,
धरा का सूर्य धरा-उत्कर्ष ।।

नापने बढ़ा भुवन-मंडली,
या कि प्रभु वामन का पद-कंज ।
तरी सा तैरा पयद-पयोधि,
यान मन-मरुत-गरुड़ गति भंज ।।

बरवै

खिंची धरा से नभ तक, ज्योति-सुरेख ।
लगी दिशायें लिखने या यश-लेख ।।
कीर्ति-कामिनी कर नव-सत शृंगार ।
चढ़ी अटा पर करने, प्रिय-अभिसार ।।
चली नापने धरती गगन-वितान ।
रवि-अर्चन हित रविकुल-दीप-विधान ।।
कुंडलिनी पर फैला, चली कपाल ।
उगा रँगोला जलधर. भूतल ताल ।।
मंदाकिनी कि एक खिला अरविंद ।
मुदित खिलाता स-निकर ब्रह्म-मिलिंद ।।

कौतुक-वश योगी, परकाय-प्रवेश ।
सुविनय-वश रवि को मणि देते शेष ।।
क्या उपमा दूं, लघुतर सब उपमान ।
श्री राघव का राघव सरिस विमान ।।

भुजंगप्रयात

उठा रेख सा, हो गया बिंदु सा फिर,
भरा अंक में सूर्य ने ले किरण-कर ।
रहा गूंजता घोष कुछ काल नभ में—
बिछाते रहे पुष्प, भू पर पयोधर ।।

चला राम का दिव्य-विग्रह यशोमय,
दिशा-देवियों से कलित केलि करने ।
मनुज रूप धारी निराकार ईश्वर,
स्वरति-भाल सौभाग्य-सिन्दूर भरने ।।

चलो अंबिके ! लेखनी अंक में ले,
अलौकिक-रमण राम-रमणीयता का ।
दिखाने तनय को सदय का सदयपन,
परम-दिव्यता-भाव कमनीयता का ।।

दोहा

सदा सर्वदा मांगलिक,
श्री रघुनाथ - चरित्र ।
श्रवण-कथन जग-दोष हर,
करो मनन मन-मित्र ।।

तृतीय भुवन

श्री नट गणपत्याष्टक

कवित्त

नट नटराज के सजाऊँ नटराज जैसा,
नूपुर पिन्हाऊँ मनोकामना की माधुरी ।१
मद का तिलक मद-मज्जित लगाऊँ भाल,
मालिका झुलाऊँ हिय, गूंथ मोह-पांखुरी ।।१
कटि-लिपटाऊँ क्षुद्रघंटिका कुटिलता की,
भय की बँगड़ियां बजाऊँ बाँह बांकुरी ।१
वरद विनायक रे ! मेरे मन मंदिर में—
तनिक पधारो तो, दिखाऊँ निज चातुरी ।।२

चौदह-भुवन का रचाया मंजु मंच, देव !
रोला के बिछौना, डली ऊर्मिका यवनिका ।३
छप्पय के जाल तनी चांदिनी सु-मालिनी की,
सोरठा की तनी, सुखमालिनी की मालिका ।
बीच-बीच बरवै के बिरवे अमित फूल,
सीढ़ी वनमाला चतुःशाला हरिगीतिका ।३
उतरो कृपणता नेपथ्य से सौभाग्य-भूमि,
थाम दोहा दाम मम माथ पाद-पीठिका ।।

ब्रह्मसूत्र वेष तव हिय पर नागराज,
राम-नाम मणि का मुकुट शिर धार कर ।
देख, भरी भावना सु-नागिन सुहाग-चाव,
गजानन ! चली, देखो, सोलहों-सिंगार कर ।।
चतु:धार - षटदल - मणिपुर - अनाहत—
शुद्ध-ललनाज्ञा-सोम एक-एक पार कर ।
पड़ी निराकार की सहस्रदल-वापिका में,
प्रिय से मिलादो प्रिया प्रीति से दुलार कर ।।

वाम कर देते वर, दक्षिण से भीति हर,
एक से बुलाते और एक से दुलारते ।
एक थाप दलते अमाप पाप का कुदाप,
एक थाप थापे पर पद-थापा थापते ।।
पीत-पट पटक बचाते माया ढ़ीठनी से,
मुकुट-लटक तम कटक मठारते ।
करो विघ्नराज ! विघ्न-अल्पनायें छिन्न-भिन्न,
कल्पना से परे वे अनोखा नाच नाचते ।।

छोटी-छोटी आंखें जब आधी-आधी मूंद-मूंद,
और कर तिरछी तिरछियों को, देखते ।
थेई-थेई गिरिजा दुलारे जब नाचते हो,
थल-थल देह थल-थल से समेटते ।।
मोदक समोद बाँकी सूंड से उठाते हुए,
बिना देखे भोग निज भक्तों में बिखेरते ।
सच जानो भालचंद्र ! तब आप मुझे मेरे,
परम-द्रवित रघुनाथ जी ही लगते ।।

शूर्पकर्ण-कुंडल-सुकुंतल ये डोलते, ज्यों—
धाते दिशि विदिशि स-छटा घन सांवले ।
सकृपा कटाक्ष ज्यों परिधि दधि लांघते हों,
सुपट पलटते ज्यों जीव हुए बावले ।।
एक-दंत एकमात्र केतु सा दिखाई देता,
मेखला के मोती झड़ते ज्यों ग्रह-ग्रांदले ।
देख नृत्य-वेग, विघ्न भीत बोलते "ये नाचे,
प्रलय का नृत्य प्रलयंकर के लाडले ।।"

इंद्र का मृदंग कि घमाधम ये शैल गिरे,
वाणी की ये वीणा कि तरंगिणी उछलतीं ।
शंकर का डमरू कि डग-डग डोलती भू,
माधव का शंख कि भूकंपिनीं निकलतीं ।।
अंबिका का गान राग-राग दीप्त यौवन ये,
भावावलि मंजुल स-भाव दव दलतीं ।
तव विघ्न-सृष्टि-ध्वंस-लीला की विकट-गति,
रँगती स्वरंग ऋभु विकट ! मचलतीं ।।

संचित कुकर्म की शिला सी कीच ठौर-ठौर,
आलस अमावस डराती नभ गर्त से ।
जगानिल प्रतिकूल चलती, उफनती हैं—
व्यथा बाढ़ पल-पल तल-तल पर्त से ।।
विकल विपुल दैन्य मकर पसारे मुख,
रचा मारकेश का न स्वांग मांझी मर्त्य से ।
ताली राम-नाम की बजाकर नचाऊँ तुम्हें,
ताल-ताल तारो मेरी तरी भवागर्त से ।।

दोहा

धरती ताल, मृणाल गति, नभ विकसित अरविंद ;
मुद मधु बिखराता चला, राम-विमान मिलिंद ।।

शृङ्गबेरपुर

ऊर्मिका

अवध की परिक्रमा कर मुदित,
बढ़ा दक्षिण की ओर विमान ।
वह अहा, शृंगबेरपुर रुचिर,
हमारे प्रियवर-गुह का स्थान ।।

उठी प्रभु की उत्कंठित गिरा,
"उतारो अरे ! उतारो यान ।।"
अमित घिर आये मांझी वृंद,
धरा पर जब तक टिका विमान ।।

राम उतरे, बोले "है कहां—
हमारा प्यारा सखा निषाद ।"
"राम-राजा की जय-जय कार,"
दशों-दिशि गूँजा स्वर साल्हाद ।।

नाचने लगे निषाद-समूह,
घेर प्रभु-परिकर दे-दे ताल ।
दौड़ता गुह आया, भुज भरा—
न टिकने दिया भूमि पर भाल ।।

"न कितने दिन से आये अवध,
हमें तुम भूल गये गुहराज!
राम का क्षमा करो अपराध,"
"न लज्जित करो अवधपति! आज॥

न यूं ही आ पाया साकेत,"
"समझता हूँ मैं सब संकोच।
न आये स्वाभिमान-वश मित्र!
समझ कर, प्रभुता होती पोच॥

राम पुर-प्रिया-बंधु यह देह—
सभी कुछ क्षण में देगा त्याग।
किन्तु 'अभिमानी है, यह पंक—
कलंकित कर न सकेगी पाग॥"

"करें प्रभु! क्षमा, न होगा कभी,
भूल कर फिर ऐसा अपराध।
प्रार्थना है, पहिले भी रही—
हृदय की दबी हृदय में साध॥

दास का हो पावन आवास,
पतित-पावन की पा पग-धूरि।"
"अरे! तो खड़ा किया क्यों यहाँ,
बालकों से अब तक दे दूरि॥"

बावला सा हो गया निषाद,
राम के सुनकर निश्छल बोल।
"पधारे हमरे घर भगवान,
बजाओ अरे! बजावो ढ़ोल॥"

नाचते-गाते बढ़े निषाद,
हुलसते-हँसते श्री रघुवीर।
अचम्भे से ये कैसे कौन,
देखने बालक लगे अधीर॥

सहम कर हटे, देख नृप-ठाट,
हँसे खिलखिला, ठिठक रघुनाथ ।
विभासित-पट लख, बोला एक,
"बिलोकें तनिक लगाकै हाथ ।।"

ले लिया झुककर प्रभु ने अंक,
सभी घिर आये फिर निश्शंक ।
"हटो उतरो रे !" गुह कह उठा,
"प्रजापति होने दो यह रंक ।।

न रोको ब्रह्मरूप ये बाल,
छलकती गंगा से छलहीन ।"
हुआ ब्रह्मद्रव सा गुह द्रवित,
अमित आनन्द-राशि में लीन ।।

निषादी ने देखा प्रभु राम,
अचानक खड़े हुये आ द्वार ।
हुई कठमारी, भागी तुरत,
बिछाई शिर से चुनर उतार ।।

"विराजो नाथ ! विराजो देव !"
छलक आया प्रभु के दृग नीर ।
उढ़ाया निज पीताम्बर तुरत,
उठाया बिछा भूमि से चीर ।।

भरत को देकर बोले राम,
"पडेगें जब चुनरी पर पांव ।
तभी मँडरायेगी जग-शीश,
काल की काली-काली छांव ।।

न इनका होना उचित स्वतंत्र,
न समुचित ही होना परतंत्र ।"
विभीषण बोला "प्रभु ! कुछ बुद्धि—
समझ यह पूरा सकी न मंत्र ।।"

"मार्ग बहु चर्चा-हित ही मित्र !"
कुशलता लगे पूँछने राम ।
अनेकों के गुण-चर्चा बता,
अनेकों के ले पूरे नाम ॥

मधुर-परिपक्व भार के भार,
उठा लाये फल अमित निषाद ।
खिलाते, खाने लगे कृपालु,
लुटाने लगे, बताकर स्वाद ॥

लूटने लगे बाल बन वृद्ध,
लगे खाने बहु भाँति बखान ।
"मित्र ! कुछ सावकाश हो, चलो,
हमारे साथ," कहा भगवान ॥

"आपके शिरोधार्य हैं आर्य !
सदा - सर्वथा समस्तादेश ।"
नई-धोती नव-पटका पाग,
गुंजिका-शुक्ता-पंख विशेष ॥

धार कर हुआ तुरत सन्नद्ध,
पिन्हाया प्रभु ने अपना हार ।
भरत ने कुंडल, पीत-दुकूल,
विभीषण ने तोड़ा-कलदार ॥

कीशपति ने अंगद-भुजबंद,
लगादी कलगी निज हनुमान ।
सभी कह उठे "राम का सखा—
सज गया, राजा राम समान ॥"

वस्त्र-आभूषण - व्यंजन अमित,
भरत ने बाँटे पा-संकेत ।
चले प्रभु लेकर साथ निषाद !
पुनः आने का दे चित चेत ॥

गये शृंगी - शांता आवास,
अग्रजा आई भुजा पसार ।
बिताकर निशि, प्रवास की प्रथम,
चले राघव दे बहु उपहार ।।

तीर्थराज-प्रयाग

ऊर्मिका

झपकते पलक आ लगा यान,
त्रिवेणी के अति पावन तीर ।
स्नान कर भरद्वाज के निकट,
भेंट लेकर पहुँचे रघुवीर ।।

मिले मुनि मुदित, विभीषण मिला,
चरण छू-छूकर बारम्बार ।
उसी विधि मुनि भी करने लगे—
प्रदर्शित बारम्बार दुलार ।।

"कैकसी की दिनचर्या कहो,
आजकल क्या चलती लंकेश ।"
"बहुत दिन घर-घर फिरतीं रहीं,
जगातीं अलख योगिनी-वेष ।।

दौड़ती देतीं शत-शत शाप,
तनिक ज्यों मुझे निरखतीं पास ।
खिन्न हो उनसे अति पितुदेव,
पुलस्त्याश्रम कर रहे प्रवास ।।

बहुत समझातीं मन्दोदरी,
सुनाते माल्यवान इतिहास ।
बताकर जग की निस्सारता,
सृष्टि-संवर्त काल के ग्रास ।।

शांत यों कुछ दिन से तो सुनीं,
सुना इन दिनों, अभी वृत्तान्त ।
कुम्भकर्ण-की नातिनी एक,
नाम है कुथोदरी दुर्दान्त ।।

सुवृद्धा पितामही के साथ,
दिखाई देती वह एकान्त ।
बात कुछ है अवश्य ही न्यून,
सर्वदा रहती हैं विभ्रांत ।।

और क्या शूर्पणखा तक क्लान्त—
इसी से हो, रहती विधि-क्षेत्र ।
आपकी-वधु सरमा हर समय—
मौन हो, पूँछा करती नेत्र ।।"

"पुत्र ! सब समझ गया वृत्तांत,
हुई भग्नाशा निरी निरुपाय ।
मिलेगा देखो कोई मार्ग,
जा रहा है जब यह समुदाय ।।

"विनय है मातामह मुनि-श्रेष्ठ !
करें फिर लंका-राज्य कुबेर ।
भरत-व्रत कुछ मैं भी लूं पाल,
हुई है यद्यपि निश्चित् देर ।।"

हँसे मुनिवर रघुवर के साथ,
"विभीषण ! यद्यपि यह सौभाग्य ।
हुआ माया-बंधन से तुम्हें—
पुत्रवर प्रिय ! इस-वय वैराग्य ।।"

किंतु यह राज्य तुम्हारा कहाँ,
राम का यह सुपुनीत प्रसाद ।
भाव यदि एक उठा सविषाद,
कर्म में प्रगटा कहीं प्रमाद ।।

डूब जायेगी लंक समस्त,
पाप की कलुषित काली पंक ।
भजन कर, कर परिपालन प्रजा,
मुक्ति से करो केलि, पर्यंक ।।

राभ-कर-अभय शीश पर छत्र,
करो विचरण भूतल निश्शंक ।
मिलेंगी ऋद्धि-सिद्धियें स्वयं,
खोजती तुम्हें तुम्हारी लंक ।।

कपूतों क्रूर - कायरों हेतु –
न प्रचलित हुई जगत में भक्ति ।
ईश की परमाल्हादा शक्ति,
विरति - रति की अद्भुत संपृक्ति ।।

ज्ञान का पथ, कृपाण की धार,
भक्ति का आसन, शर के भाल ।
यहाँ तो अंग - भंग भय मात्र,
वहाँ प्रत्यक्ष काल विकराल ।।

भक्ति है प्रियवर जितनी सुलभ,
भक्त उतना ही दुर्लभ तात ।
काट शिर अपना, ले निज हाथ,
वही भर पाता है डग सात ।।

पिला कर कांटों को अलि रक्त,
केतकी का रस करता पान ।
भक्ति - पथ शूर - सपूतों हेतु,
किया यति - सतियों ने निर्माण ।।

भक्ति है नहीं पलायन - वाद,
वक्ष पर झेले जाते बाण ।
तभी यह बाजी आती हाथ,
दांव पर जब लग जाते प्राण ।।

किंतु क्यों चिन्ता करते वत्स !
तुम्हें तो अमर - भक्ति का दान ।
ज्ञान - गोतीत ब्रह्म ने दिया,
स्वयं ही, स्वयं मार्ग तव आन ।।

किन्तु निधि की गुरुता अनुसार,
सुरक्षा का भी गुरुतर - भार ।
यहां वैराग्य विदूषण, तात !
परम - अनुराग शुभद - शृंगार ।।

राज को भोग मानते अज्ञ,
सुविज्ञों का पंचानल - योग ।
राम ने दिया तुम्हें जो राज्य,
कहें वह राम-राज्य ही लोग ।।

चुनौती यह तव सम्मुख खड़ी,
बांध कटि, करो उसे स्वीकार ।
ध्यान देना तव पद यदि डिगा,
तुम्हारे प्रभु जायेंगे हार ।।

एक दिन थाम भक्त का हाथ,
सदा हित प्रभु होते आधीन ।
विश्व का यह जगदीश्वर राम,
तुम्हारा बंदी है अति दीन ।।

विभीषण ! रखो हृदय में ध्यान,
न खल कर पाते कुछ भी भ्रष्ट ।
शिष्ट घिरते अशिष्ट-व्यामोह,
तभी होती मर्यादा नष्ट ।।

रिक्तता आती एक सदैव,
महा - संहारों के पश्चात् ।
पूर्ति करते हैं प्रथमाधिक्य,
सूक्ष्मदर्शी श्रेयस-निष्णात् ।।

अधिक क्या कहना तुम से तात !
श्रुतिस्मृति -नय-छवि तुम सुश्वेत् ।
लहर ऐश्वर्य, शौर्य बड़वाग्नि—
धैर्य दधि, तुम माधुर्य निकेत ।।

सौंपना जग को त्यों ही राम,
मिले ज्यों तुम्हें जगत श्री राम ।
शुभाशिश मम, तव साथ सदैव,
बनो यश-कीर्ति-विजय-गुण धाम ।।"

कहा प्रभु ने "दें प्रभु ! आदेश,
करे तव प्रिय क्या यह लघु-दास ।।"
"किया लघु-रानी ने प्रिय कार्य—
हमारा, दिया तुम्हें वनवास ।।

चतुर्दश-वर्ष झपकते पलक—
गये, तव विपिन-वास के निकल ।
जिन्हें तुम लौटे दे वनवास,
न उनका लय तक हो लय विपल ।।

ज्ञान निर्जन बिलखे पाखंड,
भक्ति-सरि बह जाये व्यभिचार ।
त्याग-झाड़ों में अटके लोभ,
अनय डूबे श्रम-गर्त अपार ।।

मौन हो द्वेष स्नेह-मरु भूमि,
गिरे भय अभय-भँवर-गंभीर ।
शोक सूखे सुशांति-गिरि-गुहा,
हरे श्रद्धा-हिम हिय-दव-पीर ।।

चिरे चिंता चित-चिंतन-मेरु,
ग्लानि की हो सुख-निर्झर हानि ।
जलें जड़ता-विषाद-रुज-भ्रांति,
धर्म की परम प्रबल-दावाग्नि ।।

क्रोध को डसे क्षमा-सर्पिणी,
मोह को खाये गौरव-बाघ ।
दीनता-घृणा - हीनता बनी,
कुचल दे कुशल महोद्यम-नाग ।।

करे मद-मत्सर का आखेट,
सत्य-नय धनु-शर भील सु-शील ।
विश्व - कल्याण - कामना - पंक,
अमंगल-दल को जाये लील ।।

यही है एक भावना हृदय,
यही है प्रवल भावना-रोष ।
यही होगा भी निश्चित यही,
राम! कहता ऋषि-हृदय स-तोष ।।"

"आपकी रहे शीश आशीश,
बनेगें शूल, सुकोमल फूल ।
धरेंगे शैल, सुआसन रूप,
भँवर देगें धारा में पर कूल ।।

अवध में अश्वमेध हो देव !
दिया है गुरुवर ने आदेश ।
बतायें किस प्रकार यह श्रेष्ठ,
महोत्सव हो निर्विघ्न अशेष ।।"

श्रवण कर भरद्वाज ने भरी,
अर्थ-मय एक दीर्घ-हुंकार ।
"लवण के हेतु विभीषण वत्स !
करो तो प्रकट, स्वल्प स्वविचार ।"

"असंभव उसका देव ! सुधार,
विचारें शेष नीति प्रभु-आप ।
पिलाओ ज्यों-ज्यों नय-पय विशद,
गर्व-गर्वीला बनता सांप ।।"

कहा मुनि ने "समझे रघुनाथ"
हिला बोले उत्तर में भाल ।
"लवण-सम्मेलन का सुमुहूर्त,
बाण पंडित लें प्रथम निकाल ।"

व्रती ने किया व्यक्त संतोष,
विदा ले चले राम रघुवीर ।
आदिकवि के आश्रम अपरान्ह,
पधारे रघुपति गंगा-तीर ।।

श्री वाल्मीकि-आश्रम

ऊर्मिका

स्नान कर पावन गंगा-सलिल,
धार कर धवल युगल तन वस्त्र ।
भेंट करने मुनिवर से चले,
सुरक्षित रख विमान में शस्त्र ।।

अमित शिष्यों से सुन संवाद,
'पधारे रघुपति गंगा-तीर ।'
सजा स्वागत हित मंगल-द्रव्य,
लगे मुनि लखने राह अधीर ।।

दूर से देखे आते राम,
खड़े ऋषि हुए पसारे बांह ।
समाये ज्यों सद्काव्य चरित्र,
भरे भुज त्यों कवि ने रवुनाह ।।

देख निज नायक के गुण-रूप,
सफलता भावों की अनुमान ।।
खिली कविवर के वदन-सरोज,
सहज सौरभ सी मृदु-मुस्कान ।।

शिविर का शुभ दर्शन, पथ-श्रांति—
विगत कर देता ज्यों पल मात्र ।
हुये त्यों मुनिवर हर्षित परम,
उपस्थित सम्मुख निरख स्वपात्र ॥

विराजे सभी सुआसन साथ,
जुटा पलभर में साधु-समाज ।
परस्पर कुशल-क्षेम कर सकल,
कहा प्रभु-भ्रमण हेतु कपिराज ॥

यज्ञ की चर्चा के ही मध्य,
देख कर कवि-मुख का गाम्भीर्य ।
सोचकर लवण-प्रसंग कपीश,
कहा "रघुवंश न प्रभु ! निर्वीर्य ॥

विभीषण अमर, अजर हनुमान,
अभी तो वृद्ध न यह भी कीश ।"
शाकविट्-मणि-मूल्यांकन जान,
पारखी से हंस पड़े मुनीश ॥

भरत बोले "प्रिय ! बल की बात—
न है; कुछ कौशल अन्य, अदृश्य ॥
देख मुनि-मति त्रिकाल दर्शिनी—
कर रही है संकेत भविष्य ॥

हिलीं संतोष सहित मुनि-जटा,
सराही गिरा, भरत की बुद्धि ।
"न केवल मिला राम सा रूप,
राम सी पायी सुमति-विशुद्धि ॥"

विभीषण का पाकर संकेत,
विनय मय स्वर बोले हनुमान ।
"सुनायें स्वरचित प्रभु ! प्रभु-चरित,
करें ये श्रवण सुखद-रस-पान ॥"

"सकल ही सुखद-शुभद-अति विशद,
सुनायें कहो कौन सा अंश ।"
"सुनायें वह प्रभु! विमल-प्रसंग,
जहां प्रभु-कृत प्रभु-धनु-विध्वंस ।।"

देख गुरु-दिशि शिष्यों ने रखा,
पीठ मृगचर्मावेष्ठित ग्रन्थ ।
छंद-परिधान अलंकृत-गिरा,
अधर-पट खोल, सुरसना-पंथ ।

प्रकट कविता देवी-छवि हुई,
मुनीश्वर - राजहंस - आसीन ।
फहरने लगे पंख से छंद,
लहरने गति से भाव नवीन ।।

नाचने लगे लोक-परलोक,
चतुर्दश-लोक कर उठे गान ।
भाँवरे शब्द-ब्रह्म के साथ,
ले रहीं ज्यों ब्राह्मी गतिमान ।।

देख कर रति-प्रति रति की सुरति,
महामति-मति बैठी हिय हार ।।
पत्र पर लिखित चित्र से लगे,
सभी समुपस्थित नयन पसार ।।

हरिगीतिका

ऋषि गाधिसुत की प्रज्ज्वलित यज्ञाग्नि के अति पास ही ।
देखीं युगल, शीतल-समुज्ज्वल सुदव-छवि, उल्लास ही ।।
श्यामल-सुकोमल एक, सावन-गगन के गांभीर्य से ।
लघु एक चंचल-चंचला-लतिका वसंत अशीर्य से ।।

प्रिय चन्द्रमुख-सर कमलिनीवा पुतलियां ज्योतिर्मयीं ।।
शुभ सुस्मितानन मोदकानन अलि-अवलि पलकें नयीं ।।
भौंहे भवानीनाथ - रिपु ने, धनु धरे हिय हार कर ।
क्या नासिका, दाड़िम कली पर पिच्छ शुक उत्तान कर ।।

नीचे सुनहरी-चौंतनी के कुंचिता अलकावलीं ।
ज्यों बिजलियों को देखकर हर्षित हुईं मयुरावलीं ।।
श्री-तिलक रेखा ज्यों सुपट, आचार्य श्री की लिपि-लता ।
जिसकी शुभाकृति देख विधि बालक सुलेखन सीखता ।।

कल-कलभ कर सी जानुचुम्बित भुज प्रलम्बित कोमला ।
करतल-नवलतम कामवल्लभ-डाल पल्लव-दल फला ।।
मणि-मुद्रिका-मंडित उँगलिकां, कमल-कलिका की कला ।
वृष कंध, त्रिवली कंठ, वक्ष प्रशस्त, श्रोणि सुकंदला ।।

छवि सुभग शोभा-परिधि, भूरीं भूरि भीगी सी मसें ।
चितहारि चितवन ज्यों अभी हँसकर चुके या अब हँसे ।।
मृगछाल स्वर्णिम, कनक-भूषण, शर-शरासन कर लसे ।
मुनि-बाल या महिपाल-बालक कौन ये, परिकर कसे ।।"

नृप-जनक के चर शिर झुकाकर गाधिसुत से पूंछते ।
"आनन्द अपरम्पार उर में भर रहे हैं डोलते ।।"
मुनिराज बोले "मम सकल शुभ-साधना की पूर्ति ये ।
रघुवंश-दीपक नृपति-दशरथ के हृदय की मूर्ति ये ।।

कर याचना लाया नृपति से, राम हैं वे साँवले ।
जो कर रहे अनुगमन मन से लखन अनुज उतावले ।।
इन बंधुओं की ही कृपा से, आज पूर्णाहुति पड़ी ।
इस खलाक्रान्ता भूमि पर यह क्रांति, कान्ता सी खड़ी ।।

निर्भय हुए ये मंत्र मुनिवर जो रहे उच्चार हैं ।
मख-धूम्र जो निर्विघ्न करते ऊर्ध्व-लोक विहार हैं ।।
जन-सिंधु इस निर्जन तपोवन में मुदित लहरा रहा ।
यह वस्तुतः इन राघवों का कीर्ति-ध्वज फहरा रहा ।।"

अभिव्यक्त दूतों ने स्वहृदयानंद जय-स्वर से किया ।
मिथिलेश के धनु-यज्ञ का सादर निमंत्रण फिर दिया ।।
मुनिराज मुनि-समुदाय ले, प्रिय राम-लक्ष्मण संग में ।
गणराज की अविवंदना कर, भर अमित आनन्द में ।।

जय घोष करते चल पड़े, मिथिलापुरी को लक्ष्य कर ।
पथ में विलोका एक आश्रम भव्य, पर कोई न नर ।।
जिसकी समय-अभिशाप ने थी सकल चेतनता हरी ।
गौतम-प्रिया देखो पड़ी, होकर शिला-सी अधमरी ।।

रघुवीर ने पूंछी, कही मुनि-श्रेष्ठ ने सारी कथा ।
करुणा भरी सी झर उठी, झलकी नयन अंतर-व्यथा ।।
रजलुंठिता ऋषि-तीय वह, सादर उठाई स्पर्श कर ।
मां मान कौशल्या-सुमित्रा सी न्हिलायी अंक भर ।।

ऋषितीय का ऋषि-तीय सम शृंगार सब सुन्दर किया ।
ऋषिराज-गौतम को पुनः सादर समर्पित कर दिया ।।
परित्यक्त अबला थी पड़ी भू, हीन-अबला भाव से ।
अश्रम तरी भव-सिंधु से वह, राम रूपी नाव से ।।

विधिलोक में होकर प्रतिष्ठित सुस्तवन करने लगी ।
जो मूक थी पाषाण सी, उसमें गिरा सरिता जगी ।।
गंगावतरण प्रसंग ने, संकल्प दृढ़ मन में भरा ।
कुलकीर्ति का पौधा नवाशा ले, हुआ फिर से हरा ।।

मिथिलेश-पुर पहुँचे, अलौकिक-कार्य हरि करते हुए ।
ठहरे जनक-नृप-वाटिका में, जन-हृदय हरते हुए ॥
लख रूप-वय, सुन गुण अपरिमित, भर अलौकिक प्रेम से ।
वैराग्यवान विदेह हो अनुराग-शील विदेह से ॥

आशीश, अभिनंदन, नमन, फिर सुस्तवन करने लगे ।
जलकलश ब्रह्मानन्द, परमानन्द रस भरने लगे ॥
दृग-माल चंचल हो अचल, कण-कण चषक भरने लगी ।
छवि-माधुरी, तप-तप्त हिय को तृप्त सा करने लगी ॥

कर स्पर्श कर, दृग निरख कर, सुनकर श्रवण रसमय गिरा ।
शिर सूंघ, बोल न सके, स्वर अंतर-निकुंजों में घिरा ॥
इस ओर ठेला नाभि का, उस ओर हेला कंठ का ।
बंदी, सुशरणागत, अतिथि सा, स्वर बना हिय-कुंज का ॥

कौशल-विपुल कर इंद्रियां बैठीं सकल जब हार कर ।
ले लोक-लज्जा कुंजि, लाई सुमति-युक्ति उभार कर ॥
मुनि से कहा 'घर दास का पावन करें प्रभु ! आज ही ।"
छवि दर्श प्रतिपल प्राप्ति-हित, सूझा सहज यह व्याज ही ॥

फिर सोचने मन में लगे, ये प्राप्त हों कैसे सदा ।
सिय सौंप दूं, पर पंथ में शिव-चाप की हा ! आपदा ॥
मन मारकर लख राम-वय, मुनि-मुख पुनः लखने लगे ।
आनंद के अतिरेक से रोमांच-मय बनने लगे ॥

रख हाथ नरपति-स्कंध मुनि बोले 'नृपति! फिर आयँगे ।
संतुष्ट हूँ तव विनय से, नय किंतु क्या न निभायँगे ॥
संसार तो है विघ्न, पर विघ्नेश भी तो शिव-तनय ।
उनकी कृपा निश्चित मिलेगी, चाप-पति भी हैं सदय ॥

आश्वस्त हो, प्रस्थान-हित मिथिलेश ने यों पग धरे ।
पर कंध, जिसके प्राण हों प्राणेश ने बरबस हरे ।।
विश्वास-निधि सव्याज ही, जिसने धनी को सौंप दी ।
निश्शंक वह, शंका करे क्यों, पावती लघु दी न दी ।।

नीचे नयन कर राम ने देखा, नमन भी फिर किया ।
'विश्वस्त साहूकार हूँ' विश्वास ज्यों निश्चल दिया ।।
यों नगर नर-नारी सभी, सब-विधि मुदित करते हुए ।
रविकुल-शिरोमणि रूप निज प्रत्येक घट भरते हुए ।।

सागर-सरित-सर-कूप-पोखर-स्वांजलीय प्रमाण से ।
करने लगे दिवि-दिव्यता सब ग्रहण, निज परिमाण से ।।
धनु-वर्ष के अंतिम-दिवस जब पास ही दिवसांत था ।
मिथिलेश से ज्ञानी नृपति का, चित्त अति विभ्रांत था ।।

हो विकल बारम्बार लखते नृपति नभ को, द्वार को ।
दृढ़ता स्वप्रण की, प्राण की प्रतिमा सिया सुकुमार को ।।
बल-दर्प समुपस्थित नृपों का, फिर उपस्थित हार को ।
शिव के कठिनतम चाप को, शिव के सरलतम प्यार ।।

मुनि-गाधिसुत के रस-कलश को और निज दुर्भाग्य को ।
उस राम के अनुराग को, इस दैव के वैराग्य को ।।
आशा सकल पल-पल निराशा-बिंब गहती जा रही !
देखी तभी, मुनि संग श्यामल-गौर जोड़ी आ रही ।।

मृतवत् नृपति-हिय वेलि ने देखी, सरस मेघावली ।
सिय-मातु मन-मरुभूमि में ललकी ललित शतदल-कली ।।
पुर-नागरिक लखने लगे, ऋतु-राज की साकारता ।
गतबल नृपति समझे, न बल की प्रकृति में निस्सारता ।।

हेमंत-वन पर जो सदा, अधिकार सा निज मानते ।
वे असुर गिद्ध-उलूक से, देखे गये ज्यों भागते ।।
पी अतल-रस वटराज अक्षय, छू रहा यह व्योम को ।
अव्यक्त रूप विराट का हो, लगा योगीस्तोम को ।।

जग की समस्त हरीतिमा प्रति-पत्र में जिसके रमी ।
अनुमान-सत्य समक्ष यह जाने तुरत ही संयमी ।।
जो भाग्यवंत सुभक्त थे, माने सुफल फलने लगे ।
सिय ने विलोका उर मही, फलफूल कर झड़ने लगे ।।

रस-हीन उस रसराज-सर रसराशि लहराने लगी ।
मति-कुमति-सुमति स्वमति-प्रगति से भाग निज पाने लगी ।।
पर मौन प्रभु का, मौन निमि-नृप को अधिक खलने लगा ।
लख, अलख चकई-शक्ति, चक-हिय वय-निशा जलने लगा ।।

प्राणांत-कर यह क्षण, परीक्षा हाय, प्रिय लेने चले ।
मनुहार-विनती स्वर, उलहना क्रोध से देने चले ।।
"यह जानकी मेरी, कुमारी ही चलो रह जायगी ।
पर 'वीर-भोग्या भूमि है,' यह भ्रांति तो मिट जायगी ।।

ये उठ रहे जो चमचमाते भल्ल-धनु-खटवांग हैं ।
वे प्रजारक्षण-नाट्य-नटकुल के कुटिलतम स्वांग हैं ।।
मम मूर्खता-वश आपने, जो कष्ट आने का किया ।
दें दंड या भटगण क्षमा, नत-शिर झुका मैंने दिया ।।"

कर प्रकट पश्चाताप बैठे भी न थे मिथिलेश ज्यों ।
बोले खड़े होकर लखन, घिर अमित क्रोधावेश त्यों ।।
बस यों लगा दिग्गज-चरण ज्यों पड़ गया हो शेष पर ।
अनजान में या कर किसी का केशरी के केश पर ।।

"इस विपुल राज-समाज में रघुराज के बैठे हुए ।
जो आपने बोले वचन, बिन गहन-तल पैठे हुए ।।
यह आपसे वय-वृद्ध ने, नय-वृद्ध ने शोभा न ली ।
यों बोलकर इस भाँति, निज अंचल अकीर्ति समेट ली ।।

जिन पूर्व-पुरुषों ने बहा दी गंग की धारा धरा ।
जिनके कुलाधिप ने सकल त्रैलोक्य-तम युग-युग हरा ।।
रोपा स्वपौधा, कपिल से वट-राज की ही छांव में ।
ये बीज सौंपे सृष्टि को, केवल मनुजता-भाव में ।।

क्या पुत्र, पत्नी-देह तक दी बेच, सत छोड़ा नहीं ।
सुरराज-सिंहासन सुपावन कर सतत लौटे मही ।।
क्या बात पुरुषों की कहूँ, महिमामयी नारीं जहां ।
निज-बांह का डाला धुरा, जब घोर रण था हो रहा ।।

किस पल रसालों की रसीली-डाल ने टैंटीं जनीं ।
किस जेठ की तपती लुओं ने, ज्वार सागर की हनीं ।।
वनराज वक्ष विदीर्ण करता शैल का जो गाज के ।
अभिषिक्त होते चरण उसके ही, रुधिर गजराज के ।।

तोड़े जिन्होंने चाप बहु, शिर-धारियों के युद्ध में ।
शिव का पुराना चाप यह, किस दाप भाव विरुद्ध में ।।
आदेश दें यदि आर्य ! तो, कौतुक दिखाऊँ अल्प सा ।
इस नभ-दिगम्बर का बना डालूँ सुपरना स्वल्प सा ।।

तल में बिछा दूं चाँदिनी, तल की बना कर चाँदिनी ।
नक्षत्र-माला से सजा दूं, शेषनाग-सुभामिनी ।।
समझें न, मैं आवेश में, अनुचित-उचित कुछ कह गया ।
प्रभु पद-शपथ, जाने न क्यों, अपमान प्रभु का सह गया ।।

सह ही गया इस हेतु, क्योंकि कुनाट्य प्रभु ने ही किया ।
धनु लघु लवा, क्यों बाज सम रघुराज ने न उठा लिया ।।
निशिचर-दलन जिस विधि कराया, समर का वर-वेष दे ।
कृपया उसी विधि आर्य को, आचार्य ! फिर आदेश दे ।।

खंडित सुबाहू सम करादें, शंभु के इस चाप को ।
फेंके क्षितिज के पार, इस मारीच नृप-संताप को ।।
अर्पित करें जय-मालिका साकार जय-श्री, जानकी ।
हो व्याप्त ध्वनि त्रैलोक्य में जय-जय विजय श्रीराम की ।।"

नृप के बिफरते दूध से चित, छींट आशा-नीर की ।
पड़ गई, पर मथती रही मंदाग्नि चित-करीष की ।।
रघुनाथ ने प्रिय अनुज को बैठा दिया संकेत कर ।
नृप सरिस ही सारी सभा को मौन लख, आचार्यवर ।।

बोले मुदित-चित हाथ रख रघुनाथ के शिर, स्नेह से ।
"भव-धनुष प्रियवर ! खींच, कर दो भव, विगत संदेह से ।।
गुरु-चरण वंदन कर, लिया आदेश सकल समाज से ।
सिय देख, तारक-दिशि चले, रघुराज शुभ मृगराज से ।।

पद-चाप प्रभु की, पास ज्यों-ज्यों चाप के होती गईं ।
सिय-शिरा सिहरन, पलक कम्पन, गति गमन खोती गईं ।।
प्रभु ने लखा, लघु जल बिना, यदि पांखुरी यह जल गई ।
तो क्या करेंगी इन घनावलि से रिसीं रस-सरि कई ।।

जिस विधि लपट करतीं विभाजित, निर्जरों के भाग को ।
उस भाँति करते भंग धनु, देखा गया रघुराज को ।।
जैसे समाहुति जा समाती, विषम देव-समाज में ।
उस भाँति प्रभु-भुज युगल ने मुदिता भरी निमि-राज में ।।

उत्साह में भर शंख-ढोल-मृदंग आदिक बज उठे
निमि-नगर के श्रृंगार सारे मौन, मुखरित सज उठे ।।
दीपावली जगमग हुई, प्रतिभवन प्रत्याकार पर
उतरी गगन से ज्यों गगन-गंगा विदेहागार पर ।

नृत्यांगना नव-सलिल शकुली - माल सी लहरा उठीं
पटु-गातु-कंठावलि कलित, स्वर फरहरी फहरा उठीं ।।
कण-कण सुकंकणी कंकणी किंकिणी-रस भरने लगा
सुर-सुमन-वर्षण भूमि की, अंतर-तपन हरने लगा ।।

गौतम-तनय निमिकुल-पुरोहित शतानंद-निदेश से ।
जय-मालिका ले जानकी, निज जनक के संकेत से ।।
सखियों सहित, मणिमय मनोरम मंच के सोपान से ।
धर धीर, धीरे से उतर कर अरुणिमा-परिमाण से ।।

प्रभु-कमल-मुख सम्मुख नवेली-लाज सी लज्जित हुई ।
सुप्रीति-सौरभ सी मदिर-हिय-कोष पर सज्जित हुई ।।
प्रभु-नयन-पंकज-पांखुरीं कुछ खिल, खिलीं, खिलतीं गईं ।
प्रति-चित अचेतन-चेतना चैतन्य-निधि बनती गईं ।।

सिय-पलक कंपित सी मिलीं, लोचन नमित श्रीराम के ।
स्वीकार की स्वार्पित स्यकीया स्वीकृता दृग थाम के ।।
'जयमाल पहिनाओ सिये' पहिना न पाई चाह कर ।
प्रिय-प्रीति-प्रहसन रह गई असहाय, ऊँची बांह कर ।।

सद्जीव साधन सम, सुमन एकत्र लक्ष्मण ने किये ।
मायेश-प्राप्ति सुहेतु, माया-चरण अर्पित कर दिये ।।
पा भक्ति का आधार लघु, रघुनाथ सम सिय हो गई ।
माला प्रियतमा-पाणि की, प्रियतम-हृदय-प्रिय हो गई ।।

प्रभु के प्रशस्त सुवक्ष पर, वरमाल यों सुन्दर लसी ।
परिकर सहित त्रैलोक्य-श्री ज्यों प्रगट क्षीरोदधि बसी ।।
प्रभु पास यों मिथिलेश-कन्या जानकी शोभित हुई ।
ज्यों वीररस-वट-तीर पर, स-शरीर रति-छवि छुइमुई ।।

जगदीश रघुवर वर, सुकन्या जानकी जगदीश्वरी ।
उपमा न इस उपमेय को, मत मति करा उपहास री ।।
दृग-दृश्य यह, सुविषय हृदय का, श्रम न वाणी व्यर्थकर ।
संकोच तज कह दे हृदय से, नयन भर कर दर्श कर ।।

मन-वस्तु ग्राहक-हृदय चितवन-पण सरस-रसहाट कीं ।
चेष्टा-चतुर पनिहारियां, इस प्रेम-अवघट-घाट कीं ।।
सम्मोहिता मिथिलापुरी गुण-रूप परिखा से घिरी ।
उस वय किसी चैतन्य की पल भर न पलकावलि गिरी ।।

कुछ उस समय ऐसा लगा, ज्यों पवन बहता रुक गया ।
रवि-मुख फिरा, फिर-फिर निरख छवि, पुनः प्राची झुक गया ।।
शृङ्गार-शील-उमंग औ संकोच, निज दल साध कर ।
नट से उठे कर नृत्य, मर्यादा सुतनु-रजु बांध कर ।।

मुनिराज विश्वामित्र बोले पास आ मिथिलेश के ।
"विश्वेश-धनु टूटा, अनुग्रह से नृपति! विश्वेश के ।।
यह धनुष-भंजन संग ही सम्पन्न क्षात्र-विवाह है ।
पर वेद-लोक सुरीति का भी तो उचित निर्वाह है ।।

जायें अवधपुर दूत तव, अवधेश को संदेश दें ।
ससमाज दशरथराज आ, श्रीराम को वर वेष दें ।।
अब तो विराजे जानकी रानी मुदित रनिवास में ।
आदेश दें, हम भी पधारे वाटिका, उल्लास में ।।

दोहा

सुखद-शुभद-सुन्दर-विशद, श्री रघुनाथ - चरित्र ।
श्रवण-पठन अपलक बने, वाम-विधाता मित्र ।।

उर्मिका

रुका कवि मुख से होता पाठ,
रह गई सकल सभा अतृप्त ।
उठी, झरती निर्झर की धार,
पिपासा भड़क उठी उद्दीप्त ।।

उठा दृग, अंजुलि रीती लिये,
रहे ज्यों हिमगिरि लखता दीन ।
ताल-शैवालों में क्या करे,
लहर में लहराई जो मीन ।।

देखते एक-एक का वदन,
परस्पर एक-एक हो मौन ।
जन्हु ये गये जान्हवी लील,
भगीरथ कहो बने अब कौन ।।

लालसा लता ललकती देख,
नवा ज्यों अभिनव सरस रसाल ।
"तवार्पण ही यह वस्तु त्वदीय,
करूँगा मनोनुकूल सुकाल ।।

करें अब फलाहार चल सकल"
उठे मुनिवर के संग समस्त ।
मधुर-फल ले गंगाजल पिया,
हुए निशि पुनः वार्ता-व्यस्त ।।

विभीषण बोले "पवन कुमार !
करायें कुछ रचना - रस पान ।"
"रुचेंगी क्या उनको वट-वंटि,
छके जो षटरस-मय पकवान ॥"

देखकर मारुत-सुन-संकोच,
आदिकवि बोल उठे" हनुमान ।
प्रगट निज काव्य-ओज भी करो,
शौर्य सम प्रियवर शौर्य-निधान ॥"

भरत बोले "हां-हां प्रिय सुहृद !
न बैठो मौन झुकाये भाल ।
हमारा सुंदरतम हिय-हार,
पारखी के सम्मुख दो डाल ॥"

"छिपा हम ही मे बस यह तथ्य,
शारदा का कपि-अन्तर धाम ।
समझ अब गया, न पाया जीत,
अभी विश्वास तुम्हारा राम ॥"

"नहीं प्रभु ! नट के सम्मुख कभी,
न नटखटपन दर्शाता कीश ।
थमा निज डोरी प्रभु के हाथ,
चला करता सीधा नत-शीश ॥"

"धन्य रे नट के नटखट कीश !
छिपा कर गुण बनता निर्दोष ।
चषक पर चषक जगत को मिला,
चटाता नट को केवल ओष ॥"

"स्वामि को फबता सर्व सदैव,
कहें जो भी चाहें नटराज ।
सकल उपवन माली की सृष्टि,
दृष्टि सुख ले कल अथवा आज ॥"

ठठाकर हँसा सकल समुदाय,
मरुत-सुत की सुन सुंदर उक्ति ।
अंजनीलाल वदन-वारीश,
लगे लखने अधरावलि शुक्ति ।।

अहो, अब वाणी-वीचि विलोल—
करेगी मुक्ता-सूक्ति विमुक्त ।
चन्द्र यह रामचन्द्र ही एक—
जगा सकता जो ज्वार प्रसुप्त ।।

समझ कवि-आशय, सब का स्नेह,
खिले मारुति को लख प्रभु-नेत्र ।
नाच ज्यों उठे अथाह प्रवाह,
अफूला अफला दिखता वेत्र ।।

गिरा गरवा सा करने लगी,
पवनसुत झूम उठे तत्काल ।
भरत बोले "प्रभु का नर-चरित—
अलौकिक कहो अंजनीलाल ।।"

दोहा

कर वंदन वाल्मीकि का, लगा हृदय प्रभु-ध्यान ।
काव्य - पाठ करने, गिरा-सिद्ध हनुमान ।।

भुजंगप्रयात

"कहो कौन हैं आप" "हा नाथ ! यह क्या—
लखन आप ही का सदा का सु-चाकर ।"
"कहो कौन प्रिय ! मैं," "वही आर्य ही तो,"
"वही कौन" "राघव महाराज रघुवर ।"

"विजन इस विपिन में, कहो कर रहे क्या,"
"रहे खोज देवी हुए नाथ ! तत्पर।"
"कहो कौन देवी" "जनकराज - तनया,"
"प्रिया जानकी हां" उठा फिर करुण-स्वर ॥

"कहो ताल-हिंताल-बेलों-तमालों—
कदलि कुचफलों - नारिकेलों - रसालों ।
कहो मांसलों - श्रीफलों-कैथ - बेरों—
कटीले रसीले पनस बीज - जालों ॥

वटों-पीपलों-निम्ब कटु, अम्ल निंबू,
अरे आंवले के कषैले कषालों ॥
हड़ों के हरे, जामुनी जामुनों के,
अलस कासनी अलसियों के सुवालों ॥

अरी ! बोल, गोदावरी के सलिल में,
पली सोन-मछली ! प्रिया-पुत्तली सी ।
खिली उज्ज्वला मंडली शतदलों की,
दिनेशस्नुषा की सुंदतावली सी ॥

तनिक मान जाओ, न यों मौन ठानो,
रि ! मनुहार मेरी भ्रमर-मालिकाओ ।
तुम्हीं से घने सांवले केश वाली,
छिपी कौन से कुंज सीता, बताओ ॥

जनक की दुलारी, धरा की कुमारी,
तपे स्वर्ण से वर्ण वाली कमलिनी ।
ग्रसी राहु दुर्दैव ने दूज को ही,
प्रिया राम की चांदिनी चन्द्रवदिनी ॥

बता री ! मयूरी - शराली-मराली,
शुकी - सारिका - कामचारी - कपोती ।।
लखी क्या किसी ने इसी पार दिन में,
अ-कोकी किसी कोक की आंख रोती ।।
भरे दंडकारण्य ! कंटक-कटक तुम,
अकंटक करो राज्य, सारे धरातल ।
कमल की कली सी, जनक की लली तो,
चली ही गई पद-तली की सुकोमल ।
दुलारा जिन्होंने तुम्हें पोरवों से,
हुए आज गति-हीन वे पैर मेरे ।
करो छिद्र, छलनी बने वज्र-छाती,
छनें राम के प्राण, त्रैलोक्य हेरे ।।
कहो मालती-मल्लिका-चंद्रवल्ली,
बकुल - केतकी - कुन्द-चम्पा-शिखरिणी ।
खड़ा वल्लरी - वल्लभा-हीन तरु मैं,
कलभ काल ने रौंद दी कामसरिणी ।।
हरे ! खा लिया क्या किसी ने प्रिया को,
नहीं शाक-भोजी यहाँ के वनैले ।
सुगौरी छिपाली, अतल ने, गगन ने,
निरख राम के सांवले हाथ मैले ।।
बनो वज्र - हृदया न सह्याद्रि-बाले !
छिपी कौन सी कंदरा कंठ-माला ।
सदय हंस ! वंशेश हो आप, बोलो,
कहां देव ! तव बाल की हा सुबाला ।।

प्रिये ! बोल किस लोक में जा छिपी तू,
किसी शाप-वरदान ने या छिपाली ।
बता री सिये ! किस असुर ने अमर ने,
उदर में पचाली हृदय में समा ली ॥
प्रियतमे ! निकल आ किसी कुंज से भी,
न परिहास कर और छवि-पुंजिके तू ।
न पछता सकेगी पुनः चाह कर भी,
गँवा कर समय यह हृदय-कुंजिके तू ॥
मिंचे जा रहे ये नयन मोंचले आ,
चला काल के अंक, निज अंक भर ले ।
प्रिये ! मैथिली ! जानकी ! कुछ बता तो,
न यों रूंठ, ये राम कारण समझ ले ॥
मधुरता - मृदुलता - सरसता - रसिकता,
कुशलता - सुमुदिता - सफलता-मुखरता ।
विभा - शांति - सुप्रीति - शुभकीर्ति-शोभा,
सुरति-मति प्रगति-कांति-सुषमा-सुगमता ॥
सरलता - सुदृढ़ता - सहजता - सुगमता,
सुघडता-सुलभता न देतीं दिखाईं ।
प्रिये ! सुव्रते ! सुस्मिते ! देवि ! सुन्दरि !
सभी साथ तेरे कहां जा समाईं ॥
गई घेरनें क्या स्वयं स्वर्णमृग तू,
घिरी घेर कांतार के, कंदरा के ।
गई रूंठ, मृगचर्म ला मैं न पाया,
कहूँ क्या कि था कौन, क्या छवि बनाके ॥
न आता मुझे याद इस भांति से तुम,
कभी भी, कहीं भी हुईं कोपशीला ।
हमारा हरा हाय सर्वस्व जिसने,
उसी क्रूर दुर्दैव की ये कु-लीला ॥

"नराधम ! समझ, ना-समझ राम ! हमसे"
सिखाते मुझे मृग-मृगी साथ जाते ।
बतातीं अभय कर मृगी मौन, मानो,
कनक-मृग प्रियो ! खोज कर मूढ़ आते ।।
वशिष्ठादि ऋषिवर जिसे शिष्य कह कर,
भरे गर्व-गौरव न पल भर अघाते ।
उसी राम को हा अधम-पशु प्रिये ! ये,
बिना आज तेरे न क्या-क्या सिखाते ।।
जिन्होंने लिया था उठा खेल ही में,
प्रभो ! भूतभावन ! तुम्हारा शरासन ।
उसी पाप से या किसी शाप से हा,
गरल-हीन से भुज भुजग ये गये बन ।।
दिये प्राण तूने श्रवण ! नीर भरते,
बहाते हुए नीर मैं प्राण देता ।
लिये मम पिता-बाण ने प्राण तेरे,
न क्यों तव पिता-शाप मम प्राण लेता ।।
तुम्हारी सुता मैथिली का सुग्रांचल,
न इस क्लीव के हाथ हा, थाम पाये ।
वचन अग्नि-सम्मुख दिये जो सिया को,
नहीं हाय ! मुझसे गये वे निभाये ।।
जनक से दयाकर, जनक हे ! दयाकर,
'क्षमा आप कर दें', कहें शब्द कैसे ।
कलंकित विखंडित उठे भाल कैसे
बताऊँ किसे क्या हुआ ये कि ऐसे ।।
न चिंता मुझे हाथ में चाप जब तक,
जुड़े प्राणमय देह से हाथ जब तक ।
उन्हीं से प्रिये ! हाथ छीने तुम्हारा,
किसी ने जना जीव ऐसा न अब तक ।।

उठा दे लखन ! ला धनुष-बाण मेरे,
उभय-छोर तूणीर के वीर ! कस दे ।
घटा सी लटायें लटकतीं जटा की,
उदित-गिरि उठे भाल सूर्येव, कर दे ॥
रहा क्रोध-अतिरेक से कांप मैं तो,
मुझे सूझता कुछ नहीं, तू बता दे ।
जहाँ जान-अनजान में जिस किसी ने,
छिपा ली सिया, वेग लाकर दिखा दे ॥
न निर्दोष कोई, कहीं दंड पाये,
इसी सोच-संकोच से मौन बैठा ।
दिखा दो मुझे वह अडोला, हिंडोला—
शमन डाढ़ में गाड़ कर कौन बैठा ॥
पधारी करा शम्भु-धनु भंग यह जो,
न क्यों मंडलाकार मम चाप चाहे ।
रही देख, उपधान ये सेज कीं ही,
परित्राण हित त्राण सी क्या न बांहे ॥
छटें ये छटायें, फटें ये घटायें,
गगन-गंग-गति भंग हो बाण-ज्वाला ।
दिशा दुर्दशाग्रस्त अन्यान्य दिशि हों,
गिरें धूलि में टूट नक्षत्र-माला ॥
तले चंद्र-तल, ताल तल का उछल कर,
मिले या कि भोगा ख-मंदाकिनी में ।
युगल-ध्रुव मिलें सप्त-सागर सलिल में,
विराजें भवाभव स-गिरि तारिणी में ॥
असुर! नर! अमर! सिद्ध! गंधर्व! किन्नर!
दिखा दो चराचर ! कहां सीय-तस्कर ।
कहाँ कब न तव गति कहो देव-दिनकर !
तुम्हीं से रहा भीख मैं माँग कातर ॥

सबलता - प्रबलता - अभयता - अमरता,
सभी देख लूंगा दिखे पापकर्ता ।
छिपा काल के अंक या काल ही हो,
बचेगा न अभियुक्त मम सीय-हर्ता ।।
धँसा नीच मारीच के वक्ष में जो,
त्रिशिर-शिर उड़ाते उड़े व्योम में जो ।
हुए हैं न कुंठित, नहीं भूमि लुंठित,
उन्हीं से भरे पृष्ठ पर तूण ये दो ।।
दिशायें-दशों सप्त-सागर त्रिलोकी,
न हों दग्ध निर्दोष, मम क्रोध-ज्वाला ।
दिखादो प्रिया को, सिया को निमिष में,
बतादो कहां आज निमिराज-बाला ।।"
अधर फड़फड़ाये, रदन कड़कड़ाये,
नयन तड़तड़ाये, दिशिप हड़बड़ाये ।
लगा श्रावणी-व्योम संवर्त के ये,
धधकते गरजते महामेध धाये ।।
खडी हो गई राम को रोम-माला,
शरासन लखन से लिया छीन, बढ़कर ।
बढ़ी बांह आजानु तूणीर-दिशि ज्यों,
विलोका तभी गिद्ध घायल धरा पर ।।
कटे पंख, लोचन फटे से, ठगे से—
सितारे खड़े, देह व्याकुल पसारे ।
सटे शीश पजे, लटे अंग सारे,
लहू के सरोवर, लहू के पनारे ।।

दोहा

"राम-राम रघुवंशमणि, सीतापति रघुनाह ।
प्राण-अतिथि को प्राण-प्रिय, विदा करो भर बांह ।।"

ऊर्मिका

छलक प्रति जन-जन के दृग उठे,
देख प्रिय रौद्र-करुण-शृंगार ।
सिद्ध अद्भुत ही हुआ रसेश,
सभी में नवानंद संचार ॥

कह उठे सहसा ही वाल्मीकि,
"छिपी बड़वा निकले हनुमान ।
इन्हें तो स्वतः शारदा सिद्ध,
मानसर इनका मानस स्थान ।"

हंस-आसीन, हंस से उतर,
गिरा करती अति मुदित किलोल ।
छंद की लहर-लहर में लहर—
भाव पंकज-कुल लाती रोल ॥

तुम्हें दें साधुवाद हनुमान !
शब्द वे नहीं हमारे पास ।"
कहा मारुति ने निज कर जोड़,
"देव ! मैं लघु वानर तव दास ॥

इन्हीं की लीला का लालित्य,
अलौकिक भरा-रूप तारल्य ।
सरस रस-गुण का अनुपम-स्रोत,
कृती-कृति - सुमति-सुपथ-सारल्य ॥

काष्ठ-पुतली सी वाणी मात्र,
नाचती जिनके लघु संकेत ।
राम चैतन्य-राशि रस-गिरा,
राम सच्चिदानंद चित-चेत ॥"

नम्र ज्यों-ज्यों कपि होने लगे,
कवीश्वर होने लगे उदास ।
देख राघव ने सोचा कहीं—
न्यून हो नहीं तनिक उल्लास ।।

तुरत बोले "निशि बीती बहुत,
करें कृपया ऋषिवर ! विश्राम ।"
सजीं शिष्यों द्वारा सांथरीं,
विपुल कोमल-निर्मल अभिराम ।।

किया मुनि ने निज कुटी प्रवेश,
सांथरी पर लेटे रघुनाथ ।
चरण-सेवा हित परिकर बढ़ा,
राम ने रोके हँस कर हाथ ।।

"न समुचित आश्रम में, प्रियवरो !
लगेगी तपस्वियों को ठेस ।
श्रमित हो, सभी करो विश्राम,
पड़ा है अभी बहुत पथ शेष ।"

भरत सह राम मध्य सांथरी,
वाम-दक्षिण लंकेश-कपीश ।
चरण-दिशि जा बैठे गुहराज,
शीश-दिशि शीश नवा कर कीश ।।

बदल प्रभु ने करवट दो-चार,
भरत भुज सहला कर निज हाथ ।
शांत चित अति धीरे से कहा,
"भरत देखा," "हां देखा नाथ ।।"

"प्रबल-तम माया निश्चित् बंधु,
न जीते ऋषि-मुनि-संत-सुजान ।"
"जीतता वही जितायें जिसें,
कृपाकर आप स्वयं भगवान ।।"

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

युगल सोये, कवि करने लगे,
गूढ़-संवाद-सूत्र का अर्थ ।
सूर्य - दीक्षित अंजनी - कुमार,
राम-प्रिय, शंकर सर्व-समर्थ ।।

सहज ही समझे, समझा भाव,
नाभि में लगा गूंजने नाम ।
सुला निशि सम्मुख श्याम-शरीर,
उठे हिय, कोटि-सूर्य सम राम ।।

लगा होने सुमंद शशि-ओज,
चांदिनी रंगभूमि का रंग ।
उषा के घुंघरू बजने लगे,
बजाने मलयज लगा मृदंग ।।

उठा शीतल-पन ललक निषाद,
विहग-गति लहक उठे कपि-अंग ।
गंध से महक उठे लंकेश,
भरत भँव भँवरें भरे उमंग ।।

कुमुदिनी ने अवगुंठन किया,
कमल-कलिका का खींच दुकूल ।
उठे रविकुल-रवि राजा राम,
विश्व की विभाराशि के मूल ।।

सप्त-सैन्धव सुन्दर रथ तुल्य—
विलोके निज सम्मुख हनुमान ।।
प्रकाशित उदय-गुहा से निकल—
उदय-गिरि फैला भानु सु-भान ।।

परम-पावन जग-पावन हेतु,
सपरिकर चले जान्हवी-तीर ।
सकल-जन नित्य-क्रियायें निभा,
नहाने लगे सुपावन-नीर ।।

प्रचेसासुत महर्षि वाल्मीकि,
कुंज की ओट अकेले दूर ।
नहाकर, वल्कल धार नवीन,
खड़े हैं, अवलोका कपि शूर ।

सोच कुछ, बचा सभी की दृष्टि,
लगा डुबकी, जा निकले तीर ।
नमन कर, मधुर गिरा, नतशीश,
पुनः बोले धीरे गंभीर ।।

"न मेरा अभिप्राय था कभी,
आपका करूँ तनिक मन म्लान ।
न मेरी क्षमता, समता करे—
मूढ़ मम मति तव काव्य-महान ।।

कपीश्वर-रक्षेश्वर प्रस्ताव,
भरत-अनुमोदन प्रभु-आदेश ।
हुए भावाविभूत गुहराज,
स्वयं मैं भावावेश विशेष ।।

बावला वानर कहता गया,
शेष तव वातावरण-प्रभाव ।
मान लघु-लघिमा को दे गये,
महाजन अपने सरल स्वभाव ।।

नाम ही सिय-पति का अति ललित,
सकल रस सरस-सरीव चरित्र,
प्रशंसा अनायास सर्वत्र,
सर्वदा करते निश्छल-मित्र ।।

क्लांत हों जिन के कारण तनिक,
साधु-ऋषि-मुनि-सुर-गुरु-पितु-मात ।
सदा ही धिक्कृत वे भू-भार,
पड़े उन पर धाता-पवि-पात ।।

न होगा पुनः कीश उद्दंड,
कवीश्वर! क्षमा करें शिशु जान ।
लिखेगा नूतन लेख न कीश,
लेख ये, लेगें दधि में स्थान ।।

करांजुलि गंग, शीश तव चरण,
देव रघुपति की शपथ प्रमाण ।
डिगेगा नहीं स्व-प्रण से कभी,
अंजनी-जाया रहते प्राण ।।"

सहज ज्यों आये, अति ही सहज—
मार डुबकी त्यों गये कपीन्द्र ।
'सत्य या स्वप्न' डूब से गये,
शोच-सागर में चकित कवीन्द्र ।।

अर्ध-निशिकाल देख अर्कास्त—
उदित ज्यों होता अष्टम-चन्द्र ।
चलें त्यों भारी मन, पद भरे,
लाज की दल-दल में कवि, मंद ।।

उधर मारुति अति प्रमुदित हृदय—
नीर से निकल आ गये तीर ।
"सम्हाली जा न रही मुस्कान,
मिला क्या जल में ऐसा वीर ।।"

"भरत वर! मिला सभी कुछ मुझे,
मिले जिस दिन मेरे श्रीराम ।
बन गये मोक्ष-धर्म भुज-बन्द,
चरण-आभूषण अर्थ-सुकाम ।।"

अर्घ्य - अर्चन - तर्पण - वंदना,
शीघ्र विधिवत् कर, सब सम्पन्न ।
निभा आश्रम-कृत मुनि-कर-ग्रहण—
किये फल-मूल अगहनी-अन्न ।।

विदा मांगी प्रभु ने शिर झुका,
मुदित-मन दी ऋषि ने आशीश ।
भरत-गुह साथ चले रघुनाथ,
बढ़े पीछे लंकेश-कपीश ।।

मिले कपि, रोमांचित मुनि हुए,
लगा ज्यों द्रवित हुआ हिम-पुंज ।।
देख कपि ! वर नव-वधु सी छिपीं,
पुतलियां मुनि की पलक-निकुंज ।।

दोहा

"जब तक जग रघुपति-कथा, हरते जन-मन पीर ।
श्रोता-वक्ता दल मुदित - करते विचरो वीर ।।
किसी सुवेष सुदेश हों, उदित मुदित रघुवीर ।।
बनो भक्त-जन कल्पतरु, राम-धाम कपि-धीर ।।
अनुपम राग-विराग तव, अश्रुत तव बलिदान ।
मन-तन विचरो अतनु सम, कवि-कुल-मणि हनुमान ।।"

चले कर पुनः-पुनः वंदना,
सभी बैठे स्वस्थान विमान ।
मांग मुनि से निर्देशादेश,
गगन में भरने लगे उड़ान ।।

चित्रकूट

लगे दिखने निर्झर-निर्झरिणी—
निर्झरित चित्रकूट के कूट ।
मुदित हो पथिक, स्वनिधि पा पूर्ण-
गई जो विगत निशा थी छट ।।

हुए त्यों रघुपति परम प्रसन्न,
वही पहली हरियाली देख ।
"भरत ! ये स्थान-स्थान पर चिन्ह,
तुम्हारी कलित-कीर्ति के लेख ।।"

"नाथ ! यह चित्रकूट तो पत्र,
विधाता रंग, तूलिका दास ।
किंतु चित्रक श्रीराम-चरित्र,
उसी का प्रकटा कला-विलास ।।

जीत में बदली हार सदैव,
न किसकी, कब, किस-विधि रघुनाथ ।
दिया शिशु को सौभाग्य विशेष,
उसी की चित्रकूट शुभ-गाथ ।।"

"भरत ! यह तेरी गिरा विनीत,
मुझे छल चुकी अनेकों बार ।
देखकर तेरा मस्तक नमित,
चुका मैं जीती बाजी हार ।।"

"रक्षपति ! देखो मंदाकिनी,
चन्द्ररेखा सी धनुषाकार ।
मध्य में स्फटिक-शिला, ज्यों भव्य—
जलहरी शंभु हीरकाकार ।।

नलिन-नलिनी निर्मल निर्माल्य—
सरिस, लघु एक विशाल कुटीर ।
स्वामि का शैल प्रवासागर,
धर्म ज्यों धारे खड़ा शरीर ।।

तनिक देखो, दिशि-दिशि कीशेश !
चतुर्दिक भीलों के आवास ।
काततीं सूत कहीं भिल्लनीं,
भील-गण कहीं चीरते बाँस ।।

बालिका कहीं अटेरन लिये,
सूत सुलझातीं, गातीं गीत ।।
फूल-फल-डाल - छाल-दल - मूल,
कूटकर छान रहीं बहु रीति ।।

हरिद्रा - गेरु-नील - मंजीठ—
कैथ - गोरोचन - अंजन-ताल ।
बनाते रंग-रंग के रंग,
वृद्ध-जन एक-एक में डाल ।।

भूर्ज-पत्रों पर बूटें-बेल—
रहे हैं चतुर-चितेरे काढ़ ।
प्रखर काँटे, लंबे नख, सूक्ष्म—
जालियां रहे विविध-विधि छांट ।।

निमिष में इन छापों से वस्त्र—
छाप देतीं बहु विज्ञ-कलत्र ।
प्रकृति सकुंचाती निज छवि देख,
दृश्य प्रकटाते वे ये पत्र ।।

बुनी जा रहीं चटाईं कहीं,
टोकरीं करतीं हैं शृंगार ।
बन रहीं आसन्दी-दीपिका—
चतुष्का बहु आकार-प्रकार ।

खान से निकले अनघड़ उपल,
काट कर मांज रही है शाण ।
छाँट कर बहु - कोणीय सुरत्न,
बनाते गृह-गृह ग्रह-सप्राण ।।

छांह में रँगे जा रहे मुकुर,
धूप में चाक बनाते भाण्ड ।
रखीं वे प्रतिमायें मृण्मयीं,
सजा ज्यों मूक अपर-ब्रह्माण्ड ।।

विचारें किंतु हुआ किस दिवस,
शबर-जन का यह पैतृक-कार्य ।
अहिंसामयी क्रांति सम्पूर्ण,
सहज ही करा गये श्री आर्य ।।

लूटना जन्म-सिद्ध-अधिकार,
मारना मनुज तनिक सी बात ।
विद्वता, नव पथ-अनुसंधान,
चतुरता, सफल लगानी घात ।।

टपकता लोहू माँस प्रसाद,
सद्य रिसती ताड़ी रस मात्र ।
धरा खलिहान, रसोई वदन,
बाण-नख चमस, अंजुली पात्र ।।

छाल परिधान, डाल हिंडोल,
शिला सिंहासन, भुज उपधान ।
कंदरा कोट, विजन-वन भवन,
कूल-हीना सरि केलिस्थान ।।

पुरुष-नारी दो संज्ञा मात्र,
सकल दिनचर्या लूटाखेट ।
कुपित तो पिया पसा भर रक्त,
मुदित तो दिया पसा भर भेंट ।।

पूर्ण बाघम्बर, खग-मृग चर्म,
केश - नख - रद - कस्तूरी कोष ।
यहाँ का था सम्मानित विभव,
आर्य-जन जिसे मानते दोष ।।

पधारे जब से वन में देव,
हो गया इनका काया-कल्प ।
आज देखें तो इनमें खोज,
निकाले कौन सुभट मल अल्प ।।

आज तो कर मज्जन प्रति-प्रात,
प्रथम आते श्रीराम - कुटीर ।
बना कर रंग-बिरंगे चीर,
न ढकते अपना मात्र शरीर ।।

बल्कि पुर-ग्राम-निवासी इन्हें,
पहनते भरे अमित चित चाव ।
पुष्ट इस हित अधिकाधिक नित्य,
हो रहा नागर - शबर लगाव ।।

अवध तो राम-राज्य प्रारम्भ—
हो सका राज्य-तिलक पश्चात् ।
यहाँ ती चौदह-संवत्-पूर्व,
हो गया राम-राज्य विख्यात ।।

यहाँ का गणाधीश श्रीराम,
जानकी गणाधीश्वरी नाम ।
तंत्र - संचालनकर्ता भरत,
शस्त्रधारी लक्ष्मण बलधाम ।।

चलाते गुरु-कुल सकल वशिष्ठ,
सकल पंचायत-पति ।रपुदमन ।
राम-अवसान अन्य को सविधि,
यहाँ निर्वाचित करता सदन ।।

वृद्ध-जन करते न्याय-सुकार्य,
राम की शपथ तर्क का अंत ।
तुरत गुह बोला "हम ते सुनौ,
आत जे नित अभिजोग अनंत ।।

भिल्ल-जनपद कृषि-बरखा आदि,
एक बोलें तव पुन - परताप ।
कहत दूजा तव अँखियन पीर,
हमारेइ कछु पूरबले पाप ।।

श्रेय के इमि आदान-प्रदान,
बाढ़ सो बाढ़त कोप-प्रकोप ।
मान-जन कहें चुप्प करि रहो,
राम ने दियो सहो आरोप"॥

उचटतो मन, आतो ह्यां चलो,
गिरीश्वर कामद-दर्शन हेतु ।
एक दिन देखौ अचरज एक,
भँवर में भ्रमित ह्वै गयो सेतु ॥

न्याय-साला में था अभिजोग,
बिना उत्पन्न किये संतान ।
नवल-दम्पति कुंड़लिनी-जोग,
साधना करते निसि सुनसान ॥

जुवक - जुवती दोनन के पिता,
बहावत ठाड़े ह्वै जलधार ।
बिनै यहि बिनु जलदाता कहीं,
न हुइहैं बंस बिधंस हमार ॥

डसति सोइ चिंता सांपिन हमहिं,
डसी इक द्यौस बुढ़उ नृप जौन ।
उननपे सृंगि करायो जज्ञ,
जज्ञ हम करैं, करावै कौन ॥

इतेक वे बड़े, मूढ़ इन जान,
लुगाई - लोग यही विद्वान ।
बिना अन-जल हम दैहैं प्रान,
बरस मँह जो न दई संतान ॥

जुवक बोलौ, मन सोच्यो नैंकु,
बुढ़उ-जन रहे काह तुम मांगि ।
हमहि भड़वैया करन्यौ चहौ,
महामाया मेहरारू स्वांगि ॥

जिन्हहिं सुनि भरि-भरि आवै हीय,
इहां के नित-नित अमित प्रसंग।''
उतरने ज्यों-ज्यों लगा विमान,
उभरने त्यों-त्यों लगीं उमंग ।।

दोहा

दौड़े कोल-किरातगण, तज-तज धाम स्वकाम ।
गूंजा पर्वत निमिष में, आये राजा राम ।।

ऊर्मिका

हुई नवयुवकों की स्मृति नई,
थके नयनों में आई ज्योति ।
कथावलि-नायक आये राम,
बाल-दल उमड़ी अचरज-स्रोति ।।

कोल बोले करते जय घोष,
"करो प्रभु! पावन निज प्रिय वास ।"
"अत्रि मुनिवर के करलें दर्श,
लगेगा भोग तुम्हारे पास ।।"

भिल्लगण को कर-कर आश्वस्त,
अत्रि के आश्रम पहुँचे राम ।
वेदिका पर अनसूया सहित—
देख मुनि, सबने किया प्रणाम ।।

लगाये मुनि ने हृदय सियेश,
सभी को दीं प्रमुदित आशीश ।
सती बोली आरती उतार,
"यशस्वी युग-युग रहें महीश ।।"

कुशल मंगल कर बोले राम,
"दिव्यदम्पति का चरणस्पर्श ।
पुनः पाये हम यह सौभाग्य"
"परम-सौभाग्य राम ! तव दर्श ॥"

"अवध में अश्वमेध हो देव !
दिया है गुरुवर ने आदेश ।"
"उचित है पर उससे भी पूर्व,
कार्य कुछ करने शेष नरेश ॥

दशानन के शासन ने किया,
हमारे त्रेता का कलिकाल ।
आपके पुण्य-कृत्य ने किया,
पुनः सत्युग का ऊँचा भाल ॥

किंतु भावी संतान न कहीं,
पुनः कर दें त्रेता ही लुप्त ।
हुए निर्भय मख-तीर्थ समूह,
किंतु वे फिर भी अभी प्रसुप्त ॥

"काल का कारण राजा", रही,
यही प्रति काल-काल की रीति ।
पराक्रम-चमत्कार से मात्र,
न सुधरी कभी कहीं की नीति ॥

परिस्थिति-देश-काल अनुसार,
सुरक्षित की जाती स-प्रयत्न ।
सिंधु देते कैवर्त उलीच,
पारखी किंतु परखते रत्न ॥

कहाँ किसका कितना सौन्दर्य,
सोचकर कलाकार सब भाँति ।
विविध-विधि मांज, सुधार, विदार,
बनाते आभूषण निष्णाति ॥

राम ! त्यों शत्रु-सिंधु-संतरण,
पा गये जो हम विजय-विभूति ।
बनाकर सुविमल-अविचल-ज्योति,
कीर्ति-प्रतिमूर्ति सुधर्म-प्रसूती ।।

लोक में इसे प्रतिष्ठित करो,
सत्य का यही सनातन कार्य ।
करो निज भ्रमण तीर्थ चैतन्य,
सृष्टि परिपुष्टि, तुष्टि नव आर्य ।।

पर्व बहु परम्रागत तात,
काल ने किये गुप्त, कुछ सुप्त ।
प्रकाशित, दे कर करो प्रकाश,
न सद्-संस्कृति हो जाये लुप्त ।।

दग्ध कुछ खल-कोपानल हुए,
छिपे कुछ घोर-विजन वन-पंथ ।
मनस्वी-मुनि कर अनुसंधान,
सौंप दे ऋषियों को वे ग्रंथ ।।

आपके वाजिमेध के साथ,
चले यह भी वैज्ञानिक यज्ञ ।
युगों तक राघव-संवत् रखे,
सुरक्षित स्वहिय भविष्य कृतज्ञ ।।

राजनैतिक सीमायें रहें,
न रहना उचित न अधिक विशेष ।
किंतु संस्कृति-श्रुति का यह केन्द्र—
न विघटित हो यह अपना देश ।।

लंक-जव - बाली द्वीप - समूह,
ब्रह्म - गांधार सहित कैलास ।
एक ही निर्देशन में करे,
सदा यह भारतवर्ष विकास ।।

आन्तरिक भाषा - भूषा - रीति,
वित्त-राजस्व - सुरक्षा - न्याय ।
परिस्थिति-देश-काल अनुसार,
सम्हालें अपने राज्य-निकाय ।।

राष्ट्ररक्षा - विज्ञान - विधान,
संधि - विग्रह - विदेश व्यापार ।
योजना - पारस्परिक विवाद,
बांध-शिक्षा त्रिमार्ग संचार ।।

सभी हों सुदृढ़ केन्द्र-आधीन,
निरंकुश पर न सुदृढ़ का अर्थ ।
कुटिल यदि करें कलुष उत्पन्न,
न हस्तक्षेप केन्द्र का व्यर्थ ।।

अनुज को लख जननी के अंक,
त्यागता जो अग्रज स्तन-क्षीर ।
अनुज का पाता है सम्मान,
वही अग्रज सुधीर-गंभीर ।।

केन्द्र का राज्यों से सम्बन्ध,
स्वामि-सेवक अनुबंध समान ।
न बंधन बने किंतु अनुबंध,
अनुज-अग्रज का ही हो भान ।।

राज्य हों भक्त समान निरीह,
केन्द्र हो सगुणेशेव उदार ।
रूप है राष्ट्र-भक्ति का यही,
स्नेह का सर्वांगीण निखार ।।

सुरागाधारित सह-अस्तित्व,
राष्ट्र को रखता सदा अखंड ।
भेद से द्वेष, द्वेष से क्रोध,
क्रोध से बढ़ता वैर प्रचंड ।।

वैर करता विवेक का लोप,
अहित-हित जाता मानव भूल ।
अहम्-आशंका - स्वार्थ त्रिताप,
तपाकर करते तेज त्रिशूल ।।

अपेक्षाधिक्य उपेक्षाधिक्य—
बनाते अभिलाषा, अभिशाप ।
राष्ट्र-संचालक से अविवेक—
कराता आत्मघात का पाप ।।

दंड को अनुशासन का नाम,
मनस्वी बनकर देते अज्ञ ।
क्लेश - अपयश - तामस - दासत्व,
चतुर्फल दायक यह अघ-यज्ञ ।।

समिध-अधिकार, दमन-शाकल्य,
कर्म-कौटिल्य, श्रुवा-नैष्ठुर्य ।
आज्य-स्वातंत्र्य, शास्त्र-विधि स्वार्थ,
मंत्र-ध्वनि निर्लज्जा प्राचुर्य ।।

स्वयं देता पूर्णाहुति स्वकर,
पुरोहित सहित केन्द्र यजमान ।
सूक्ष्मता से सब भांति निहार,
बनाओ भारत-देश महान ।।

न करना-सहना अत्याचार,
न कायर, क्रूर न, केवल शूर ।
मंत्र यह केवल राजा राम !
राष्ट्र से संकट रखता दूर ।।

समादरणीय महर्षि वसिष्ठ,
शुभद उनके सदैव आदेश ।
करो पालन, सब भांति समर्थ—
आप निश्चित् साकेत-नरेश ।।

धरा पर यूं तो हुए अनेक,
एक से एक अधिक बलवान ।
काम सम रूप, विंध्य सम धैर्य,
वृहस्पति सम गुण-नीति-निधान ।।

शत्रु तव, दशशिर त्रिभुवन-जयी,
श्वशुर तव, निमि अद्भुत विद्वान ।
और क्या शक्र-सखा तव पिता—
पुण्यनिधि दशरथराज महान ।।

न वे भी अश्वमेध का वत्स !
पा सके धरा-धाम सम्मान ।
क्यों कि ऋषि-जन उनका परिमाण—
न पाये निज परिणाम-प्रमाण ।।

कृपा या धर्म-भीरुता कहूँ,
न इस पर छिड़ा कदापि विवाद ।
एक अपवाद-स्वरूप त्रिशंकु,
तुम्हारे पूर्व-पुरुष ही याद ।।

यज्ञ, मंगल-कर जिनका बना,
अमंगल अखिल-विश्व का घोर ।
शून्य में लटक शून्य सा गया,
महाजन, बन साधारण चोर ।।

नृपति ! हम द्वेष-रहित ऋषि-वृंद,
किसी के हैं वैताल न क्रीत ।
धर्म से ही रखते संबन्ध,
समझले कोई वैर कि प्रीति ।।

पुरोहित हैं वसिष्ठ तव, अतः—
कह दिया तुमसे कर लो यज्ञ ।
नहों, यह सत्य समझ लो वत्स !
न उनसे बड़ा आज तत्त्वज्ञ ।।

कपिल-कवि-भरद्वाज - घटयोनि—
गाधिसुत - नारद - देवाचार्य ।
मिलें यदि इन सब के सब तत्व,
सुलभ तो भी न, विधिज सा आर्य ।।

उन्होंने मथ कर मन-मस्तिष्क,
दिया है तुम्हें भद्र! आदेश ।
चक्रवर्ती पद को दो राम,
स्व-गौरव से सम्मान विशेष ।।

यज्ञ-व्रत धारो हो निश्चित,
तुम्हारे भ्राता-मित्र सुयोग्य ।
करा लीलामृत जग को पान,
बना दो अजर-अमर-आरोग्य ।"

झुका कर प्रभु ने सादर शीश,
कहा "प्रभु ! तव अमोघ आशीश ।"
अत्रि बोले "तव कृपा-प्रभाव,
जानता हूँ ईशों के ईश ।।"

राम बोले," विमान में अभी,
व्योम से हमने लखीं महर्षि ।
कोल-कुल की की कलात्मिका-कलित-
श्रमाधारित - कृति - हृदयस्पर्शि ।।

सुना विवरण प्रिय-गुह से विशद,
मिला सुख, व्यापी चिंता चित्त ।
आज यदि नहीं, किसी दिन कभी—
न क्रय कर डाले इनको वित्त ।।

विदूषित दूषण, लंपट त्रिशिर,
खरों से माध्यम ढोकर भार ।
जाल फैलाकर अगणित घृणित,
शूर्पणखा रति सभीति विस्तार ।।

न लादें, शांत विपिन में कहीं—
बवण्डर प्रलयंकर भूचाल ।
करे रण आकर काल 'अभाव',
प्रफुल्लित-वन वासंती-काल ।।

कनक-मृग-पूंजी रावण दिखा,
न करदे व्यामोहित, श्रम सीय ।
राम राजस्व लोभ से कहीं—
हुआ यदि इनका अनुकरणीय ।।

भ्रमाच्छादित सुन कर कटु-गिरा—
गया नय लखन दूर, हो मौन ।
खलानय का चारों दिशि सिंधु,
तरेगा गहरी खाई कौन ।।

समा जायेंगे कोटि सुमेरु,
बनेगी पल-पल थाह अथाह ।
विमल जल नहीं, फिसलनी कीच-
दिखायेगी बन स्नेह-प्रवाह ।।

दहन कर भी दे मारुति एक,
न होगी तो भी हानि विशेष ।
हिलेगी कुम्भकर्ण की सेज—
न होगा मेघनाद निश्शेष ।।

तरे यदि येन-केन विधि सिंधु,
करेगा तो भी रिपु उपहास ।
अखाड़ा चंद्र-अटा पर जुटा,
डिगाने का साहस विश्वास ।।

भंग करने को यति-जन योग,
दिखायेगा नृत-नाटक रंग ।
हिला यदि अंगद का पद नहीं,
जानकर भी पितु-मैत्री संग ।।

नक्र सम अश्रु बहाकर खल न—
भेद-विधि भंग कर सके संग ।
मिटा यदि सब कुछ तो भी शीश—
करेंगे, कटते-कटते व्यंग ।।

एक रावण ने लंका बैठ,
किया प्रति लोकालोकाघाता ।
घुसे घर-घर पूंजी लंकेश,
करेंगे क्यों न देव ! उत्पात ।।

बढ़ेगे दिन-दिन भेद-विभेद,
बँटेगा वर्ग-वर्ग में देश ।
स्वार्थ से स्वार्थ करेंगे समर,
त्याग लज्जा विचरेगा द्वेष ।।

दिखेंगे सद्गुण दुर्गुण रूप,
करेगा वैर अंग से अंग ।
असह तन-भार कहेंगे चरण,
लगेगा कर को उदर कुसंग ।।

नीच ये चरण कहेगा शीश,
करेंगे बुद्धि-हृदय संघर्ष ।
निकल मन से मानवता दीन,
करेगी पीन धर्म-अपकर्ष ।।

विमलता - विद्या-विजय - विभूति,
प्रमुदिता-क्षमा भिक्षुणी-वेष ।
सहेगी स्थान-स्थान-पल विपल,
कठिन नास्तिकता से कटु-क्लेश ।।

कलाविद-कृषक-श्रमिक समुदाय,
बनेंगे कल शोषण के पात्र ।
छोड़ कर संरक्षण श्रीमंत,
करेंगे केवल शोषण मात्र ।।

गगन तल तक पायेंगे इधर,
उत्तरोत्तर प्रासाद प्रसार।
छिपेंगी छलनी बनकर छान—
धसक कर उधर अतल की छार॥

इधर पकवान-प्रभाव अजीर्ण,
उधर अति अन्नाभाव कुजीर्ण।
इधर वे भोग-विभूति विदीर्ण,
उधर वे भोग-विभूति विदीर्ण॥

धर्म - संस्कृति - साहित्य - समाज,
शौर्य - ऐश्वर्य - धैर्य - सुविवेक।
सदाशा अभिलाषा-एकता,
प्रीति-श्रम श्रेष्ठादर्श अनेक॥

असमता सुरसा की मुख-गुहा,
धसेंगे बन-बनकर लघु-कौर।
अभागे रिक्त-उदर की क्षुधा,
कहेगी फिर भी, दो कुछ और॥

और कुछ फिर क्या देगी दीन
मेदिनी महापाप से पीन।
रँगेगी कुटिल फूट के अधर,
बना स्वास्तित्व गिलौरी क्षीण॥

भयंकर रक्तपात उत्पात,
घात-प्रतिघात अजात-प्रपात।
प्रलय से पहले ही यह सृष्टि,
काल को देगी थाल हठात॥

दिख रहा है प्रत्यक्ष भविष्य,
दीप-द्रोही अँधियारा घोर।
करें कुछ ऐसा देव! उपाय,
रहे स्थायी बन कर यह भोर॥

कला-कृषि-श्रम सब फूलें फलें,
न जायें दले, न दलें धनेश ।
अभय होकर स्वोन्नति सग सकल,
सुरक्षित रखें सदैव स्वदेश ।।"

झलक मुनि के मस्तक पर उठी,
कठिन चिंता की काली-रेख ।
"आज जो देख रहे रघुनाथ !
रहा मैं भी वह भावी देख ।।

सरलता इन भीलों की देख,
कड़ी आशंका में आनंद ।
नृपति ! परिणित हो जाता स्वतः,
हृदय की धड़कन लगती बंद ।।

उलझता जाता सुलझ विचार,
कौतुकी-कवि का ज्यों पद-कूट ।
हृदय-घट श्रम-रज देती सिला,
बुद्धि-गोली गुलेल-चित छूट ।।

दृष्टिगोचर होता तब मुझे,
एक ही यह उपाय रघुनाथ ।
बाढ़ जब तक न लगालो सुदृढ़,
न तब तक लो कदापि हल हाथ ।।

परम सात्त्विक जीवन से जिये,
व्यक्तिगत व्यय हो नृप का न्यून ।
ग्रसे कर्तव्य भावना को न—
दंभ अधिकारों का अत्यून ।।

व्यवस्थापक तो रहे नरेश,
व्यवस्था का परन्तु बन अंग ।
व्यवस्था जहां नृपति-हित हुई,
समझ लो वहीं व्यवस्था भंग ।।

राम ! तुम यद्यपि बुद्धि-निधान,
सत्य-प्रत्यक्ष सुधर्म - सुगात्र ।
आपके प्रति लघु भी उपदेश,
सूर्य के सम्मुख दीपक मात्र ।।

किंतु फिर भी कहता ऋषि, भूप !
देख कर देश-स्वधर्म भविष्य ।
व्यवस्था वह कर जाना देव !
न हर पायें खल साधु-हविष्य ।।

दोहा

जब तक त्रिभुवन में रहे, रवि-शशि-ज्योति-प्रसार ।
तब तक राजा राम की, रहे अजर जयकार ।।"

ऊर्मिका

कोल-कोलाहल बढ़ने लगा,
धमकने लगे दमामें-ढ़ोल ।
गंग का ज्यों शुभागमन देख,
उदधि नाचा लहरा कल्लोल ।।

मांग मुनिवर से सादर विदा,
पधारे बाहर श्री रघुनाथ ।
भिल्ल-गण जयकारे कर उठे,
धरा पर धरते-धरते माथ ।।

सुमन-शिविकायें छः-छः खड़ीं,
एक से एक अनोखे साज ।
'विराजें' बोले कोल विनम्र,
भरत बोले मृदु गिरा स-लाज ।।

"अवधपति के ही ये उपयुक्त,
चलेगे सभी आपके साथ ।
देख सुग्रीव-विभीषण विनय,
विराजे स-संकोच रघुनाथ ।।

तानते फूलों की छतरियां,
दुलाते चँवर, बजाते ढ़ोल ।
गुँजाते जयकारों से गगन,
चले क्रीड़ायें करते कोल ।।

दिवस के ढ़लते पहुँचे राम,
परम-अभिराम स्वरामाराम ।
मध्य, अति सुंदर सज्जा सजा,
पुरातन प्रभु-प्रवास का धाम ।।

सकल परिकर हो उठा प्रसन्न,
हुए मोहित रघुपति अवलोक ।
भाव-विह्वल केकयीकुमार,
न पाये दृग-निर्झरिणी रोक ।।

थपक कंधा प्रभु बोले "चलो,
करेंगे स्वर्गंगा में स्नान ।"
नहा कर संध्या-वंदन किया,
किया फिर दीप-मालिका दान ।।

लगा ज्यों प्रमुदित मंदाकिनी,
धार नव-अलंकार श्रृंगार ।
पधारी रघुपति-दर्शन हेतु,
हृदय में हुलसी बारम्बार ।।

वंदना कर प्रभु सबके साथ,
विराजे यों प्रवास-आवास ।
कलाधर सकला सु-कला सहित,
सिंधु पर ज्यों बिखराता हास ।।

कोल लाये दोनों में मधुर—
स्वाद-मय रुचिर कंद-फल-मूल ।
प्रशंसा कर प्रभु देने लगे,
सभी को रुचि-रुचि के अनुकूल ।।

विभीषण बोले "पहिले आप,
लगायें भोग जानकी-प्राण ।"
राम बोले "यह मम प्रिय-सदन,–
आप सब मेरे अतिथि समान ॥

आपको बिना लगाये भोग,
करूँगा मैं कैसे उपभोग ।"
देख प्रभु का अत्यद्भुत स्नेह,
हुए भावाविभूत सब लोग ॥

फलाशन कर शीतल जल पिया,
लिया मुख-शुद्धि हेतु हररंश ॥
विराजे वेदी पर श्रीराम,
सुमन-सज्जा बहु-भांति प्रशंस ॥

पधारे वृद्ध-वृद्ध बहु शबर,
झांकती वदन तपस्या-कांति ।
बोलते शिशु सी वाणी सरल,
खेलती अंग-अंग शुचि-शांति ॥

राज-गज-दल से शिक्षित चतुर,
कोल-कुल-नंदन करते नृत्य ।
काकली सा बाला-कुल-गान,
प्रकट करता वासन्ती-दृश्य ॥

चंग - अलगोझे - ढफ - डुगडुगी,
बजाते चढ़कर छैल मचान ।
चाँदिनी में बहु करतब दिखा,
खिलाते रघुपति की मुस्कान ॥

प्रशंसा कर-कर देते राम,
वस्त्र-भूषण नागर-पकवान ।
एहिन कर, भर-भर मुख मिष्ठान्न,
वंदना से करते सम्मान ॥

चला क्रम निशि भर यही अभंग,
रंग में रँगती गईं उमंग ।
उठे प्रभु, लख निशि प्रहर तृतीय,
भक्ति-सरि जैसे ज्ञान-तरंग ।।

शबर-संबोधन करते हुए,
कराने लगे अमरता-बोध ।
बताया जगत-जन्म का हेतु,
सरल-रसमय वाणी में शोध ।।

सुशिक्षा पारम्परिक कलादि,
बता दोनों का दृढ़ सम्बन्ध ।
स्वमुद्रांकित दे पत्र विशेष,
किया पोषण का अभय प्रबंध ।।

नित्य नियमों से हुए निवृत्त,
चले जन-जन से भेंट खरारि ।
विपल में गूँजा दिशि-दिशि प्रांत,
"राम राजा जय मंगलकारि ।।"

पुष्कर

दोहा

गालव मुनि से भेंट कर, लांघी सांभर-झील ।
पहुँचे प्रभु पुष्कर जहाँ, ब्रह्मा-विग्रह नील ।।
सावित्री को नमनकर, गायत्री सम्मान ।
धराधार वाराह के, गये पुनीतस्थान ।।

ऊर्मिका

विभीषण बोले "हे रघुनाथ,
सुपनखा यहीं कहीं पर पास ।
तपस्या करती आश्रम बना,
दर्श दे, करें सुदृढ़ विश्वास ।।"

हुआ प्रभु को क्षण भर संकोच,
पुनः उभरा स्वाभाविक हास ।
कपीश्वर बोले "हो यदि उचित--
करें मारुति जा तनिक तपास ।।"

देख रघुपति की सम्मति मौन,
चले पद-वंदन कर हनुमान ।
बने साधारण से ग्रामीण,
अंजनी-नंदन- परम-सुजान ।।

उटज के मुख्य-द्वार का पहुँच,
तनिक ठिठके लकुटी ठठकार ।
न ध्वनि की प्रतिक्रिया कुछ देख,
बढ़े फिर दो पग पवनकुमार ।।

दिखा कुछ-कुछ अन्दर का दृश्य,
न सहसा हुआ किन्तु विश्वास ।
वेदिका पर रघुपति की मूर्ति,
सुमुख पर मुखर मनोहर-हास ।।

उठा डलिया से नव-नव कुसुम,
बदलती पल-पल प्रभु शृंगार ।
निहारा करती पलक पसार,
निहोरा करती हाथ पसार ।।

छिटक कर छिप सी जाती कभी,
लजाती कभी तनिक मुख फेर ।
समर्पित सी हो जाती कभी,
बैठती फिर, दृग-दृश्य सकेर ।।

रुदन से कभी कँपाती व्योम,
हँसी से कभी गुँजाती भूमि ।
पैठती अंतराल, जल गगन--
क्षितिज ज्यों बनते अद्भुत-ऊर्मि ।।

बरसने कपि के लोचन लगे,
प्रेम रस पगे सकल ही भाव ।
नाचता बरबस मन कह उठा,
"नहीं रे! यह छलना की छांव' ।।

राग में रँगे विरागी, लगा—
हलाहल हाला सा रंगीन ।
'सृष्टि के वृद्ध-पितामह-सिद्ध,
शून्य में कमलासन आसीन ।।

अनंता शिर रख और अनंत,
देखकर जिनका रूप अनंत!
खड़े रहते, बन सहज सुसंत,
सृष्टि से क-संवर्त पर्यन्त ।।

उसी पर यह भी मोहित हुई,
हाय इस अबला का क्या दोष ।
इसी का निश्चल प्रेमाधार—
धार, धधका वह प्रभु का रोष ।।

बरसकर जिसने निशिचर उषर,
दबादी महापाप की क्षार ।
राम का क्रोध बना वर सरस,
सहज ही उतरा भू का भार ।।

महानाटक की यह भी नटी,
नमन कर रे मन! बारम्बार' ।
सुपनखा बाह्य जगत में फिरी,
हुई कपि से कुछ आँखें चार ।।

लजा सी एक बार तो गई,
पुनः बोली "वज्रांग! प्रणाम ।"
गये कपि सकुचा अब की बार,
पुनः बोली "सकुशल सिय-राम ।।

लखन बलवान, कीशयुवराज,
विभीषण लंकेश्वर सानंद ।
कहां से यहां पधारे आप,
पधारे हैं क्या रघुकुलचंद ।।"

देख कपि को नत मस्तक मौन,
दृगों में फैल गई मुस्कान ।
नील नीरद-ध्वज की फहरान,
सलौनी पुरवा छवि हनुमान ।।

बिठा आये किस तरु के तले,
नहाते छोड़े या सर-तीर ।
कभी कर लेते हैं क्या स्मरण—
हमें भी लखन सिया-रघुवीर ।।

भूल पाते होंगे क्या कभी,
घोर दुर्भागी कृत्या-मूर्ति ।
हुई जिसके कारण से हाय,
अमंगल-पथ की सब विधि पूर्ति ।।

कौन से संकट विकट न सहे,
दिव्य-दंपति ने बंधु समेत ।
इधर तो जो होना था हुआ,
चिता सा धधका कनक-निकेत ।।

एक ने छीन लिया घर द्वार,
एक ने छीन लिया मृदु हास ।
गई कुलटा से कुटिला हार,
समर से हार गया वनवास ।।

कलंकित शूर्पणखा केकयी—
कर गईं यूं तो नारी-जाति ।
समुज्ज्वल कौशल्या-सिय किंतु—
कर रहीं अपनी-अपनी भांति ।।"

आह भर फिर बोली, "कपिकेतु !
दिखा दो मुझे दूर से राम ।
न यह मुख सम्मुख होने योग्य,
पामरी कर ले मात्र प्रणाम ।।

तनिक फिर पल भर लें दृग देख,
नील-मणि सी छवि वह सुकुमार ।
दूसरे ही पल ले विधि छीन,
पंच-भूतों से स्वांस - सितार ।।

तुम्हारी चरण - धूरि शिरधार,
किंकरी करती है मनुहार ।
निर्दयी दैव सतायी दीन,
निशिचरी पर कर दो उपकार ।।"

देख उत्कंठा, कपि के नयन—
भिगोने झर-झर लगे कपोल ।
झुका शिर बोले "जय श्रीराम,
रहे क्या खोल-खोल में बोल ।।

पंक में कमल, क्षार में हीर,
शून्य में सूर्य-चंद्र-नक्षत्र ।
दहन में निर्मलतम पावित्र्य,
काष्ठ में अमित फूल-फल पत्र ।।

कहां वह परम कठिन प्रतिशोध,
होलिका जली, खिल गया फाग ।
कहां यह रोमरोम मालिका—
दीपमालिका दिव्य-अनुराग ।।

प्रकट बोले "जिन को तुम देवि !
बतातीं नारी-जाति कलंक ।
समझता था मैं क्या, जग यही,
समय ने कीं निर्मूल कुशंक ।।

एक का अन्तर देखा वहां,
नारियल सरिस शुभ्रता-पुंज ।
एक का अंतर देखा यहाँ,
कँटीली-शाख केतकी-कुंज ।।

एक ममता की देवी मंजु,
एक मादक-मधु की मृदु-पूर्ति ।
धार ज्यों वरदानों की शक्ति,
तीर्थ की सिद्ध विमल-जलमूर्ति ।।

पाप की जितनी प्रखार कृपाण,
साधना की उतनी दृढ़ ढाल ।
प्रबल प्रायश्चित-दव निज हेतु,
जगत-अघ-दव प्रति सुरसरि झाल ।।"

गिरा, कपि-कंठ-कुंज घिर गई,
छलक आया कोरों में नीर ।
पुन: बोले "इससे भी परे—
सुभाभिनि ! भव्य-भाव-रघुवीर ।।

पा गया जो प्रभु का सम्पर्क —
कहीं भी कोई किसी प्रकार ।
किसी भी भाव एक भी बार,
तरा भव-पारावार अपार ।।

शौर्य के भक्त हुए सुग्रीव,
सुयश के हुए विभीषण दास ।
नाम पर शबरी पगली हुई,
पा गई पद-रज शिला प्रकाश ।।

ध्यान में मुनि मतवाले हुए,
ज्ञान पर व्यामोहित ऋषि-वृन्द ।
कर्म पर देव-यक्ष-गंधर्व,
धर्म से जड़-जंगम सानन्द ।।

कृपा से तरिका-तारक तरा,
दया से दयाहीन देवारि ।
भक्ति से सन्त खगाधम बने,
शील से संरक्षक विहगारि ।।

रूप पर तुम क्या तुम तो भीरु,
भयंकर वे, जिनसे भयभीत ।
रहा करते थे त्रिभुवन, वही—
बने खर-दूषण भी नवनीत ।।

अनख-आलस्य कि भाव कुभाव,
भजे जिसने भी जैसे राम ।
रहा कैसा भी कुलिश कुलौह,
बना कुंदन पारस-मणि नाम ।।

न किसकी कहाँ बचाई लाज,
न किसके कहाँ सँवारे काज ।
राम से बड़ा राम का नाम,
साहु-गृह बड़ा मूल से ब्याज ।।

लंक सा दुर्गम दुर्ग अपार,
चतुर्दिक परिखा पारावार ।
सूर्य की धूप, चन्द्र की छांव,
सभय हो करता पवन प्रसार ।।

पुरन्दर-जयी जहां के पौर,
शूर-सिर-मौरों का जो वास ।
अलंकृत जिसके कारागार—
हुए पाकर शनि-काल हताश ।।

वही धधका, मानों हो किसी—
बांझ-विधवा-वृद्धा- की छान ।
गिरीं गगनस्पर्शी पवि-भित्ति,
कांच-कंगनियों सी मैदान ।।

शैल-शिल कंदुक जैसी उछल,
गईं शतदल-दल जैसी फैल ।
सिधु-तल फैला पल में सेतु,
रजक के फैले ज्यों तट चैल ।।

ब्रह्मशर धसा हाथ भर वक्ष,
कढ़ा, ज्यों कढ़ी स्वतः पग-फाँस ।
न हिल पाया अंगुल-भर पैर,
गिरे भट ज्यों घुन खाये बाँस ।।

गये कर जो लघु-वानर कृत्य,
तपस्विनि ! कहो स्वप्न या सत्य ।
शक्ति यह राम-नाम की वही,
पी गये जिससे सिंधु अगस्त्य ।।

दिया जिसके कारण कल विपिन,
उसी से अधिक मानती आज ।
गईं थी जो कल बन कर मृत्यु,
वही सर्वस्व-समर्पण-साज ।।

विचारो क्या कारण यह प्रबल,
कारणों के कारण श्रीराम ।
इन्हीं अक्षर-द्वय में जग-जीव,
सदा पाये निर्जर-विश्राम ।।

कमल कर ले कोई उत्पन्न,
चैत्ररथ-नंदन - या तल - ताल ।
खिलाने जा पहुँचेगा वहीं—
सूर्य भर स्वर्ण किरण का थाल ।।

कहां लंका, यह पुष्कर कहाँ,
कहां तव दोनों चित्र-विचित्र ।
समाने वाला अरि की ज्योति,
परम-अद्‌भुत प्रिय राम-चरित्र ।।

भगिनि ! तव एक दिवस यह वेष—
बनेगा, था किसको अनुमान ।
और वे चले कहां से कहाँ,
कहां आ उतरे, जय भगवान ।।"

"सत्य, आये विमान में राम,
कहां हैं कहां राम घनश्याम ।
दिखा रे बंधु ! दिखा प्रत्यक्ष,
स्वप्न की प्रतिमा परम ललाम ।।"

न पूरी कह पाई थी बात,
सामने देखे सुस्मित राम ।
झुकी की झुकी रह गई मौन,
न कर पाई कुछ कुशल प्रणाम ।।

सलौना वही सांवला रूप,
वही पीताम्बर की फहरान ।
शरासन-शर कर उसी प्रकार,
वही बांकी-बांकी मुस्कान ।।

विभूषण कुंडल कलित किरीट,
गई आराध्य देव पहचान ।
विभीषण बोले "देखो भगिनि !
तुम्हारे घर आये भगवान ।।"

कटे कदली-तरु सी भू गिरी,
बंधु विह्वल बोला भर बांह ।
"खोलकर नयन बावली बहन,
देख तो खड़े स्वयं रघुनाह ।।"

"नहीं भैया ! मैं पापिन घोर,
न इन से मिला सकूंगी दृष्टि ।
जवासा सा जायेगा सूख,
हीन-मन श्यामल-घन की वृष्टि ।।

दशानन - आनन-माला-ग्रोज—
पान कर चुके प्रखर जो बाण ।
उन्हीं में से लें, जिसने लिये,
एक ही बार ताड़का-प्राण ।।

अकारण-कारण करुणा-सिंधु,
शरण, अशरण के दीनदयालु ।
बनाकर पाद-पीठ यह शीश,
धन्य कर दें निशिचरी कृपालु ।।"

राम बोले "धीरज धर तनिक,
सत्य-सात्विक जिसका सुस्नेह ।
लक्ष्य कर लेता है वह प्राप्त,
न इसमें समझ स्वल्प संदेह ।।

गणित अगणित जन्मों का कहीं—
करेगा जन्म एक ही पूर्ण ।
सुपनखे ! राघन-वचन प्रमाण,
मान मम होगा निश्चित् चूर्ण ।

खड़ी हो, कर आत्मा-शृंगार,
चातकी सी खाती अंगार ।
किसी दिन यही सांवला रूप,
पुकारेगा आ तेरे द्वार ।।

अवध के भावी - मख में तुझे,
प्रथम आमंत्रित करता राम ।"
चढ़े वर दे, नर से सामान्य,
यान में निर्विकार सुख-धाम ।।

दोहा

व्योम देखती रह गई, पल में छिपा विमान ।
'छली हुई को छल चले, देकर जन्म-विधान ।।
मरती, दी मरने नहीं, गये मरी को मार ।
दी मन को संजीवनी, मन-भर जीवन-भार ।।
कहूँ तुम्हें रघुनाथ क्या, रखी न कहने योग ।
अजगर की सी दीनता, दीन दिनों-दिन भोग ।।
पगली तेरे भोग को, कह भोगेगा कौन ।'
राम-चरण-रज धार शिर, बैठी होकर मौन ।।

सोरठा

पंकज पाई पंक, वेंत नम्र की निष्फला ।
राम तुम्हारे अंक, जो बाँचे वह आप सा ।।

पश्चिमांचल

दोहा

अर्बुदगिरि से चित्रगढ़, होता हुआ विमान ।
पहुँचा पावन सिद्धपुर, किया बिंदुसर स्नान ।।
नारायण-सर कच्छ-भुज, अर्बुद-सागर तीर ।
होते हुए प्रभास-भू, पहुँचे श्री रघुवीर ।।

श्री सोमनाथ

हरिगीतिका

मणि-रत्न मंडित नृत्य-गृह उत्तुंग-वेदी पर सजा ।
शशि-शाप-हर हर-शीश पर शोभित जहां शिशु-शशि-ध्वजा ।।

प्राचीर छूतीं लहर आ, प्राचीर जैसी दूर से ।
ज्यों धन्य होता सिंधु, सुत-पापारि को पद-धूर से ।।
मन दिव्य ज्योतिर्मय हुआ, पा दर्श ज्योतिर्लिंग का ।
चित परम आनन्दित हुआ कर स्पर्श ज्योतिर्लिंग का ।।
वह पुण्य-क्षेत्र प्रभास, करता ह्रास जो अघ-पुंज का ।
ऋतु-नाथ सा रघुनाथ ने जाना स्वहृदय-निकुंज का ।।
कर स्नान-पूजन-दान-निशिविश्राम राजा राम ने ।
पुष्पक बढ़ा वायव्य दिशि, देखा घटज-वन सामने ।।

श्री अगस्त्याश्रम

उतरे, हुए श्रद्धावनत रघुराज ऋषि को देखकर ।
छूते हुए पद राम को, हिय से लगाया मोद भर ।।
"राजीवलोचन राम ! निशिचर-मद-विमोचन वीरवर ।
अतिशय कृपा की हे सुदर्शन ! दे स्वदर्शन त्रासहर ।।"
बोले अवधपति "आप यह क्या कह रहे मुनिराज हैं ।
यह राम तो क्या, तव ऋणी नभ-भूमि-सुतल समाज हैं ।।
दशभाल-ताल विशाल-गृह था, काल-ग्राह कराल का ।
वंदी सहज में ही बना, तव-दत्त वर-शर जाल का ।।
प्रभु-यंत्र ने प्रिय-मंत्र ने संभव असंभव को किया ।
इस सरल जग ने सकल यश, उस विपिन-वासी को दिया ।।"
मुनि मुख भरा मुस्कान से, लोचन युगल जल से भरे ।
"मायेश हैं, जगदीश हैं, कौतुक न पर ऋषि से करे ।।
यह घटज-अनुसंधानशाला यों युगों से चल रही ।
निज सफल योग-प्रयोग से सुर-संपदा-दुख हर रही ।।
अभिमान भी निश्चित नहीं, फिर भी अनृत किंचित् नहीं ।
कितने सुरासुर-समर का जय-स्वर सृजन पाया यहीं ।।

त्रिपुरारि का त्रिपुरारि-शर, पवि इंद्र का दानव-जयी ।
तारक-निषूदन शक्ति पशुपति-पुत्र की ज्वाला-मयी ।।
जो दिवोदास-सुदास धनु दशराज-रण में ले चढ़े ।
वे अंड अणु-परमाणुओं के पुरुरवा जो ले बढ़े ।।
पाया सहस्रार्जुन जिसे, प्रभु-दत्त से वह बाण भी ।
जो बच गया वातापि से, इस जीव का यह प्राण भी ।।
दे मूल्य, प्राण अमूल्य लाये इंद्र के सृष्टा बचा ।
वह लखन-पीड़क शक्ति-शर भी नाथ ! इन हाथों रचा ।।
धनु-शर-परिघ-पट्टिश-पर -पवि-चक्र नानाकार के ।
सामर्थ्य-शक्ति विभिन्न के औ भिन्न ही व्यवहार के ।।
किस-किस समय, कितने विरच, क्या-क्या किसे कैसे दिये ।
वे तथ्य सारे गणित के अगणित पुराणों ने लिये ।।
यह विजय-धनु जो आपको नरश्रेष्ठ ! था अर्पित किया ।
जिसने मरुस्थल, सिंधु उत्तर का विपल में कर दिया ।।
जिसने सरोवर अमर-रस के पीलिये दश-भाल के ।
कारण बने मख-भूमि में, जो इंद्रजित के काल के ।।
विज्ञान की मिलतीं अमित वासन्तियां जब धूल में ।
मुस्कान तब आती अलौकिक एक आयुध-फूल में ।।
करते प्रतीक्षा शांत हो फिर समय और सुपात्र को ।
तब सौंपते ऋषि सिद्धि निज, ले भावना कल्याण की ।।
दशशीश अत्याचार तो, युग से रहे थे सह भुवन ।
हम किंतु क्या करते, न करते राम जब तक तन ग्रहण ।।
वह दिव्य चरु सामान्य-नारी क्या कभी सकतीं पचा ।
रख दृष्टि दशरथ-रानियों पर ही, गया पायस रचा ।।
फिर कौन कितना अंश ले, किस समय, किस अनुपान से ।
फिर-फिर विचारा यह गया अपरापरादि विधान से ।।
शाश्वत-सुदृढ़ सकल्प-शक्ति सुसत्त्व-धर्मप्रेरिता ।
ले तत्व अतिलौकिक हुई साकार त्रिभुवन-वंदिता ।।

ऋषि सरल दिखते राम ! जितने, हैं सरल उतने नहीं ।
फिरते न पर कौटिल्य का, करते प्रदर्शन भी कहीं ।।
तव अवतरण पश्चात् भी, निश्चित् हम बैठे नहीं ।
शिशु-प्रकृति वायस-दृष्टि से, हम को रही दिखती यहीं ।।
वैरंचि ने विद्या वही दी, जो हमें थी चाहिये ।
त्यों राम तुमने भी ग्रहण की, ज्यों तुम्हें थी चाहिये ।।
ऋषि-राज विश्वामित्र की सम्राट से वह याचना ।
क्या याचना थी, चित्त में थी, सृष्ट-सृष्टि सुकामना ।।
सोचो तनिक, निर्विघ्न यदि सम्पन्न करता था हवन ।
राजा तथा ऋषि-हित न थी, लघु-भूमि क्या त्रिभुवन-भवन ।।
वह भूमि ही यदि सिद्ध थी, दानव-पराजय इष्ट थी ।
इस हेतु क्या स्वर्गीय-नृप की अजय-सैन्य अनिष्ट थी ।।
कौमार्य-पौरी से निकल, तारुण्य की जो पौर पर ।
थे आ रहे, मांगे गये वे ही युगल क्यों कुँवर वर ।।
नृप ने कठिन व्रत पाल जो पाये उतरती आयु में ।
वे ही उड़ाये क्यों गये उस विजन-वन की वायु में ।।
हय-गय अमित रथ थे भरे जिस अवध-राजागार में ।
पर नृप-कुमारों ने न देखा, एक भी पुर-द्वार में ।।
पादानि ही लेकर चले क्यों उस विपिन घन-घोर से ।
क्यों मौन ही लखते रहे वध्र ताड़का का कोर से ।।
केवल बलातिबला-कला दे अन्य सकला लुप्त कर ।
वे धनुर्वेदाचार्य ले दीक्षा, विराजे वेदि पर ।।
आखेट धनुषों से निरख ली नष्ट जब खल-संकुली ।
तब कृपण विश्वामित्र की विश्वास-मंजूषा खुली ।।
वे जया की सुप्रभा की सचित अमित शस्त्रावलीं ।
ऋतुराज की सुमनावलीं सी खिल गईं, कुंचित कलीं ।।
पाई अहिल्या चेतना, निश्शंक मुनि-जन हो गये ।
धनु-भंग से तो शेष भ्रम-तम राम-रवि में खो गये ।।

हरि-हर धनुष स्वयमेव जिसके हाथ में आ रुक गये ।
स्वयमेव कौशिक ही न, प्रभुवर परशुधर भी झुक गये ।।
त्रैलोक्य-श्री श्रीसीय ने वरमाल पहनादी जभी ।
राजाधिराजा बन गये, हों तिलक यज्ञादिक कभी ।।
है भेद इसमें और भी, क्यों भिक्षु कौशिक ही बने ।
अब दूध-पानी से मिले, कल के बकाड़ी वे तने ।।
वनवास की रचना हुई, कैसे हुई, क्यों कर हुई ।
सब ठीक, असमय मृत्यु से नृप को हुई कुछ कलमुई ।।
किस दृष्टि से, क्यों थी उचित, अब तर्क में जाता नहीं ।
चरितांश तव यह चाह कर भी राम ! कह पाता नहीं ।।
यदि वन न मिलता राम को, तो विश्व क्या पहचानता ।
कुछ जान लेते स्यात् पर रामत्व क्या जग जानता ।।
क्या राम की रामत्व की, व्याख्या सकल सत्त्वांश की ।
की प्रकट वर-कष केकई ने शुद्धता तत्त्वांश की ।।
रविकुल कमल-कुल सो रहा था चांद्रि-सर में शांति से ।
वह मृत न, जीवित है, सनातन-श्रेष्ठ मनु की कांति से ।।
वैरंचि- कौशिक - अत्रि- कवि वाल्मीकि - भारद्वाज- मैं ।
सब सम्मिलित थे, भंग कुहरा कर गया कुछ आज मैं ।।
आते रहे, जाते रहे बहु, जानते, अनजानते ।
पर हम छहों चलते रहे, गन्तव्य पर शर साधते ।।
निज गोपनीया-भूमिका, शुचि-नीति से करते हुए ।
हम पूर्ण प्रमुदित सिद्धि पाये देह के रहते हुए ।।
जिस हेतु दक्षिण-पथ पड़ा, बहु काल से मैं आन कर ।
पूरा किया इस युगल को तुमने किरीट प्रदान कर ।।
संस्कृति अमर अपनी हुई, चर्चित हुआ ध्वज धर्म से ।
निर्भय हुआ यह देश, शाश्वत राम के दृढ़ वर्म से ।।
नृप ! आज के निर्माण में, सहयोग जो हमने दिया ।
वह नींव का पाषाण, पर मन्दिर खड़ा तुमने किया ।।

यद्यपि टँगा था भावना-पट, साधना के दंड पर।
पर ईश्वरीय प्रकाश से फहरा अभय नव-खंड पर॥"
प्रभु हँस पड़े, बोले "यहां ईश्वर कहां से आ गया।"
"छलिये न हम वैज्ञानिकों को, कीजिये इतनी दया॥
हम पंच-तत्व सुयोग से, क्या योग कर सकते नहीं।
निर्जीव में पर ईश्वरांशी जीव भर सकते नहीं॥
अस्तित्व को विज्ञान जब देगा चुनौती ब्रह्म के।
अस्तित्व निज देगा गँवा, तब गर्त में निज दंभ के॥
अणु में नहीं परमाणु में हम कण विभाजित कर चुके।
प्रत्येक कण में शक्ति के अगणित गणित हम भर चुके॥
पर सूक्ष्मतम प्रतिकूल प्रति-गति चक्र-द्वय जो घूमते।
वे क्या, उसी के जानने को ध्यान में हम झूमते॥
पारतंत्र्य यह प्रत्यक्ष दिखता है प्रकृति का, जीव का।
तब भान होता कुछ पृथक है तत्व तात्त्विक - नींव का॥
जिसमें समाये सब, समाया है सभी में जो वही।
गोतीत ईश्वर की यही संज्ञा प्रभो! कुछ-कुछ सही॥
सरिता-सलिल से सत्य ही भुनते न सागर के चने।
पर मध्य में रुक, दीन क्या वह आत्महत्यारी बने॥
इस हेतु ही वह दौड़ ज्यों जाती समपर्ण के लिये।
तव यज्ञ की हम स्वोज्ज्वलाहुति-भाव त्यों लेकर जिये॥"
निज भेद खुलता देख, परिवर्तित विषय करते हुए।
"हैं मां कहां" रघुराज बोले स्वपद-भू लखते हुए॥
"क्या पूंछते हो अज्ञ से, सर्वज्ञ से छिपतो कहां।
सर्वत्र रमते राम को, प्रत्यक्ष मैं लखतो यहां॥"
लोपा-नमन प्रति-नमन कर मंगल-वचन कहती हुई।
फल-फूल ले आई तुरत दिव्या हँसी हँसती हुई॥
ये देव-अनुसंधानशाला, देव! कुछ करतीं रहे।
मम त्तिव सकला पर सदा, तव वृत्ति में रमतीं रहें॥

जो ध्यान-गम्य न ज्ञान-गम्य, अगम्य निर्गुण रूप है ।
वह सांवला-सुंदर-सलौना, सगुण कोसलभूप है ।।
किस भूमि को, किस भांति कितना जोतना किस काल में ।
फिर डालना क्या बीज, जाना सलिल हित किस ताल में ।।
पशु-पक्षियों-कीटाणुओं से क्या सुगम पथ त्राण का ।
सोचें, जिन्हें हो सोचना, जिनको भरोसा प्राण का ।।
प्रिय-कृषक की फूले-फले कृषि, पूत-ऋतु से प्रार्थना ।
यह मुख सदा चलता रहे, है किंकरी की याचना ।।
ये सिंधु पी रचना करें नित-नव अमित शस्त्रास्त्र की ।
हो धर्म-रक्षण योजना इनकी सफल, बहुकाल की ।।
पर जानकीवर की मधुर मंगल-मयी छवि सांवली ।
शिव-हृदय वांसती-पिका कर दे मुझे तो बावली ।।
जो जन्म लूं निज भाग्य-वश, प्रियतम यही मिलते रहें ।
यह छवि बसे मन, पर अधीर 'श्रीराम' ही जपते रहें ।।

दोहा

सुलभ सकल दुर्लभ न कुछ, स्वामि-कृपा कल्याण ।
प्रियतम सहित स्वभक्ति का, दो सियपति ! वरदान ।।"

सोरठा

मुस्काकर भगवान, ले मुनि दम्पति से विदा ।
शोभित हुए विमान, ऋषि-जन की कर वंदना ।।

पंचवटी

ऊर्मिका

"देख प्रिय भरत ! देख तो तनिक,
सह्य-विध्यांक रही वह खेल !
ऊर्मि मंजरी, बुंद सारंग,
लवंगी की सी पिंगल बेल ।।

शेष की तन्वंगी कामिनी—
रही ज्यों चंदन-वन में डोल ।
प्रतीची तनुजा, प्राची स्नुषा,
चली यह करती कलित किलोल ।।

त्रयंबक-गिरि का त्रिसुर-निकुंज—
गुँजाती निज नूपुर झंकार ।
पुण्यतोया है वह भगवती—
गौतमी - गंगा की शुभ धार ।।

रची इसके ही दक्षिण तीर,
बंधु लक्ष्मण ने रुचिर कुटीर ।
इसी के कांतारों में मिले,
त्रिशिर-खर - दूषणादि बलवीर ।।

यहीं जन्मे थे कनक-कुरंग,
यहीं आये थे योगीराज ।
गिरी थी गिरि सी कर गर्जन—
यहीं पर गिद्धराज पर गाज ।।

पुराने पितुवर के प्रिय मित्र,
झेलते हुए हमारी व्याधि ।
गये पितु सम ही तन-तृण तोड़,
उन्हीं की है वह पुण्य-समाधि ।।

जो ध्यान-गम्य न ज्ञान-गम्य, अगम्य निर्गुण रूप है ।
वह सांवला-सुंदर-सलौना, सगुण कोसलभूप है ।।
किस भूमि को, किस भांति कितना जोतना किस काल में ।
फिर डालना क्या बीज, जाना सलिल हित किस ताल में ।।
पशु-पक्षियों-कीटाणुओं से क्या सुगम पथ त्राण का ।
सोचें, जिन्हें हो सोचना, जिनको भरोसा प्राण का ।।
प्रिय-कृषक की फूले-फले कृषि, पूत-ऋतु से प्रार्थना ।
यह मुख सदा चलता रहे, है किंकरी की याचना ।।
ये सिंधु पी रचना करें नित-नव अमित शस्त्रास्त्र की ।
हो धर्म-रक्षण योजना इनकी सफल, बहुकाल की ।।
पर जानकीवर की मधुर मंगल-मयी छवि सांवली ।
शिव-हृदय वांसती-पिका कर दे मुझे तो बावली ।।
जो जन्म लूं निज भाग्य-वश, प्रियतम यही मिलते रहें ।
यह छवि बसे मन, पर अधीर 'श्रीराम' ही जपते रहें ।।

दोहा

सुलभ सकल दुर्लभ न कुछ, स्वामि-कृपा कल्याण ।
प्रियतम सहित स्वभक्ति का, दो सियपति ! वरदान ।।"

सोरठा

मुस्काकर भगवान, ले मुनि दम्पति से विदा ।
शोभित हुए विमान, ऋषि-जन की कर वंदना ।।

पंचवटी

ऊर्मिका

"देख प्रिय भरत ! देख तो तनिक,
सह्य-विध्यांक रही वह खेल !
ऊर्मि मंजरी, बुंद सारंग,
लवंगी की सी पिंगल बेल ।।

शेष की तन्वंगी कामिनी—
रही ज्यों चंदन-वन में डोल ।
प्रतीची तनुजा, प्राची स्नुषा,
चली यह करती कलित किलोल ।।

त्र्यंबक-गिरि का त्रिसुर-निकुंज—
गुँजाती निज नूपुर झंकार ।
पुण्यतोया है वह भगवती—
गौतमी - गंगा की शुभ धार ।।

रची इसके ही दक्षिण तीर,
बंधु लक्ष्मण ने रुचिर कुटीर ।
इसी के कांतारों में मिले,
त्रिशिर-खर - दूषणादि बलवीर ।।

यहीं जन्मे थे कनक-कुरंग,
यहीं आये थे योगीराज ।
गिरी थी गिरि सी कर गर्जन.—
यहीं पर गिद्धराज पर गाज ।।

पुराने पितुवर के प्रिय मित्र,
झेलते हुए हमारी व्याधि ।
गये पितु सम ही तन-तृण तोड़,
उन्हीं की है वह पुण्य-समाधि ।।

प्रथम तो वृद्ध, पुनः निश्शस्त्र,
निरन्तर करते व्रत-उपवास ।
लखन लख पंजर, कहता "कहां—
छिपा है, देखूँ काका ! सांस ।।

बरजता दिख जाता मैं कभी,
बरजते हँसकर ग्रांख तरेर ।
मार मत राम ! जी रहा दीन,
लखन-कौतुक के पीन-ग्रहेर ।।

उन्हीं के लखकर खंडित पंख,
मेदिनी पर तन लहू-लुहान ।
जानकी कहां, कि थी या नहीं,
गया मैं भूल सुकंठ ! सुजान ।।

जननियों के लख सूने हाथ,
भरत का कुंतल-मुंडित माथ ।
प्रथम दुख वह जीवन का गहन,
न्यून सा लगा देख खगनाथ ।।

नचातीं पीत-जुही का फूल,
शोण-सागर की ज्यों हिल्लोल ।
लिये कण-कण ग्रगणित व्रण-व्यूह,
रहा था तन जटायु का डोल ।।

लगा यों पंचवटी के शाल—
शाल की डाल-डाल पर रक्त ।
मृत्यु-अप्सरा ग्रनेकों बार,
हुई उन ऋषि-वर पर आसक्त ।।

महावर रचती-रचती तुरत,
लगाती म्हेंदी बारम्बार ।
गई करती ग्रगणित अभिसार,
आ गई बार-बार पर हार ।।

खुँसे-खुंसटे शाखाओं मध्य,
लहरते नभ में उनके पंख ।
दशानन के मृत धनु-शर देख !
बजाते ज्यों सुर, नभ में शंख ।।

भरत ! उस दुसह दशा की याद,
कषा सी लगती अब भी पीठ ।
वीर-भोग्या भू को, रँग गये—
चुनरिया गृद्ध रक्त-मंजीठ ।।"

सोरठा

पाकर प्रभु का हाथ, उतरा पुष्पक भूमि पर ।
दौड़ चले रघुनाथ, गिरे छिटक धनु-पट-मुकुट ।।
रख समाधि पर शीश, फफक उठे प्रभु शिशु सरिस ।
"धीर धरो जगदीश !," बोला गुह भर कर भुजा ।।

दोहा

"पितु जाना, जाना नहीं, पाकर जिनको मीत ।
जगत गिरा के अधम खग, सोये अमर पुनीत ।।
दिया जिन्होंने तन मुझे, होकर परम प्रसन्न ।
उन्हें न नभ-तल से अमृत, ला, दे सका कृतघ्न ।।

छप्पय

रज समाधि की झाड़ कचों से, कर-कर वंदन ।
बार-बार दृगधार लगे धोने रघुनन्दन ।।
ले-लेकर पट-पीत पूँछते शिला पुरानी ।
रुँध-रुँध जाती बार-बार वाणी-पति वाणी ।।
बिछा दिये किसलय नवल, मंजुल कुवलय तोड़कर ।
मानों सोये गिद्धपति, मृदुल तुराई ओढ़कर ।।

रोला

आया साधु समाज सुना रघुनाथ पधारे ।
चले झुंड के झुंड गुँजाते जय-जयकारे ।।
लगा, उठीं ज्यों जाग दिशायें तंद्रा तज कर ।
फैला मधु-मकरंद, तपोवन आये रघुवर ।।
करते मंगल-कुशल गौतमी-तट पर आये ।
सायं-संध्या निभा, त्रयंवक देव मनाये ।।
"पंचवटी की कुटी करें राजेश्वर! पावन ।"
बढ़कर दो पग रुके, न सरका मन भर का मन ।।
गये विभीषण जान, भरत झाँके आंखों में ।
लगा, गोंद सा लगा पलक-पाँखी पांखों में ।।
मारुति बोले "नाथ! सुहानी खिली चांदिनी ।
शबरी-गृह अति निकट, बितायें वहीं यामिनी ।।"
मुनियों को कर मुदित, भरत का हाथ थाम कर ।
आकर बैठे यान-वेदिका पर राजेश्वर ।।
बढ़ा अवाची यान देखते राम उदीची ।।
बोले कपिपति किये आंख कुछ नीची-नीची ।
"देख रहे क्या नाथ! श्रव्य तो, तनिक बतायें ।"
"तुमसे प्रिय! क्या गुप्त-बात, हम जिसे छिपायें ।।
एक रह गया स्थान, जिसे फिर-फिर दृग लखते ।
जिसके फिरते नयन, हृदय में फिर-फिर फिरते ।।
भूल न पाता तनिक, आज भी जिसकी झांकी ।
जिसने की आकृष्ट, मृत्यु की चितवन बांकी ।।
जिसने शर विकराल, झुकाकर भाल चढ़ाया ।
न्यौत बाल सम काल, ढाल के थाल जिमाया ।।
क्या मतवाली चाल, चलेंगे क्या अनंग-शर ।
क्या उत्ताल उछाल, कल्पना थके लजाकर ।।

क्या रसाल सी परम रसीली, तिरछी चितवन ।
स्वर्ण-बिंदु-शृंगार, शुद्ध सहगामिन सा मन ।।
लोचन क्या थे, तरल प्रीति के युगल सरोवर ।
सरल स्नेह जल भरे, छलकते छल-छल निर्झर ।।
आते-आते पास, छलावे सा छिप जाता ।
दिशि-दिशि लखते नयन, वदन वाणी सा आता ।।
बने मुकुर से मुखर, कुरुह-दल दंडक वन के ।
हाथ न आती छांह, रहा कर मसल-मसल के ।।
हुआ ब्रह्म-सा व्याप्त, कनक-मृग का भ्रम सभ्रम ।
उठा रीझ, श्रम-खीझ भरा भारी अंतरतम ।।
तब लेकर शर-सफर कान तक खींच शरासन ।
चला छोड़ने, किन्तु न माना बार-बार मन ।।
जीवित ही यह हाथ लगेगा नहीं, लगा जब ।
एक वार ही कर कठोर चित, शर छोड़ा तब ।।
धँसा हाथ भर वक्ष, पास जब जाकर देखा ।
देखा यह मारीच, जिसे मख-अवसर देखा ।।
कुटिल-कर्म चित-कुलिश प्रखर-क्षुरिका सी चितवन ।
कल का निशिचर घोर, आज नवनीत गया बन ।।
बोला "लक्ष्मण-सीय हाय" गिरता उच्चस्वर ।
कुछ जप करता, असह वेदना में मुस्काकर ।।
पलक दर्श की ललक, लाज की कनखी लाली ।
लवण-उऋण निश्चित भाव-भीनी उजियाली ।।
ईर्ष्या-घृणा न, अभय-प्रेम सरि सी लहरातीं ।
लप-लप करती हुई, लटी सी पुतली जातीं ।।
बोला तुरत "रमेश ! पातकी क्षमा चाहता ।
नीच उदर का दास, आपसे विदा मांगता ।।"
दिया अंक में शीश, कंठ में बांह डालकर ।
पल भर में ही चला अलौकिक-लोक-राह पर ।।

अब तक भी मारीच-मृत्यु कांटे सी चुभती ।
वध सुपुण्य-मय वह न, पाप मय-हत्या लगती ।
बलि-पशु सा वह मौन, हुआ बलिदान वीरवर ।
वरी मृत्यु-सुन्दरी धराधर सरिस धीर धर ।।
यद्यपि उसका मरण हुआ रावण के कारण ।
किन्तु दृश्य था परम करुण वह हृदय-विदारण ।।
मायावी बलवान लंक में थे बहु निशिचर ।
एक मात्र था किंतु यही तो वह यायावर ।।
जिसने लक्ष्मण सहित प्रथम देखा था वन में ।
कर दे साहस भंग न लंका का, भय मन में ।।

दोहा

यह या और विचार जो, चुना प्रथम मारीच ।
हृदय फलक पर, पर गया, रेख प्रेम की खींच ।।
लंकेश्वर ! जाने पड़ी, रेख कौन सी माथ ।
प्रिय तो प्रिय रिपु भी गये, दिये हाथ में हाथ ।।
मारा छिप जिस बालि के, हृदय भयंकर बाण ।
हृदय दिया विश्वास से, देते-देते प्राण ।।
कुंभकर्ण का और भी, परम विचित्र चरित्र ।
शत्रुवेष में निष्कलुष-था प्रिय ! प्रगट सुमित्र ।।"

सोरठा

बोले मारुति "नाथ, प्रियमत प्रतिमा प्रेम की ।
लगी प्रभा क्यों साथ, रहे प्रभाकर पूंछ क्या ।।"
"देखा कपि, कपिनाथ ! कितना चंचल हो गया ।"
"चंचलेश का हाथ, अमित चमत्कारी प्रभो ।।"

सब के साथ निषाद, बोला हँस "कपिराज ! जय ।
किया समाप्त विवाद, वादि करे प्रतिवाद क्या ।।"
पहुँचे प्रवरा-तीर, जहां बने हरि, मोहिनी ।
भीमोद्गम सन्नीर, किया भीमशंकर नमन ।।

दोहा

मां शिवाइ ढ़ोल्या गणप, सुवर्णाद्रि-धवलाद्रि ।
महाबलेश्वर पुण्य भू, पंच-सरित सह्याद्रि ।।
राम-दोह यमदग्नि-गृह, दत्तात्रेयस्थान ।
मयूरेश, करहा-पुलिन, गणपति-पीठ प्रधान ।।
आये भीमातट पुनः, जहां पंढरीनाथ ।
खड़े ईंट पर श्री सहित, श्रीश धरे कटि हाथ ।।

सोरठा

लख दुर्वासा वक्र, दोषहीन निज भक्त पर ।
छोड़ा हरि ने चक्र, लखा द्वादशीतीर्थ फिर ।।
पुण्य-क्षेत्र करवीर, श्री लक्ष्मी अर्चन किया ।
मज्जन गोमुख नीर, कर त्वरिता दर्शन किये ।।

दोहा

रामलिंग गाणगापुर, छायादुर्गा क्षेत्र ।
गुहा-कला वेरूल लख, खुले रह गये नेत्र ।।
कर पूजन घुश्मेश का, गये देवगिरि राम ।
व्याघ्रौरा - तट कंदरा, भीती - चित्र ललाम ।।
पिंपलग्राम सुरंगली, नाभिपीठ राजूर ।
नागेश्वर के दर्शकर, हुआ सकल श्रम दूर ।।

संगमनाथ सुअर्चना, की केतकी प्रसून ।
मेघ-केलि लख रामगिरि, सुख पाया अन्यून ।।
अमरावती शरभंग गृह, अमलनेर-लोणार ।
मेघंकर सगराद्रिसे, सागर-सह्य-कछार ।।
शांतादुर्गा मैथिला, महादेव मंगेश ।
पहुँचे लयराई भवन, अग्नि लांघ अवधेश ।।
रत्नागिरि चिपलूण शुचि, शुभ गोमांत प्रदेश ।
देख, किया रघुनाथ ने, हरि-हर क्षेत्र प्रवेश ।।
बाणावर बेलूर से, पहुँचे द्वारसमुद्र ।
हिरण-शृंग गोकर्ण में, चले पूजकर रुद्र ।।

किष्किधा

सोरठा

"ऋष्यमूक नतशीश, करता प्रभु ! तव वंदना ।"
बोले मुदित कपीश, "प्रमुदित कोसलराज हों ।।"
'स्वांस-स्वांस ज्यों आयु, जाती, जीव न जानता ।
सुखद मलयगिरि-वायु, कब आई, जानी न प्रिय ।।"

अवधपति बोले "मित्र निषाद !
देख, वह ऋष्यमूक के पार ।
ध्वजावलि किष्किधा की सजीं,
तुम्हारी स्वागत वंदनवार ।।

सुमन संकुल, उपवन-कुल कूल,
कलित पंपासर भरत ! निहार ।
चत्ररथ-नंदनवन के देव,
उतरकर करते जहां विहार ।।

विरज विरजा सी लोल-हिलोल,
मचलते मंजुल वारि-विहंग ।
खिले अरविंद वृन्द बहुरंग,
धरा ज्यों धरा अनंग-निषंग ।।

चतुर्दिक श्वेतपाट-पट-घाट,
निकष धारी मणिमय सोपान ।
विधाता जड़िये ने ज्यों जड़ी,
मुद्रिका चिंतामणि अम्लान ।।

एक दिन शबरी से हम मिले,
इसी के उत्तर-तीर सुवीर ।
समय-रज-रंजित एकाकिनी,
नीलमणि मानों पड़ी कुटीर ।।

वही है उस शबरी के कुटी,
शेष जिसकी दिव्यस्मृति आज ।
भक्ति की मंजु मूर्ति मन बसी—
अनोखी दो बेरों के व्याज ।।

हमारे जन्म-पूर्व ज्यों अंब,
सँजो कर बैठी छाती क्षीर ।
आगमन पूर्व सजा त्यों बेर,
मिली ममता देवी सशरीर ।।

प्रथम खाये बहुतेरी बार,
चखे लालचवश फिर बहुबार ।
न पाया एक बार वह स्वाद,
बेर क्या थे, थे रस-भंडार ।।

डालती थी डलिया में हाथ,
उठाती बिना गिने ही चार ।
बिना देखे ही मुख में डाल,
बैठ जाता था हाथ पसार ।।

न जाने कब तक चलता रहा,
बंधुवर ! यह क्रम सरल अभंग ।
अनेकों घिरे तपस्वी आन,
हो गया भंग मधुर रस रंग ।।"

विभीषण बोले "सुना कृपालु !
प्रशंसा करते जिनकी आप ।
लखन ने ले-ले कर वे बेर,
दिये आसन के नीचे ढांप ।।"

हँसे प्रभु "मित्र ! लखन है लखन,
बात ही है कुछ उसकी और ।
अवधपति दशरथ का सुकुमार,
वीरवर क्षत्रिय-कुल शिर-मौर ।।"

व्यंग से हँस बोले कपिनाह,
"और हैं आप कौन नरनाह ।"
"गगन से गिरा धरा का फूल,
तुम्हारे कपिदल का चरवाह ।।"

निरुत्तर सा देखा सुग्रीव,
ठठाता बोला तुरत निषाद ।
"आपके वचनामृत रघुनाथ,
चख्यौ हमने बेरन को स्वाद ।"

दोहा

शबरी-आश्रम में गये, विह्वल से सुखधाम ।
'देख तपस्विनि ! तनिक तो, आया तेरा राम ।।'
दीपदान कर स्थान पर, चढ़ा नवल संध्यान ।
क्रिया सपरिकर राम ने, पंपासर में स्नान ।।

पवनपुत्र की यों लगी, अंजन-गिरि पर आंख ।
मानों उड़ना चाहता, हृदय लगा कर पांख ।।
अन्तर्यामी से छिपी, छिपी कौन सी बात ।
बोले प्रभु सुग्रीव से, "चलो नगर तुम तात ।।

अंजनी आश्रम

छप्पय

दिनकर जिस के वदन कौर बन, मौन समाया ।
जिसका घुटिका-घाट कमठ-कटि-घाट नहाया ।।
द्रोणाचल के अतल, अचल सी थपी हथेली ।
उछल-उछल सिंधूर्मि, छांव में जिसकी खेली ।।
दिशा-किशोरी रच रहीं, जिसकी नाम-सुरंजनी ।
देखें तो उस वीर की, कैसी जननी अंजनी ।।"
सुनकर मन की बात, अधर पर प्रभु रघुपति के ।
हुआ तुरत रोमांच, विलोचन छलके कपि के ।।
गिरा कंठ रह गई घिरी भावना सहेली ।
हुए दीन से अधर उलझती देख पहेली ।।
पूज्य पाद कुल गुरु सरिस, विषम सुअवसर, ज्ञान से ।
"आते हैं प्रिय! तुम चलो" बोले हरि हनुमान से ।।
चले पवनसुत उछल, कीश-शिशु-कला दिखाते ।
सूर्यकिरण-मन-पवन-गरुड़ गति, स्वगति लजाते ।।
प्रभु बोले "लंकेश ! रही क्या अब भी शंका ।
इस ममता ने मित्र ! छुड़ादी पल में लंका ।।
मातृ-प्रेम के सामने, प्रेम सकल संसार के ।
रह जाते हैं दीन से, नत मस्तक, मन मार के ।।
भक्ति-ज्ञान के मध्य, यही लघु-दुस्तर सागर ।
ज्ञान-क्षेत्र में पिता, भक्ति में माता; ईश्वर ।।
पितु का पालन-कार्य सहज कर लेती माता ।
मां की ममता किंतु पिता कितनी दे पाता ।।

माता कह, कहते पिता, इसी हेतु तो प्रार्थना ।
फिर संबोधन-शृंखला, शेष जगत की याचना ।।
करते, तजकर दंड प्रणाम चतुर्थावस्थी ।
किस गणना में बाल-गृहस्थी-बाणप्रस्थी ।।
खग-मृग ज्ञान-विहीन, मानते मां मां ही कर ।
ईश्वर की साकार स्वरूप प्रसवनी भूपर ।।
बनते पुत्र कुपुत्र बहु, त्रिगुणमयी संसृति सदा ।
किंतु कुमाता कब बनी, मां सहकर भी आपदा ।।
दिया रक्त से रक्त खींच तन कण-कण से तन ।
जरा-मरण ले, दिया सींच यौवन से बचपन ।।
तन-मन-प्रिय परिवार मोह सब का सकेर कर ।
स्वप्न-भवन साकार सजा देती धरती पर ।।
उऋण न माता को किन्हा, पनही पुत्र स्वचाम की ।
सात्विक होती भावना, महिमा मां के नाम की ।।"
बोले प्रभु को देख पदाति, धनाधिप-अनुचर ।
"देव ! विराजें यान अमित उत्तुंग-शैलवर ।।"
"यही पाप क्या न्यून, पदों से छूते यह स्थल ।
समुचित तो था यही, यहां आते शिर के बल ।।
परम पुनीता अंजनी-पदरज-रंजित शैल यह ।
जन्म-जन्म के पुण्य की, प्राप्त भाग्यवश गैल यह ।।
ललित नारियल-कुंज चतुर्दिक सघन सुहावन ।
हरित-पल्लवित-फलित सुभट सा आकर्षक तन ।।
प्रबल-प्रलम्ब-सुपुष्ट कंध से तने, तने से ।
प्रखर-वज्र से पत्र, इंद्रधनु प्रभा सने से ।।
ठौर-ठौर प्रति-पौर पर, प्रतीहार पवमान के ।
देख भरत ! कैसे खड़े, स्वामिन-सेवा जान के ।।
शीतल-मंद-सुगंध-सरस मलयानिल वहता ।
ज्यों सुत-विरह-विदग्ध अंब में धीरज भरता ।।

कहीं-कहीं कुछ तीक्ष्ण, कहीं अधिकाधिक शीतल ।
रोष दिखा, मनुहार पुनः ज्यों करता पल-पल ।।
"रे निष्ठुर ! वनवास में, दिया दुखित-चित जानकर।
अब तेरा अधिकार क्या, नृप ! मेरे हनुमान पर ।।"
मां ने आने दिया कदाचित यदि न कपिस को ।
उत्तर दूंगा भरत ! अवध में क्या-क्या किसको ।।
मेरा भी तो हृदय, कीश ले गया चुराकर ।
जहां बसेगा, वहीं बसूंगा मैं भी जाकर ।।
वशीकरण क्या, कौनसी कला, न जो यह जानता ।
स्वामी बन स्वयमेव यह, स्वामी मुझको मानता ।।"

दोहा

झांके शंकित चित्त से, छिपकर राम कुटीर ।
दृश्य पुत्र-मां मिलन का, लखने लगे अधीर ।।

छप्पय

हलके भूरे जटा-जाल कुछ भू पर बिखरे ।
पीत-चीर नववार, किनारे लोहित गहरे ।।
बँधी अजिन कंचुकी, लगा सिंदूर भाल पर ।
ताम्र-पीत श्रीखंड लगे अंगांग मनोहर ।।
बैठीं बाघम्बर बिछा, भरीं सहज एकाग्रता ।
हनुमज्जनी अंजनी, ज्यों प्रत्यक्ष पवित्रता ।।
कर मन ही मन नमन, विलोकीं वदन फिराये ।
अपराधी से खड़े कीशवर शीश झुकाये ।।
करते यदि मनुहार, तुरत दुत्कार हटाती ।
शेष-वल्लभा सदृश पलट बल खा-खा जाती ।।
"क्या देखेंगे अंबिके ! अभी-अभी प्रभु आ रहे ।"
"मुझ अधमा के इसी से, प्राण अधम में जा रहे ।।

क्या था मेरा दोष, िया किस हेतु दंड रे ।
इस चौथेपन मला भाल काजल प्रचंड रे ।।
आया कैसे लजा बोल, यह विमल दूध तू ।
जानी तुझे सपूत, अरे ! निकला कपूत तू ।।
श्रीजी को लाया न क्यों, सकुल दशानन मार कर ।
आया कैसा भांड सा, तनिक भाड़ सा क्षार कर ।।
ज्यों पय पी-पी कांस्य किया करता था आड़े ।
त्यों त्रिकूट के कूट न क्यों कर टूक उखाड़े ।।
ज्यों लेता था उछल-उछल फल डाल-डाल के ।
क्यों न लिये त्यों काढ़, नयन दशभाल-भाल के ।।
बचपन में रवि-राहु-शनि, जिसने मुख में रख लिये ।
उसने यौवन में अहा ! राम दांव पर रख दिये ।।
कह, कुक्षिम्भरि ! भूख कहां उस दिवस गँवाई ।
कह, गूलर सी लंक कीश की राशि न आई ।।
क्या खा गया गरिष्ठ कि तेरा तन अलसाया ।
क्या दिख गया अनिष्ठ कि तेरा मन भय खाया ।।
किये बंधु इतने व्यथित, किया कौतुकी ! खेल क्या ।
हुआ श्वेत, लो हत लहू, तेरा मेरा मेल क्या ।।
जिस लंका में सिया कुररिका सी चित्कारी ।
खुली न जिसमें कुंभकर्ण की तनिक खुमारी ।।
जहाँ वंदिनी सती घड़ी गिनती जीवन की ।
सिंदूरों में सनी वहाँ कुल्टायें चमकीं ।।
नारी का अपमान लख, नारीं शिशु जनतीं रहीं ।
सिंधु-गर्भ में लंक वह, गई तुरत कह क्यों नहीं ।।
क्यों न दशानन-पतित, पतित-अर्भक सा खींचा ।
क्यों न शक्ररिपु-शीश जामफल सा कस भींचा ।।
मद्य कुंभ सम कुंभकर्ण के लात न मारी ।
क्यों न मनी हेमन्त, लंक-वासन्ती क्यारी ।।

अच्छा था जाता न वह, ला न सका जो जानकी ।
लज्जा तो रहती बची, पवन-अंजनी नाम की ॥
लगा लषण के बाण, दोष किसके माथे पर ।
सिय समझीं शिल प्राण, दोष किसके माथे पर ॥
भटके पथ-पथ कीश, दोष किसके माथे पर ।
घायल हुए कपीश, दोष किसके माथे पर ॥
निशिचर-मुक्ति विलम्ब का, किसके माथे दोष है ।
कायर ! तव करतूत से, सबका तुझ पर रोष है ॥
जो न किसी ने पिया, तुझे वह दूध पिलाया ।
जो न झुका शिर कभी, न उठता, आज लजाया ॥
पूछेंगे रघुनाथ, कहूँगी क्या, सुत सकुशल ।
राम-आगमन पूर्व काल रे ! मुझ को ले चल ॥
रहता उचित "न कह सकी, जननी पूरी बात ही ।
"नही अंब !" कहते हुए, प्रकट हुए रघुनाथ ही ॥
"तव सुपुत्र से अंब ! सपूती संस्कृति सारी ।
तव सुपुत्र से अंब ! सत्य की पुष्पित क्यारी ॥
तव सुपुत्र से अंब ! कीर्ति कन्या सिंदूरी ।
तव सुपुत्र से अंब ! जगत की आशा पूरी ॥
तव सुपुत्र के दंड पर, लहराता ध्वज धर्म का ।
किसे कहो ज्ञाता कहें, आंजनेय के मर्म का ॥
प्रसवनि ! करो न रोष, दोष है सकल राम का ।
मैं ही अंकुश रहा कलभ से इस ललाम का ॥
सीता स्वयं न चली, रही अधजली लंक यों ।
ले कलंक सकलंक न करो ममांत्र अंब ! यों ॥
अग्नि धूम्र, रवि राहु से, मलिन गंग कुछ पंक से ।
मनसा-वाचा-कर्मणा, छुआ न कपि अघ रंच से ॥
कपि, कपीश का छत्र, मुकुट लंकाधिराज का ।
प्रथम, सफलता-हेतु जानकी के सुकाज का ॥

लक्ष्मण का तन अमर, अजर मन बंधु भरत का ।
निरुपमान हनुमान, त्रिवय त्रैलोक्य निकर का ।।
मां का पंचम लाडला, मम सनाह बलधाम यह ।
मां ! तव चरणों की शपथ, तव दोषी तो राम यह ।।"
गिरते-गिरते भूमि, राम को झपट उठाया ।
भरे नयन-मन-गिरा, हृदय से तुरत लगाया ।।
"राम! तुम्हारा कवच कौन, तुम कवच भुवन के ।
मालाकार वसंत, सुतन तन के, मन मन के ।।
छत्र-मुकुट कारण-करण, दिव्य सुकर्म सुधर्म के ।
त्रिगुणातीत परेश तुम, ज्ञाता अपने मर्म के ।।
सेवक का सम्मान, राम से सीखे कोई ।
करने अघ वरदान, राम से सीखे कोई ।।
धूलि चढ़ानी गगन, राम से सीखे कोई ।
हरनी तन-मन-तपन राम से सीखे कोई ।।
निरुपमान श्रीराम तुम, अपने ही उपमान हो ।
सेवक ऐसे स्वामि का, क्यों न ढिठाई- खान हो ।।
मातु-वदन मुस्कान देख, कपि गिरे पदों पर ।
लगा कंठ से लिये, लगे झरने दृगनिर्झर ।।
देख अंब-सुत मिलन, भरे सब भव्य भावना ।
भरत-विभीषण-गुह ने की बढ़, चरण वंदना ।।
दे आशिष आसन दिये, बैठे सब प्रमुदित वदन ।
फिर बोली "तव दर्श से, सफल नयन शतदल-नयन ।।
अरे ! हमारे धाम, राम सुखधाम पधारे ।
कंद-मूल-फल-फूल सजा पगले ! पनवारे ।।"
चले मुदित हनुमान, राम बोले मुस्काकर ।
"युगों-युगों का रोप, उतारा माते ! कपि पर ।।"
बोली मां "रघुकुल-सुमणि ! मैं निशंक हनुमंत से ।
शंका थी केवल यही, हो न ग्रस्त बल-दंभ से ।।

जिनकी करते काम-कुलिश भयभीत वंदना ।
जिनसे करती मुखर भारती मौन याचना ।।
उनका केवल शत्रु जगत में दंभ भयंकर ।
जो करता सर्वस्व निमिष में नाश, नृपतिवर ।।
ग्रसे न बन कर राहु सा, मम प्रिय गौरव सूर्य को ।
बजा दिया इस हेतु ही, इस थोथे त्यज-तूर्य को ।।"
"धन्य-धन्य" आनंदकंद सानंदित बोले ।
भरतादिक हिय अचल, चपल किसलय से डोले ।।
"किया देव का क्रोध सिद्ध वरदान सरिस मां ।
दिया गहन उपदेश, जगत को लघु रिष-मिष मां ।।
ऐसी मां का पुत्र क्या, छला किसी से जाएगा ।
जिसने दला स्वदंभ, वह - दला किसी से जाएगा ।।"
फिर बोले प्रभु "एक बात मां ! सुनो सुनाऊँ ।
तव सपूत-करतूत अनोखी लखी, बताऊँ ।।
शत्रु-शवों की बिछा सेज पर सेज धरा पर ।
ले लेता था नींद, घोर संग्राम मचाकर ।।
दनुज जान मृत, फूल सा ले चलते थे कंध पर ।
सुप्त सेज लेता बदल, भार बढ़ा, दनु पीस कर ।।
भरता था इस भांति हर्म्य में यह किलकारीं ।
आ पाती थीं पास न प्रिय-रक्षण हित नारीं ।।
भरता जिसको बांह उसे यमलोक पठाता ।
जिसे न करना स्पर्श, दूर से उसे डराता ।।
सोचा करता था कभी, कौतुक है या कीश है ।
आज हुआ विश्वास मां !, तव सुत बिस्वे-बीस है ।।"
हँसी सभी के साथ ठठाती हुई अंजनी ।
आये फल ले कीश, "कहा तुम हँसी प्रसवनी ।।"
"अरे हँसी मैं कहां, मुझे तव नाथ हँसाता ।
क्या सचमुच सियनाथ ! तुम्हें हँसना भी आता ।।"

बस इतना ही पूंछनीं, क्या इनको आता नहीं ।
किस रस को क्षणभर क्षणी, इनसे बचकर मां ! रहीं ।।
हँसी पूँछतीं, पूंछ विंध्य के योगिजनों से ।
निकली कांता-मूर्ति न, अब तक सरस मनों से ।।
रुदन पूँछना पूंछ, दण्डकारण्य बताये ।
युग-युग के जड़ अचल पलक अपलक भर लाये ।।
क्रोध एक दिन ही लखा, केवल सागर-राज पर ।
अग्नि नयन या बाण में, एक न पाया भेद कर ।।
कहने को कह गये, दे गये देने को वर ।
किंतु स्वयं हट गये लखन भी सहम धनुष-भर ।।
निकले होंगे कभी, नृसिंह दहाड़ मार कर ।
रचते होंगे राम, कालिका से प्रलयंकर ।।
पर मां ! उस दिन देखतीं, तो रह जाती देखतीं ।
भय की भी भयभीत सीं, पल-पल पुतली फैलतीं ।।
और अंब ! वात्सल्य, भक्त-वत्सल रघुनंदन ।
हैं, देखे, बहु सुने, किये पर उस दिन दर्शन ।।
बैठे जिस तरु तले, चढ़े उस पर कुछ वानर ।
देख मूर्खता, लजा, घड़कने लगे कपीश्वर ।।
बोले 'प्रिय कपिराज ! है, क्या मेरा अपराध, क्यों ।
ये मम चामर-छत्र हैं, करते आप विवाद क्यों ।।
क्या इनका श्रृङ्गार कहूँ, कहते सकुचाता ।
ऋष्यमूक का दृश्य, भुलाकर भूल न पाता ।।
लखते मां के वस्त्र-विभूषण ले कपिपति से ।
पायल लीं पहचान, आप तब बोले यति से ।।
तू पायल तो जानता, किंतु न मैं कुछ जानता ।
तूने मुख देखा नहीं, मैं मुख ही पहचानता ।।
अद्भुत था वह दृश्य, सेल ले बढ़ा दशानन ।
लखते कातर हुए मृत्यु को मौन विभीषण ।।

प्रभु ने देखी सेल, अरुण हो गये विलोचन ।
देख सुहृद-दुख-दशा, नवल नवनीत बना मन ।।
ब्रह्मा का वरदान लख, हाथ मसलते रह गये ।
मित्र-ढाल बन सिंधु सम, वैतरणी-शर सह गये ।।
क्या था वह उत्साह, काटते शिर पर शिर शर ।
सर-सर शिर शर-सूत्र गूंथते ज्यों मालाकर ।।
सजा अभ्र, ज्यों सजा शंभु का शुभ्र-कलेवर ।
नभ से गिर शिर-हार पुनः सजते जब प्रभु पर ।।
सुर कहते "यह समर या, रक्तबीज-कृषि-कहकहे ।
ये हरि हर को पूजते, या हरि हर से पुज रहे ।।
मूर्तिमंत प्रभु शांत, शांति उस समय निहारी ।
अहिरावण बलि हेतु चला, ले प्रखर दुधारी ।।
न भय, न रोष, न क्लान्ति, शरद-सर सरिस विलोचन ।
चकित देखते असुर देव, का देवी-पूजन ।।
अहिरावण बोला 'कहो, अंत समय क्या कामना' ।
ये बोले 'यह भगवती, सुनती सब की प्रार्थना' ।।
ली समेट सब बात, बालिको देकर दो वर ।
दी फैल सब बात, सुपनखा के अवयव हर ।।
लिया बात की बात शंभु का दिव्य शरासन ।
दिया बात का बात, त्याग पितु का सिंहासन ।।
काग बात वाला मिला, सारी बात बिगाड़ दी ।
विना बात वाला मिला, गुह की बात सुधार दी ।।
क्या रघुपति की बात, न किसकी बात सम्हाली ।
जिनके भुनी न भांग, परोसी कंचन थाली ।।
कहां अहिल्या पतित, कहां गौतम ऋषि पावन ।
पा प्रभु-योग, वियोग-शृंखला बनी विभूषण ।।
तेरे चपल कपूत को, किसने डाली घास कब ।
आज घास तुलसी बनी, दी प्रभु निज पद-पीठि जब ।।"

भीगी कपि की गिरा, कोर निर्मल नयनों की ।
हुई भावना तरल, विपल में सकल जनों की ।।
बोली हाथ पसार अंजनी "ला, क्या लाया ।"
देख अमित फल-फूल चाव से चौक सजाया ।।
"अपने घर के दास की, भाजी घर में दास के ।
ग्रहण करो" बोले तुरत, 'ये फल अंब-प्रसाद के ।।
लेगा राम अवश्य, दक्षिणा क्या दोगी पर ।"
"भेंट-भाग-ऋण-दंड-दक्षिणा-कर, क्या रघुवर ।।"
"नहीं-नहीं आशीश, भीख कह बनू बावला ।"
"नहीं, बावला नहीं, बहुत है चतुर सांवला ।।
कहते तो, कहते न तो, क्या वह देती, जो दिया ।
अब दूंगी कर राम-कर, लो, देने को ही लिया ।।"
ले मारुति का हाथ, हाथ में दिया राम के ।
"रखना राम ! सम्हाल दीन यह, विनय मान के ।।
स्वामि न केवल पिता-मातु तुम राम-जानकी ।
देती संतति धाय आपको, स्वामि ! आपकी ।।
मारुति रघुपति हित हुआ, रघुपति मारुति हित हुए ।
साहु-संपदा बिध मिला, कैसे रोकड़िया छुए ।।"

अंगद आगमन

सहसा चढ़ता हुआ दिखा यों अंगद गिरि पर ।
आता आतुर वत्स, गंध ज्यों गौ की पाकर ।।
"आया ललित-किशोर" उठे ज्यों कहते रघुवर ।
तब तक आकर गिरा, छिन्न-बल्लीव पदों पर ।।
"हा हा प्रभु ! इस जीव को, क्यों मन से बिसरा दिया ।
क्या अपराध विचार कर, अपराधी ठुकरा दिया ।।
गिरा गगन से, धूलि धरा की, कपि का छौना ।
बना भाल का नील, सुभग शृंगार दिठौना ।।

सरकाया, क्या अशुभ-समय का जान बिछौना ।
शिव-पद बना अछूत, केतकी-सुमन सलौना ।।
कुत्सित-बालक जानकर, या रिपु-बालक जानकर ।
भुला दिया करुणेश ! क्या, अपना विरद बिसार कर ।।
मेरे माता-पिता-स्वजन- गुरु - स्वामी - स्नेही ।
प्राणनाथ ! तन टिके प्राण, इन चरणों से ही ।।
दिशि-दिशि तिमिर-अपार, जीव की छवि कितनी सी ।
संसृति क्षार-समुद्र, वयस-धरती इतनी सी ।।
उसमें भी दुख मेरु बहु, मरु-भू दलदल पाप की ।
मिली भाग से छान जो, बांबी भुजग त्रिताप की ।।
जिता व्यूह से दिया फँसा मकड़ी के जाले ।
खोंच सिंधु से, दिया डाल खर-पद के पाले ।।
उपवन में ला विजन विपिन से, हा भटकाया ।
अंबारी में बिठा, कुक्करी से चिरवाया ।।
मन में बस कर नाथ ! हा, मन से ही बिसरा दिया ।
सपने में भी सुधि न ली, मरा सिसक कर या जिया ।।
थमा आपके हाथ, हाथ यह अन्त समय में ।
वे होकर निश्चिंत गये प्रभु ! तव-आलय में ।।
झोली में का बाट, बाट में कैसे डाला ।
अंजन-कांकर बिना मला दृग मसल निकाला ।।
इस अनाथ का नाथ है, कौन बिना रघुनाथ ! तव ।
क्या करना इस माथ का, सरक गया यदि हाथ तव ।।
अब न छोड़ना नाथ ! साथ लेकर ही जाना ।
इन चरणों के बिना, दीन का कहां ठिकाना ।।
हूँ गँवार पर झाड़-बुहारी तो कर लूंगा ।
बासी-जूंठन जीम, पेट पापी भर लूंगा ।।
पड़ा रहूँगा पौर में, उतरन ढक घुड़साल में ।
मागूंगा प्रभु ! कुछ नहीं, कभी किसी भी काल में ।।

होकर परम-उदार मान लो विनती राजन ।
एक पालतू और पाल लो अपने आंगन ।।
दे दो भिक्षा स्वामि ! न ठोकर दो माथे पर ।
मम-दिशि रुख कर तनिक लखो निज-दिशि करुणाकर ।।
जो शर मारा बालि के, मार वही श्रीराम ! दो ।
यह दो या वह, जो रुचे, किंतु देव ! निज धाम दो ।।"
सिसक उठे युवराज प्रार्थना करते करते ।
बरबस हिय से लगा राम रो उठे, विहँसते ।।
"मत कर अंगद ! और अधिक लज्जित को लज्जित ।
उपालंभ दे कर न नमित शिर पंक-निमज्जित ।।
अवधनाथ रघुनाथ कह, यह तेरी शालीनता ।
पर तव सम्मुख स्वयं को, मैं अपराधी मानता ।।
वत्स ! करेगा नहीं क्षमा क्या एक बार भी ।
तनिक मान मनुहार दुलारे ! रख दुलार भी ।।
रहता तन साकेत, भटकता मन तुम सब में ।
कैसे छाती चीर, दिखाऊँ क्या कण-कण में ।।
घिरी घटा जग देखता, प्रमुदित नृत्य मयूर का ।
एक मयूरी देखती, आँसू पग की धूर का ।।
यदि होती मैथिली, तुझे वह दशा बताती ।
किस-किस की स्मृति निशा-निशा प्रति-दिशा नचाती ।।
भूल न पाता निमिष-मात्र वह दृश्य निराला ।
चला बनाकर गोल, गोल बालधि, मतवाला ।।
मथ डाला रावण-जलधि, विजयामृत आया निकल ।
स्वार्थ-हीन कपिदल सकल, परम प्रबल मन का सरल ।।
उसमें भी वह वीर, हरावल हरियाली सा ।
गेंदे का सा फूल, वदन बंधुल-लाली सा ।।
जाता, ज्यों उत्साह धार आकार चला हो ।
पर्वतारि-प्रिय वज्र कंचनारुणि सु-कला हो ।।

फिर-फिर जाती दृष्टि में, फिर-फिर छवि वह वीर की ।
जब-जब आती याद वह, रहती सुधि न शरीर की ।।
भरी सभा में दिया रोप ललकार चरण जो ।
धर्म-आहवस्तम्भ दनुज-दल-दंभ-दमन जो ।।
हिला न हिल-हिल गये हिलाने वाले सारे ।
कपि-किशोर से घोर-शूर तन-मन से हारे ।।
छीन लिये जिसने मुकुट, जीते जी दशशीश के ।
हम क्या हैं, हम जानते, बिना मोल उस कीश के ।।"
"रखो न इतना भार, फेन पर करुणा-सागर ।
कृपा-दृष्टि की वृष्टि बनी मरु-सृष्टि रसाकर ।।
जिनके यम-शनि बँधे भीत ड्योढ़ी-सीढ़ी में ।
करते चँवर समीर कसे बेड़ी-भीड़ी में ।।
रवि पाचक, चाकर-वरुण, सुरपति छतरी तानते ।
शशि चलते दीपक बने, धनाध्यक्ष भय मानते ।।
लिए चैत्ररथ-सुमन प्रतीक्षा करते खेचर ।
कहते विधि पंचांग नियम से प्रति-दिन आकर ।।
गड़े अलौलिक अस्त्र, यूप बन जिनके उपवन ।
झूलीं झूले डाल मुदित जिनमें प्रमदाजन ।।
वीर विश्व-विख्यात वे, परम-भयंकर तिमिरचर ।
रक्त-पंक रज से मिले, सलिल-रेख से सिंधु पर ।।
जिनका अद्भुत धैर्य. शाख से शाख फाँदना ।
जिनका अनुपम शौर्य, सफल लख शाख झाड़ना ।।
जिनका दारुण वीर्य, भीरु-शिशु को भय देना ।
जिनका बृहतैश्वर्य, पेट बटु लिपटा लेना ।।
वे शाखामृग जय करें, दुर्जय-दनु क्षण स्वल्प में ।
मानेगा यह कौन सच, सुर-मुनि-मनु-दनु स्वप्न में ।।
किंतु हुआ प्रत्यक्ष कनकपुर के आँगन में ।
बने कृपाकर-कृपा कीश वर-वीर विपल में ।।

सूर्य योग पा मुकुर उगलने लगता पावक ।
आखेटी का श्वान लपक लेता हार-शावक ।।
प्रभु-पद-पद्म प्रताप से, त्यों त्रिताप त्रैलोक्य के ।
स्वयं मिटे, भाजन बने, भालु अलौकिक भोग्य के ।।"
"भोग लगा प्रिय ! बैठ, रसोई सजी अंब की ।
भरत-विभीषण नमन किया, ली भुज-भुज गुह की ।।
नत मुख मारुति खड़े, न बढ़ पाए सकुचाए ।
ज्यों अंगद कुछ झुके, हृदय कपि ने लिपटाये ।।
"भूल गए निज शिष्य को, गुरुवर ! है अपराध क्या ।
स्वजन त्याग से भी बड़ा, धरती पर दुर्भाग्य क्या ।।
भीगे मारुति-नयन अधर रह गए मौन से ।
लगे सोचने वीर, शब्द अब कहूँ कौन से ।।
"लो न आप युवराज ! दास से ऐसा लेखा ।
लखते मेरी परिधि, पुनः था उचित परेखा ।।
उत्तर जिसे न दे सके, प्रभुवर सर्व समर्थ ही ।
दास-दास की बात क्या, केवल अर्थ अनर्थ ही ।।"
बाँह खींच स स्नेह अंजनी ने आसन पर ।
बिठा, कहा पा रे ! प्रसाद राघव का सादर ।।
पा माँ का संकेत, मधुर फल चखकर रघुवर ।
कह कर "अंब प्रसाद" बाँटने लगे उठा कर ।।
चाव-चाव से ले सभी, खाकर हाथ पसारते ।
हुए सफल फल सकल ही, पल में पलकें मारते ।।

दोहा

वार्ताओं में ही हुई, आधी रात व्यतीत ।
चले प्रात संध्यादि कर, किष्किंधा गोतीत ।।

उर्मिका

बजाता हुआ मधुर घंटियाँ,
नाचता हुआ गगन में यान ।
स्वर्ग की परिक्रमा में लीन,
लगा हरि सहित खगेश समान ।।

भरे किष्किधा के सब मार्ग,
पौर पर धमक उठे बहु वाद्य ।
थिरकने लगीं नर्तकी निकल,
गा उठे गायक "जय-आराध्य" ।।

सचिव परिकर समेत सुग्रीव,
चले ले स्वागत द्रव्य अपार ।
"अवधपति ! उतरो किंकर-पौर"
विनय सी करते बारम्बार ।।

आ गया पाकर प्रभु-संकेत,
धरा पर धीरे-धीरे यान ।
पीत-परिकर फहराते हुए,
उठे आनंदकंद भगवान ।।

चला ज्यों मंजुल कंज-निकुंज,
सुगंधित प्रत्यूषी-पवमान ।
अभय अंगुलिका कलिका खिलीं,
पुतलिका डोलीं मधुप समान ।।

कर उठे केलिप्रिय-कुल केलि,
देख चिर-परिचित रघुपति-मूर्ति ।
कुलीना-कीश-केशिनी छटा,
छटा ज्यों छिटकी घटा सुपूर्ति ।।

अनेकों उत्साही जा चढ़े,
उतारें जब तक चर सोपान ।
डोलने लगा उमंग-तरंग,
बना जलयान समान विमान ।।

रोकते ही रह गए कपोश,
कौन सुनता किसका आदेश ।
देख कपि को कुछ आकुल-कुपित,
थामकर कर बोले ऋक्षेश ।।

"राम के राम-राज्य में आप,
व्यर्थ क्यों करते हस्तक्षेप ।
मनासन-आसीनों पर चढ़ा,
कभी शासन-अनुशासन लेप ।।"

सभी से मिलते बारम्बार,
यान से ज्यों उतरे रघुनाथ ।
झुकाया जाम्बवंत ने प्रथम,
धरा पर आकर सादर साथ ।।

सुपूजन कर कपिपति ने तभी—
पिन्हाई दिव्य भव्य वनमाल ।
युगल उर लगा, लगे श्रीकांत—
आंजनी-सिन्दूरी श्री-भाल ।।

राजपथ पर पथ पल-पल खोज,
बहुत कठिनाई से कपिवीर ।
ले चले रघुपति-परिकर घेर,
भीड़ को **चरण-चरण** पर चीर ।।

निकट ज्यों-ज्यों आता प्रासाद,
उमड़ता त्यों-त्यों प्लवग-समूह ।
घुमड़ता धरा-गगन दिशि-प्रदिशि,
हूह वन जयकारों का व्यूह ।।

धरा पर कीश, धरारुह कीश,
द्वार-दीवार-छतों पर कीश ।
चित्र सारियों-वारियों भरे,
नारियों के सिंदूरी शीश ।।

झांकतीं झिरी-झिरी से आँख,
बनी कपिपुरी द्वैप-दल-द्वीप ।
स्वाति छवि सागर करते पान,
नयन गागर भर-भर उर सीप ।

उभरने लगे सुमुक्ता भाव,
लगीं प्रकटाने अधर हिलोर ।
धारने लगीं सुमानस-मूर्ति,
नृत्य कर उठे सुचित्त विभोर ।।

अहं शैया पर लज्जित हुई,
चेतना छिपी देख चैतन्य ।
गा उठा रोम-रोम का कंठ,
राम प्रभु सत्य देव ब्रह्मण्य ।।

बरसते प्रभु पर प्रचुर प्रसून,
न छू पाते परन्तु भू-रंच,
सजे जन-जन शिर रंग-बिरंग,
लगे प्रभु के अभिनंदन-मंच ।।

अपरिमित उठते लाजा-शैल,
हटाते अमित साथ ही साथ ।
बने सकीर्ण कंदरा-पथिक,
बृहत् किष्किधा-पथ रघुनाथ ।।

छत्र पर पुष्प, मुकुट पर पुष्प,
इत्र से चिपके देह अनंत ।
रँगीली पलकें रचीं पराग,
लगे रघुपति ऋतुराज-वसंत ।।

"चमकता अपर सूर्य सा गगन,"
राम बोले "कपिपति-प्रासाद ।"
"देव ! तब सुपद-प्रसाद-निनाद—
कीश विह्वल बोले साल्हाद ।।

द्वार पर ज्यों पहुँचे अवधेश,
बजे बहु तूर्य एक ही साथ ।
रुमा रानी प्रमुदित बढ़ चली,
थाल नीराजन का ले हाथ ।।

सींचती कंचन-झारी नीर,
आरती करती बारम्बार ।
कीशपति का अंतः-पुर चला,
चलीं ज्यों घुमड़ श्रावणी-धार ।।

किंतु राजीवनयन के नयन,
खोजते छिपा-छिपा कर कोर ।
रुके सहसा तारा को नेख,
खड़ी थी कुछ पीछे की ओर ।।

राम ने देखा मन में जान,
किया त्योंही शिर झुका प्रणाम ।
पास पहुँचे रघुराज तुरंत,
"कुशल हो" "कुशल देव सुखधाम ।।"

ले चले स्वयं दिखाते राह,
राम को सभा-भवन कपिनाह ।
हुए कनकासन पर आसीन,
थाम सस्नेह कीशपति-बाँह ।।

पधारे लंकेश्वर को लिये,
ऋक्षपति प्रभु के बांए-हाथ ।
दक्षिणी-छोर जोड़कर हाथ,
कीश-युवराज भरत के साथ ।।

विराजे चरणों में हनुमान,
बिठाकर सादर पास निषाद ।
अटे कपि-भालु सभाजिर बृहत्,
झरोखों में रानी साल्हाद ।।

कर उठे गायन गायक-वृन्द,
वाद्य बज उठे अनेक प्रकार ।
रागिनी नाचीं स्वर झंकार,
सभालय लगा सुरागागार ।।

भुलाते क्षण-क्षण तन का भान,
मंजु-मृदु मंद-मदिर आलाप ।
झुमा देतीं रस-सर चित-तरी,
पखावज पर पड़तीं कर-थाप ।।

बनाता दिशि-दिशि को विक्षिप्त,
प्रहर भर चला सुष्ठु-संगीत ।
देख रवि-रथ सुमेरु की ओर,
रुके गायक-गण चतुर विनीत ।।

सोरठा

जानकीश की दृष्टि, परमोदारा देख कर ।
गायक-जन पर वृष्टि, की कंचन की भरत ने ।।
कर अति विनय कपीश, उठे शीश प्रभु को झुका ।
"परम-कृपा जगदीश, किये सुपावन कीशजन ।।

ऊर्मिका

किये यूं तो किस-किस पर नहीं,
नाथ ! किस समय न क्या उपकार ।
मिले यदि रोम-रोम को गिरा,
कथन हित लोमश-वयस अपार ।।

न तब भी रामचन्द्र राजेन्द्र,
कही जा सकती तव शुभ-कीर्ति ।
कहे क्या जग-प्रपंच-रत जीव,
मृत्यु की जिसको शाश्वत् भीति ।।

मौन बद्धांजलि श्रीपद-पद्म,
समर्पित कर दे सादर शीश ।
यही मुझसे साधारण जीव—
हेतु, हित का उपाय जगदीश ।।

समय वह करता हूँ जब स्मरण,
फिरा करता था छिपता भीत ।
ग्रास इस ठौर, नीर उस ठौर,
अपरिचित बने सुपरिचित मीत ।।

कहाँ पुर-परिकर-प्रिय परिवार,
बनी थी परछांई भी प्रेत ।
जानता अमृत, निकलता गरल,
मानता शैल, निकलती रेत ।

हताशा होती ऐसी कभी,
प्राण लगने लगते थे भार ।
रह गया आतम-घात का पाप,
नाथ ! करता-करता बहु बार ।।

पवनसुत देते दिखते धैर्य,
न दिखती थी, पर थी यह शक्ति ।
आज तो देख रहा प्रत्यक्ष,
यही थी श्यामल-छवि वह शक्ति ।।

आज बन बैठा वानरराज,
निराश्रित कल का निपट-निरीह ।
अज्ञ क्या, एक बार तो विज्ञ—
कहेंगे निश्चित गल्प अलीह ।।

किंतु सबके सम्मुख प्रत्यक्ष—
खड़ा हूँ, क्या दूँ और प्रमाण ।
आज का प्राण-प्रदाता ईश,
कीशपति कल का कपि निष्प्राण ।।

न किंचित लाज, सत्य रघुनाथ !
पधारे ऋष्यमूक जब आप ।
सांप सा गया चित्त पर लोट,
गया था खड़ा-खड़ा ही काँप ।।

दिये थे यद्यपि मारुति भेज,
प्राण जाने को थे तैयार ।
कहीं मिलता इंगित प्रतिकूल,
न पड़ता यम पर लघु श्रम-भार ।।"

भरी सहसा कपिवर की गिरा,
खड़े रह गये स्वांस भर मौन ।
पुनः बोले "सीतापति बिना,
सहायक असहायों का कौन ।।

परीक्षा पल-पल लेता रहा,
अविश्वासी मेरा मन मूढ़ ।
निभाते रहे मित्रता आप,
समझ कर भी सब चर्चा गूढ़ ।।

दुं.भी - अस्थि - ताल - विध्वंस,
देख कर भी मैं कायर क्रूर ।
'कपीश्वर-बालि' अंत तक हार्य,
न कर पाया अंतर-भ्रम दूर ।।

आज भी कहता पापी जिन्हें—
जगत, वे नृपति बालि बलवान ।
नाथ समदर्शी प्रभु श्रीराम,
गये पहिले क्षण ही पहचान ।।

वीर-गति क्या सुसिद्ध-गति मिली,
दिये पुष्पांजलि से प्रिय-प्राण ।
कर गये सुसफल जीवन-मरण,
दे गये कीश-जाति को स्थान ।।

एक मैं मूर्ख, राम का दास;
सकल त्रिभुवन-संकुल विख्यात ।
कुशंका-भीति निराशा भरा,
करा बैठा सुबंधु का घात ।।

देखतीं कई बार कुछ आँख,
न जिनसे मिल पातीं ये आँख ।
कसकता मन रह जाता लिये,
तड़फता ज्यों खग धूलि अपांख ।।

बना नृप, नृप पर लगा कलंक,
सिद्ध कर प्रभु माध्यम से स्वार्थ ।
स्वजन भी सज्जन बैठे मान,
पोच को मूर्तिमान परमार्थ ।।

बैठता हूँ जब भी एकांत,
ध्यान वे आते बारम्बार ।
वक्ष में बाण, धरा पर वीर,
रँगोली रचती शोणित-धार ।।

हृदय में प्रीति, चित्त में अहम्;
बुद्धि में तर्क, अधर पर रोष ।
दृगों में राग, भँवों में त्याग,
लुटाता कण-कण जीवन - कोष ।।

विदित फिर हुआ कि रक्षण दिया,
रुमा को सुता सरिस ही जान ।
ज्येष्ठपन का उनका अभिमान,
वैर मन मेरा बैठा मान ।।

फिरा भयभीत छानता भुवन,
न फिर कर गिरा बंधु के अंक ।
पोच-प्राणों की शंका-स्वल्प,
दे गई गुरु गुरु-घात कलंक ।।

दिखाये हत्यारा मुख किसे,
बतायेगा प्रायश्चित कौन ।
हृदय पर महापाप का भार,
न सह सकता अब शिल सा मौन ।।

सभालय - शयनकक्ष - प्रासाद
वीर के लोचन युगल सनीर ।
बाह्य - व्रण का करते उपहास,
लिये प्रभु ! अंतर-व्रण को पीर ।।

दिखा करते हैं आठों-याम,
पूँछते बारम्बार अधीर ।
बता दे मेरा कितना पाप,
आज तो अरे जगत को वीर ।।

भटकता शून्य त्रिशंकु समान,
जलांजलि लिये नमित दृग-तीर ।
शिला सा लगता कनक-किरीट,
भोग लगते कुरोग गंभीर ।।

जगत तारा को लेकर आज,
डालता मुख पर वह ही धूल ।
बंधु - हत्या पातक-तरु-मूल,
खिला यह प्रथम शूल सा-फूल ।।

आपका पक्ष, कीशकुल कीर्ति,
साथ ही कपि सुग्रीव-चरित्र ।
इसी पातक के कारण बने,
मित्र से घोर अमित्र, शमित्र ।।

आपके श्री चरणों की सत्य—
शपथ लेकर कहता भगवान ।
प्रसवनी तारादेवी विमल,
सदा अंगद सम देतीं मान ।।

असीमित यद्यपि मम कौटिल्य,
किंतु यह शुद्ध सत्व संबंध ।
सभी की सुनता बातें मौन,
शीश नत फिरता बना कबंध ।।

बना लें मारुति सा हो दास—
आप से, यही याचना आज ।
करें निज कर-सरोज प्रभु ! तिलक,
बने अंगद सुयोग्य कपिराज ।।"

मुकुट शिर से उतारने चले,
कपीश्वर के जैसे ही हाथ ।
उठा अंगद त्यों कहता हुआ,
"करो मत कपिकुल नाथ ! अनाथ ।।

आपके विमल-हृदय-प्रति रहा,
सदा शंकित मम चित्त-मलीन ।
गया मैं सोच-सोचकर हार—
कि क्या पितुचरण-पाप अति पीन ।।

उलझता उतना ही मन गया,
गई सुलझाती जितनी बुद्धि ।
अंत में बैठ गया हो शांत,
देख प्रभु-सच्चारित्र्य-विशुद्धि ।।

देख पितुवर-बल-व्रत-ऐश्वर्य—
प्रजापालन - तत्परता - न्याय ।
उठाता शिर, झुक जाता तुरत,
देख रघुपति-कर वध निरुपाय ।।

न थी कल, कल भी होगी नहीं,
आज भी रंच न प्रभु पर शंक।
किंतु मनु-मन मथ जाता कभी,
अभी भी पितु-चारित्र्य कलंक ॥

उचित यदि माने राजा राम!
क्षमाकर बालक का अपराध।
कृपा कर करें सभा में स्पष्ट,
दिवंगत पितु का पाप-अगाध ॥"

वचन अंगद के सुनकर सकल—
सभा रह गई निरुत्तर-मौन।
देखने नीची-नीची आंख—
लगीं अब क्या वोलेगा कौन ॥

हुई हलचल, दो पल पश्चात—
चली तारा अंतःपुर त्याग।
खड़ी हो गई राम के पास,
सदेहा कुंडलिनी सी जाग ॥

सकल वंदन कर लखती हुई,
राम की स्वीकृति-सूचक-कोर।
बिठा अंगद-सुकंठ संकेत,
खींच कुछ शीशांचल का छोर ॥

पूँछती नयन, खोजती गिरा,
झांकती कुछ अतीत की ओर ॥
बोलती लगी, लगो कांकरी—
शांत सरवर ज्यों उठी हिलोर ॥

"क्षमा करना राजेश्वर राम!
पूज्य लंकेश्वर, भरत कुमार।
वृद्ध ऋक्षेश, ज्ञातिजन मान्य,
बोलती नारी पहली बार ॥

मौन रह किया बहुत दिन पाप,
सत्य यह, लगा सत्य ही आज।
आज भी गई मार यदि लाज,
सत्य ही होगा निखिल-अकाज ।।

मांगता उत्तर मेरा दूध,
स्वयं ही भरी सभा के बीच।
न मुझसे पूँछ सका, है स्पष्ट—
न सुत-विश्वास पा सकी नीच ।।

स्वामिघातिन संसृति-आसक्त,
प्राणरूपा संतति-परित्यक्त ।।
काष्ठ-पुत्तली सतीत्व-विहीन,
करे किस भांति भावना व्यक्त ।।

एक दमयंती जिसकी दृष्टि—
कर गई व्याध विपिन में क्षार।
एक शव्या जो पति-ऋण-हेतु,
कर गई किंकरीत्व स्वीकार।

एक अनसूया जिसने दिया,
सूर्य-रथ उदयाचल पर रोक।
एक वह गार्गी जिसने दिया,
सभा में पंडित-मंडल टोक ।।

एक सावित्री लाई छीन,
मृत्यु से प्राणेश्वर के प्राण।
एक वह सती शैल शैलेव,
झेलती परित्याग ज्यों बाण ।।

एक वह सिय जो प्रिय-हिय लगी,
बना कर वैरि-मुंड सोपान।
एक यह तारा ही अपवाद,
अधम-तिय तिया-जाति-अपमान ।।

न कर पाई पति-घातक भस्म,
न बन पाई पति-भस्मी भस्म ।
अमंगल-प्रतिमा लाज-विहीन,
शिला सी सजी बिना प्रिय सद्म ।।

पालता जिस पापिन को मौन,
कीश-कुल कर के दया महान ।
जगत के इस जीवन से हाय,
मृत्यु का श्रेयस्कर आह्वान ।।

कहूँ क्या, प्रिय-वध पातक, भूल,
कहूँ यदि पुण्य, भयंकर पाप ।
कालिका, प्रिय-घातक शर-ज्वाल,
लील जो गई राष्ट्र का शाप ।।

स्वामि गुण-संकुल शतदल-ताल,
विमत जो रखता, निश्चित नीच ।
सिद्ध पर निज अंतिम-वय हुए,
दंभ-हित हा-प्रमाद की कीच ।।

करें कुछ वृद्ध-कीशजन ध्यान—
जन्म-दिन का वह सभा-प्रसंग ।।
जहाँ ले मुनि अगस्त्य-संदेश,
पधारे थे सुतीक्ष्ण-शरभंग ।।

मुनीश्वर ने भारत की त्रिवय—
विविध-विधि करते हुए बखान ।
लिखा था क्या-क्या यदि वह पत्र—
कहें तो प्रस्तुत करूँ प्रमाण ।।"

सभा उत्सुक लख बोली पुनः,
"तनिक जा अंगद ! पूजागार ।
तुम्हारी पितु-प्रतिमा के पास,
स्वर्ण - मंजूषा दीपाधार ।।

उठा ला शीघ्र" चले युवराज,
तुरत लौटे मंजूषा धार ।
दिया तारा ने पत्र निकाल,
सुनाने स्वर से लगे कुमार ।।

महर्षि अगस्त्य का पत्र

शार्दूलविक्रीडित

किष्किंधाधिप कीश-शीश-मणिका श्रीबालि शूराग्रणी ।
बारम्बार अगस्त्य साधु शतशः आशीश देता तुम्हें ।।
आशा है सकुटुम्ब न्याय-नय से होंगे प्रजा पालते ।
राज्यांगाष्टक नित्य श्रीश-हर की सुश्रीव सम्पन्न हो ।।

ऊर्मिका

धर्म की मूर्ति, हमें जो हुई—
पुरातन पुण्यों से प्रिय ! प्राप्त ।
आज आसिंधु हिमंचल वही,
हुई भारत-भू पातक व्याप्त ।।

गूंजते जिस अंबर में मंत्र,
लहरती यज्ञ-धूम्र की धार ।
भरा अपहृता-बालिका वृन्द,
विष्णुपद वह करता चित्कार ।।

जहां सजते थे नित नव-तीर्थ,
जहाँ मनते थे नित नव-पर्व ।
वहां उठ-उठकर पंजर-शैल,
शैलपतियों का हरते गर्व ।।

देवताओं की क्रीड़ा-भूमि,
भयंकर लगती आज मसान ।
नाचते हैं प्रेतों से असुर,
ठठाकर करते मदिरा पान ।।

कभी निकला करते थे सजे,
जहाँ से अश्वमेध के वाजि ।
हुई निर्जन-वन सी वीरान,
प्लवगपति ! वे प्रशस्त पथ-राजि ।।

आर्य-सम्राटों के प्रासाद,
चर्मचटिकाओं के आवास ।
न देखे जाते! कीर्तिस्तम्भ,
ध्वजस्थल उगी प्रावृटी-घास ।।

ब्रह्मभू - सिंहल - चंपा - मलय—
सुमात्रा - भरतचीन - यव द्वीप ।
बृहत् भारत के मंगलचिन्ह—
पड़े बिखरे, ज्यों रीते सीप ।।

विंध्य - केरल - कर्णाटक - आंध्र—
मद्र - केकय - कलिंग-बंगांग ।।
असम - नेपाल - त्रिपुर - गांधार,
हमारे अविभाजित अंगांग ।।

हुए परकीयों से आक्रान्त,
सनातन-शांति हो गई शांत ।
विचरते, प्रांत-प्रांत को कलान्ति—
कृतान्तों सम देते दुर्दान्त ।।

बनाये बैठे लंका केन्द्र,
निशाचर दिशा-दिशा के आज ।
मचाते दिशा-दिशा में प्रलय,
यहीं से सजा-सजा रण-साज ।।

पराजय जिसने पाई नहीं,
बचा वह शेष कौन किस लोक ।
गये नृप मांधाता अनरण्य—
सुदासादिक कुछ-कुछ दिन रोक ।।

वेद - गो - द्विज-संयम- यम-नियम—
अहिंसा-सत्य सात्विकाचार ।
तिलांजलि देकर सबको आज,
बरतता रावण स्वेच्छाचार ।।

आप-बलि-हैहय नृप ये तीन—
पुरुष ही जीत सके दशशीश ।
एक पाताल दूसरे स्वर्ग,
आप ही भू पर आज कपीश ।।

देखती है यह भारतभूमि,
दीन हो निर्निमेष तव ओर ।
बचालो मानवता की लाज,
तुम्ही आंचल के अंतिम छोर ।।

पिये गंगाजल कितना कौन,
रहे कावेरी किसके पास ।
वितस्ता - इरावती - नर्मदा,
रखें निज गति क्या बारह-मास ।।

गई क्यों गोदावरी सुपूर्व,
पश्चिमोदधि ताप्ती की धार ।
रहे क्यों ब्रह्मपुत्र का नीर,
घिरा ईशान-भाल हर बार ।।

बाँधते ये क्यों कटि में फेंट,
यहां दो, वहां एक क्यों लांग ।
यहां नववार वहाँ पँचवार,
दिखाते ये क्यों सूची-स्वांग ।

निरामिष सज्जन, सामिष क्रूर,
कहां क्यों अमुक अन्न-आहार ।
श्रेष्ठ हरि-हर-दुर्गा-रवि-गणप,
कि ईश्वर निराकार-साकार ।।

युगल मीमांसा-न्याय-समाधि—
सांख्य-वैशेषिक शाख प्रशाख ।
लगे कैसे कुंकुम सिन्दूर,
अरुण या पीत-पटीर कि राख ।।

रहे पितरों के क्या संबंध,
किया किसने-कब-क्या व्यवहार ।
बुने भाषा ने कैसे वस्त्र,
व्याकरण-सूत्र कौन से धार ।।

न किसकी लेनी, देनी किसे—
सुता-सुत का विवाह-व्यवहार ।
कहां से क्यों किसकी व्युत्पत्ति,
वर्ण-कुल-गोत्र प्रसार अपार ।।

जीवितों के सब भेद-विभेद,
चिता मृतकों की निश्चित एक ।
मृतक हैं या हम जीवित अभी,
मौन मेरा तो सकल विवेक ।।

विचारो नृप ! स्वराष्ट्र की दशा,
निहारो फिर प्रिय ! अपनी ओर
देखती इन्द्र-अंश-विध्वंस—
मौन क्यों इन्द्र-अंश की कोर ।।

कुक्षि में दशकंधर को दाब,
सहज ही संध्या-प्राणायाम ।
किये जिस योद्धा ने सम्पन्न,
आज वह सोता कैसे धाम ।।

यत्न कर शत्रु न पाया तोड़,
वज्र सा जिसका पाश कठोर ।
फिराया गृह-पशु जैसा बांध,
नगर में जिसने चारों ओर ।।

उसी के उसी वैरि की सैन्य,
आज उसके ही सम्मुख वीर ।
रौंदती फिरती भारत-भूमि,
उसी की सीमा निर्भय चीर ।

बसे सिद्धाश्रम गंगातीर,
घोर ताड़का-सुभुज-मारीच ।
कांपती जिन से लंका स्वयं,
त्रिशिर-खर-दूषण से वे नीच ।।

रौंदतें विंध्य - विदर्भ - प्रभास,
जूझते केवल एक जटायु ।
बह रही रम्य दंडकारण्य,
वर्णनातीत भयंकर वायु ।।

जहाँ से भारतीय-सामान,
सदा ले जाते थे जलयान ।
विदेशी - मुद्रा का भंडार,
महादेवी मुंबा का स्थान ।

पश्चिमोदधि हिलोर - दल मध्य,
सजा नवरत्नों का सा थाल ।
खड़े ज्यों ले सरिराज-सुपुत्र,
रमा-संतति का भात विशाल ।।

किंतु कपिराज ! बन गया आज,
भयंकर भैरव का सा नेत्र ।
सुपनखा का स्वच्छंद सुकेलि—
कलालय वह शूर्पारक-क्षेत्र ।।

उधर मधुपुर में मधु-सुत-लवण,
भभकता भूमि-डोल सा भूमि।
जिसे वह कहता-क्रीड़ा रंच,
वस्तुत: प्रलयोदधि की ऊर्मि॥

कान में यदा-कदा षड़यंत्र—
और भी जो आते नृपवर्य।
धर्म-संस्कृति-भारत विध्वंस—
मूलत: है उनका तात्पर्य॥

उत्तरी - भारत तो चैतन्य,
पूर्व-पश्चिम में भी कुछ चेत।
आप हैं दक्षिण के आधार,
रक्ष-प्रतिरोधन हो समवेत॥

नर्मदाशुभा महाकालेश,
यही इस बृहद्देश के केन्द्र।
नमन कर इन्हें, यही उद्देश्य—
लिये मैं दक्षिण बसा नृपेन्द्र॥

शास्त्र-भाषा शिष्टों के हेतु,
शस्त्र से पर संतुष्ट अशिष्ट।
आपसे तरुण-वीर ही आज,
राष्ट्र के हैं अभीष्टतम इष्ट॥

कहो अब नृप-मंडल एकत्र—
कहां हो, दो नृप! तनिक सुझाव।
किये आमंत्रित जायें भूप,
रुके रावण का तुरत प्रभाव॥

मद्र - मिथिला - कोसल - गांधार,
बंग-केकय - कलिंग - विघ्यांग।
आंध्र - कोंकण - पाठण - कर्णाट,
पंचनद - असम - ब्रह्म - सर्वांग॥

एक ध्वज के नीचे एकत्र—
सभी हों, सभी भुलाकर भेद ।।
ध्वजा पर हो अंकित ओंकार,
एक आधार सनातन-वेद ।।

महासेनप निर्वाचित एक,
यूथपति नीचे रहें अनेक ।
राष्ट्र का यह कल्याण-सुमार्ग,
दृष्टि में आता अब तो एक ।।

न करते यद्यपि ऋषि याचना,
दिया करते केवल आदेश ।।
धर्महित बटु-माध्यम तव-द्वार—
किंतु हूं प्रस्तुत भिक्षुक-वेष ।।

आप से है आशा कपिराज !
न करना भारत-भूमि निराश ।
मिला यदि अंजुलि भर जल न,तो—
जलांजलि से न बुझेगी प्यास ।।

वीरता-वारिधि हे धैर्याभ्र !
स्वजन शीतल-मृदु विक्रम-वारि ।।
बहा दो जन्म-भूमि की भ्रान्ति,
उठा कर अरुण-विलोचन-झारि ।।

आपकी सीमाओं को लांघ,
आपकी सीमाओं के पार ।
जा चुके, जाने दो अब किंतु—
न जायें एक, एक भी बार ।।

घोषणा कर दो सीमास्पर्श—
अर्थ होगा दारुण - संग्राम ।
इसी से हो जायेगा बहुत,
सोचना शेष पुनः बलधाम ।।

आपकी स्वीकृति जिस क्षण मिली,
तभी यह वृद्ध कुटी को त्याग ।
चलेगा अलख जगाता हुआ,
लगाता भय में भीषण आग ।।

रत्न एकत्रित करता हुआ,
गूंथता हुआ संगठन-माल ।
बनें स्वर्णिम-सुमेरु कपिराज !
विनय यह पुनः-पुनः इस काल ।।

दोहा

भारत के दुर्दैव ने, निगला सुख सौभाग्य ।
अक्षय यश-प्रागट्य का, केन्द्र बने कपिराज्य ।।
अगणित आशाओं भरे, ऋषि-कुल की आशीश ।
मृत्युंजय यशवान हों, भारत-स्कंद कपीश ।।"

सोरठा

सारी सभा अवाक, पत्र श्रवण कर रह गई ।
रहा न धैर्य मनाक, बोला अंगल रुदन कर ।।
'हाय किया क्या तात, कीर्ति कीच में डाल दी ।
हुआ पुनः क्या मात, मौन न रह, कह आज सब ।।"

ऊर्मिका

उठी तारा फिर कहने लगी ।
"उपेक्षा-भाव भरे भर्तार ।।
पत्र को आसन पर ही डाल,
न कर कुछ मुनियों का सत्कार ।।

मौन हो अत:पुर चल दिये,
रह गई यूं ही सभा अवाक ।
यहीं से जो पल्टा सौभाग्य,
मृत्यु में जाकर हुआ विपाक ।।

शाप देकर ज्यों मुनिवर चले,
गिरा सहसा मेरा शिर-फूल ।
गई सचिवों को लेकर साथ,
उन्हें समझाने उनकी भूल ।।

न समझे किंतु एक भी बार,
बहुत समझाया बारम्बार ।
उसी से चले राज्य को त्याग,
प्रभंजनसुवन - नील- नल - तार ।।

मनाया, इन्हें मना लो नाथ !
न जाने दो, हैं स्वामी-भक्त ।
न माने, खुला दिखाया द्वार,
दे सके मान न मानासक्त ।।

गये तन से ये यद्यपि चार,
गये पर मन बहुतों का फेर ।
ऋक्षपति - द्विद-मयंद-शठ-निशठ,
गये हटते सब देर-सवेर ।।

देख गृह-कलह दुंदभी असुर,
चला आया धोखे में दीन ।
गुहा में कर निशिचर-संहार,
पधारे पुर जब समर-प्रवीण ।।

रखी क्यों शिला गुहा के द्वार,
सम्हाले क्यों सिंहासन-कोष ।
राज्य में संवत्सर का शोक—
देखकर, हुआ न किंचित रोष ।।

हृदय से हृदय लगा युग-बंधु,
मिले निर्मल मन बारम्बार ।
तलालय देख अशुभ मम-वेष,
मुदित हो बोले, कर शृंगार ॥

किंतु जब देखे हनुमत सचिव,
सुकंठाश्रय करते ऋषि-कार्य ।
और परिवर्तित लखा विधान,
निशाचर-गण विरोध अनिवार्य ॥

हो उठा शंकाकुल मन मलिन,
क्रोध से धधक उठा प्रत्यंग ।
विपल में ही सहसा हो गया,
बंधु-विषयक अभंग-रस भंग ॥

कलह-निष्कासनादि उत्पात,
इसी तरु के कुफूल परिणाम ।
उभय-दिशि उभरा निशिचर-वैर,
मिले तन-मन से कपि-श्रीराम ॥

व्यथामय है इतनी सी कथा,
लगा ले कोई कुछ भी अर्थ ।
व्यर्थ ही ढ़ोकर दंभ-प्रमाद,
गये अंतिम-वय करा अनर्थ ॥

भाग्य में तो अपयश था लिखा,
टालता उसको कैसे कौन ।
गिर गये पतझर के से पात,
रहा जग निर्जन-वन सा मौन ॥"

हो उठी विव्हल बालिप्रिया,
ले गईं दासी दे आधार ।
सिसकता अंगद बोला "हाय,
गये किस ठौर हमें पितु मार ॥

मानता जिनको विषयी जगत,
वस्तुतः उन पर देशद्रोह ।
राम ने तन से किया बिछोह,
अंब ने मन से दिया बिछोह ।।

दोहा

उस दिन तो केवल हुई, एक छत्र की हानि ।
आज चतुर्दिक दिख रही, हाय ग्लानि ही ग्लानि ।।

ऊर्मिका

यही देशद्रोही का पुत्र,
कहेगा कल सारा संसार ।
नाथ ! भिक्षा दो इतनी, करो—
बालि सम बालि-पुत्र उद्धार ।।

रहा मैं मुख न दिखाने योग्य,
बना यह बालि-दत्त तन भार ।
आत्महत्या पातक से बचा—
नाथ ! दो इस अनाथ को प्यार ।।"

पीटने लगे शीश युवराज,
राम ने उठ कर थामे हाथ ।
"बावले ! तेरा कहाँ विवेक,
राम के रहते तू न अनाथ ।।

प्रकृति किस क्षण कर दे क्या वत्स !
न जाना जाता भेद अपार ।
सतत गति-शील काल का चक्र,
अयश-यश बँटता है संसार ।।

पूर्व - जन्मों के संचित - कर्म,
वंश के अंश, सुसंग-कुसंग ।
शाप-वरदान ईश्वरेच्छादि—
भरा करते जीवन में रंग ।।

रँगोली विधि की परवश - जीव,
स्ववश दिखता कर ईश्वर-भक्ति ।
हरण करती संसृति-आसक्ति,
शास्त्र-सम्मत विवेक की शक्ति ।।

यही है देवादेव विभेद,
सही है धर्माधर्म विभेद ।
यही है पुण्य-पाप का भेद,
एक से शांति एक से खेद ।।

एक है ग्राह्य, एक है त्याज्य,
भरा है युगल - मार्ग संसार ।
यशेच्छुक करते सुर-पथ ग्रहण,
स्वतः खल पाते रौरव-द्वार ।।

न उगते असुरों के शिर श्रृंग,
न देवों में सौंदर्य विशेष ।
असुर-सुर बनता नर निज कर्म,
कर्म-कल्पित प्रिय-दारुण वेष ।।

न कुछ भी क्लेश, रहे यदि स्मरण—
काल - ईश्वरविधान - परलोक ।
वीर ! तू विनयशील शुभभाव—
अमृतद्रव, कर न ज्येष्ठ का शोक ।।

दिव्य देवी तारा का गर्भ,
महाबलवान बालि का अंश ।
धर्म के कलित किरीट सुकंठ ।
पुत्र ! तू प्रजा-पुण्य-अवतंस ।।

पवनसुत पावनता की परिधि,
ब्रह्ममय मिले तुम्हें आचार्य ।
राम का हृदय-सरोज-पराग,
चतुः-सुपथों का तू पथिकार्य ।।

समुन्नति सन्ततियों की देख,
कुकर्मों पर सुकर्म का केतु ।
उड़ाते हुए पितर-दल सहज,
पार करते भवसागर-सेतु ।।

यही है सत्य - श्राद्ध का रूप,
पुत्र की उत्पत्ति का सुहेतु ।
अमर भी, नश्वर भी यह जगत,
विचर पहचान, मुदित कपि-केतु ।।

कौन हूँ मैं, मेरा है कौन,
कौन मुझसा ही, मैं न परन्तु ।
कौन सा सूत्र दृष्टि में वज्र,
कौन वज्रेव किंतु तनु-तन्तु ।।

कौन है इस असार का सार,
पार क्या पारावार अपार ।
जान जो गया, जीव है वही,
सिद्धि सुन्दरियों का भर्तार ।

जीव ही अमर ईश का अंश,
देह का जन्म, देह का नाश ।
स्वयं शिव मैं, मेरा संकल्प—
मैं न, मुझसा मम अहं-विलास ।।

वज्र से दिखते जग-सम्बन्ध,
किंतु कच्चे से कच्चे सूत ।
हृदय के कोमलतम तनु तंतु,
अंश-अंशी का अविचल दूत ।।

धर्म ही जग असार का सार,
तरा वह ही भवसिंधु अपार।
जान कर्तव्य लक्ष्य जो चढ़ा—
ज्ञान-तरि, लिये भक्ति-पतवार।।

ईश का अंशी वह अभिवाज्य,
ईश-सा ही अन्येश समान।
साधना-संबल-बल से पीन,
दीन से बनता दयानिधान।।

न करती चिंता चित्त मलीन—
रहे यदि मानव चिंतन-लीन।
गौण रह जाता यह संसार,
मुक्त चिंतक का जगत नवीन।।

किया अवलोकन आत्मालोक—
ईश सानिध्य समग्र प्रकार।
रैष्यनिष्कर्ष सनातन वही,
मर्त्यहित सत्य चेतनाधार।।

भूमि से अधिक अंब का भार,
गगन से अधिक पिता-परिमाण।
अग्नि से भगिनी अधिक पवित्र,
वायु से अधिक सहोदर प्राण।।

न्यून ममता से जल-तारल्य,
प्रकृति सुखमूल प्रकृति-अनुकूल।
चपल जीवन-यौवन चंचला,
अचल त्रय-काल स्वधर्म-दुकूल।।

सकल शुभ करते करतल केलि,
पुनीता भार्या हो यदि गेह।
पुत्रदुष्कर्म, कलह, ऋण, पाप,
जलाते दावानल सम देह।।

विप्र-देवत्व सतत् स्वाध्याय,
क्षात्र-देवत्व समर-भू धैर्य ।
परमुखापेक्षी रहे न राष्ट्र,
वैश्य-देवत्व यही सुस्थैर्य ।।

मलिनता मन की ही शूद्रत्व,
सहज पर उससे भी उद्धार ।
विश्व विश्वम्भर का ही रूप,
हृदय निश्छल ले यदि स्वीकार ।।

विमोहित होकर देव-समूह,
सीखने को उससे देवत्व ।
स्वयं समुपस्थित होते द्वार,
अलौकिक अपना भूल महत्व ।।

पृथक कर प्रिय-परिकर-परिवार,
पंच - मख किये बिना जो धूर्त ।
अन्न लेता, वह करता ग्रहण—
स्वमल, द्विज-भांडश्व पच ही मूर्त ।।

बैठ विस्तृत वितान के तले,
अकेला करता केलि प्रसन्न ।
स्वयं रच निज काला इतिहास,
अंत में करता राष्ट्र विपन्न ।।

देश-श्री-तस्कर, ऐसे नीच—
अहं अतितुष्टि हुए परिपुष्ट ।
श्रमिक का जो पी जाते रक्त,
स्वयं करते स्वश्री को रुष्ट ।।

जाति-अपमान अंधतामिश्र,
जाति-सम्मान कृतांत समान ।
जाति-मर्यादा सागर-परिधि,
जाति हित सादर नमन विधान ।।

मान त्यागी ही पाता स्नेह,
क्रोध त्यागी ही तजता शोक ।
कामना त्यागी ही धनवान,
लोभ त्यागी सुख पाता लोक ।।

धनों में धन आगम-विज्ञान,
लाभ में लाभ शरीरारोग्य ।
मृत्यु में मृत्यु घोर दारिद्र्य,
ज्योति में ज्योति सुपुत्र सुयोग्य ।।

शांति में शांति प्रिया-मृदु गिरा,
यज्ञ में यज्ञ अन्न का दान ।
तपों में तप चंचल-मन-दमन,
जाप में जाप काल का ध्यान ।।

मास-ऋतु- संवत्सर - पल-विपल—
कल्प से दर्वी लेकर काल ।
रांधता जीव विमोह-कटाह,
दिवस-निशि रवि-शशि ईंधन डाल ।।

देखते पल-पल गलती देह,
निगलती चिता, उगलती क्षार ।
निडर हो फिर भी फिरता जीव,
अनोखा, अचरज यह संसार ।।

प्रथम वेरी ऋण-कर्ता पिता,
मलिन-मन माता प्रथम अमित्र ।
स्वैरिणी सुता प्रथम है नरक,
मित्र शठ प्रथम अमहिष-शमित्र ।।

दूसरा ईश्वर गुरु साक्षात्,
दूसरा जन्म जगत् का ज्ञान ।
दूसरी आत्मा औरस पुत्र,
मित्र निस्वार्थ दूसरा प्राण ।।

वृद्धजन-सेवा तरु मंदार,
मनन मंजरी, धारणा फूल ।
शाख स्वाध्याय, बहुश्रुति पत्र,
गृहाजिर हरता ताप-त्रिशूल ।।

याचना-हीन सकल-रस सिंधु,
शूर वह, जो जीता जग-जाल ।
मनोमल-त्याग अवभृथस्नान,
ब्रह्म-समुपस्थिति श्राद्ध-सुकाल ।।

न कारण ब्राह्मणत्व का वेष,
गोत्र कुल शास्त्र-श्रवण स्वाध्याय ।
न है यदि धर्माचार विचार,
सकल ये व्यसन, स्वांग समवाय ।।

धर्म का सिंहासन है सत्य,
सत्य टिकता चरित्र की भूमि ।
चरित्राचला संग-अहि-शीश,
बसा सत्संग भक्ति-सरि-ऊर्मि ।।

भक्ति प्रभु-शतदल-लोचन-कोष,
पुतलिका केशर, रति शृंगार ।
मनुज मन भ्रमर, भूल भ्रम-निकर—
मौन हो करे मंजु गुंजार ।।

उड़ाता उड़-उड़ प्रीति-पराग,
थिरकती दिशि मतवाली गंध ।
जीव होते विमुक्त कर भंग—
वज्र से कठिन कर्म-अनुबंध ।।

दया ही माता, संयम पिता,
प्रिया, भ्रम-अवगुंठित संसार ।
राग-वैराग्य सलौने पुत्र,
धर्म गृहपति का प्रिय परिवार ।।

क्षमा ही जन्म-नाल छेदिनी,
कृपा धात्री सुशंशवाधार ।
अहिंसा से सज शिशु वर धर्म,
खेलता समता के चौसार ।।

धर्म ही धारण करने योग्य,
धर्म ही त्रिभुवन का ध्रुव-ध्येय ।
धर्म से दिग्गज धारे दिशा,
अधिक क्या मृति स्वधर्म में श्रेय ।।

अमित ऋषि-रचित अपरिमित शास्त्र,
असीमित मत, सिद्धांत अपार ।
स्वर्ग के परे न तल के तले,
मोक्ष का करतल ही संसार ।।

धर्म का तत्व सरलतम परम,
छिपा पर कौतुक-व्यूहागार ।
पथों में पथ वह, करती जिसे—
महाजन परंपरा स्वीकार ।।

सूक्ष्म भेदों-उपभेदों सहित,
सकल पथ-गति,स्थिर-मति पहचान ।
विचरता जो जग में समभाव,
महाजन का पाता वह मान ।।

हुआ है त्रिभुवन में विख्यात,
आज जो राम राज्य का नाम ।
न इसमें किंचित् तत्व नवीन,
न है यह नर विशेष का काम ।।

सनातन मन्वादिक की नीति,
सर्वजन-हित-रत ललित-ललाम ।
अनेकों जूझे जिसके लिये,
उसी का प्रस्तुतकर्ता राम ।।

हिरण्याक्षादिक वध से हुआ,
दुष्ट - दल-दमन - यज्ञ प्रारम्भ ।।
बने शाकल्य विरोचन-नमुचि,
समिध शंबर-हैहय-बलि दंभ ।।

आज्य महिषासुर - शुंभ - निशुंभ,
सुमाली - माली - त्रिपुर-विडाल ।
दुंदभी - कालनेमि - सिंहिका,
दशानन-कुल का शोणित लाल ।।

सृष्टि में, सृष्टि-अंत पर्यन्त—
चलेगा यह भीषण संग्राम ।
घोर कलिकाल दशानन-विजय,
वही सत्युग जब जीते राम ।।

राम-रावण न व्यक्ति के नाम,
उभय ही हैं सिद्धांत प्रतीक ।
एक से मानवता सप्राण,
दूसरा दानवता की लीक ।।

चाह, यदि रहे सदा ही राम,
बनो निश्शंक, सुशंकित ढ़ाल ।
रखो रामत्व पुतलिका-व्यूह,
तार सा घेर गरुत्-पल-माल ।।

कामना करो, करे यदि राम—
कभी रामत्व-त्याग की चाह ।
मिले उस महाप्रलय के पूर्व,
उसे विकराल काल की राह ।।

जहां तक कपि-कुल का सम्बंध,
ऋणी उसका सदैव यह राम ।
न तो भी उऋण उपानह बना—
पिन्हादे कपि-कपि को तन-चाम ।।

सहज ही दानव-दल पर मिली,
अयाचित जिनके कारण जीत ।
कहूँ कपि या सुर-वर सशरीर,
कि दुर्लभ मित्रादर्श पुनीत ।।

एक अनदेखी अबला-हेतु,
चले अज्ञात-दिशा की ओर ।
न देखा एक बार घर-बार,
समर गंभीर धराधर घोर ।।

व्रणों से छलनी हुआ शरीर,
न बोले वचन एक भी हीन ।
न वेतन भेंट पुरस्कारादि,
न नारी-अनय, पलायन दीन ।।

विजय के संग कीर्ति अकलंक,
अंक में लाये वीर प्लवंग ।
सिंह से गये गरजते हुए,
चहकते लौटे, सांध्य-विहंग ।।

अकेली वैरी-वधु निश्शंक,
चली आयी लेने प्रिय-शीश ।
विश्व में है किसका इतिहास,
कनकपुर लिख आये जो कीश ।।

महादेवी तारा के गुप्त—
चरित का अंश और भी शेष ।
न जिसको जान सका है जगत,
किसी विधि जाना मैं भी लेश ।।

बालि पर हुआ न तनिक प्रभाव,
राज्य जब तज कर गये अमात्य ।
मौन सुग्रीव रहे मन मार,
खड़ी हो गईं स्वयं बन साध्य ।।

बालि से स्पष्ट कहा 'यदि देव !
दिखा सीमा पर दनुज-निकाय ।
आप शैया पर करना शयन—
घिरे निज स्वामि-भक्ति समुदाय ।।

कीशनी किष्किधा की धार—
समर-चंडी का वेष प्रचंड ।
करेंगी राष्ट्र-सुरक्षण-यज्ञ,
बनाकर बलि-पशु दनु उद्दंड ।।

जयाजय परमेश्वर-आधीन,
जीव प्राणार्पण में स्वाधीन ।
रहीं तो स्वर्ग, गईं तो स्वर्ग,
सुनिश्चित् राष्ट्रालोक नवीन ।।

जहाँ की रानी का यह भाव,
जहाँ के सचिवों का यह त्याग ।
कौन कितने दिन रखता बंदि,
वहाँ का मुक्त-दीप्त-अनुराग ।।

राम आया कितने दिन बाद,
साथ लाया लघु-भ्राता मात्र ।
अन्त तक जो जूझे कपि-वीर,
वस्तुतः वे अभिनंदन-पात्र ।।

क्षमा कर, करना मत सुग्रीव !
तनिक मन में विचार यह वाम ।
गया मैं जब लेने साकेत,
तभी आया अभिमानी राम ।।

उचित था करते ही व्रत पूर्ण,
तुरत करना तव पुर का दर्श ।
घिरा अनुचर सा रहा परन्तु,
राज्य का कार्य, सत्य दुर्धर्ष ।।

ध्यान रखना कि राम के कोष,
परम-अश्लील शब्द अभिमान ।
बचेगा इस उपाधि से सदा,
राम देकर भी अपने प्राण ।।

रहा संकोच-गर्त में डाल,
आपका यह स्वागत सत्कार ।
मुझे अपनों में जानो एक,
यही है विनती बारम्बार ।।

सभी का फिर-फिर कर सत्कार,
सभी को करता पुनः प्रणाम ।
अनेकों मन की मन में रखे,
राम करता है गिरा-विराम ।।"

सोरठा

ज्यों बैठे रघुवीर, खड़े हुए कपिराज त्यों ।
पुलकित हुए शरीर, सहसा अधर न खुल सके ।।
फिर बोले सुग्रीव, "कहे कीश यह मूढ़ क्या ।
रघुपति करुणासींव, जय-जय-जय-जय आपकी ।।
राम-कृपा की कोर, सदा सर्वदा दास को ।
करती रहे विभोर, वरद-शिरोमणि सुहृदवर ।।
भरी नीति विज्ञान, मान-हीन सम्मान-प्रद ।
तव वाणी भगवान, जीव-जीव हितकारिणी ।।
ज्यों सागर-जल मीन, करतीं पान, उलींचतीं ।
पल-पल होतीं पीन, लहर-लहर कर लहर में ।।
त्यों कृपालु यह दास, छवि पी-पी प्यासा रहे ।
रचे नव्य-रस रास, कृपा-सिंधु तव रस रमा ।।

ज्यों शतदल का सूर्य, चातक का शुभ स्वाति घन ।
शिखि का वारिद तूर्य, कृषि की वर्षाॠतु-रुचिर ।।
श्यामा का शृंगार, शिशु प्रति ममता मातु की ।
त्यों प्रिय प्राणाधार, हो मति तव अनुगामिनी ।।
खेलें शिव-रति रंग, वृत्ति-युवतियां उर-अजिर ।
भक्ति-वसंत अभंग, भर पिचकारी स्वांस की ।।
क्या जानूं जगदीश, क्या कह डालूं आपसे ।।
अर्पित प्रभु यह शीश, चरण कमल रज आपकी ।।"
लिये हाथ कपि-हाथ, सकल सभा आश्वस्त कर ।
उठे जानकीनाथ, अंतःपुर कपि ले चले ।।

ऊर्मिका

विराजे वानरवीर प्रधान,
स्वपरिकर साथ राम-कपिराज ।
निमिष में सेवक-चक्र सुजान,
भोज का सजा गये सब साज ।।

विविध-विधि षट्विधि-षटरस खाद्य,
नूपरों की करतीं झंकार ।
परसने लगीं रानियां मुदित,
लगे लाने पकवान सुम्रार ।।

'बृहत् आयोजन किया कपीश,'
कहा प्रभु ने बिखरा कर हास ।
सविधि कर पंचकौर अति मुदित,
लिया रघुपति ने पहिला ग्रास ।।

पुनः सब भोजन करनें लगे,
लगा नव-नव पदार्थ-दल-चक्र ।
घोष 'ना-ना' सुन नाना-भांति,
परोसा भात सुरभि का तक्र ।

तृप्त हो कर-प्रक्षालन किया
चले लेकर सुगंध-तांबूल।
लगे पर्यंक विरामागार,
किया विश्राम उतार दुकूल॥

घड़ी ही बीती, त्यों ऋक्षेश—
पधारे रघुपति-शयनागार।
देख प्रभु-वाम-कुक्षि ज्यों फिरे,
उठे त्यों ही रघुनाथ पुकार॥

"पधारो स्वागत है ऋक्षेश,"
बिठाया राघव ने कर थाम॥
"मुझे ही भ्रम या दुर्वल हुए,"
कंध पर कर रख बोले राम।

"मात्र दुर्वलता, जीता मिला,
यही है कम क्या प्रभु श्रीराम।
विदा कर देता कब की देह,
किंतु कुछ अभी अधूरे काम।

असुर-वध हुआ, धरा पर हुआ—
पूर्णतः स्थापित धर्म-सुराज्य।
किंतु हैं कुछ ऐसे संस्कार,
बनी जिससे कपि-संस्कृति व्रात्य॥

रोला

आती है कुछ भनक, कान में ऐसी रघुपति।
करते हैं षड़यंत्र, शुक्र से मिल कुछ दुर्मति॥
हारे सम्मुख समर, शेष कुछ रहा न चारा।
'व्रात्य-निशाचर बंधु', उठा है नूतन नारा॥
ध्येय देश आखंड्य विखंडित ऐसा करना।
माने परम सुमित्र मित्र को वैरी अपना॥

तब ये धर्म-अमित्र व्याध सम भ्रांति-धूम्र कर ।
उड़ा राष्ट्र-प्रिय भ्रमर,सत्य मधु लें अश्रम हर ।।
ठहराये हैं आर्य, उत्तरी-भारत के जन ।
जिनका मूलस्थान, उत्तरी-ध्रुव का हिमवन ।।
कुछ गांधार सुपार यवन-देशों के वासी ।
कुछ कश्यपदधि-तीर दस्यु द्रोही निष्कासी ।।
कुछ यज्ञप्रिय स्पर्श-देश के अग्नि-पुजारी ।
कुछ तस्कर मिश्रीय संपदा देख हमारी ।।
बना-बना कर व्यूह, समय-कुसमय घुस आये ।
बैठे शासक-वेष देश में वही पराये ।।
मूल-निवासी द्रविड़-ऋक्ष-कपि-रक्ष यहां के ।
इन्हें निकालो तुरत, क्रूर आ गये कहां के ।।
राष्ट्र-भक्ति पाखंड-नाट्य के सूत्र-धार से ।
जैसे पहले कहा दैत्य-गुरु दुर्विचार से ।।"
बोले रघुपति तुरत "किंतु ऋक्षेश! विचारें ।
क्या कहते इतिहास-शास्त्र-भूगोल हमारे ।।
गौरीशंकर-शिखर बँधी मनु-नाव प्रलय में ।
वटपति खड़ा प्रयाग, उदित जो सृष्टि-उदय में ।।
निगमबोध वह इन्द्रप्रस्थ में क्षेत्र पुरातन ।
कमलयोनि को मिला जहां श्रुति-ज्ञान सनातन ।।
सुस्थिर करता सकल जगत जिससे समयस्तर ।
कर्क-वेल वह महाकाल के सजी भाल पर ।।
पृथु नरेश ने द्वीप-द्वीप में पृथ्वी बाँटी ।
वन-गिरि-सरि-सर खोज खनिज-औषधि निधि-छाँटी ।।
दी संज्ञा सम्मिलित जलधि को जिसने सागर ।
रखे पृथक फिर नाम-रूप-गुण-परिधि परखकर ।।
सगर नृपति वे जिन्हें और्व-भार्गव ने पाला ।
इन ऋषिवर को देंगे क्या वे देश-निकाला ।।

इनके ही न पितृव्य च्यवन के पुत्र यशस्वी ।
जो आजीवन रहे दनुज-क्षय-निरत तपस्वी ।।
लाये भू पर जिसे भगीरथ नृप उतार कर ।
लौटे भागीरथी, बहे या नाम अन्य धर ।।
पुष्कर-पंपा-इंदु-मानसर-सिद्ध पंच सर ।
सह्य-विंध्य-मैनाक-मलय - हिम - अर्बुद-मंदर ।।
ब्रह्मपुत्र - नर्मदा - वितस्ता - सिंधु-विपाशा ।
बोल रहीं गौतमी-गोमती किसकी भाषा ।।
द्वादश-ज्योतिर्लिंग शक्ति-शासन इक्यावन ।
सप्तपुरी अष्टोत्तरशत दिव्यस्थल पावन ।।
नवारण्य-केदार-काशिकानाथ पंच ये ।
चार धाम बदरीस्थल शारद-गंग सप्त ये ।।
श्राद्ध-क्षेत्र चौदह, प्रयाग शुचि तीर्थ-पर्व ये ।
रमे राष्ट्र के रोम-रोम क्या असत सर्व ये ।।
ये द्वीपों उपद्वीपों में हैं किन लोकों के ।
ये महत्व अस्तित्व विषय हैं किन ग्रन्थों के ।।
सूत्र-रूप में परम सुकोमल जिसकी कोंपल ।
निगमथाल में पली पान कर अगमागम जल ।।
ब्रह्म-सिद्ध मुनिराज विशुद्ध वायु-मंडल में ।
फैले अमित पुराण शाख-कुल दिशि-दिशि दल में ।।
उपपुराण-इतिहास-काव्य-गाथायें अगणित ।
भांति-भांति के अमर मनोहर सुमन सुविकसित ।।
जिनका मधु मकरंद लोकगीतों का मृदु-स्वर ।
चतुर्वर्ग फल विपुल सजा शोभामय सुन्दर ।।
हिम-गिरिवर से इंदु-सरोवर तक यह विस्तृत ।
हिंदु सुसंस्कृति का तरुवर मंदार समादृत ।।
कर देंगे ये क्षुद्र धराशायी क्या संभव ।
होंगे सिंह सभीत ग्राम-सिंहों के निशि-रव ।।

जला तोलिका आज दिनेश दिखाना होगा ।
तल से परिचय हेतु मूल को आना होगा ।।
गणिका सा यह नख-शिख का श्रृंगार अनोखा ।
क्या देगा अब सती-शीश-सेंदुर को धोखा ।।
छली धूर्त यदि, छला गया जो मूर्ख न वह क्या ।
देवभूमि ऋक्षेश ! छली जायेगी यह क्या ।।
श्रुति-सिद्धांत प्रमाण प्रतिज्ञा जिनकी सुविदित ।
'विश्व करेंगे आर्य' ऋचा से भुवन निनादित ।।
आर्य-भाव वे आर्य-नाम में यों समेट कर ।
कर देंगे रवि अस्त, पसा भर रज बिखेर कर ।।
आर्य अर्थ का क्या अनर्थ यों हो जायेगा ।
गरल-कंठ में अमृत-कलश क्या खो जायेगा ।।
क्या चीरेंगे मही-महिष नभ, श्रृग उठाकर ।
सुदृढ़ व्यवस्था-दुर्ग ढहा देंगे क्या कायर ।।
बसा हुआ आसेतु-हिमंचल धरा-धाम पर ।
छिपा न हिंदु-समाज, रखें किस हेतु छिपा कर ।।
जात्युपजाति अनेक प्रमुखतः वर्ण चार ही ।
छोड़ें कुछ अपवाद, जन्म-कृति गुणाधार ही ।।
कुछ वनवासी-पौर-ग्रामवासी कुछ गिरिजन ।
निज-निज स्थिति अनुरूप, बिताते युग से जीवन ।।
कई बार संशोधन-परिवर्तन-परिवर्द्धन ।
हुए, हो रहे, होंगे, होगा क्रम न उलंघन ।।
कुछ परम्परा चलीं महान कई पुरुषों से ।
मिले मूढ़ भी कुछ अंधों में जा अंधों से ।।
कुछ आचार विचार और कुछ व्यवहारों से ।
कुछ प्रसिद्ध-निन्दित-निषिद्ध निज आधारों से ।।
शिल्प-कला-कौशल-कौतुक कुछ विद्याओं से ।
कुछ परिकर सीमित विशेष विधि विविधाओं से ।।

पांच पृथक कुल, एक विश्वकर्मा से निकले ।
खान-पान-पुत्रीप्रदान मत पृथक-पृथक ले ।।
प्रांत-प्रांत के पृथक-पृथक कुछ वर्ण-आचरण ।
हैं जिसके जलवायु - विभूषा - भाषा कारण ।।
कोई मौलिक किंतु न भेद, विभेद भयंकर ।
रहे सदा ही देवादेव-जनक इस भू पर ।।

दोहा

हिरणमयी के तीर पर, इंद्रप्रस्थ के पास ।
जन्मा था रावण जहां, वही विश्रवावास ।।

रोला

उसके अति ही पास मात्र छह ही योजन पर ।
देखो तो मयराष्ट्र, जो कि दशशीश-श्वसुरघर ।।
निकट पंचनद के वह मूलस्थान बसा है ।
कनककशिपु को प्रभु नृसिंह ने जहां वधा है ।।
करती है अभिषेक स्वामि-पुष्करिणी जिसका ।
वह गिरिवर तिरुमलै, स्थान प्रभुवर वराह का ।।
पश्चिमसागर-तीर किया वध हिरण्याक्ष का ।
उज्जियनी आनंद लिया क्षिप्रा-प्रवाह का ।।
रंतिदेव यशगाथ न चर्मण्वती सुनाती ।
जो गौघातक-रक्त-रंजनी रही रचाती ।।
वधा शंबरासुर संगर में जो पितुवर ने ।
क्या न राजधानी थी उसकी इस विदर्भ में ।।
दाशराज-संग्राम-भूमियां सह्य-मालिका ।
जिसके वध हित बनी भवानी, भव्य-चंडिका ।।

वह महिषासुर बसा नहीं क्या कावेरी-तट ।
सागर-मथन हुआ कच्छ के क्या न सन्निकट ।।
वामन बन भगवान गये जिस बलि के द्वारे ।
क्या न पांडुसरि-तीर तीर्थपति ललित हमारे ।।
यह वह माहिष्मती नर्मदा-तीर सुहावन ।
परशुपाणि ने किया जहां हैहय-मद-मर्दन ।।
योनिज-उद्भिज-अंडज-स्वदेज सचराचर के ।
कहते उन्नत भाल 'बाल हम ऋषि कश्यप के' ।।
दक्ष प्रजापति सुता त्रयोदश, जग की जननी ।
इनको जन्मस्थली एक कनखल की अवनी ।।
सृष्टि, प्रलय, युग, युगल-परार्ध, कल्प, मन्वन्तर ।
विविध नृपति-कुल-गोत्र-चरित्र अपरिमित सागर ।।
वर्णन सकल पुराण कर रहे अगणित गाथा ।
फिर किस कारण गया धूम कुटिलों का माथा ।।
पुलह - पुलस्त्य - वशिष्ट-अंगिरा-दक्ष-अत्रिवर ।
भृगु-मरीचि-क्रतु सत्य नहीं क्या ब्रह्म सहोदर ।।
ख्याति - भूति-संभूति-प्रसूति- प्रीति - अनसूया ।
सन्नति-ऊर्ज्जा-क्षमा न इनकी रहीं वधू या ।।
शशि-दुर्वासा-दत्त-विश्रवा-कश्यप- धाता ।
उशना-सुरगुरु नहीं परस्पर भ्राता-भ्राता ।।
इनमें कौन अनार्य, सभी का आर्य विशेषण ।
संज्ञा कैसे बने, हमारा यही व्याकरण ।।
तारा मंदोदरी बालि से दशकंधर से ।
बोलीं सिय सम सदा 'आर्यसुत' संबोधन से ।।
घर के अंदर आर्य, अनार्य गये वन बाहर ।
क्या प्रचंड पाखंड-बवण्डर का आडम्बर ।।
भरतमूल के पैतृक भारतवर्ष निवासी ।
गये कहां किस दिवस, बने जो आज प्रवासी ।।

फिर भी कारण अमित, गये कुछ समय-समय पर ।
निष्कासित भी हुए, सत्य यह भी ऋक्षेश्वर ।।
भाषा-भूषा-प्रथा-अर्चना तत्सम-तद्भव ।
निभा रहे वहु, सहज भाव से जितनी संभव ।।
फिर भी कुछ का है निश्चित प्रतिकूल आचरण ।
घुसा मूल में द्रोह, यही है इसका कारण ।।
यवन-म्लेच्छ-शक-हूण कुषाण तुरुष्क बने वे ।
करते घोर कुतर्क, द्वेष की पंक-सने वे ।।
उनके मत विज्ञान-विरोधी, जब न ठहरते ।
शास्त्र त्याग तब शस्त्र अधम वे धारण करते ।।
देख कुअवसर, घोर-क्रूर कायर बन जाता ।
कहलाता है दंभ, बुद्धि से बिछुड़ा नाता ।।
आते हैं संग्राम सामने उसके प्रतिफल ।
चर्चा वश कर गया, नीति की चर्चा केवल ।।
किंतु आर्य है जाति और हम आर्य विदेशी ।
कैसे करते सिद्ध, हठीले धर्मद्वेषी ।।"
"सत्य-सत्य रघुनाथ ! सुवाणी तव अभिनंदन ।
निगमागम प्रतिपाद्य यही है धर्म सनातन ।।
तर्कातीत अतीत, सत्य इतिहास हमारा ।
वर्तमान का किंतु, दुराग्रह पूर्ण कुठारा ।।

दोहा

काट रहा जिस भाँति से, यह पुष्पित उद्यान ।
कल के मरु का काल यह, करता गर्भाधान ।।

रोला

अंध विभाजन कल जन्मेगा कलह-गर्भ से ।
नत कर देगा शीश राष्ट्र का उठा गर्व से ।।

दनु-चित्तों की विकृति चलो नव-संस्कृति बनने ।
लगे व्याध को विधि ही रसिक कुरंग समझने ।।
वेद-विप्र-गौ प्राणतत्व भारत समग्र के ।
हम से भी प्रभु ! अधिक जानते मन यह उनके ।।
शल्यचिकित्सक-वधिक युगल ही देह-विदारक ।
पर संरक्षक एक, दूसरा ज्यों संहारक ।।
निज प्रहार के लक्ष्य, नीच त्यों इन्हें बनाकर ।
तांक-तांक कर मार रहे हैं बाण निरन्तर ।।
जान गये वे आज बनेगी बात न बल से ।
दशशिर-वध क्षति-पूर्ति चले हैं करने छल से ।।
आर्ष-वाक्य वे स्थान-स्थान से उठा-उठा कर ।
करते श्रुति-विपरीत भाष्य श्रुति-सुपथ बताकर ।।
पूर्वापर सम्बन्ध अनेकों जोड़-जोड़ कर ।
रहे पितरवन सजा, पितरगृह तोड़-तोड़ कर ।।
कुछ का तो व्यवसाय श्लोक क्या मंत्र विरचना ।
जैमिनि-कपिल-कणाद-पतंजलि आदिक बनना ।।
देखें प्रभु ! एकाध उपस्थित है उदाहरण ।
सूत्र सत्य, विपरीत पूर्णतः असत् भाष्य-कण ।।
हैं "शरीर माध्यम् खलु धर्म साधनम्" ऋषि-स्वर।
सर्वमान्य तन-धर ही धर्म-साधना तत्पर ।।
इसी अर्थ का पर अनर्थ वे करते, कहते ।
सकल जगत के धर्म मनुज-तन में ही रहते ।।
शारीरिक-सुख नाम द्वितीय धर्म-साधन का ।
इंद्रिय-तुष्टि शरीर-पुष्टि भावार्थ कथन का ।।
भोगो जितने भोग, भोग सकते जीवन में ।
पुनर्जन्म परलोक भीति का स्थान न मन में ।।
अर्थ स्वर्ग का अप्सरियों का मात्र समागम ।
स्वर्णालय - विश्राम कल्पनातीत बिना श्रम ।।

फिर इसके हित दान-पुण्य-पूजन-तीर्थाटन ।
जप-तप-मख-स्वाध्याय-कथा-कीर्तन-व्रत-तर्पण ॥
क्यों, शरीर सुख हेतु, दुःख देना शरीर को ।
यह ब्राह्मण-षडयंत्र लूटना बुद्धि-हीन को ॥
विपद-मूल, विप्रों पर केन्द्रित आस्था सारी ।
मोद-मूल, धन-प्रचुर, मद्य-मद, नवला-नारी ॥
खा-पीकर निर्द्वन्द करो मनमाना विचरण ।
हेतु मुक्ति का मुक्त-रमण, कहते दानव-गण ॥
त्यों "वैदिक हिंसा हिंसा न भवति" की टीका ।
और "जीव जीवस्य जीवनम्" भाव अलीका ॥
'चिदानंद रूपम् शिव अहं' इसी में भूला ।
पंचमकाराकार शाम्भवी-मुद्रा भूला ॥
सौत्रामणि में सुरा, मांस-भक्षण प्रोक्षित में ।
अश्वगमन दम अश्वमेध के पावन हृद में ॥
एक ओर शुक्रादि विधर्म-व्यूह रचना-रत ।
एक ओर चार्वाक धर्मरीता नास्तिक मत ॥
घिरा मध्य में आर्य-सनातन-धर्म जगतपति ।
तनिक विचारें होगी कल क्या जगती की गति ॥
सरि-सम मनुज प्रवृत्ति पतन-दिशि सहज अग्रसर ।
नित्य न होंगे राम, किंतु होंगे दशकंधर ॥
उस सागर का सेतु, बांध ज्यों विजय लंक की ।
शास्त्र-शस्त्र से शुष्क करें यह खेय पंक की ॥
देश-भ्रमण चल रहा, अभी जायेंगे लंका ।
देखें कितनी दीन-पीन है यह आशंका ॥
कपि-ऋक्षों में बालि-काल से न्यून-न्यूनता ।
कुछ प्रमाद-वश अनजाने आ गई देखता ॥
मैं न देखता मात्र और भी कई देखते ।
चर्चा होती किंतु मौन फिर धार बैठते ॥

जब से मैत्री हुई बालि से दशकंधर की ।
यद्यपि हार्दिक नहीं भीति से मात्र दंभ की ।।
ज्यों-ज्यों आवागमन बढ़ा प्रति-दिवस निरन्तर ।
रावण कहने लगा 'व्रात्य हैं निशिचर-वानर' ।।
खला बहुत, प्रतिवाद परन्तु न कुछ कर पाये ।
फलतः नव-संतान-चित्त कुछ शब्द समाये ।।
यद्यपि रावण-बालि रहे उपवीत धारते ।
धूर्त-मूर्ख पर व्रात्य रहे दोनों पुकारते ।।
अंगद के तो डाल दिया था सूत्र श्राद्ध पर ।
वृद्ध धारते, उदासीन हैं किंतु युवक वर ।।
प्रायः लंक न सतीं-कुमारीं-विधवा-त्यक्ता ।
तृप्ता- रिक्ता - ऋता - पाणिग्रहिता-अनुरक्ता ।।
इसी हेतु निशिचरी सुहागिन सी सब लगतीं ।
क्या होता वैधव्य, सोचतीं तो हँस पड़तीं ।।
विधवा थोड़ी-बहुत इधर भी हुईं वानरी ।
तज न रहीं शृंगार, प्रथा नव सहसा उभरी ।।
तारा सी निष्पाप सभी हैं, यह भी निश्चित ।
कल क्या घटना घटे न जाने दैव अकल्पित ।।
आग-फूंस का वैर उभर जाने कब जाये ।
लगे आग तब कूप खोद क्या शौर्य दिखायें ।।
देखी प्रातः नाथ ! आपने सम्मुख तारा ।
रुमा राजरानीव सकल शृंगार सँवारा ।।
यह विलोक हो क्यों न जगत को कुत्सित शंका ।
किसे बतायें नाथ ! कि क्या किष्किधा लंका ।।
करिये अतः उपाय प्रथम अवधेश ! कृपाकर।"
नतमस्तक गंभीर रह गये अपलक रघुवर ।।
फिर बोले "ऋक्षेश ! सारयुत गिरा आपकी ।
किंतु कहूँ किस भांति समस्या इसी बात की ।।

तभी उपस्थित हुए, कोशपति ले जल-झारी ।
निरालस्य आसीन निहारे अवधविहारी ।।
जागे सीतानाथ, जानकर भरत-विभीषण ।
अंगद-मारुति संग प्रधान-प्रधान कीश-गण ।।
आये, बोले "देव ! विराम घड़ी भर पाया ।
बोले रघुपति "ऋक्षराज ने आज जगाया ।।"
कहा राम को देख ऋक्षपति ने मुस्काकर ।
"निद्राप्रिय ! तव निद्रा-वैरी सकल चराचर ।।
किस मुहूर्त में विधि ने पहले दिवस जगाया ।
गई योग-निद्रा क्या निद्रा-योग न आया ।।
जब-जब झपकीं आँख भुवन हा-हाकर धाये ।
अति-विचित्र शृंगार आप दृग मलते आये ।।
अवधराज के कनकभवन के रत्न हिँडोले ।
दो दिन सके न झूल, गाधिसुत ने पट खोले ।।
आये रचा विवाह, न पूरी खिली चंद्रिका ।
'वन पुकारता पुत्र !' पुकारी द्वार अंबिका ।।
बैठे ही थे तभी कुँवर वर भरत पधारे ।
कर पादुका प्रदान, तनिक ज्यों पैर पसारे ।।
पल भर को ही रखे शरासन-शर धरती पर ।
मिला मिलन का यही स्वर्गपति-सुत को अवसर ।।
चित्रकूट - दंडकवन - ऋष्यमूक - पंपासर ।
वारिधितीर-त्रिकूट शांति कब मिली विपलभर ।।
ये कर्मों के भोग, भोगने सबको पड़ते ।
खोल सृष्टि की आँख, नींद-हित आप भटकते ।।
क्षीर-सिंधु में छिपे, रमा पग दबा जगाती ।
ब्रह्म-भवन में ठहर न वाणी-वीणा पाती ।।
दिव्य-धाम गोलोक, लोक - माला के ऊपर ।
किंतु राधिका-रास न टिकने देता क्षण भर ।।

जान सुरक्षित परम-मोहिनी-छवि धारणकर ।
छिपे शंभु हिय, शांत कांत एकांत सरोवर ।।
किंतु वहां की दशा अनोखी सम्मुख आई ।
दिखने का वैराग रगों में राग - दुहाई ।।
किस दिन सोये, सोये भी यदि बना बहाना ।
कहां ठिकाना जग में, जग का कहां ठिकाना ।।

दोहा

धरा-धरातल-व्योमतल, कौन, कौन से धाम ।
जो चाहेगा तव शयन, सीतापति श्रीराम ।।

रोला

उपालभ इस दीन वृद्ध को दे लो राजन ।
जगपति-सम्मुख मुखर बना कब कौन प्रजाजन ।"
हँसे ठठाकर राम, साथ ही परिकर सारा ।
बोले प्रभु "कपिराज ! विलोका दीन बिचारा ।।
चौथेपन यह दशा देखकर, सोचो यौवन ।
विस्मित निश्चित-रूप रहे होंगे प्रभु वामन ।।
शक्ति-सुन्दरी परम-नागरी के कौशल से ।
जब परिक्रमा-सूत्र सजे होंगे वे वट से ।।
त्रिभुवन-मंडल भूल त्रिविक्रम की आकृति को ।
ऋक्षराज की देख पराक्रम तड़ितावृति को ।।
चपल पलक कर, अचल रह गये होंगे पल भर ।
आज दीन बन रहे, नम्रता-परिधि ऋक्षवर ।।"
जांबवंत रह गये नमित मस्तक जोड़ेकर ।
फिर प्रभु बोले "अब निदेश क्या, कहिये कपिवर ।।"

बोले कपिपति 'करो न यों उपहास कृपाकर ।
खड़े नागरिक अमित दर्श-लालसा द्वार पर ।।"
प्रभु बोले "कपि! परम चतुर ये प्रजा तुम्हारी ।
ले न गये निज निलय, बंद कर दिया अटारी ।।"

दोहा

"यही आगमन-हेतु प्रभु", बोले वानर-भालु ।
"चलो, ले चलो शीघ्र ही" बोले मुदित कृपालु ।।

रोला

खडे हुए रघुनाथ, भरत ने मुकुट पिन्हाया ।
मारुति ने पादुका, लंकपति सुपट सजाया ।।
हलचल सी मच गई, गगन थिरकीं स्वर-लहरी ।
सुर-श्यामा सी नाच उठी किष्किंधा नगरी ।।
चले छत्र ज्यों ले कपीश, बोले रघुनंदन ।
"मुक्त-गगन में मित्र ! करेंगे पुर का दर्शन ।।
यहां न मैं सम्राट, मित्र कपिपति का केवल ।
वही मित्र जो वन-वासी बन मिला मित्र! कल ।।"
विह्वल-चित्त विचित्र हुए सब निकले बाहर ।
चीर-चीर कर भीड़, लगे प्रभु जाने घर-घर ।।
गये प्रथम धूम्राक्ष-केसरी-ऋक्षेशालय ।
पुनः नील-नल-शरभ-गंधमादन-गवाक्ष-गय ।।
दधिमुख-दुर्मुख-कुमुख-ज्योतिमुख-दधिबल-क्रोधन ।
चंड-प्रमाथी - रंभ-दंभ - शतबल - सन्नादन ।।
पनस-निसठ-सठ-गवय-मयंद - कुमोद-गजालय ।
लौटे-ढलते सूर्य सूर्य-मणिराज - महालय ।।
कर संध्यादिक कृत्य विराजे प्रभु प्रसन्न मन ।
तारा दे सूचना पधारी करने दर्शन ।।

अमित विभूषण सजे, ताँकते भूमि त्रिलोचन ।
ढली निशा की दीपमाल सी, त्याग भरी मन ।।
थामे अंगद-हाथ उषा की उजियाली सा ।
लगा केंचुली लदा रूप वर्षा-व्याली सा ।।
बैठे माता-पुत्र वंदना कर आसन पर ।
बोली 'लाये क्यों न मैथिलीरानी रघुवर ।।'
लगे परम संकोच भरे प्रभु धरा निरखने ।
तारा बोली "उचित" लगे फिर रघुपति कहने ।।
'बहुत आप में अंब-जानकी-वधुओं का मन ।'
"करते चर्चा नित्य अनेक अंजनीनंदन ।।
किन्तु न कुछ संयोग बना, कर पाती दर्शन ।"
"दर्श-स्पर्श के देवि ! सामने दो आयोजन ।।
राजसूय साकेत, विवाह इधर अंगद का ।"
बोली "अंगद बाल, विवाह अभी से इसका ।।
कन्या देगा कौन अभागा इस अनाथ को ।"
प्रभु बोले "क्यों देवि ! श्राप दे रहीं राम को ।।
एक राम का स्वामि, पुत्र दो, तीन सुहृदवर ।
स्वामि शंभु हनुमानांद दो पुत्र मनोहर ।।
गुह-निषाद सुग्रीव-कीश क्रव्याद-विभीषण ।
चार देह मन एक, बसे षट्-गुण मम कण-कण ।।"
रिसा वानरी-मोद, अश्रु बन नयन-सुपथ से ।
भरा हृदय-संसार, सियेश-वचन रवि-रथ से ।।
"महिषी की छवि देव! तनिक हो तो दिखलायें ।
दिव्यादेवी - दर्श, नयन ये प्यास बुझायें ।।
प्रभु बोले "परिवार-चित्र लाये तो कपिवर ।
टिका मंच पर लगे दिखाने, कपि से लेकर ।।
"देखे लक्ष्मण-भरत, तीसरा यह रिपुसूदन ।
चला चतुर्दश-वर्ष अवध का जिससे शासन ।।

ये गुरुदेव वसिष्ठ, पूज्य आचार्य हमारे ।
ये अरुन्धती अंब इन्हीं के सजीं सहारे ।।
आंचल नीचा किये, यही निमि-दुहिता सीता ।
जिन्हें प्राप्त कर राम मान से जीवन जीता ।।
पीछे तोनों खड़ीं लगाये नेत्र धरा पर ।
ये सुकीर्ति-उर्मिला-मांडवी जिनको पाकर ।।
धन्य हुआ रघुवंश उठा गौरव से मस्तक ।
इनका अद्भुत त्याग कहेगा कौन कहाँ तक ।।
यद्यपि सिय तिय-रत्न परन्तु न इनकी उपमा ।
राम-भवन, सिय-ध्वजा, नींव ये शिला-सुपद्मा ।।
एक-एक-की एक-एक से अधिक तपस्या ।
सिमट इन्हीं से गई सहज ही सदन-समस्या ।।
कंचनमृग का लोभ, एक का निर्जन-वन में ।
हिला न किस को गया, सकल त्रिभुवन-मंडल में ।।
चौदह-वर्ष परन्तु, अवध में हिला न तिनका ।
इनका संयम नहीं, कहो फिर कह दूं किसका ।।
तनिक विचारो देवि ! अकारण प्रिय जाता वन ।
रही झांकती मौन शिला सी बन वातायन ।।
समाचार जब मिला, गिरा प्रियतम रण-प्रागण ।
अधर न बोले, किंतु न क्या बोला होगा मन ।।
लौटे प्रिय को देख, कहा बस 'आये प्रियवर ।'
इसे ऊर्मिला कहूँ कि शांत-ऊर्मिका-सागर ।।
क्या कहना, यह एक मांडवी जान न पाई ।
सावन की सी वेंत, तीर सरि के सकुचाई ।।
लख शंकाकुल-दृष्टि छिपा छलनी सा अन्तर ।
छिद्र-छिद्र से बजी मधुर-मुरली सी सस्वर ।।
प्रिय को मौन विलोक, लौटती होगी जिस क्षण ।
किस कण का चित्कार न करता होगा कण-कण ।।

समिधा सी साक्षात् मांडवी रही धधकती ।
किन्तु देव-कुल-थाल सरस नित रही परसती ।।
यह देवी श्रुतिकीर्ति, भोग की कीच कमल सी ।
लदी राज्य वृष-कंध, धूल में घिसटी हल सी ।।
उगा-उगा कर धान्य, रही जग पोषण करती ।
शिखिनी सी उपवास किये मधुमास निरखती ।।
इन तीनों ने त्याग किये, कीर्ति तो कमाली ।
शबरी सी श्रुति किंतु झाड़ती रही वनाली ।।
जग जाना सानिध्य स्वामि का किये प्राप्त यह ।
विरह-वृक्ष पर ग्रमरवेलि सी रही व्याप्त यह ।।
बिना मूल की हरी-भरी ऊपर से लगती ।
प्रातः पावस-पीक शिशिर-रज निशा निगलती ।।
भरत प्रसवनी यही केकयी मम लघु-माता ।
जिसे विरचकर पुण्यवान हो गया विधाता ।।
त्रिभुवन-मंगल-हेतु कलंक न क्या-क्या पाया ।
गँवा भरत हित भरत, राम को राम बनाया ।।
ग्रंब सुमित्रा मध्य, प्रसू रिपुदमन-लखन की ।
सरल एकरस दिव्य-ज्योति सी नीराजन की ।।
लगा न वन वन सरिस इसी देवी के कारण ।
दिया साथ चतुरंग-सैन्य सा भैया लक्ष्मण ।।
इन सी ही यह परम-निर्मला सकल श्वेत छवि ।
इनसे ही तृण मृदुल बना गृह-कलह कठिन-पवि ।।
यद्यपि भूषण तजे गये जब सुरपुर पितुवर ।
लगतीं तो भी विमल शिशिर-की सीं प्रशान्त-सर ।।
कौशल्या मां यही धरा पर मुझको लाई ।
ये मारुति ये सचिव-वृद्ध दे रहे दिखाई ।।"
पा छवि-परिचय मौन रह गई बैठी तारा ।
किये ध्यान त्रय-मातृ-मूर्ति पर केन्द्रित सारा ।।

फिर शिरफूल उतार, उतारे नूपुर-कंकण ।
धरे धरा पर एक-एक कर सब आभूषण ।।

दोहा

खींचा मंगलसूत्र को, पूंछ ईंगुरी-भाल ।
पहुँची अंगद को लिए, तारा पंपा - ताल ।।
अंगराग के साथ ही, राग रंग-शृंगार ।
बहा, विमल सरि सी दिखी, सरवरराज-कछार ।।
लगी सत्व रस सी स्वयं, विमल-शुभ्र परिधान ।
व्यजन-सुसेवित वेदिका, पावन अग्नि समान ।।
चली जान्हवी जटिनि सी, मन का कुहरा चीर ।
छलका ब्रह्म-सुपात्र ज्यों, केश टपकता नीर ।।
पथ-पथ नर-नारी जुड़े, देख तारिका-वेष ।
महापीर लोटे चरण, आकर कीशनरेश ।।

सोरठा

"धारा कैसा वेष, तनिक न पूंछा जननि ! हा ।
यही रहा था शेष, दिखा गया दुर्भाग्य वह ।।"
"सजी वही शुचि-साज, आर्योचित जो इस समय ।
धर्मराज्य कपिराज, निर्भय संस्थापति करो ।।"
चकित हुए हनुमान, अद्भुत परिवर्तन निरख ।
'जय-जय श्री भगवान' बोले मन में मौन हो ।।
तारा के आगार, विधवा वानरियां सकल ।
आ-आ कर शृंगार, लगीं त्यागने शांत मन ।।

दोहा

"शोक रहित नारी जहाँ, वह सुर-मंदिर मित्र ।
किंतु जहां विधवा अभय, वह घर तीर्थ पवित्र ।।

भारत की विधवा स्वतः, वरती पुरुष न अन्य ।
घर दिखलाता दूसरा, घर का पाप जघन्य ।।
विधवा का ग्राँसू जहाँ, गिरता पाकर कष्ट ।
हो जाता वह स्वर्ग भी, जल-रेखा सा नष्ट ।।"
प्रभु बोले "कपिराज ! यह रखना पूरा ध्यान ।
ग्रबला के मन में न हो, अबलापन का भान ।।

सोरठा

ग्रगणित कीश-किशोर, आये रघुपति के निकट ।
"व्रात्य-भ्रांति तम-घोर, हरो नाथ ! उपवीत दे ।।"
आना प्रातःकाल, पंपासर-तट प्रियवरो ।"
संस्कृति-तत्व रसाल, समझाया वाणी सरल ।।

ऊर्मिका

प्रात ही ले कपीश को साथ,
गये पंपातट रघुकुल-मौर ।
विलोके ग्रमित सजीले युवक,
कराते ठौर-ठौर पर क्षौर ।।

नहाते कही यूथ के यूथ,
धारते मुंज-मेखला श्रोणि ।
सजातीं कहीं कीशनी मुदित,
रुचिर फल-फूल सुपल्लव-द्रोणि ।।

छीलते काष्ठ-कार वहुदंड,
छांटते माली बांस-पलास ।
सजाते वेदी विप्र प्रवीण,
बिछाते बटुक-वृन्द कुश-काँस ।।

सचिव-गण वन-वन से मुनि खोज —
ला रहे बिठा-बिठा कर यान ।
आ रहीं घृत की बहँगी चलीं,
कहीं समिधा-शाकल्य विधान ।
चकित बोले कपिपति "रघुनाथ !
शीघ्रता कितनी, कितनी शांति ।
आपने मन्त्र कौन सा पढ़ा,
अचानक हुई सांस्कृतिक-क्रांति ।।
नित्य सम करने आया स्नान,
यहां तो लगे अनोखे ठाट ।
हो रही है जिज्ञासा चित्त,
हुआ उत्पन्न कौन कपिराट ।।
किया यह सकल सुचारु प्रबन्ध,
न जाने दी पूरी सी रात ।
हथेली पर सरसों सी जमा—
उगाया स्वर्णिम सहज प्रभात ।।"
राम की पाकर सम्मति मौन,
बुलाया इंगित से कपि एक ।
"कर रहे तुम सब जो ये कार्य,
दिया किसने निर्देश विवेक ।।"
कीश बोला "युवराज-निदेश,
जुटे सब कीश कीशपति ! कार्य ।"
बुला अंगद से पूँछा, कहा,
"ऋक्षपति-आयोजन यह आर्य ।"
गये कपि-रघुपति ऋक्ष-समीप,
हुए गद्गद् अवलोक सुदृश्य ।
बताते जाम्बवन्त गुरु सरिस,
पालते प्रमुख कीश ज्यों शिष्य ।।

पास ही भरत-विभीषण बैठ,
जिताते जाते बात अनेक ।
बीच में खड़े ग्रंजनीलाल,
जगाते जाते विमल-विवेक ।।

किया सबने सादर प्रभु - नमन,
कुशासन पर बैठे भगवान ।।
कीशपति बोले "कैसा पर्व—
ग्रचानक यह विज्ञान-निधान ।।"

हँसे ऋक्षेश झांक प्रभु-नयन,
"दिखें जब राम-चरण तब पर्व ।
तीर्थ वह राम-चरण हों जहाँ,
राम-सानिध्य मुहूर्त अखर्व ।।

फिर रहे थे कुछ दिन से बने,
व्रात्व से कपिबालक कपिनाथ ।
धन्य हों पाकर पुनः द्विजत्व,
मिले भिक्षाशिश रघुपति-हाथ ।।"

"उचित-समुचित-समयोचित सकल,
सफल तव ग्रायोजन ऋक्षेश ।
करेगा संचित-कल्मष-दहन,
पुण्य-दोहन, युवजन बटु-वेष ।।

प्रतीक्षा में ग्रब किसकी आर्य !
हो रहा है यह ग्रसह विलम्ब ।
करें हम किस ग्रभाव की पूर्ति,
और करना क्या शेष प्रबंध ।।"

"कृपा तव कृपा-कृपा कपिनाथ,
एक ही कार्य शेष है ग्रार्य ।
गये रथ ले सेनापति नील,
आ रहे कुंभज यज्ञाचार्य ।।"

पधारे लोपामुद्रा सहित,
लिये बहु ऋषि ऋषिराज अगस्त्य ।
नमन कर तारा बोली "देव !
निहारें निज सुसफल मन्तव्य ।।

"साधु साध्विति" कहते ऋषि-श्रेष्ठ,
परम प्रमुदित देते आशीश ।
विराजे स्वासन, उर से लगा—
नमन करते रघुराज-कपीश ।।

गगन में लगे गूंजने मंत्र,
अग्नि-ध्वज लहराये दिग्प्रांत ।
सकौतुक हुए कौतुकी कीश,
क्रियारत परम प्रसन्न प्रशांत ।।

मुंज-मेखला दंडधर शिखी,
लगाये चंदन-भस्म ललाट ।
चले झोली लटका कर कंठ,
मांगने भिक्षा पंपा - घाट ।।

वानरीं अंजुलि भर-भर लगीं—
लुटाने मधुर कंद-फल-मूल ।
जूट के जूट जुटे प्रभु - निकट,
लगे बरसाने रघुपति फूल ।।

नहाकर नवल-नवल पट धार,
किये मंजुल-मंजुल शृंगार ।
वक्ष पर सजा पीत-उपवीत—
चले करते प्रभु की जयकार ।

लगाने लगे तिलक त्रिशरारि,
मुदित मुद्रा से कपि-कपि भाल ।
वंदना कर मुनिजन की कीश,
उड़ाने लगे सुगन्ध-गुलाल ।।

लगा ज्यों पंपासर पर उतर—
नृत्य करता साकार वसंत ।।
राजपथ शोभा-यात्रा भरे,
चले ऋषियों को ले सियकंत ।।

महालय - प्रांगण पंगत लगीं,
लगा होने सुन्दर सहभोज ।
पान ले, लगे कीश ज्यों हुआ—
प्रकट अद्भुत सामूहिक ओज ।।

तीन दिन कर किष्किंधा-वास,
लिये कुंभज कुछ कपिवर साथ ।
हृदय का कर आदान-प्रदान,
विराजे पुष्पक कोसलनाथ ।।

दोहा

जो न तरल सहसा हुई, दिखी न ऐसी आँख ।
मिला न मन वह एक भी, जो न मांगता पाँख ।।

कर्णाटक

दोहा

पुर पर मँडरा कर बढ़ा, दक्षिण दिशा विमान ।
गये तुंगभद्रा-पुलिन, व्याघ्र- भगवती स्थान ।।
सिद्धेश्वर श्रीक्षेत्र से, विक्रम-त्रय हयग्रीव ।
देख तीर्थ-उपवन अमित, नाचे नयन शिखीव ।।

ऊर्मिका

प्रथम नक्षत्र कुमुद सा खिला—
सांध्य-नभ, सर-तरि लगा विमान ।
किलोलें करने लगे विहंग,
त्याग पोतक-नीड़ों का ध्यान ।।

लुटाने लाजा लगा निषाद,
विहग-गण चले चचुका झल ।
चाव में भरे देखने लगे,
सकल जन सरस विहग-गुह खेल ।।

लगीं पद-संचालन-रत क्यारि,
बजाता नूपुर घुँघरू धान ।
नारियल लहराता भुजवल्लि,
तानता कदल दुकूल वितान ।।

उरजफल मटकाता कटि कुटिल,
कामशर करता नयन विधान ।
मुक्तिका मान दिखाती घूम,
झूम कर पनस बढ़ाता मान ।।

अलक बिखराते श्याम तमाल,
सजाते वेणी रुचिर कुकोल ।
उदुम्बर शीशफूल में गुँथीं,
गुच्छफल स्वर्णिम पाटीं लोल ।।

शीश - अवंतस-पिच्छ से ताल,
बने पुंगी ताटंक प्रभूत ।
हार से झूम उठे जंबीर,
किंकणी-लट से लटके तूत ।।

भरतनाट्यम् सा करती प्रकृति,
लगी अति मुदित हरित-परिवेश ।
पयोनिधि लहरों के कल गान,
लगे करने आनन्द अशेष ।।

बनाने मन मतवाला लगी,
सुगंधित-शीतल-मंद बयार ।
छानने लगे ज्योत्स्ना-ज्योति,
पारदर्शी विमान - ओहार ।।

लगा ज्यों चंदन-वन में छिपीं,
स्वर्ग-अप्सरियां परम नवीन ।
निकल आईं कदली-अलि-मीन—
मयूरी-बिल्व-आम्र छवि छीन ।।

रहीं अबला सी कर मनुहार,
न आया मनसिज क्योंकि सभीत ।
शभु-उर-सर-सरसिज रघुनाथ,
न जन्मा, इन्हें सके जो जीत ।।

हँसे मुनिवर अगस्त्य के साथ,
अनोखी हँसी रसिक रघुनाथ ।
सकल जन रहे मौन नतवदन,
नचाकर बोला गुह कुछ हाथ ।।

"आजु लौं हम तौ जाने नाथ !
रुचिर हमरे पुरवैया पौन ।
इहां बैरिन बौरावति फिरति,
सलौनी चाखि अछूत्यौ लौन ।।"

हँसे सब गुह की सुन अछलोक्ति,
कहा प्रभु ने "समझे हम आज ।
अवधराजा का प्रिय गुह मित्र,
चाहता दक्षिण-दिशि में राज ।।"

"अरे म्हाराज ! धन्य म्हाराज !
कही हम काह, काह लइ जानि ।
करहिंगे राज धींवरी-जाए,
खुदइहैं कूँए सिंधु-खदानि ।।"

सोरठा

ऋषि बोले "प्रिय राम, देखो सिंधु समीप गिरि ।
प्रकृति-सुरक्षित धाम, पंचाप्सरस सुतीर्थवर ।।
पाया मन विश्राम, यान उतारो निशि चढ़ी ।"
कपि-उद्यम उद्दाम, आश्रम संगम पर बना ।।
किया निशा-विश्राम, 'चलें' कहा मुनि-श्रेष्ठ से ।
"नरहरि शालग्राम, शूकर-क्षेत्र पुनीत यह ।।
मन-भावन सुस्थान, यहीं रमेंगे कुछ दिवस ।
शंभु करें कल्याण, आप करें प्रस्थान हरि ।।"
मौन झुकाकर माथ, कर प्रदक्षिणा साधु की ।
पा आशिश रघुनाथ, यान बढ़ाया पूर्व-दिशि ।।
"क्या है यह वह भूमि, कल कपि दल जिससे गया।
छूतीं गोपुर ऊर्मि, गगन सिंधु उत्तुंग कर ।।
किसने यह शृंगार, किया कहो मित्रो ! नृपो ।
सकल सविधि विस्तार, होता अचरज अपरिमित ।।"

दोहा

सुन कर रघुपति के वचन, बोले निशिचर-कीश ।
"प्रभु-पद-पद्मांकित धरा, सजी स्वयं जगदीश ।।
लुप्त हुए जो तीर्थवर, दशशिर-अत्याचार ।
पाकर वय-अनुकूलता, प्रगटे भुजा पसार ।।"

मौन हुए दोनों नृपति, बोले ऋक्ष सुजान ।
"मैं कहता हूँ सब चरित, सुने राम ! मतिमान ।।
लंकारोहण मार्ग तब, कपिपति-लंकनरेश ।
किया बाँटकर परस्पर, यह निर्माण विशेष ।।
शिल्पकलाविद् श्रेष्ठ बहु, देश-देश से खोज ।
काल-ग्रसित मरुभूमि पर, विकसित किये सरोज ।।
पांड्य-चोल-आंध्रादि ने, इन की देखादेख ।
खोज-खोजकर बिंदु-दी, खींच रेख पर रेख ।।
कुछ के तो अवशेष थे, किन्तु अमित निश्शेष ।
वृद्ध-शास्त्र-ऋषि-जनश्रुति - लोककथा अवधेश ।।
हुए सहायक सकल ही, पूर्ण हुआ कुछ आर्य ।
अब भी शेष परन्तु है, पुनर्वास गुरु-कार्य ।।"
देखा प्रभु ने भरत-दिशि, बोले हो गंभीर ।
"पिछड़े इस अभियान में, क्या न कहो हम वीर ।।
दक्षिण तो पूरा हुआ, यद्यपि रक्षाकांत ।
किन्तु न उत्तर भी रहा, प्रिय ! पूर्णतः प्रशांत ।।"
भरत मौन यों रह गये, प्रभु-नयनों में झांक ।
कौंध गई ज्यों बुद्धि-नभ, चांकी मन-घन चांक ।।
स्वर्ण सुरेखांकित रुचिर, सांबसदाशिव शंभु ।
मूकाम्बिका सुदर्शकर, लखा तीर्थवर अंबु ।।

सोरठा

घोर काल व्यतिपात, भरा पंक-रज-उपल बहु ।
जग का बृहद् प्रपात, ऊपर निर्जन सा बना ।।
बाण एक ही मार, स्रोत चार जीवित किये ।
शराबती की धार, नाची तरुणी सी तुरत ।।
निज स्वभाव अनुसार, कर रामेश्वर-स्थापना ।
दशरथराजकुमार, पहुँचे शृंगेरीपुरी ।।

शृंगी-ऋषि के तात, सिद्ध विभांडक तापसी ।
प्रभु परिजन विख्यात, आदर से सादर मिले ॥

दोहा

वाराही - नेत्रावती - तुंगा - भद्रा नीर ।
मज्जन कर, बहु दान दे, चले राम रघुवीर ॥
पावन भार्गव-क्षेत्र में, गये उडूपीधाम ।
पहुँचे अब्जारण्य से, शिव-गंगा श्रीराम ॥
चित्रार्का, द्विपिनाकिनी, नंदिदुर्ग प्राचीन ।
मुदित हुए मारुति निरख, लगे बजाने वीण ॥

सोरठा

नाग-सुमेरु स्वरूप, ललित अर्धनारीश छवि ।
क्षीर चढ़ाकर यूप, पूजे मेल-चिदम्बरम् ॥

दोहा

देखा महिष सुशैल पर, पावन दुर्गास्थान ।
कावेरी-धारा त्रिछवि, श्री रंगम्भगवान ॥

कन्याकुमारी

दोहा

कर शुचीन्द्र की अर्चना, पुण्य कुमारी-धाम ।
पहुँचे सिंधु - प्रयाग पर, त्रिभुवन राजा राम ॥
पिंगल अर्बुद वारिनिधि, नील पयोनिधि बंग ।
हिंदुमहोदधि से जहां, मिलते हरित उमंग ॥
मारुति बोले "ज्यों मिले, प्रिय कपीश लंकेश ।
हुए परम प्रमुदित हरित, कृपासिंधु अवधेश ॥"

छप्पय

जहां सूर्य उदयास्त युगल ही दृश्य मनोहर ।
आते-जाते अरुण नाचकर लहर-लहर पर ।।
छवि गुलाल पाथोधि रसिक रवि कनक थाल भर ।
मलते दिशि मालिनी-माल के शुभ सुभाल पर ।।
रंग-रँगीली सलिल-निधि मचल कुंकुमा खेलती ।
प्राची लहर उछालती, लहर प्रतीची झेलती ।।
सांध्य सुहागिन सजा सरस संध्या रवि-बाती ।
सीप सुकंगन धार लहर कर वाद्य बजाती ।।
तट तक आ, कर नमन चरण सादर पखारती ।
भरत-भूमि की मुदित आरती सी उतारती ।।
इस श्रद्धा के वश हुई, तज प्रिय-पितुगृह अंबिका ।
खड़ी हुई दक्षिण पुलिन, कन्या वेष कुमारिका ।।

दोहा

लखा स्नान करते हुए, शिला-खंड जल एक ।
प्रभु बोले "कैसा खड़ा, ज्यों भवसिंधु विवेक ।।"
केरल की सुषमा निरख, स्वाभाविक हरिताभ ।
राघव गये अनंतवन, पूजे पंकजनाभ ।।
गये आदि-केशव पुनः, शैया रक्ष-शरीर ।
सुब्रह्मण्य दर्शन किये, वायु-कोण दधि-तीर ।।
श्री-भूदेवी सहित हरि, गरलौषधिमय गात्र ।
प्रमुदित तैलार्चन किया, मणिमय कंचन पात्र ।।
लघु-गुरु नारायण मिलन-कर रघुवीर सुधीर ।
चले मकर-संक्राति लख, गंगासागर तीर ।।

गंगासागर

रोला

"देखो कपि ! कपिपति ! भरत ! लंकाराज ! निषाद ।
प्यारी-भारत भूमि पर, प्रभु का दिव्य-प्रसाद ।।

ऊर्मिका

अलौकिक ब्रह्मद्रव सुपुनीत,
दयावश होकर द्रवित, सदेह ।
सकल फल वितरित करता भूमि,
विचरता फिरता ज्यों सस्नेह ।।

विमोहित करने को ज्यों दनुज—
मोहिनी बने स्वयं दनुजारि ।
जान्हवी-छवि छवि-विरहित-ब्रह्म,
थिरकता बना विमल वर-वारि ।।

उबटना चंद्रकला का मला,
किया शिव-शीश-पीठि श्रृंगार ।
गगन गोमुख झूले में झूल,
हिमाचल का ले ललित दुलार ।।

अलकनंदा - मंदादिक संग,
मुदित मग करती केलि-किलोल ।
धरा पग धीरे-धीरे धरा,
बजा शिल-शिल झन-झन रमझोल ।।

देख माया माया-रणक्षेत्र,
चलो तज गिरि-माला के कूल ।
धार चंडी सी ,चंडत्रिशूल,
काटने त्रिभुवन चंड-त्रिशूल ।।

मिली प्रमुदित सी पितुगृह जान,
लिये परिवार प्रजापति-धाम ।
विराजी कर पातक निश्शेष,
मुक्तिगढ़ शांति-मूर्ति अभिराम ।

लजाती गगन-तारिका गणित,
पतित अगणित तरिका सी तार ।
मिली अक्षयवट-तट के निकट,
मुदित यमुना से भुजा पसार ।।

सुपुलकित बोली रविनंदिनी,
"भगिनि ! तव स्वागत बारम्बर ।
नरक धोते-धोते यम-स्वसा,
हुई नीली अघ-गरलाहार ।।

विमल मंदारलता सा धवल,
तुम्हारा ललित लहर-श्री पुंज ।
मुक्ति दे मुक्ति कार्य से मुझे,
बने मम शाश्वत् शयन-निकुंज ।।

त्रिपथगामिनि! हरिभामिनी! प्रिये !
त्रिशूलीमौलिविहारिणि ! गंग !
समर्पित हूं कहती मित्रजा,
समाई सादर शुभ्र तरंग ।।

गिरा सी मुखर मौन रह गई,
श्वेतिमा बनी हरितिमा राग ।
अलौकिक प्रेम मिलन से बना—
तीर्थपति, लघु सा तीर्थ प्रयाग ।।

गई कालिंदी को हिय लगा,
काशिका विश्वनाथ के धाम ।
जगत कहता पुर-परिखा हेतु,
प्रतीची दिशा फिरी कुछ वाम ।।

किंतु वह दृश्य, दृश्य क्या दृश्य,
कि वह दृश्येश विचित्र, विचित्र ।
मिले ज्यों बिछुड़े गिरिवर-शिखर—
भूमि पर, बने भूमि के मित्र ॥

लंक से हृदय, हृदय से कंठ,
कंठ से भाल, भाल से शीश ।
बावली हुई व्याल-व्यावली,
लपेटे सुतनु-लता जगदीश ॥

दिवानी सी सुर-कल्लोलिनी,
किलोलें करती काशी-वीथि ।
बना आनंदारण्य श्मशान,
ऊर्मि-कोकिला-काकली गीति ॥

फली सी फूली-फूली फैल,
पहुँचती पाटलिपुत्र समीप ।
चक्र-दह मुक्त त्रिवेणी रूप—
बनाती बंग-भूमि ज्यों द्वीप ॥

लहर परिकर हर-हर उच्चार,
समर्पण-मुद्रा बाँह पसार ।
समाती मुग्धा सी दधि-अंक,
किये शुक्लाभिसार शृंगार ।

यही त्रिभुवन-त्रिताप-दारिणी,
भरत ! वह पुण्य-पयोनिधि गंग ।
हमारी पितर-भस्म सुरलोक—
ले गई जिसकी एक तरंग ॥

हरिगीतिका

श्री सगर असमंजस नृपतिवर अंशुमानादिक अमित ।
निज स्वाँस-मुकुल-सुमाल से जिसको सजाते एक चित ॥

हारे, न मानी पर हठीली, तनिक हरि-हर कामिनी ।
उस मानिनी मनगामिनी सी को बना अनुगामिनी ।।
लाये भगीरथ भूप भू पर झेल कर बहु आपदा ।
गंगा न जल यह, भरत-भू पर ईश्वरीया-क्षीरदा ।।
जो विधि-भवन से कपिल-वन तक लहरकर गाती गई ।
पथ-कुपथ चतुफल-बेल ही केवल न लहराती गई ।।
वह भक्ति की मंदार-माला में उगाती मंजरी ।
होती त्रिदृग जिससे, अचेतन पापियों की पंजरी ।।
जो दर्श-मज्जन-आचमन ही से न, सुस्मृति मात्र से ।
देती सुदर्शन-चक्र संसृति-चक्र ले भव-पात्र से ।।
प्रत्यक्ष अहिभूषण हलाहल-अशन वसन-विहीन हर ।
शवभस्मलेपन-अशिवछविवन-जटिल-रतिपति दहन कर ।।
घेरे प्रमथगण घोर जिनको, नाचते हैं रात भर ।
वे वामदेव, बने सदा शिव धार जिसको शीश पर ।।

कवित्त

लोक-परलोक जो विलोकते हैं खारी-खारी,
दो-दो सागरों से निज कर्म के विपाक से ।
नाक की तो बात क्या सिकोड़ते नरक नाक,
जिनकी चिता की राख देख एक आँख से ।।
चित्र में लिखे से चित्रगुप्त रह जाते खड़े,
बड़े-बड़े यमदृग जाते जुड़ फांक से ।
उनके अपार घनघोर पातकों के शैल,
डूबे गंगाजल में छपाक से मनाक से ।।
भूति भूतनाथ की, विभूति सुरनायकों की,
रेख जो सिँदूरी भवभामिनी के भाल पर ।
मंजुल-मृदुल मकरंद जो मंदारिका का,
दैवी दिव्य ज्योति जो जगी है दिननाथ पर ।।

सत्यक की वाणी, वाणी - वीणा की गगन रेणु,
रमा की रमाई जो समाई शेष साज पर ।
सागर सुरस की सरसता की सार सरि,
वारी गंगवारि की कछार की सुछार पर ।।२।।
पापियों की पांति प्राण छोड़ देती आपों-आप,
मन में तनिक महिषेश ज्यों विचारती ।
स्वर्ग जाते उजड़, उजाड़ में नरक होते,
हरि - हर गाथा लोक-गाथा ही बखानती ।।
माता सी कलेजे से लगाकर सुलाती कौन,
डोलती पितरजन-छार छार छानती ।
धीर दे अधीरों को, सनीर पीर पीती कौन,
धरा पर धारा जो न गंगा की पधारती ।।३।।

सोरठा

श्री गंगा गुणगान, करते हुए प्रसन्न मन ।
बार-बार कर स्नान, राघव कपिलाश्रम गये ।।
कर मुनि-जन सम्मान, तिलगिरि अगणित दान कर ।
बैठे रघुपति यान, बरसाते मणि-पट-कनक ।।

उत्कल

छप्पय

वैतरणी-तट निकट याजपुर पहुँचे राघव ।
देखे विधि-मखकुंड कोल-विरजा श्रीमाधव ।।
रहते जल में लीन अनन्त जहाँ संवत्-भर ।
सिंहापुर में देख सुपावन नारायण-सर ।।
गर्भलिंग चंडीश का, महाविनायक दर्श कर ।
पहुँचे छतिया-ग्राम प्रभु, सुरपति-दम्पति भवन पर ।।

महाशारदा-पीठ कनकपुर गये नृपेश्वर ।
महानदी के तीर स्वयम्भू शिव धवलेश्वर ।।
उत्कल के उत्कृष्ट कलास्थल-कटक कटक में ।
रहे रात्रिभर अतिथिरूप प्रभु नृपति-भवन में ।।
अति प्रातः चित्रोत्पला, देवी पापक्षय शिला ।
भुवनेश्वर की भूमि पर, भुवनेश्वर-दर्शन मिला ।।
बिंदुसरोवर ब्रह्मकुण्ड में मज्जन कर फिर ।
पहुँचे प्रभु श्री लिंगराज के सुन्दर मन्दिर ।।
हरिहर चक्राकार बुदबुदाकर पिनाकी ।
हर-गौर्यात्मक कालरुद्र की बांकी झांकी ।।
करते हुए, कृपालु हरि, उदय-धवल गिरि पारकर ।
पदम-क्षेत्र कोणार्क में, पहुँचे वारिधि तीर पर ।।
प्रस्थरमय रथचक्र, सजे हय सप्त सुहावन ।
विकसित शतदल मध्य शिखर-वर अंबर-चुम्बन ।।
संज्ञा-छाया सहित आदिकुल - पुरुष विकर्तन ।
जहाँ विराजे मुदित ललित वात्स्यायन-प्रांगण ।।
भरत सहित षोडश सुविधि, रघुपति ने पूजन किया ।
चक्रित-चर्चिका दर्श कर, पुनः अवाची-पथ लिया ।।
श्रीनीलाचल-शिखर-चक्र को देख सामने ।
नमन किया कर-बद्ध झुका शिर सदल राम ने ।।
उतरा इन्द्रद्युम्न सरोवर अंतरिक्ष-रथ ।
त्रिभुवन पावन चले सुपावन हुए देव-पथ ।।
सिद्ध गणेश सुमंगला, अर्चन कर सीतारमण ।
पूज सुमन भुवनेश्वरी, मुस्काकर जय-विजय गण ।।
रत्नवेदिका दिव्य नीलमाधव हरि शोभित ।
ज्यों सुनीलिमा परिधि किये नभ-सिंधु समाहित ।।
रमा-शारदा सुछवि युगल-दिशि परम-मनोहर ।
चक्र-सुदर्शन सौम्य-रूप सेवा में सादर ।।

किया प्रणाम नरेश ने, पूजन बारंबार कर।
लिया प्रसाद प्रसाद भर, हँसकर हाथ पसारकर॥

पातालेश्वर - वैकुण्ठेश्वर - गुप्तजाह्नवी।
ईशानेश्वर - नंदि - उत्तरामणि - सुमाधवी॥
सायं स्वर्गद्वार अवधपति ने की संध्या।
देखी शुचि शृंगार श्याम-काली पुरवंद्या॥

अविकल लौकिक रीति से, दुर्गा-माधव अर्चना।
की सादर रघुनाथ ने, बार-बार कर वंदना॥

लखे, प्रात दधि-तीर लहर-स्वर सुनते हरि-सुत।
अद्‌भुत मुद्रा देख, हुआ प्रभु-मन कौतुक-युत॥
देख स्वामि संकेत, खोल गुह ने कटि-पटका।
बेड़ी जैसा दिया पवनसुत पद में अटका॥

बोले मारुति शिर झुका, "प्रभु-निदेश शुभ शीश पर।
देखे कपि को भूमि यह, रघुपति-वंदी मान कर॥

विह्वल उत्कल-भूप हुए रति देख निराली।
कारु-चित्रकर चारु-मूर्ति अपलक रच डाली॥
प्रमुदित होकर किया कपोतेश्वर का अर्चन।
सकल तीर्थ के पुनः-पुनः कर विधिवत् दर्शन॥

बैठे यान छके-छके, श्यामा-माधव माधुरी।
फिरा-फिरा मुख देखते, फिर-फिर शंखाकृति पुरी॥

आये काकट, लखीं मंगलादेवी पावन।
प्राची-तट वीणा-सुयंत्र पर परम-सुहावन॥
बालुकेश - चंडेश - बाणपुर निर्मल - निर्झर।
उत्तम उत्कल-क्षेत्र न्हिलाता कटि तक सागर॥

बार-बार अवलोक कर, नम्रभाव रघुवीर वर।
परशुपाणि के दर्श हित, पहुँचे शैल महेन्द्र पर॥

श्री परशुराम-आश्रम

दोहा

अवर शिखर सम शिखर पर, कांति सुकांति समान ।
भव्य-विभूति विभूति-मय, परशुराम भगवान ।।
जटाजूट काषाय-पट, कसी पीठ मृगछाल ।
पूर्णाहुति-मख-कुंड से, लसे सुपावन-माल ।।
पद्मासन कर-अंक में, टिकी दृष्टि-नासाग्र ।
परशु भूमि प्रमुदित वदन, 'राम-राम' अधराग्र ।।
स्वत: सभी के शिर झुके, प्रकटे भाव ललाम ।
प्रभु ने धनुधर भूमि पर, सादर किया प्रणाम ।।

सोरठा

"राम ! धनुर्धर राम, हरि-हर धनुधर ! तिमिरहर ।
सिय-प्रिय ललित ललाम, करुणासिंधु ! कृपालु ! हरि ।।
स्वप्न कि यह प्रत्यक्ष, छलक-छलक दृग छल रहे ।
कोसलनाथ समक्ष, कैसे मुझ अविनीत के ।।"
"दो मुनिवर आशीश", प्रभु बोले पद थाम कर ।
"ठगा पुन: जगदीश, प्रथम बुला, अब आनकर ।।

दोहा

माया मायानाथ ! तव, कैसी अपरम्पार ।
देखा हाथ न हाथ ने, बहु-तम प्रभा-प्रसार ।।
चरण परस्पर राम के, राम राम के राम ।
थाम-थाम बचते हुए, बैठे दोनों थाम ।।

छप्पय

भक्ति भरत की, पवन-तनय की परम सरसता ।
कीशराज के सभय-हृदय की चपल-सरलता ।।
निशिचरपति के सरल-चित्त की मृदुल-नम्रता ।
यक्षों की चेतना, दिव्य गुह की सुदीनता ।।
आकुलता युवराज की, जाम्बवन्त की अचलता ।
भृगुपति-प्रीति निरख, हुई, सकल सुमुदिता अवनता ।।

"रस की रेखा यही भृकुटि वह चढ़ी, असंभव ।
ये दृग शरद-सरोज कहां इनमें भैरव-रव ।।
चंडी कैसे बनी, भारती यही सुमंजुल ।
भृगुपति ! करते हृदय अमित शंका-कुल आकुल ।।
धरा धरा पर जो परशु, वही उठा श्रीराम पर ।
नहीं-नहीं" कह हो गया, जाम्बवंत का मौन स्वर ।।

भावलोक से उतर परशुधर बोले हँसकर ।
"नहीं-नहीं वह सत्य, सर्वथा सत्य ऋक्षवर ।।
किंतु किसी के पूर्व-जन्म की जान कहानी ।
उसकी चर्चा चला, न करते लज्जित ज्ञानी ।।
परशुराम का परशु तन, छूट गया मिथिलापुरी ।
जीव राम का राम सा, हुआ राम-रस-माधुरी ।।

देता दीप प्रकाश, स्नेह पीकर कजराता ।
हरःकर दिनकर तिमिर, तिमिर से हरण कराता ।।
करतीं ज्योतित सतत सुमणि कितनों को, सोमित ।
पारस दे लघु कनक, कनक सा बौराता चित ।।
अभिमत-दाता कल्पतरु, पर देता याचकपना ।
किंतु कृपा रघुनाथ की, जगन्नाथ देती बना ।।
अमित साधना करा, जगत देता कितना फल ।
ढलते रवि को पीठ, निकलते को अंजुलि-जल ।।

तन-धन मीत अनेक, मीत पर कितने मन के ।।
तिनकों से रजु बने धूर्त, कारण बंधन के ।।
जग चोरों का संगठन, विघटनकारी जीव का ।
शैल, शिलोद्धारक यही, राम जीव की नींव का ।।

रोला

यूं न किया क्या आर्य ! न किसका मर्म जानता ।
पर अब सब का सार सियापति नाम मानता ।।
अँधाधूंध ज्यों हुआ, क्षत्र-दल-दलन भयंकर ।
हुई मेदिनी लाल हुआ सिंदूरी अंबर ।।
हा-हा उठे पुकार गर्भ-अर्भक, शव-जलते ।
रुद्र देख संहार हाथ रह गये मसलते ।।
लिया पिता-प्रतिशोध सहस्रभुज-भुज विदार कर ।
मिला कौन सा पुण्य, रक्त शिर पर सवार कर ।।
सारे जग की ग्लानि, शाप सब जगती तल के ।
कोटि-कोटि धिक्कार अनाथा-अवला दल के ।।
किये वंश के वंश ध्वंस, हो कुपित एकहित ।
जग-जित बन, जग-दृष्टि वस्तुतः हुआ तिरस्कृत ।।
मिला भीत-जन नमन, किन्तु हर सका न भव-भय ।
किये पराजित अमित, न पर कर सका हृदय-जय ।।
हैं सुधार-संहार मार्ग दो जगदुद्धारक ।
हृदय-विमोहक एक, दूसरा हृदय-विदारक ।।
अंतर सका न जान जन्मना ब्राह्मण होकर ।
बैठा गिरि एकांत, सभी कुछ पाकर खोकर ।।
बना परशु से राम, परशु वह पड़ा धरा पर ।
किन्तु राम रामत्व हेतु अच्युत, नर होकर ।।
सूक्ष्म-बिंदु सम्मिलन-कोण भुज-युगल विषम-पथ ।
बना समानान्तर पर इनको, बढ़ा राम - रथ ।।

अतः एक को निंद्य बताते प्रिय भी नतशिर ।
और जूझते शत्रु, अन्य को जपते फिर-फिर ।।
द्विज से धरती-दान, द्विजों ने ली सकुचाकर ।
नृप से पग की धूलि, नृपों ने ली हरषाकर ।।
एक मित्र से शत्रु बना गुण-कर्म भुलाकर ।
एक शत्रु से मित्र बना गुण-मधु मरु-आकर ।।
एक त्याग कर शास्त्र, शस्त्र को लेकर भागा ।
और एक के शस्त्र, सुमर्म शास्त्र का जागा ।।
परशुराम रह गया इसी से केवल मुनि बन ।
और राम बन गये सकल मुनि-निकर प्राणधन ।।
जीत भूमि इक्कीस बार कर सका न शासन ।
राम जीत दो-भूप, चलाते जगत-प्रशासन ।।
बना परशुधर राम, मिले जब चरण राम के ।
क्यों न बने वे राम, हुए जो शरण राम के ।।
सत्यशील भय-द्वेष-दंभ-छल रहित राम का ।
चरित बना साकार-रूप प्रभु परमधाम का ।।
हुआ युगों तक नवल देव-संस्कृति का जीवन ।
पाकर प्रभु श्रीराम-चरित का भव्योत्सादन ।।
हुआ लयों तक अमर हमारा धर्म सनातन ।
पाकर प्रभु श्रीराम-चरित का पुण्य-सुधाशन ।।
भारतवर्ष प्रसून, गया बन त्रिभुवन-उपवन ।
पाकर प्रभु श्रीरामचन्द्र का दिव्यावतन ।।
स्वागत बारम्बार आपका श्रीरघुनन्दन ।
वृषप्रभातप्रभुप्रभूष्णु-शिरोमणि ! वंदन ।।"

सोरठा

गिरे राम-पद राम, लिये राम ने उर लगा ।
विदा मांग सुखधाम, बैठे पुष्पक-यान पर ।

आँध्र

सोरठा

सुन्दर आंध्र-प्रदेश, अंब-अधोंशुक-किंशुकी ।
प्रभु ने किया प्रवेश, प्रमुदित-मन हर्षित-नयन ।।
श्रीकूर्मम् अविवल्लि-होकर, हरि श्रीकाकुलम् ।
नरहरि-मलयजझल्लि, देखे श्रीसिंहाचलम् ।।
शोलिंगम्-बलिघाट, पोठापुरमन्नावरम् ।
देखे मूल विराट, सर्पावर धवलेश हो ।।
रामचन्द्र राजेन्द्र, कोटि-लिंग अभिषेक कर ।
पहुँचे राजमहेन्द्र, सप्त-स्वरूपा गौतमी ।।
एकशिला अभिराम, पहुँचे पानकनृहरिपुर ।
भीमकंदरा-धाम, देखा आर्य अगस्त्य का ।।

द्रविड़-भूमि

सोरठा

फिर पहुँचे मद्रास, द्रविड़स्थल श्रीसिंधु तट ।
कपालीश आवास, चेनाम्बा-रक्षित पुरी ।।
भस्म प्रशस्त-ललाट, कृष्णवर्ण गंभीर-दृग ।
अंग-वस्त्र अध-पाट, अंग-अंग पर फहरते ।।
कर प्रभु निशा-निवास, आदि-पुरीश्वर नमन कर ।
पुण्यावर्त सुपास, सुहृत्तापनाशन गये ।।
जहां भृकुटि कर वक्र, शैया तज सुन विधि-विनय ।
छोड़ा हरि ने चक्र, मधु-कैटभ के भाल पर ।।
भूतपुरी रघुनाथ, श्री केशव का दर्शकर ।
गये वेदगिरिमाथ, पक्षितीर्थ गुरुशंखसर ।।

महाबलीपुर-क्षेत्र, गुहा-मन्दिरों को निरख ।
पहुँचे रावण-जेत्र, बकुल-विपिन मधुरान्तकम् ।।
कार्तिक-धाम प्रधान, तिरुत्तणी का दर्शकर ।
भार्गव-मुक्तिस्थान, गये अथिरला अवधपति ।।
कपिल-तीर्थ कर स्नान, कर कपिलेश्वर-अर्चना ।
साक्षात् शेष समान, वेंकटगिरि पर हरि गये ।।

श्री तिरुपति

छप्पय

सप्ताचल-दल विमल दिव्य तिरुमलै सुहावन ।
पग-पग गोपुर द्वार विषम-सम अयन सुपावन ।।
अमित हरित वन ठौर-ठौर झरतीं निर्झरिणी ।
नभ-गंगा अघहरण तीर्थ स्वामी पुष्करिणी ।।
गये भूमि पर कर नमन, अंबरीष-प्रहलाद से ।
धरा-धारिणी-धर सुछवि, पृथक त्रिताप विवाद से ।।
शुभ श्रृङ्गारागार तीन प्राकार पारकर ।
श्री-भूदेवी सहित श्याम-छवि मंजु धार कर ।।
शंख-चक्र-कज-गदा नील-छवि स्वर्ण-कलेवर ।
श्री तिरुपति भगवान कपूरी-तिलक भाल पर ।।
प्रमुदित कांचन-वेदिका, वरदा-मुद्रा झलकती ।
चरण-कमल अविरल अमल, बहतीं विरजा भगवती ।।
अर्पित की, कर दर्श राम ने तुलसी-माला ।
नयन मूंद मणि-रत्न हुंडिका-घट भर डाला ।।
कर परिक्रमा, पूज विविध विधि बकुल-मालिका ।
पहुँचे तिरुचानूर सरित्-पति-सुता-शालिका ।।
पद्म-सरोवर तीर पर, पद्मासन पद्मासना ।
पद्मदृगी कर पद्म ले, पद्मावती स्मितानना ।।

कर दर्शन, प्रभु स्वर्ण-मुखी के ललित पुलिन पर ।
आये, देखे वायु - सु-तत्व कालहस्तीश्वर ।।
स्वर्ण-पट्ट माल्यादि समर्पित की रघुपति ने ।
किये तरल दृग नील-भील की सरल सुमति ने।।
अग्नि-लिंग कर्पूर-छवि, अरुणाचल श्रीईश का ।
पूजन वंदन कर चला, गगन-यान श्री श्रीश का ।।

दोहा

पेरुमाल श्रीविरदहरि, बिल्लियनूर त्रिकाम ।
पहुँचे सीतानाथ प्रभु, हरि-हर कांचीधाम ।।
करा मालती-तैल से, एकाम्रेश्वर-स्नान ।
त्रिपुरसुंदरी-पीठ में, किया अष्ट-श्री-ध्यान ।।
कर अनंतसर आचमन, वरदराज सम्मान ।
सलिल-लीन देवेश को, किये प्रसून प्रदान ।।
देखी छवि नटराज की, दिव्य चिदम्बरधाम ।
शशि मौलीश्वर स्फटिकमय, रत्न-सभापति श्याम ।।
कनक-माल मंडित रुचिर, लिंग विष्णुपद-तत्व ।
जहाँ पतंजलि व्याघ्रपद, जाने ब्रह्म-महत्व ।।
पुंडरीकवल्लरि रमा, राजराज गोविन्द ।
चतुष्षष्ठि शुभयोगिनी, करतीं नृत्य अलिंद ।।
श्रीमुष्णम् - वृद्धाचलम् - तिरुदारम् - वैद्येश ।
मायावर-मयुरेश्वरम्, अभयाम्बिका सुदेश ।।
द्विरदांनक-मध्यार्जुनम्, गजमुखारि नखवक्त्र ।
कमलालय कमलाम्बिका, तीर्थ समुच्चय सत्र ,।
चंपक दक्षिण द्वारिका, महामघम्-कासार ।
मज्जन कर रघुपति गये, प्रभु कुम्भेश्वर-द्वार ।।
मंगलाम्बिका नमन कर, पूज गणेश-कुमार ।
रामस्वामी सुगृह का, कपिपति किया प्रसार ।।

रुद्रमूर्ति रुद्राक्ष-तरु, यम-सर शूलोद्भूत ।
पहुँचे तंजावूर हरि, तंज-दनुज पुर पूत ।।
त्रिशिरःपल्ली त्रिशिरपुर, दक्षिण-मुख श्रीरंग ।
लख प्रभु निज कुलदेव को, भरे प्रमोद-तरंग ।।
आपोलिंग महेश का, जंबुकेश शुभ्धाम ।
कावेरी पुर-वीथिका, करती नृत्य ललाम ।।
दक्षिण-दिशि की माधुरी, मंजुल-कला-निकुंज ।
श्रीमीनाक्षी भगवती, श्यामा-छवि छविपुंज ।।
नकबेसर-कुण्डल-तिलक, कंचन-रत्न-किरीट ।
कुंचित-कटि मणिकिंकिणी, कलित कीर करपीठ ।।
मदन-दहन-मोहित हुए, जिसका रूप निहार ।
नर्तन करते निशि-दिवस, सुन्दर नट-छवि धार ।।
कर पूजन रघुनाथ ने, लेकर पुण्य-प्रसाद ।
यान बढ़ाया वायुदिशि, छलक उठा आल्हाद ।।
बोले कपिपति "भरत ! प्रिय, देखो-देखो सेतु ।
सलिल-राशि पर फहरता, रघुपति-कीर्ति-सुकेतु ।।
वह श्रीरामेश्वर-शिखर, रहा गगन को चूम ।"
देख विभिषण-दिशि भरत, उठे प्रेम से झूम ।।

सोरठा

प्रभु बोले "लंकेश, सब कुछ परिवर्तित किया ।
सागरतीर-प्रदेश, कमल-कर्णिका सा बना ।।
शिखर कि श्रीकैलास, मन्दिर या वाराणसी ।
कब होगा विश्वास, यह वन-चर की स्थापना ।।
बोले दोनों भूप "हम वनचर की स्थापना ।
सत्य कि छलना-स्तूप, जीवित हैं या मृत कहो ।।"
हँसा ठठा गुहराज "कहिए अब रघुनाथ जू ।
बच्यौ शेष कछु आज, उत्तर दो जौ बनि परे ।।"

बोले प्रेमाधार "एक ठौर सब जुट गये ।
लो मैं माना हार," सब बोले "फिर बच गये" ।।
"शीघ्र उतारो यान, श्री गणपति उप्पूर यह ।"
कर पूजन भगवान, देवीपत्तन पर गये ।।
कर श्रुति-लोकविधान, नवपाषाणाम् दर्श कर ।
दर्भशयन कर स्नान, तट पर बैठे मौन हो ।।

दोहा

रघुपति को गम्भीर लख, हुए भरत कुछ पास ।
भरत-वदन चिंतित निरख, प्रभु-दृग झलका हास ।।
बोले "देखो भरत का, कैसा प्यारा प्यार ।
सरल नयन पलकें सजल, कैसे रहे निहार ।।
इधर नयन उस दिवस की, फिरती लक्ष्मण-मूर्ति ।
रौद्र-वीर-कारुण्य की, मानो अद्भुत-पूर्ति ।।
कैसे लंक-नरेश को, तांक रहा था शेष ।
ज्यों लखता हर-हार को, विवश हुआ विहगेश ।।
रुची न सागर-वंदना, भँव रह गया तरेर ।
वर्षा पिक सा दूर जा, खड़ा हुआ मुख फेर ।।

सोरठा

बहुत दूर अपमान, यदि कण हुआ प्रतीत भी ।
कुपित भुजंग समान, धनु फण फैलाकर उठा ।।

ऊर्मिका

"दैव शूरों का भूषण नहीं,
कायरों के मन का आधार ।
प्रकट पथ स्वतः, पयोनिधि अस्त,
धनुष हो तनिक मंडलाकर ।।

विनयमय यह सत्याग्रह, सत्य—
यशस्वी रविकुल-भाल कलंक ।
स्वकीयों परकीयों के हृदय,
एक ही शर कर दे निश्शक ।।'

आप सब यद्यपि रहे अवाक्,
लखन की वाणी सुन उस काल ।
जानता था निज बंधु-स्वभाव,
इसी से रहा मौन नत-भाल ।।

न यह तो कुछ भी क्रोध कपीश !
देखते मिथिला का भूचाल ।
न हर-धनु हिला सके जब भूप,
दुखित हो बोले जनक नृपाल ।।

'न विधि ने सिय का लिखा विवाह,
करें नरपति-गण मन न मलीन ।
पधारें धाम, जान मैं गया,
हो गई धरती वीर विहीन ।।'

कहो उस वय अनुचित नृप कहां,
और क्या कहता कन्या-तात ।
उठा सहसा ही लक्ष्मण तमक,
लगा ज्यों अनल-अनिल संघात ।।

पंख से उठे फड़फड़ा अधर,
बाज सा झपट चढ़ा धनुमंच ।
लवा सी सहमी सभा समस्त,
लगा अब चढ़ा चाप-प्रत्यंच ।।

क्रोध का परम विरोधी बोध,
बंधु का किंतु न डिगा प्रबोध ।
लिखे मन पटल गये जो वचन—
कहे वे सप्रमाण चित शोध ।।

पधारे परशुराम भगवान,
धनुष सो चढ़ा भ्रकुटियां वक्र।
देखते तव लक्ष्मण-संवाद,
चढ़ा ज्यों नाल अलातक-चक्र ।।

देखकर हमें, चुराकर दृष्टि,
विहँसता कहता जाता बात ।
बात क्या, परशुपाणि-रोषाग्नि—
निरंतर धधकाता ज्यों वात ।।

आपको सुविदित सकल, विवाद—
अन्त में कैसे हुआ समाप्त ।
'वचन-रचना नागर' का विरद,
किया उस वय भार्गव से प्राप्त ।।

तथ्य यह समझ गया था तभी,
अशंकित-चित्त सकल-संसार ।
मचा सकता कैसा उत्पात,
निमिष में यह सुगौर सुकुमार ।।

पिताजी के प्रति भी दुर्वचन,
गया सम्मुख सुमंत्र के बोल ।
भरत-परिकर को भी त्यों देख,
उठा झंझा-प्रतान सा डोल ।।

आज तो जब करता है याद,
लजाता पछताता एकांत ।
हेतु यह भी था, लाया-विपिन,
इसे फिर कौन करेगा शांत ।।

अवध में तब यदि होता भरत,
न वन मैं जा पाता यह सत्य ।
अवध में रह जाता यदि लखन,
न होता उचित, सुनिश्चित तथ्य ।।

लखन-मन का पर इसमें मल न,
मात्र मेरे प्रति प्रीति विशेष ।
तनिक आशंका पर निश्शंक—
बिफर उठता पंचानन-वेष ।।

प्रखर-यज्ञानल जैसा विमल,
मूलतः शीतल लखन-स्वभाव ।
सरल छलहीन बाल-चापल्य —
कहूँ क्या, कहता तुम शिर-छाँव ।।

सुना जब गये तात सुरलोक,
फफक मैं उठा मार शिर हाथ ।
पास आ बैठा, मैं कह उठा,
लखन ! सब भाई हुए अनाथ ।।

बहुत धीरे से देकर धीर,
कंध रख माथ, डाल कटि हाथ ।
वीर बोल 'प्रभु ! तव पितु गये,
हमारे पिता आप रघुनाथ ।।'

कंठ में घिरी गिरा रह गई,
नयन-कोरों में छलका नीर ।
पुनः बोले "ज्यों लक्ष्मण वीर,
भरत त्यों धीर वीर गंभीर ।।

कमठ-अहि-कोल धारते धरा,
युगों से प्रचलित, है भी सत्य ।
धर्म-धुर धरी भरत ने धरा,
प्रकट यह तर्कातीत सुतथ्य ।।

भरत का बल पाकर ही आज,
वृद्ध अहि-कमठ-कोल बलवान ।
राम ने नहीं भरत ने किया,
धरा पर राम-राज्य निर्माण ।।

राम सरिता के लक्ष्मण-भरत,
कूल दो यद्यपि, पर अनुकूल ।
लखन फागुन का किंशुक कवच,
भरत सावन का हरित दुकूल ।।

ललित रिपुदमन अजात-अमित्र,
सलिल सा सकल सरल छलहीन ।
लखन में लखन भरत में भरत,
अवध तन अलख प्राण सा लीन ।।

त्रिवेणी प्रिय अनुजों की यही,
बना यह जिससे राम, प्रयाग ।
प्रार्थना, जन्म-जन्म दे देव,
इन्हीं भ्राताओं का अनुराग ।।"

श्री रामेश्वरम्

दोहा

गंगाजल का कल कलश, लिये यान से राम ।
पहुँचे श्री रामेश-गृह, करते हुए प्रणाम ।।
अपर गंधमादन सरिस, विस्तृत देवागार ।
सजीं पौर-पथ वाद्य ले, बहु छवि मनुजाकार ।।
रामेश्वर का राजपथ, चारों दिशा-विशाल ।
शोभायात्रा शंभु की, होती जहां त्रिकाल ।।
हनुमदीश की अर्चना, कर प्रभु बारम्बार ।
लिये सुपूजन-द्रव्य बहु, पहुँचे गर्भागार ।।
शंभु-ज्योति श्यामल-विमल, कंचन-पीठ विशाल ।
हैम होम के कुंड शुभ, ज्यों बालानल-ज्वाल ।।
चन्द्र-त्रिपुंड ललाट पर, मुक्तावलि-उपवीत ।
चित्त कनक की परख हित, ज्यों कष नव नवनीत ।।

शेष शीश, चारों दिशा - मणिमय दीपक-पुंज ।
नृत्य-निरत बहुरंग-छवि, मानो ज्योति-निकुंज ।।
चंद्रातप छत सा तना, चंदन स्तम्भाधार ।
लसीं ललित गोपानसी, ठौर-ठौर चौसार ।।
रामेश्वर का देख कर, राजेश्वर-शृङ्गार ।
हुआ राम-राजेश के, मन में मोद अपार ।।
उठे नाच सीतारमण, करते हर-अभिषेक ।
'शिव-शिव' कह अर्पित किये, पूजन-द्रव्य अनेक ।।
ततानद्ध-घन-सुषिर चय, वाद्यों की गुंजार ।
गूंज उठी श्रुति-ध्वनि, उठा, संपुट सा जयकार ।।
अगर-तगर-मलयज-चदिर, धूप-प्रदीप कपाल ।
एक साथ बहु झूमने-लगे आरती-थाल ।।
लगा अमित रघुपति-भरत-ऋक्ष-रक्ष-कपि भूप ।
करते रामेश्वर-नमन, मणि-निर्मित बहु यूप ।।
अहा ! अलौकिक ठाट क्या, रामेश्वर के घाट ।
परिकर सहित विराट-गृह, परिकर सहित विराट ।।
'जय रामेश्वर' राम के-ईश्वर परम ललाम ।
'जय रामेश्वर' राम ही, जिनके प्रभु अभिराम ।।
जय रामेश्वर राम शिव, अनुपम सुषमाधाम ।
गूंजा जय शिव राम शिव, जयति राम शिव राम ।।
देवी पर्वतवर्द्धिनी, चरण झुका कर शीश ।
चले मंगलोत्सव करा, ले प्रसाद जगदीश ।।

ऊर्मिका

विराजे रामझरोखे राम,
दृगों में दृश्य गया वह घूम ।।
जलधि पर बालधि गोलाकार,
चली बलनिधि कपि-सेना झूम ।।

शिलावलि सुदृढ़ सुसज्जित शैल,
तरी सा क्षण-क्षण जाता डोल ।
दुपहरी भरी, दुरे रवि धूलि,
हुई बहरी सीं दिशि 'जय' बोल ।।

एक को चले लांघकर एक,
मृगों सी भरते प्लवग छलांग ।
लगा रसराज वीर, तज धीर—
धरा पर उतरा कर कपि-स्वांग ।।

भरत ! प्रिय भरत ! बंधु रे भरत !
तनिक आ और, और मम पास ।
देख तो चीर, क्षितिज के चीर—
नीरनिधि करता वीचि-विलास ।।

मकर-झष-उरग भयंकर भरे,
लहर क्या यम-दंष्ट्रा विकराल ।
नील-नल ने जय-मुद्रा जड़ी,
सजा मणि-मंजुल शिला-विशाल ।।

बधु ! था क्या उत्साह अभंग,
स्वयं से कई गुणा गुरु-शैल ।
सुमन-पांखुरि से लाये नोंच,
न तन पर भार, न मन पर मैल ।।

लगेगा सच किसको, कपि-भालु—
जलधि पर बना गये यह सेतु ।
शेष की सीधी कर के ग्रीव,
कील सा गाड़ा कीर्ति-सुकेतु ।।

देखते भरत ! तनिक उस समय,
देखती ही रह जातीं आंख ।
लगे वे अस्थि-मांस के नहीं,
लगे ज्यों उड़ते पांखी पांख ।।

न जाने कहां-कहां से खींच,
कौतुकी लाये करते खेल ।
हेल कर देते जल में ठेन,
युगल लेते कंदुक सम झेल ।।

सजाते यों पल में नल-नील,
मिलीं ज्यों नाप-नाप की तोड़ ।
रखीं जिस ठौर, बनी उस ठौर—
हेतु हो लगती, लगे न जोड़ ।।

कौतुकी जितने, उतने वीर,
वीर जितने, उतने ही धीर ।
धीर जितने, उतने कपि हठी,
हठीले किन्तु परमगंभीर ।।

पसरतीं पलक उठा कर दृष्टि,
नापने को पाथोधि-प्रसार ।
नापने लगतीं विस्मित विवश,
त्रिविक्रम-पद सा पुल-विस्तार ।।

अलौकिक शिल्प कल्पनातीत,
दिया बल-वारि वारिनिधि सींच ।
प्रभंजन-मन की गति को लजा,
सेतु सी ब्रह्म-रेख दी खींच ।।

चले क्या चले, चाल क्या चाल,
डोल ज्यों उठे विपुल भूडोल ।
लगा ब्रह्मांड अंड अब फटा,
घटा छितरादीं 'जय-जय' बोल ।।

बरूथिनियों के घिरे बरूथ,
न पुल पर रहा लघुस्थल शेष ।
चले कुछ महामत्स्य से तैर,
उड़े कुछ नभ में बन विहगेश ।।

हरावल में नल-नील सुवीर,
आंख, ज्यों तकतीं लंक शतघ्नि ।
निसठ-सठ पार्श्व-पार्श्व में चले,
धधकती ज्यों बड़वा-दावाग्नि ।।

मध्य मार्तण्डात्मज सुग्रीव,
दीप्प ज्यों राजसूय का कुंड ।
अष्ट-दिशि कुमुद-शरभ-द्विद-मैंद—
क्रथन-गव-गवय-प्रमाथी झुंड ।।

शुंड से लहराते भुज-दंड,
लगे ज्यों क्रोधित ककुभ-वितुंड ।
लीलने चले लंकशशि राहु,
ऊर्ध्वमुख-चन्द्र मुंड के मुंड ।।

ज्ञानवय वृद्ध, समर - मर्मज्ञ,
डाल सप्रीति हाथ में हाथ ।
प्रलय-वय के शिव-अज से लगे,
केशरीतात ऋक्षकुलनाथ ।।

घूमता अट्टहास कर गरज—
पनस, ज्यों छुटा सुदर्शन-चक्र ।
लहरता कुटिल-भृकुटि कर कुटिल—
लगा दुर्मुख, शनि श्यामल-वक्र ।।

चढ़ा अंगद के कंधे लखन—
मीन का सुरगुरु लगा ललाम ।"
"मेष ग्रहपति से मारुति-कंध",
कीशपति बोले "प्रभु श्रीराम ।।"

"और इस मिथुन मध्य दशशीश,
शीश-विरहित ज्यों खंडित-केतु ।
विभीषण कन्या का बुध रुचिर,
प्रबल भाग्येश-दशा सा सेतु ।।

दीप्त-शुभ-ग्रह सी मूल त्रिकोण,
त्रिकूटाचल उतरो कपि-सैन्य ।
शैल की शिला-शिला पर उगे,
धैर्य - ऐश्वर्य - सुशौर्य - अदैन्य ॥

दशों-दिशि दिखे कीश ही कीश,
बनी पल में पंपाधिक लंक ।
लगा प्रलयंकर-बादल उठे,
महानट-भैरव को ले अंक ॥

निशाचर दिये पदों से रौंद,
स्वर्ण-पुर कर-कर दिया मसान ।
डोंगि सा डूबा गढ़ कपि-सिंधु,
गिरीं शिखरावलि त्रिपुर समान ॥

भुवन-रोदन जिनका आमोद—
रो उठे, हँसता लख संहार ।
हुआ मैं मुदित, बंधु ! जब सुनी,
विभीषण-राजा की जयकार ॥

सिंधु के तीर सिंधु के नीर,
किया था जो सहसा अभिषेक ।
भालु-कपि दल को बना निमित्त,
रखी इन रामेश्वर ने टेक ॥"

श्री गुह राज्याभिषेक

दोहा

हुई पुरातन - स्मृति नवल, आया सहसा ध्यान ।
"ऋक्ष-रक्ष-कपि नृपति, कपि, अंगद-भरत सुजान ॥

ऊर्मिका

उठो सब शीघ्र चलो भव-अजिर,
हुआ था मेरा भ्रमित विवेक ।
यहाँ की प्रथा सुरक्षण हेतु,
करो प्रियवर गुह का अभिषेक ।।

बुलाओ शीघ्र विप्र-ऋषिवृन्द,
करो आमंत्रित दाश तुरन्त ।
छत्र - सिंहासन - चँवर - किरीट,
मँगाओ शुचि जल-कलश अनन्त ।।"

सजीं पल में सामग्री सकल,
जुटे ऋषि-द्विज-वेदज्ञ अपार ।
सजा रामेश्वर-मंडप रुचिर,
उठीं खिलखिला प्रदीप-कतार ।।

लहरतीं दधि लहरों पर लहर,
ज्वार-वय ज्यों लहरातीं मीन ।
प्रमोदों भरे मनाते मोद,
हुए त्यों धींवर नर्तन-लीन ।।

पणव - अलगोझे - शंख - मृदंग—
ढोल - ढप - भेरी - वीण- सितार ।
झननझन झनक झांझनें उठीं,
झमाझम झमक उठीं झंकार ।।

'राम राजा के प्रियवर मित्र,
दाशराजा की जय-जयकार ।'
द्वीप के कोण-कोण में उठीं,
गगन-भेदी ध्वनियां गुंजार ।।

सजा दक्षिण-दिशि श्रीफल रुचिर,
बिठा कर गुह को चंदन-पाट ।
मंत्र उच्चार तीर्थजल-धार,
हुए अभिषेचनरत ऋषिराट ।।

पिन्हा प्रभुने निज भूषण-वस्त्र,
सजाया रत्न-मुकुट गुह-शीश ।
ले चले स्वर्ण-पीठ की ओर,
थामकर कर रक्षेश - कपीश ।।

छत्र अंगद ने ताना तुरत,
लिया मारुति ने मंगलथाल ।
न बैठा गुह आसन पर कहा—
"बिराजें प्रथम आप भूपाल ।।"

देख अति आग्रह बैठे राम,
बिठाया गुह भुज थाम विशाल ।
देख प्रभु का मंजुल संकेत,
भरत ने तिलक सजाया भाल ।।

मंत्र-स्वर उठा गगन में गूंज,
दिशायें दमक उठीं जयकार ।
दिया केशरियाध्वज निज सरिस,
चिन्ह स्वर्णिम तरणी-पतवार ।।

स्वमस्तक-कुंकुम ले अंगुष्ठ,
लगाया प्रभु ने तिलक ललाम ।
स्वधनु सा सुन्दर धनु कर भेंट,
किया गुह-नृप को प्रथम प्रणाम ।।

बावला सा हो गया निषाद,
राम को करते देख प्रणाम ।
कहा, "यों लज्जित करो न नाथ,"
झुका ज्यों, लिया भुजा भर थाम ।।

पुनः लंकापति ने कर तिलक,
नमन कर, दिया महारव शंख ।
भेंट की कपिपति ने कर तिलक,
गदा-मणिमुद्रा-राशि असंख ।।

स्वर्णमणि-चक्र तिलक कर दिया,
भेंट में सादर ऋक्षाधीश ।
द्विजों ने रखे शीश पर कमल,
अमित ऋषियों ने दीं आशीश ।।

दिया अंगद ने दिव्य सनाह,
धनद-गण ने दुर्लभ तनुराग ।
तीर्थ-उपरोहित-दल ने दिया,
स्वेच्छया शम्भु-प्रसाद-विभाग ।।

सिंधु वणिकों ने अर्पित किये,
अनोखे देश-देश के द्रव्य ।
चले फिर धींवर-व्यूह अपार,
देख स्वज्ञाति प्रथम-प्रागल्भ्य ।।

शुक्ति - पुटिका - वराटिका - शंख—
मुक्तिका-विद्रुम भर-भर सेक ।
घिरे मंडप थल-थल पल मध्य,
शैल के शैल अनेकानेक ।।

तनिक मुस्का मारुति की ओर,
कहा प्रभु ने "केशरीकिशोर ।
सभी ने दीं प्रिय को प्रिय वस्तु,
शेष बस भेंट तुम्हारी ओर ।।

भक्तवर बोले प्रभु को देख,
झुकाकर भाल सकुच सोल्लास ।
"भुवन-मंडल सम्राट समर्थ,
क्षुद्र तव एक दास का दास ।।

रुचे ज्यों, त्यों कर लो परिहास,
आपके पास आपका दास ।
अभय तव वरद-कल्पतरु तले,
रखूं क्या पास, न है क्या पास ।।"

हँसे प्रभु कर कुंचित कुछ नयन,
प्यार से छूकर कपि-कौटीर ।
पुनः बोले "इनमें से एक,
भेंट कर दें प्रिय गुह को धीर ।।"

लखा कपि ने प्रभु-दिशि, ज्यों सबल—
धनी को सधन देखता चोर ।
कहा, "अन्तर्यामी की दृष्टि—
सृष्टि का छिपा कौन सा छोर ।।

किंतु सामर्थ्यवान नर नहीं—
लगाता स्त्रीधन पर दृग, नाथ ।
मातृ-धन बनकर यह तो पुनः—
पड़ा इस दीन-कीश के हाथ ।।"

"उचित है उचित-उचित कपिश्रेष्ठ !"
ठठाकर बोले श्री भगवान ।
"तभी तो कहता हूँ दे बांट,
अंब को सब सुत सदा समान ।।

जन्म लेते हो भूपर, अनुज—
बांट लेता छाती का क्षीर ।
यहाँ बैठा बटु अग्रज दाब,
एक के बदले दो मंजीर ।।"

समुत्सुकता-वश सारी सभा,
देखती क्रमशः रघुपति कीश ।
न समझी किंतु पहेली गूढ़,
कीश क्यों थामे बैठे शीश ।।

ऋक्षपति बोले "पवनकुमार !
छिपा किसका अभेद से भेद ।"
कहा अंगद ने "कृपण-किरीट !
पात्र गुह राजा करो न खेद ।।

ऋक्ष-गांभीर्य कीश-चापल्य,
भाव मार्मिक रघुपति का जान ।
निकाला सिय का नूपुर-जोट,
जूट की ओट छिपा हनुमान ।।

भाल से लगा, हुए कपि खड़े,
निजांजलि लिए, झुकाकर भाल ।
एक कपि-शीश सजाते हुए—
कहा "यह यहाँ अंजनीलाल ।।

सुमित्रा मां को ज्यों सप्रेम,
केकई मां ने हवि दी बांट ।
उसी विधि गुह राजा को स्वयं,
भेंट कर दो कृपालु कपिराट ।।"

लगाकर मस्तक बारंबार,
चले ज्यों ही गुह-दिशा कपीश ।
बढ़ा कनकासन से पग तीन,
तुरत इतने में गुह नत - शीश ।।

सजा सिय-नूपुर दाश-किरीट,
लगा ज्यों मणि-मय श्री-पदपीठ ।
तिलक, ज्यों रघुपति-रति-रत कीर्ति,
रचा बैठी पद-तल-मंजीठ ।।

जानकी-नूपुर सम्मुख सकल—
पड़ी फीकी-फीकी रत्नाभ ।
"हानि की की प्रभु कर ने हानि,
मिल्यौ सिय-चरन लाभ मँह लाभ ।।"

सुनी गुह की समुचित सरसोक्ति,
अलौकिक देखा भक्त्यालोक ।
सभाजन झूमे ब्रह्मानन्द,
न पाये 'धन्य-धन्य' ध्वनि रोक ।।

पुनः बोला गुह मस्तक झुका,
"कहौं किन बदनु कहा केहिं भांति ।
अनेकन मुखन अनेकन केरि—
सुनी, पै पाई सत् प्रभु-ख्याति ।।

मिले ज्यों बनवासी भरि भुजनि,
मिले त्यों सभा हृदय भरि प्रीत ।
गयो नहि इहै सोच संकोच,
कहै कोउ यहै राम कौ मीत ।।

मँजूरी टका-टका की करै,
चलाके छप-छप-छप पतवार ।
पांव नहिं पाँवरि, सीस न पागि,
पसा भर भात मीन-आहार ।।

मिलै जेहि जून उदर भरि तनिक,
रखै दिनु सुबरनु कौ सो यादु ।
न धन-बल-विद्या-रूप न शील,
करम कौ निखद कुजाति निखादु ।।

बड़े अंतर्यामी रघुनाथ,
लई मन की नैननि में जान ।
दुपहरी भरी गाम की पौरि—
उतारयौ औचक आनि बिमान ।।

सजाकै राजा कैसा स्वांग,
बिठायौ भुज भरि परम समीप ।
बतायौ बिनु बूझे ही सबनि,
हमारौ मीत दाश-कुल-दीप ।।

जासु छुई छांह, छींट दैं देह,
कहे जग जाँहि स्वपच-चांडाल ।
विदित जगु, जनमु जाति मल्लाह,
जिमायौ महलनि सुबरन-थाल ।।

छोट-बड़ मूंग-मोठ मँह कौन,
कियौ निज सम नृप जाति मंझारि ।
सुनैं नहिं सूद्र वेद कौ मंत्र,
डारि दो श्रवननि सीस्यौ गारि ।।

दियौ तेहि तिलक भरत के हाथ,
जोरि इतन्यौ ऋषि-विप्र समाज ।
न देरव्यौ-सुन्यौ कहूं तिहुं-काल,
राम सो भूप गरीबनिवाज ।।

लग्यौ जेहि मोतिन जैस्यो धानु,
दियौ तेहि मोतियन-घानी पेरि ।
लुटा देउ कहे छछोर्यौ जगत,
छछोर्यौ तौ जौं, रखौं सकेरि ।।

लखें जेहि साधि-साधि ऋषि दृष्टि,
लखै मोहि फारि-फारि सोइ ग्रांखि ।
मंत्र-पिँजरनि जेहि पालैं वेद,
उड़ावै मोहि दै-दै सोइ पांखि ।।

राम मर्यादा-पुरुष-प्रधान,
कान भये बहिरे सुनि-सुनि नाद ।
न जाने कैसी वह मर्याद,
कियो जेहि राजा शूद्र निषाद ।।

बरवै

दियौ कृपाकर इतन्यौ राजु बिसालु ।
मन-बासनु महँ दियो पांचु मनु धालु ।।

केहि विधि चलिहैं संका हृदय अपार ।
करै जगतु उपहास राम कौ यार ।।
फिरि सोच्यौं जेहि जीव जिआयौ आगि ।
निकसि खंब ते बिरची सोनित-फागि ।।
बांधी मनु की नैया परबत-कूट ।
चंदा-सूरज धरे धरा कै खूंट ।।
जिनके बलु शिव कियो हलाहुल पानु ।
धरत्यौ धरती सेष, न सीस निसानु ।।
जिन बल कपि इक सिंधु लांधि पुर जारि ।
दूल्हौ सो होइ आया हँसि ससुरारि ।।
रोप्यो दूज्यो चरन कि ज्यों जय-डांड ।
किये नाकजयि नाक-बिहीने भांड ।।
प्रथम जनम कै डार्‌यौ छतियन छीर ।
किलकारी दै हरी प्रलव की पीर ।।
दिये चने जिन सो कि हरहिंगे दांत ।
आपु रखहिंगे अपुन बिरद की पांत ।।
भरत सरिस हौं यहि धनु पीठि बिठारि ।
कहिहौं 'जय रामेसुर' दांति निकारि ।।"
हुई सभा गद्‌गद् लख गुह-सारल्य ।
धन्य भक्ति जो देती प्रभु-वात्सल्य ।।

दोहा

ऋषि-मुनि-प्रजा समूह को, दान-मान-सम्मान ।
कर रामेश्वर-वंदना, उठे राम भगवान ।।
गई दृष्टि ज्यों सेतु पर, सुनकर जय-जयकार ।
देखे आते अति मुदित, निशिचर-वृन्द अपार ।।
की दनु-दल ने वंदना, लख सम्मुख रघुनाथ ।
अभयाशिष दी राम ने, उठा दाहिना हाथ ।।

नमन विभीषण ने किया, समझे रघुपति अर्थ ।
कर अमात्य-परिषद्-गठन, गुह नृप किया समर्थ ।।

सोरठा

क्रिया सुशोभित द्वीप, सकल सुचारु प्रबंध से ।
श्रीसाकेत-महीप, चढ़े सपरिकर गगन-रथ ।।

लंका-यात्रा

ऊर्मिका

धरा से उठा गगन की ओर,
चला ज्यों लंका-दिशा विमान ।
विभीषण के बोले सब साथ,
"अवधपति जयति राम भगवान ।।"

छूटने ज्यों-ज्यों धरती लगी,
लगे गहराने सागरराज ।
सिंधु-नभ शीतलता कर केलि—
लगी हरषाने राज-समाज ।।

मुदित मन उठे कपीश्वर झूम,
लगे दिखलाने हाथ पसार ।
"लखो श्रीभरत ! दृश्य, हो रहा—
राम का ज्यों अभिनव-अवतार ।।

लंकसुर-विनय मान ज्यों चले,
राम हरि तज भारत गोलोक ।
नित्य गो-गोप-गोपिका-माल,
जान सुर-मंगल रहीं न रोक ।।

हुए पर दृग रसाल-दल तरल,
गईं पथरा पुतलियां गुवाक ।
कदल आंचल फहरा, कर रहीं—
विदा, आगमन-विनय रति-पाक ।।

जानकर पुनः पूर्णतः गमन,
नारिकेलों ने कर नत शीश ।
क्षितिज प्रावर में ढके शरीर,
सोचतीं 'हुई कि सेश अनीश ।।'

उधर ज्यों स्वामि-आगमन जान,
धरा धीरे-धीरे दधि चीर ।
निकलने लगी प्रफुल्लित अभय,
ललित तन्वंगी सरिस सुतीर ।।

रही दिख लघु-लघु तरुवर-राजि,
रहे ज्यों नवल-योनि सुर धार ।
प्राप्त कर प्रभु का सुख सानिध्य,
रहे कर रूप-शील विस्तार ।।

भरत भू स्वर्ग, लंकभू भूमि,
देख कर भेद रहित बल-ओज ।
सोचतीं ये वे या वे यही,
भ्रमित हो रहीं परिधि निज खोज ।।

धरा पर हुआ अवतरित स्वर्ग,
समाई या कि स्वर्गभू भूमि ।
भेदहर या कि भेदकर, दिव्य—
मनुज-लीला सी फैलीं ऊर्मि ।।

लहरतीं लहर-लहर रवि-किरण,
निखिल भूतों का ज्यों पति एक ।
रचाता लीला कालाधीन,
धार कर रूप अनेकानेक ।।

तिमिंगल तिमिरचरों से रहे—
निगल शकुली-दल जगत समान ।
फूटतीं शिर-छिद्रों से धार,
उठे ज्यों त्रसित प्रार्थना ठान ।।

कहीं नृप-शूरों से कुम्भीर—
सजा दल, बजा-बजा रण-वाद्य ।
ढुलाते फेन चँवर बढ़ रहे,
कहीं जय पाते, बनते खाद्य ।।

मरुत पीते वे सलिल-मणीश,
मौन विद्रुम-वल्लरी निकुंज ।
ब्रह्मचिंतन में मानो लीन,
प्रकृति से परे व्रती तप-पुंज ।।

कांच सी रही पटापट फूट,
शुक्तिका हो प्रवाह प्रतिकूल ।
दंभ-हेमंत मिलाता धूल,
जीव का ज्यों सुसाधना-फूल ।।

इधर लहरों को चकमक बना,
रहा चमचमा बृहत्-बड़वाग्नि ।
जगत - संबंध - दाम - निश्रेणि,
विहरता ज्यों यतिवर त्रिकुटाट्नि ।।

मथन रत्नाकर का कर रहे,
चतुर्भुज भुज प्रलंब सारंग ।
बांटते मौक्तिक-तौतिक देव,
वारुणी-गरल अदेव-भुजंग ।।

सजा यों सागर की जलराशि—
सगरकुल-दीपक प्रभु का सेतु ।
भरे ज्यों मुदित अदिति मां मांग—
विराजीं अभय सुसंतति-हेतु ।।

त्रिकूटाचल पर वह गढ़ लंक,
लखो ज्यों प्रकटा गगन मयंक ।
झलकता राम-रूप शुचि अंक,
दशानन-करनी राहु-कलंक ॥

शतघ्नी रक्षित, परिखा घिरा,
शरद्सर शतदल भरा पराग,
हंस शिव गये खिलाकर, गया—
उमा मन भ्रमर खेलता फाग ॥

धनाधिप शाप वृषानल जला,
गला वैदेही आह तुषार ।
विभीषण की पा पुनः वसंत,
खिला रघुपति रवि प्रखर प्रसार ॥

चमकता वही प्रथम से अधिक,
धरा का वैजयंत प्रासाद ।
त्रिकूटाचल पर ज्यों साकार,
विश्रवा-कुल का अमराल्हाद ॥"

दोहा

पणवादिक उद्घोष से, गूंज उठीं प्राचीर ।
चलीं शतघ्नीं भैरवीं, नाची शांत समीर ॥
शंख मृदंगादिक स्वतः, बजे एक ही साथ ।
बोल उठे लंका-सदन, जय-जय सीतानाथ ॥
करता हुआ परिक्रमा, गाता हर्षित गान ।
स्वर्ण-सभाजिर सूर्य सा, उतरा पुष्पक-यान ॥
प्रथम विभीषण ने उतर, सादर किया प्रणाम ।
पुनः उतारे दल सहित, निजाराध्य श्री राम ॥
मयजादिक दशशीश-ातय, सरमा-वज्रज्वाल ।
चलीं विपुल शृंगार कर, ले नीराजन-थाल ॥

कुशल-क्षेम कर राम ने, माना मानस-मान ।
देख लंक-संकोच अति, हुआ विभीषण म्लान ।।
नयनों में ही धीर दे, हरी मित्र-मन भीति ।
फिरे, फिरा प्रभु मुदित मुख, करा द्वार कुलरीति ।।
मंदहास चितवन मधुर, कोटि-मदन लावण्य ।
उतरा रघुपति-छवि निरख, मधु वृष चित्तारण्य ।।
लख सुशील-छवि राम की, कुछ बालक धर धीर ।
बोले "देंगे मार क्या, हमको भी रघुवीर।"
प्रभु बोले "क्या लग रहा, तुम्हें वधिक की भांति।"
"नहीं नहीं" कह खिल उठीं, बाल-बाल रद-पांति ।।
बोला एक "न यदि वधिक, प्रेम हमारे साथ ।
तो क्यों आये धार कर, कटि-निषंग धनु-हाथ ।।"
सरल गिरा सुन "त्रुटि हुई", बोले रघुकुलनाथ ।
खोल तूण-कार्मुक दिये, तुरत भरत के हाथ ।।
नयन-नयन ही बाल-दल, हुआ हृदय निश्शंक ।
भुज पसार कर राम ने, भरे बाल-गण अंक ।।
क्षण में ही जाता रहा, सकल शोच-संकोच ।
बोले "राम ! पितामही-क्यों कहतीं, तुम पोच ।।"
प्रभु बोले "वे हैं बड़ी, दिया प्यार से नाम ।
बुरा बड़ों की बात का, नहीं मानता राम ।।"
फिर तो केवल बाल क्या, सब नर-नारी वृंद ।
सकुच-परिधि तज दर्श-हित, चले अभय-सानंद ।।
बार-बार मिल भेंट कर, सब से सब-विधि राम ।
साथ विभीषण के चले, सभागार सुखधाम ।।

उर्मिका

चकित रह गईं दृष्टियां देख—
अलौकिक लोकातीतैश्वर्य ।
जड़ीं दुर्लभ-मणि कुंदन-कोर,
फूटता कण-कण से सौन्दर्य ।

विना खंभों का वृहदागार,
विभासित छादन रत्न-प्रदीप ।
दशों दिशि ज्योति निकलतीं,ज्योंकि-
उगलतीं मोती जीवित सीप ।।

शिखर का अंतराल यों उठा,
उठा ज्यों शोभा-कलश-शराव ।
पटीं प्राचीरें पच्चीकारि,
कराते प्राण प्रतीति सु-भाव ।।

विषमताओं का सामंजस्य,
सकल सुख-प्रद षट्-ऋतु चतु-काल ।।
निहारो नीचे, लगता स्वर्ग,
लखो ऊपर, दिखता पाताल ।।

बिछावन बिछे चतुर्दिक मृदुल,
उठीं बहु फुलकारी अभिराम ।
अमित आसन, सिंहासन दिव्य,
मध्य में कला-कषाल ललाम ।।

मुकुर यों कोण-कोण में लगे,
दिखें कण-कण से पूरे द्वार ।
कौंधतीं चपला पल-पल चपल,
पारदर्शी ऐसे ओहार ।।

भुवन-वैभव का प्रेक्षागार,
कल्पनातीत कल्पनागार ।
राम ने चलते-चलते लखा,
लंक का सभागार साकार ।

मध्य-आसन के दक्षिण-पाणि,
एक शुचि-सुठि उच्चासन ग्रौर ।
शिवा-शिव पीठ नमन कर, सकुच—
विराजे भरत सहित रघुमौर ।।

कीश-युवराज प्रभंजनतनय,
चरण-तल बैठे स्वयं समोद ।
वामदिशि ऋक्षराज कपिराज—
विराजे बिठा विवश गुह गोद ।।

ग्रवधपति का पाकर निर्देश,
विभीषण हुए ग्रासनासीन ।
चतुर्दिक घिरा सकल रनिवास,
सजा षोड़श-श्रृंगार नवीन ।।

सचिव-सेनापति-पार्षद् विपुल—
विराजे अपने-ग्रपने स्थान ।
लगे करने भृगुवंशी-विप्र,
मूर्च्छना सहित सरस श्रुति-गान ।।

लगा प्रभु के ललाट पर तिलक,
पिन्हाकर माल अमित वन-माल ।
सभी का स्वागत कर सब भांति,
बोलने लगे लंकभूपाल ।।

विभीषण-उद्गार

दोहा

"आज करें किस भांति हम, निज सौभाग्य बखान ।
प्रथम बार आये स्वयं, लंक-सदन भगवान ।।

ऊर्मिका

हमारे पिता-पितामह आदि,
बिताते जीवन जिसके काज ।
धरा पर वही सनातन-धर्म—
ध्वजा लहरा दी प्रभु ने आज ।।

विश्व में रहा न शेष अधर्म,
हुई संस्थापित शाश्वत-शांति ।
लखी इस परिभ्रमण प्रतिदिशा,
पुरातन-सात्विक - वैदिक - कांति ।।

हुई स्त्री-संज्ञा अबला असत,
न देखा ऊंच-नीच व्यवहार ।
लखा कल कलियुग त्रेता मध्य,
आज देखा सत्युग संसार ।।

जटायू की की जिसने क्रिया,
सजाया राजतिलक गुह-माथ ।
पसारा दो-बेरों के हेतु,
मुदित शबरी के सम्मुख हाथ ।।

तजा पल भर में ही साकेत,
त्यागता जैसे पंख मयूर ।
बनाये भालु-कीश प्रिय मित्र,
किये चंदन पग-पथ की धूर ।।

विश्व के परमवीर विख्यात—
बालि के लेकर पल में प्राण ।
सकल साधन-विहीन अतिदीन,
किये सुग्रीव कपीश स-मान ।।

और होता तो, क्या तज बालि—
बनाता कभी मित्र सुग्रीव ।
राम का किंतु यही रामत्व,
राम को करुणा यही अतीव ।।

यहीं देखो, जय पाकर कौन,
त्याग जाता ज्यों की त्यों लंक ।
सिंधु पर सेतु बांध, आ पदग—
स्वतिय ले उड़ता तुरत निशंक ।।

गई इतनी सेना-परकीय,
स्वार्थ-विरहित कब किसके साथ ।
परम संग्राम-भयंकर किंतु—
न लाई लगा धूलि भी हाथ ।।

विचारो, जहां जहां हम गये—
कौनसा छोड़ा अत्याचार ।
अपहरण-लूट - मार - व्यभिचार—
भयानक सामूहिक संहार ।।

और जब आते, लाते क्या न,
न उठ पाते थे कटि-शिर भार ।
ऊर्ध्वमुख-जेता से हम अधिक,
भार-वाही लगते थे चार ।।

बंदियों की चलतीं वे पंक्ति,
बेड़ि-हथकड़ियों की झंकार ।
हाथ छूते ही, हो तन मलिन,
किशोरी बाला वे सुकुमार ।।

दिगंबर अर्धांबर कच खुले,
कँपातीं क्रंदन से आकाश ।
शूल-हूलों से पथ-पथ ठिलीं,
स्त्री न, पशु हों, होता विश्वास ।।

सलौने-शशछौनों से बाल,
सिसकते बिके दास से हाट ।
वर्णसंकरी सृष्टियां हुईं,
हुए श्रुति-शास्त्र-विधान सपाट ।।

किंतु राघव-अनुशासित सैन्य,
नाम को भरे ऋक्ष औ कीश ।
वहीं से युवती अरि-वधु अभय,
अकेली लाई पति का शीश ।।

युद्ध में मरे, वही बस गये,
निशाचर गया कौन बन दास ।
लुटा सो लंक-दहन में लुटा,
हिली फिर किसकी-कब लघु-फांस ।।

आपको विदित बसी क्यों आज,
सुपनखा भगिनी पुष्कर-क्षेत्र ।
कलह की यद्यपि जड़ प्रत्यक्ष,
भरे प्रायश्चित-जलधर नेत्र ।।

कौन जेता, जिसके जयकार—
न डूबे विधवावृन्द-विलाप ।
राम ने किंतु सुधा-रस-कल्प—
बनाये वर, स्वसैन्य के शाप ।।

जगत में वीर्यवान्-विद्वान—
महामानव करुणा की खान ।
शत्रु को देने वाला कौन—
राम सम सुमति-सुगति-सम्मान ।।

न केवल सुना, स्वतः अवलोक,
सूक्ष्मतः अंतरंग में पैठ।
सकल-विधि सकल-समय दिशि-सकल—
रहा कह शंभु-पीठ पर बैठ ॥

राम के रस के अक्षय-स्रोत,
कुरेदा जितना, जितनी बार।
मिली अधिकाधिक बारबार,
मधुरतर मधुर विमल रसधार ॥

हृदय भर-भर आता कर याद—
दृश्य वह, पड़े लखन निरुपाय।
'न लक्ष्मण-हाय, न सीता-हाय'
अधर पर मात्र, 'विभीषण-हाय' ॥

कौन ऐसा शरणागत-पाल,
दीन पर ऐसा किसका राग।
कौन यों मँगला कर सर्वस्व,
खेल सकता जीवन का फाग ॥

कौन तिय का रिपु उससे अधिक,
लिया जिसने शिर का सिंदूर।
लखीं तारा, ये मंदोदरी—
चढ़ातीं सादर प्रभु-पग धूर ॥

इसी से करें आप सब स्वयं—
कथन का सतासत्य अनुमान।
शत्रु की स्तुति, प्रिय का आक्षेप,
मनुज गुण-अवगुण की पहचान ॥

विचारें आप सभी सब भांति,
जगत में कौन राम सा श्रेष्ठ।
ब्रह्म-चिंतक ऋषियों का कथन,
'न नर नरपति रघुपति सुर-ज्येष्ठ' ॥"

रुके ज्यों पलभर को लंकेश,
भरे मन, लगे पूँछने कोर ।
सुधा-सर में विष की सी लहर—
दिखी सहसा ही अंतिम-छोर ।।

कुंभकर्णात्मज मूलक अग्र,
कुटिल कुछ करते कटु-दुर्वाद ।
स्वासनों पर हो-होकर खड़े,
लगे करने अति कुत्सित-नाद ।।

"विभीषण लंका का नृप नहीं,
निशाचर-द्रोही भीरु-लबार ।
उसी की करता असत प्रशस्ति,
हरा जिसने लंका-शृंगार ।।

लंक की तरुणाई में मौन—
अभी है शुद्ध निशाचर-रक्त ।
शिराओं से लावा सा निकल—
विश्व को कर सकता संतप्त ।।

गिरे विश्वासघात के हेतु—
समर में लंकापति दशशीश ।
करे तो आज राम संग्राम—
चुनौती देता रक्षाधीश ।।"

कुपित हो बोली वज्रज्वाल,
खड़ी हो तुरत, सभा के बीच ।
"अरे मूलक ! तू कितना मूर्ख,
न लखता ऊँच-नीच कुछ नीच ।

पुत्र तू जिनका, वे तव पिता,
पूज्य श्रीकुम्भकर्ण बलवान ।
उन्होंने शैया तजकर कहे—
प्रथम क्या वचन, तुझे है ज्ञान ।।

'किया जगदंबा का सिय का हरण,
आपने यद्यपि धर्म-विरुद्ध ।
समय पश्चात्, समय से पूर्व—
उठाया, करने जाता युद्ध ।।

सामने मेरी तो है मृत्यु,
किंतु दशशिर ! यह रखना ध्यान ।
राम के हो तुमने विपरीत—
किया विध्वंस वंश-कल्याण ।।'

अकेले लांघ दुर्ग की भित्ति,
समर में कूदे मार छलांग ।
चढ़े रघुपति-शर ज्वाला-पीठ,
शलभ सा रचा वीर-वर स्वांग ।।

सामने तू क्या उनके अज्ञ !
महोदधि सम्मुख लघु कासार ।
बोल, उनके विचार-बल देख,
तनिक अविचारी मूढ़ ! विचार ।।"

"बैठजा मां ! तू होकर शांत,
बोलकर दे न पुत्र को कष्ट ।
साथ तव कुलटा मंदोदरी,
इसी ने की तेरी मति-भ्रष्ट ।।"

उठे अंगद-मारुति हो उग्र,
खड़े हो गये ऋक्ष-कपिराज ।
भरत का गया धनुष पर हाथ,
दाशपति चला गाज सा गाज ।।

विभीषण शिल सा स्तम्भित हुआ,
उठी वज्रज्वाला कुररीव ।
कु-वय लख बोली मंदोदरी,
अश्रु पी कर, धर धीर अतीव ।।

'विराजें आप, स्व-बालक जान,
निहारें कृपा-दृष्टि रघुनाथ ।"
पुनः मूलक बोला "पा कृपा—
अवध जा अभी इसी के साथ ।।"

उठे प्रभु सुप्त-सिंह से जाग,
बिठाये स्वजन सुजान अधीर ।
समय के फिर बोले अनुसार,
सजल-जलधर स्वर से गंभीर ।।

"सास्त्र होकर भी राम स-शास्त्र,
निजासन पर सब बैठो शांत ।
व्यक्तिगत नहीं किसी से द्वेष,
न तज सकता पर सत्-सिद्धांत ।।

दशानन के वध के पश्चात,
न यद्यपि चढ़ा धनुष पर दाम ।
न इसका अर्थ कदापि परन्तु,
करेगा धनुषस्पर्श न राम ।।

कंध धनु, तूण पूर्णतः पृष्ट,
अग्रतः अधर खेलते मंत्र ।
शिरायें ये भी भरीं न पंक,
साथ ये भी निर्जीव न यंत्र ।।

जानता हूँ सब का सब भांति—
कि कितना ज्ञान और अज्ञान ।
न वे भी छिपे जिन्होंने भरे,
मूलकों से अज्ञों के कान ।।

बहा धरती पर इतना रक्त,
हुए इतने तिय - बाल अनाथ ।
कलह की इतनी धधका आग,
अभी तक सिके न जिनके हाथ ।।

जली रज्जु, गया न पर कौटिल्य,
चुके षड़यंत्रों के फल भोग।
जानते, सिंधु उठाते भित्ति,
न जिनका गया तमस-रति रोग।।

बना डाला राक्षस ऋषि-वंश,
घोर - रावण पंडित दशकंध।
कास पर करते वज्र-विलेप,
मोह-मद ग्रसित अंध के अंध।।

पाठ जिनके पढ़कर त्रिशिरादि,
बने नृप की छाती के रोग।।
भोगकर निर्वासन के भोग,
अंततः अवय बने यम-भोग।।

हृदय का कर देती है मथन,
आज भी मेघनाद की याद।
हुआ प्रतिकूल-परिस्थिति-हेतु,
उसी से सर्वाधिक दुर्वाद।।

लखन के एक-एक शर बसा,
घोर संवर्तक यद्यपि काल।
पा गया वह भी जिससे किन्तु,
पराभव एक बार विकराल।।

लखन ही क्या-हममें से कौन—
न पाया उससे रण उपहास।
बनाया हमें हमारे शिविर,
उसी ने विवश महा-अहिपाश।।

किन्तु तो भी निश्चित्-रूपेण,
वीर था समर - धीर वह कांत।
बना इस वातावरण, सुसौम्य,
नयन-भूषण वह हा! दुर्दान्त।।

प्रथमतः जननी गृहणी पुनः,
डालतीं रहीं पुण्य-संस्कार ।
पंक से पंकज सा खिल उठा,
किया इस विष-बड़वा ने क्षार ॥

सुकोमल कमल-कली सी कलित,
गंग सी विमल, जुही की बेल ।
चिता पर जब सुलोचना चढ़ी—
लिये पति, गगन उषा सी खेल ॥

उष्ण निःश्वास खींच रह गये,
हमारे झुके शीश, सग्लानि ।
सो गये निराहार हम मौन,
मान निज परम स्वजन की हानि ॥

और इस ओर देख वंदिनी—
सिया को, पातीं दुख अपार ।
मनातीं प्रिय को मंदोदरी—
रहीं, आंचल निशि-दिवस पसार ॥

अमित देवासुर-समर-चमूप,
वृद्ध-वर माल्यवान बलवान ।
अकंपन - शुक - सारण - मारीच,
मनाते रहे गँवा कर मान ॥

लगे हितु अहितु अहितु हितु सरिस,
लिये यों अजित काल ने ज़ीत ।
अस्तु, अब करो आज की बात,
बिसारो बीता हुआ अतीत ॥

जियो, जीने दो सब को अभय,
यही है मानवता का लक्ष्य ।
देवता-पूजन पद्धति आदि,
सर्वथा मन-मति-विषय अतर्क्य ॥

सुफल शुभ, शुभ कर्मों का सदा,
अशुभ का कुफल अशुभ, अविवाद ।
यही अनुभव, जग का व्यवहार,
यही निगमागम करते नाद ।।

सहित परहित निज सिद्धि सुधर्म,
सिद्धि परपीड़न - विरहित धर्म ।
पराहित निज-हित अधम - अधर्म,
अहित-हित पाप-पुण्य का मर्म ।।

न निशिचर-आर्य पृथक दो जाति,
पड़े युग-पक्षों सम युग - नाम ।
बना ज्यों कृष्ण-शुक्ल का भेद,
चन्द्रमा हरण-वरण का काम ।।

आदि - कुलपुरुष सभी के साधु,
सत्व से आर्य, तमस से रक्ष ।
चाहता ज्यों निज-प्रति व्यवहार–
करे वह नर, तो सुर समकक्ष ।।

वैर का कई वार आ चुका,
आपके सम्मुख दुष्परिणाम ।
प्रेम का चखकर निश्छल स्वाद,
सोचना फिर, क्या कहता राम ।।

मनुज हो मनुज-विमुख मत बनो,
जगाने बन्द करो शमशान ।
न पूजो प्रेत निराशा-निशा,
उषा का साशा खड़ा विहान ।।

आपका परम धन्य सौभाग्य,
मिले श्रीमान विभीषण भूप ।
तिरोहित हुआ भुवन-तम-तिमिर,
इन्हीं की विमल भक्ति की धूप ।।

प्रजा का रखते ये ज्यों मान,
प्रजा भी देती इनको मान ।
कामना, लाये लंक वसंत,
परस्पर मानादान-प्रदान ।।"

दोहा

जयकारों के मध्य प्रभु, हुए स्वासनासीन ।
मंत्र मुग्ध सी सब सभा, हुई शांत-रसलीन ।।
खड़ी हुई मंदोदरी, करती हुई प्रणाम ।
कहा "विसर्जन कर सभा, चलें धाम सुखधाम ।।"
पहुँचे अंतपुर नृपति, लिये विभीषण साथ ।
वंदन कर मंदोदरी, बोली नत दृग-माथ ।।

ऊर्मिका

"सभा में देव ! अशोभन वचन,
आज जो बोला मूलक-बाल ।
दुखित है उससे लंक समस्त,
मांगती क्षमा झुकाकर भाल ।।

राजमाता ही रहीं सदैव,
वंश के विपद्-वंश की मूल ।
करा उनको पितु-जन से पृथक,
किया खल, निज पितु कुल अनुकूल ।।

न इतने बुरे कभी थे स्वामि,
रही मैं तो अति चरण-समीप ।
कुंडली मार गई सब चाट,
यही बस छिटके एक महीप ।।

गये क्या कुंभकर्ण प्रभु ! बोल,
मेघसुत कितनी माना ग्लानि ।
कहे भी हानि, अनकहे हानि,
हुई क्यों विमल वंश की हानि ।।

न इनका खप्पर अब तक भरा,
सोचतीं सदा वक्र ही वक्र ।
कभी तो लगता जननी-रूप—
डाकिनी रचती नित्य कुचक्र ।।

बसे अलका में जाकर ज्येष्ठ,
इन्हीं के कारण लंका त्याग ।
गया दादाजी का अनुराग,
श्वशुर-श्री ले बैठे वैराग ।।

मध्य - मातामह माली हुए,
समर जब विष्णु - चक्र से छिन्न ।
निशाचर विकट छिपे पाताल,
विगत उत्साह स्वशोणित-क्लिन्न ।।

सुमाली मातामह-लघु पुनः,
कैकसी कन्या का कर थाम ।
सबल-हितु-हित बहु नरपति-धाम—
बोलते फिरे "बना लो वाम ।।"

नृपों, के द्वार मिले सब बन्द
तभी आया ऋषियों का ध्यान ।
विश्रवाश्रम देखे अलकेश—
एक दिन बैठे पुष्पक-यान ।।

गये छिपकर पितु-पुत्री बैठ,
धनद का जब देखा प्रस्थान ।
कहा 'जा बेटी ! ऋषि से मांग,
अभी निशि-मुख-वेला संतान ।।'

त्याग कर लोक-लाज शुचि-शील,
अग्निहोत्रादि-निरत ऋषि-अंक ।
बैठकर बोली 'दो संतान,'
स्वैरिणी सी हँसकर निश्शंक ।।

न जाने मिला गया यह कौन,
बनाकर धर्म, धर्म में पाप ।
न लौटाओ यों स्त्री को कभी,
अन्यथा घोर पड़ेगा शाप ।।

लाज की बात, कहूं क्या देव !,
फँसे इस अपरिपक्व - सिद्धांत ।
गये सायं-संध्यादिक त्याग,
कैकसी को ले ऋषि एकांत ।।

उसी दारुण-वेला का कर्म,
स्वामि वे जन्मे दारुण-कर्म ।
अंततः फिर भी ऋषि के अंश—
जानते थे क्या धर्म-अधर्म ।।

पधारे एक दिवस अलकेश,
चले ये करने चरणस्पर्श ।
"मूर्ख ! ये तेरा भ्रात न, शत्रु,"
तुरत रोका भर घोर-अमर्ष ।।

पढ़ाते जो दिन में पितु वेद,
भाष्य ये करतीं निशि विपरीत ।
उसी की संज्ञा रावण-भाष्य,
आज जो वाम-मार्ग का गीत ।।

घोषणा हुई भुवन में पुनः,
देवता लिंगराज-शिव एक ।
एक सच्छास्त्र दशानन-भाष्य,
धर्म, इन्द्रिय-सुखकारि-विवेक ।।

अग्नि का तेज, सूर्य की ज्योति,
वायु की प्रगति, काल का काल ।
वरुणरस-कोष, मेघदल-घोष,
इन्द्र का इन्द्र, धराधर व्याल ।।

प्रकृति का जीव, अमृत की नींव.
विधाता का वरदान विशाल ।
विष्णु का शत्रु, शंभु का शिष्य,
निखिल-सम्राट, एक दशभाल ।।

राज-रुष पवि सा उन पर पड़ा,
न माने जो यह ऋषि-समुदाय ।
अनेकों भूमि-विगत हो गये,
भूमि-गत हुए शेष निरुपाय ।।

बने गाथा गुरुकुल प्राचीन,
चढ़ीं पुर-पुर विद्यालय बाढ़ ।
बने भार्गव गुरु जो शिशु-हृदय—
रोपते सुर-शत्रुता प्रगाढ़ ।।

वेद के नाम अवैदिक - धर्म,
घोटता चला धर्म की स्वांस ।
यज्ञ के नाम हुए वे यज्ञ,
रुँदा जिनमें खुलकर नर-मांस ।।

धारकर सदाचार का रूप,
लगा मँडराने स्वेच्छाचार ।
बना पौरुष का जय-जयकार,
अबल-अबलाओं का चित्कार ।।

गई उठ निज-पर की पहिचान,
हुआ वह धुँआधार संहार ।
और तो और भ्रात के हाथ,
मिला भगिनी का सेंदुर क्षार ।।

कालकेयों के रण में दिये—
स्वामि ने विद्युजिव्ह पछाड़ ।
मिला जब समाचार यह दुखद—
रो उठी शूर्पणखा नभ फाड़ ।।

आ गई माता देने स्वयं—
सुता को अति अद्भुत उपदेश ।
निशिचरीं विधवा होतीं नहीं,
गूंथ नव-नव सुमनावलि केश ।।

लतावलि लसित सुबेल-सुमेरु,
चन्द्रशाला में सुंदर सेज ।
सजाकर आई अभी सुपुत्रि !
कई सुन्दर युवकों को भेज ।।

बना निशि-सहचर चुन-चुन तरुण,
रमण कर, भुला विगत का शोक ।
बना दे विजन-भूधरागार-
केलि-कुल आलोकित रति-लोक ।।'

न माता कभी कुमाता सुनी,
लखे थे होते पूत कपूत ।
यहां तो किंतु हुआ विपरीत,
बनी मां अनाचार की दूत ।।

हुआ फिर क्या न, जिसे मैं कहूँ,
निशिचराचारों पर पवि-पात ।
कान से कानों का बन विषय,
बना सहसा मुख-मुख की बात ।।

वीथि-पथ चर्चा नित्य नवीन,
लगे करने नवयुवक अनेक ।
धारने नृप-भगिनीश उपाधि,
नगर में लगे एक से एक ।।

हुआ शासन अनुशासन-हीन,
लगे रहने नृप ही नतनेत्र।
अंत में बहिन बसादी दूर,
द्वीप है वह शूर्पारक-क्षेत्र ।।

कराकर अंग-भंग जिस घड़ी,
ननद ने पुर में किया प्रवेश।
विवेकी-जन के मन कह उठे,
आ गया फिर नव- दारुण-क्लेश ।।

भर्त्सना कर भगिनी की स्वामि,
आपसे करने चले अनीक।
किंतु आ सम्मुख बोलीं अंब,
'भीरु ! हर भीरु, रक्षकुल-लीक ।।''

उन्हीने रचकर सकल प्रपंच,
दिया मृग-हित मातुल का नाम।
जानती थीं लंका में एक—
वृद्ध यह, जिसने देखे राम ।।

और यह भी था उन पर प्रकट,
राम-प्रति है मातुल में भक्ति।
न कर पाये भविष्य में विघ्न,
अतः हो प्रथम नष्ट यह शक्ति ।।

बने वे जैसे कपट कुरंग,
हुआ त्यों, ज्यों होना था अंत।
आपसे छिपा न कुछ रघुनाथ !
अंततः हुए सिद्ध वे संत ।।

लवण के कण-कण का ऋण चुका,
वक्ष पर हँसकर खाकर बाण।
गये ज्ञानी-जन के दृग खोल,
चढ़ाकर बलिवेदी पर प्राण ।।

खुले क्या, नेत्र फूट ही गये,
खा गया कुल का कुल ही काल ।
लंक - महिषी मय-कुल-मणि मंजु,
आज हेमन्त-कुरुह की डाल ।।-

बनेगी प्रेतिन दशशिर-प्रिया,
बिना तर्पण दशगात्र-विधान ।
भग्न-भाला का भग्न कपाल—
करेगा कौन पुत्र, भगवान ।।

देख मम बार-बार अपमान,
क्षुब्ध हो इंद्रजीत सा वीर ।
चबाकर अधर, भींच कर दांत,
रह गया नयनों में भर नीर ।।

कहा मैंने, समझा रे! तात,
पुत्र बोला 'माता! सब व्यर्थ ।
समझ कर मैं तो बैठा अंत,
देह पितु-दत्त पिता के अर्थ ।।

मिलेगा जिस दिन भी निर्देश,
सजा कर शस्त्र, जूझ कर खेत ।
वीरगति करके प्राप्त बलात,
बनूंगा जन्म-भूमि का रेत ।।

उचित क्या, समुचित लघु-पितृव्य,
न चल सकता पर उनकी राह ।
हृदय दूं कैसे उनका तोड़,
कटी जिन पूज्य पिता की बांह ।।

युद्ध का चढ़ा उन्हें उन्माद,
अंत है जिसका स्पष्ट विषाद ।
नाश निशिचर-कुल का इस भांति,
रचा विधि ने, क्यों व्यर्थ विवाद, ।।

हुई अक्षरशः वाणी सत्य,
गया प्रणपाल पुत्र, दे प्राण ।
मुकुट-मणि चरण-पीठ में लगी,
हृदय का क्लेश एक यह बाण ।।

लंक का वह वसंत-वन ललित,
बना इनके ही हाथ मसान ।
लगातीं फिरतीं फिर भी आग,
शंभु जाने क्या बैठीं ठान ।।

रही चिंताकुल उनके समय,
आज उनके पीछे भयभीत ।
करेगा कल क्या जाने दैव,
खड़ी गृह-कलह, रक्त मुख चीत ।।"

दोहा

गिरी एक बाला तभी, आकर मयजा-अंक ।
चंपकवर्णी शशिमुखी, मृगनयनी तनु-लंक ।।
भाल स्वेद अति हांफती, अरुणिम मंजु कपोल ।
लगी देखने राम को, भीत विलोचन खोल ।।
बोली मयजा उर लगा, "भूली नमन प्रणाम ।
देख बावली ! सामने, बैठे प्रभु श्रीराम ।।
उस सुलोचना की सुता, यही एक रघुनाथ ।
नाम रसानी, प्रीति अति, पितामही के साथ ।।"
पद-वंदन करने बढ़ी, प्रभु ने पकड़े हाथ ।
"सुता न करतीं पद-नमन, मनुज-मात्र की माथ ।।"

सोरठा

दे प्रमुदित आशीश, निकट बिठा बोले नृपति ।
"सुन्दर वर दे ईश, रानी बने सुहासिनी ।।"

दोहा

गद्गद् हो मंदोदरी, बोली "रघुकुल-नाथ ।
एक कामना, शीघ्र हों-इसके पीले हाथ ।।"
बोले प्रभु "है योग्यवर, कौन महिषि ! तव दृष्टि ।"
बोली "वही सुयोग्य वर, जो राघव की सृष्टि ।।
मैं अबला खोजूं कहां, पिता पितामह आप ।
मुझे गंग मेरी मिली, अब क्यों सहूँ त्रिताप ।।"
प्रमुदित रघुपति का हिला, स्वीकृति-सूचक भाल ।
"कन्या - रचना पूर्व ही, वर रचता विधि-जाल ।।
सुता हमारी लाडली, सज सिंदूर सुभाल ।
बैठेगी अति शीघ्र ही, सुखद शुभद सुखपाल ।।"
मुख-मंडल करतल छिपा, चली रसानी भाग ।
पग पद-पद भू पर लगे, भाग्य गया ज्यों जाग ।।

ऊर्मिका

पुनः बोले रघुपति "हां महिषि !
कहो किस पर केन्द्रित है ध्यान ।
गोत्र - कुल - चरित-शुद्धचारित्र्य –
मंजु - मृदु - विज्ञ- धीर-बलवान ।।"

'एक प्रभु ! है तो मेरी दृष्टि,
न जाने स्वीकृति देगा या न ।
आपको यदि माया सम्बन्ध,
रखेंगे सब निश्चित् तव मान ।।

रसानी देख रही थी उसे,
सभा में छिपा-छिपाकर दृष्टि ।
किंतु वह लगा धरापर दृष्टि,
पी रहा था मरु सा मृदु-वृष्टि ।।

गोत्र - कुल - चरित-शुद्धचारित्र्य—
मंजु - मृदु - विज्ञ - धीर-बलवान ।
आपने जो वर-लक्षण कहे,
सभी समुचित उसमें मतिमान ।।

नियम भी राजनीति का यही,
पराभव जिससे पाये वंश ।
सुखद सम्बन्ध बनाने हेतु,
सौंपदे उसे भावमय अंश ।।

पराजित-विजित गये सब, किंतु—
न जाता कभी सत्य-सिद्धांत ।
अमर वह कल्प-कल्प में अजर—
न छू पाता उसको कल्पांत ।।"

मौन हो बोली फिर शिर उठा,
"समझ तो गये आप रघुनाथ ।"
राम बोले "समझा तो, किन्तु—
आप फिर भी दो स्मृति का साथ ।।"

हँसी फिर बोली "मधवा गोत्र,
कीश-कुल, लंक-विदित सु-चरित्र ।
मंजु - मृदु - सभाचतुर - प्रणअचल,
मित्र का मित्र, अनीक शमित्र ।।

परम बलवान बालि का पुत्र,
तारिका दृग तारों का व्योम ।
आपका मुँहबोला प्रिय पुत्र,
तरुण अंगद गुणमाला-स्तोम ।।"

"परम पारखी आप साम्राज्ञि !
आपका छांटा छांटे कौन ।
रत्न भी पास, मुकुट भी हाथ,
प्रश्न भी नहीं, जड़ेगा कौन ।।"

विभीषण अट्टहास कर उठे,
"मिलाया क्या जोड़ी ने जोड़ ।
भूप भी पास, पुरोहित साथ,
कौन सकता मुहूर्त शुभ-छोड़ ।"

"बुलालो प्रिय ! कपिपति को शीघ्र,"
चले आज्ञा पा दास तुरंत ।
उपस्थित हुए शीघ्र सुग्रीव,
"दास को क्या आज्ञा श्रीमंत ।।"

बिठाकर बोले रघुपति पास,
थाम किष्किंधाधिप का कंध ।
"लगेगा कैसा प्रिय ! यदि जुड़े—
कीशकुल-निशिचरकुल सम्बन्ध ।।"

जोड़कर कर बोले सुग्रीव,
"आपसे प्रभु ! सारे सम्बन्ध ।
जहां ज्यों जो चाहे दो जोड़,
आपके उपवन की हम गंध ।।"

"पूछ लो अंगद से भी किन्तु—
रसानी पर ले लोचन डाल ।"
आप पर डाला सारा भार,
कहां अब क्या डालें प्रतिपाल ।।

पिता दोनों के राजाराम,
नाथ दोनों के श्रीरघुनाथ ।।
हाथ दोनों के दोनों हाथ—
थाम, दो थमा हाथ में हाथ ।।

मिले सुग्रीव विभीषण बहुत,
मिलेंगे बहुत, बहुत दिन नाथ ।
अलौकिक-प्रिय सांसारिक-रीति—
मिलें संसार अलौकिक-हाथ ।।

आपकी यह आज्ञा, यह सही,
बढ़ो लंकापति ! प्रिय सम्बन्धि ।
न भूलोग दाता ! यह भिक्षु,
वचन दो लग कर हिय संबंधि ।।

आप तो दादा, मैं पितृव्य,
आपका यों भी मान विशेष ।
उपल मैं, आप सरित प्रभु - राह,
आपका यों भी स्थान विशेष ।।"

सोरठा

मिले रक्ष कपिराज, विह्वल बाँह पसार कर ।
"धन्य हुए हम आज" बोली मयजा मुदित हो ।।

दोहा

"प्रातः वेदविधान से, हो सम्पन्न विवाह ।
स्वीकृति दे नृप युगल सह, उठे अवध-नरनाह ।।
किये पयोनिधि-पुलिन पर, कृत्य सांध्यकालीन ।
चले दिखाने कनकपुर, निशिचरराज प्रवीण ।।

लंकादर्शन

ऊर्मिका

चला लंका-पथ पर रथ दौड़,
दिखाता प्रभु को पुर साल्हाद ।
एक से एक मनोहर दिव्य—
कनकमय मणि-मंडित प्रासाद ।।

कर रहीं अट्टहास सी अटा,
अटा में छितरातीं छवि-पुंज ।
सजा ज्यों सतरँगधनु शरपंच—
खेलते सुरपति शशि नभ-कुंज ।।

रंग-सौष्ठव रचना-अनुपात,
सकल ऋतु-सुख-प्रद शिल्प-विधान ।
वीथि-पथ-हाट-वाटिका भरा,
कनकपुर लगा देव-निर्माण ।।

दुर्ग-दक्षिण अशोक-वाटिका,
सुशोभित ऋतु-ऋतु के फल-फूल ।
विमल-जल भरे कुमुद-कासार,
पारदर्शी पारदी दुकूल ।।

नाचतीं लहरें पवन-प्रसंग,
चंद्रमणिमय मंजुल सोपान ।
अनावृत हो ज्यों प्रमदा-प्रकृति—
कौमुदी मलकर करती स्नान ।।

वाटिका में कुछ हल-चल देख,
पास ही कुटी, खोलकर द्वार ।
दीर्घकाया पृथुलांगा एक—
प्रौढ़ता-सीमा करती पार ।।

आ गई प्रभु के सम्मुख अभय,
देखने लगी चकित हो वेष ।
असुध सी बोली "यदि यह सत्य—
आप ही तो साकेत-नरेश ।।"

"मनस्विनि त्रिजटे ! तव तप सत्य,
सत्य ही महादेवि ! मैं राम ।"
राम के सुनकर मनहर वचन,
किया प्रभु को साष्टांग प्रणाम ।।

पुनः बोली "कैसे प्रभु आप—
गये इस लघु-दासी को जान।"
तुम्हें दी जिसने मम पहचान,
उसी ने ही दी तव पहचान॥"

हँसे सब सुनकर प्रभु की उक्ति,
झुका सादर त्रिजटा का माथ।
सजल-दृग बोली "तेरह-मास,
मैथिली रहीं यहीं रघुनाथ॥"

चली लेकर प्रभु-परिकर साथ!
कहा "तरुवर यह वही अशोक।
इसी के तले अंधतामिस्र—
चीरकर प्रकटा सत्यालोक॥

वही वह पुण्य-स्फटिक वेदिका,
जहाँ कर हिरणाहेरी ध्यान।
विराजीं, रख तन-कारागार—
नयन-यंत्रित अभिमंत्रित-प्राण॥

स्वयं सरमा रानी ने नाथ,
प्रतिष्ठित की यह देवी-मूर्ति।
वही अनुपात, वही अनुताप,
वही बस, नहीं प्राण की पूर्ति॥

नयन वैसे ही नमित सतर्क,
सशंकित, भरे अमित विश्वास।
चढ़े कूर्पर पर कंगन-युगल,
जटा-वेणी का वही विलास॥

वाम पर दक्षिण करतल जानु,
अधर वैसे ही करते स्पर्श।
धीर देतीं "कर! कर तव स्पर्श,
मिले जो ज्यों, देंगे फिर दर्श॥"

पवन-सुत मुख से निकला "सत्य",
खड़े रह गये मौन ही राम ।
सजल दृग झुके धरा पर सभी,
भरत को करते देख प्रणाम ।।

जानकी-पदरज मस्तक लगा,
भाव - विह्वल केकई-कुमार ।
चाह कर भी कुछ सके न बोल,
स्वतः वह चलीं दृगों से धार ।।

"आप ही से प्रसवनि ! रघुवंश—
न केवल, बल्कि सकल संसार ।
सुखी - सुस्थिर - समृद्ध - भयहीन,
प्राप्त कर शाश्वत-धर्माधार ।।

दोहा

बलिहारी शत बार शत, अक्षयवट-मंदार ।
अंब-निवास अशोक ! तव, वंदन बारम्बार ।।
धर्म सूर्य का सत्य तू, उदय-सुमेरु गिरीश ।
सत्य-सृष्टि का धर्मतः, धारक धन्य अहीश ।।"
"आईं सिय वनवासिनी, करतीं यहीं विलाप ।
गईं यहीं से अवध, श्री - लेकर हर्ष अमाप ।।"
कहती, दिखलाती हुई, सकल वाटिका स्थान ।
परम मुदित त्रिजटा चली, ले प्रभु-निचय स-मान ।।

ऊर्मिका

अंजनीलाल - पराक्रम - भूमि—
यही वह कदली-वन रघुनाथ ।
अक्षयादिक युवकों ने दिया,
जहां नृपहठ-वेदी पर माथ ।।

मंजु मणि-सोपानों के मध्य,
एक जो दिखता वह पाषाण ।
उसी पर तारों की श्रति छांह,
किया करती थीं श्री नित स्नान ।।

निमिष भर में ही कर तन-कृत्य,
बैठ जाती थीं आ निज स्थान ।
स्वपट जातीं निचोड़ती, स्वतः—
अधर करते जाते प्रभु-गान ।।"

चले फिर-फिर लखते, दृग फिरा—
नमन ले त्रिजटा का रघुवीर ।
गहन वन में योजन भर दूर,
यान पहुँचा गव्हर के तीर ।।

सुबेलादि-दर्शन

विभीषण बोले "प्रियवर भरत !
यही है निकुम्भिला का द्वार ।
उपेन्द्रानुज से इंद्रामित्र,
यहीं पर गया समर में हार ।।

राम की निष्कलंक कीर्तीव,
कौमुदी सी बिखराती हास ।
तुंग-वेदी पर दिव्य-समाधि,
भव्य उस यज्ञ-कुंड के पास ।।

हुई थी वधु सलोचना सती,
यहीं लेकर निज प्रिय-अवशेष ।
उतर रथ से, उतार पगरखी,
चले पुष्पार्पण कर अवधेश ।।

देखते ओर-छोर से लंक,
बोलते शब्द कभी दो-चार।
दीप्त-स्मृति-द्युति-प्रदीप पंक्ति में—
बनाते वीथि, विवेकागार॥

भरी निशि पहुँचे शैल सुबेल,
शृंग पहिचाने प्रभु अविलंब।
"यही नप!" "यही यही नृपराज!
आपका तुंग कीर्ति-ध्वज-खंब॥

श्रीचरण - लंक - प्रवासावास,
पाप-ह्रासक सद्धर्मोल्लास।
छत्र चँवरों सा श्रीफल-कुंज,
सत्यसत्ता-शतपत्र विकास॥

यही वह शिला-शिरोमणि शिला,
सुनय की अभय सनाह समान।
जहां से दंभ-छत्र-ताटंक-
विभंजक चला प्रथम तव बाण॥"

कहा प्रभु ने सुन लंकप - गिरा,
देखते हुए सुदृढ़ गढ़ लंक।
"साथ क्या बसते यहाँ सदैव,
घोर-घनगर्जन मंजु-मयंक॥"

"एक सा दिवस न होता अन्य",
विभीषण बोले "रघुकुलनाथ।
प्रमादोन्माद-प्रदर्शन यह न,
समर्पण-हेतु झुका यह माथ॥

रसानी दुहिता का कल देव!
द्विजों ने निश्चित किया विवाह ।
उसी मांगलिक-मोद का सिंधु—
खिला लख राम-चन्द्र सोत्साह ।।"

हँसे खिलखिला जानकीनाथ,
"सखा-प्रियवर ! तुम परम सुजान ।
धर्म में अर्थ, अर्थ में काम,
काम में निष्कलंक निर्वाण ।।

दोहा

लखते पथ-पथ अर्ध-निशि, मुदित प्रकाश-विलास ।
करते विविध-विनोद प्रभु, लौटे राज-निवास ।।
साग्रह सूक्ष्माहार कर, बोले श्रुति-मुद-मूल ।
काल-कला अनुकूल कर, काल-कला-अनुकूल ।।
"ढली अर्ध-निशि, श्रमित सब, प्रातः पुण्य-विवाह ।
शयन करें परिकर सहित, ऋक्ष-कीश नरनाह ।।
पदवंदन कर राम के, चले सकल सोल्लास ।
पवनपुत्र-अंगद-भरत रहे, विभीषण पास ।।
"जिस कारागृह में रहे, सुरगण बंदी-वेष ।
करूँ शयन इस निशि वहीं, इच्छा लंकनरेश ।।"
झुका शीश, छलके नयन, वदन हो गया म्लान ।
चकित विभीषण ने कहा "क्या इच्छा भगवान ।।"
"करो शोच संकोच मत, विनय सुहृद ! लो मान ।
करें भरत-अंगद शयन, इस निश्चित सुस्थान ।।"
भरत-बालिसुत रह गये मौन, मान आदेश ।
रघुपति को लेकर चले, मन मारे लंकेश ।।

लंका-कारागार

दोहा

ज्योति-दंड दे कीश - कर, स्वयं जोत लघुयान ।
किया विभीषण ने तुरत, ले प्रभु को प्रस्थान ।।
दो योजन दक्षिण-दिशा, घिरा घोर कांतार ।
पंक-नाकु-शार्कर-कुपथ, मकरी-दंश अपार ।।

ऊर्मिका

दुर्ग में दुर्गम दुर्ग समान,
चूमतीं गगन वज्र प्राचीर ।
जाल पर जाल, भुजग विकराल,
काल से फिरते अमित अधीर ।।

रसातलगामी दिग्भ्रमकारि,
पुनः आरोह, असीम ढलान ।
रिस रहा कण-कण दधि का क्षार,
हरण करता प्राणों का मान ।

रखे प्रत्येक नरक का नाम,
धार प्रत्यक्ष नरक का रूप ।
निपट संकीर्ण प्रकोष्ठी-व्यूह,
घोर अंधताभिश्र के कूप ।।

खड़े वीभत्स-भयानक-रौद्र,
छीन रसराजेश्वर-अधिकार ।
जगतपीड़क रावण के सदृश,
लगा रावण का कारागार ।।

खड़े रह गये सहम कर मौन,
विपल भर शूर-शिरोमणि राम ।
बढ़े फिर कहते "राजन ! कहो,
रहे सुर कौन-कौन किस धाम ।।"

"अँधेरी अतिशय सीलन भरी,
घोर कँकरीली विषम कठोर ।
उसी में वरुणदेव प्रभु ! रहे,
प्रथम जो छूट गई उस छोर ।।

द्वार वातायन-विरहित भित्ति—
मढ़ी, जो रुरुई अंड-प्रमाण ।
रहे शनिदेव इसी में वंदि,
शून्य में नृपति त्रिशंकु समान ।।

निकट असिकटक जटित अतिविकट,
धैर्य का धीरज करती शांत ।
उसी में अबला से हो दीन,
रहे दुरतिक्रम देव कृतान्त ।।

विमंडित अस्थिमाल, वह पृथक—
भुजग-कोटर सी कठिन प्रवेश ।
कसे ऐरावतगज-शृंखला,
वज्रधर शत-क्रतु अमर-प्रजेश ।।

रहे बन मेघनाद के वंदि,
उसी में वे सुरेन्द्र, रघुवीर ।
यहाँ का भीगा कण प्रत्येक,
साधु-शोणित स्त्री-शिशु-दृग-नीर ।।

देव - लक्ष्मी का शुभ सिंदूर,
बना इन कांतारों की धूल ।
गईं मसलीं कलियां-अधखिलीं,
यहीं प्रभु ! बनते-बनते फूल ।।

इन्हीं पथ-चट्टानों के तले—
पड़ी मानवता लिये समाधि ।
अबाधित दानवता की ध्वजा—
इन्हीं पर फहराई निर्व्याधि ॥"

यान से उतर पड़े रघुवीर,
भ्रकुटि हो उठी भयंकर वक्र ।
दशन काटने लगे अधराग्र,
धमनियों में धधका दवचक्र ॥

लगा फिर होने उन्नत भाल,
निरन्तर नत भर आये नेत्र,
बिलखकर लगे लोटने भूमि,
लहरता ज्यों लहरों में वेत्र ॥

"देवगण ! क्षमा करें अपराध,
खड़ा तव अपराधी मैं राम ।
परम लज्जित तव सम्मुख नमित,
करें प्रमुदित निज लोचन-वाम ॥

आपके कठिन कष्ट का मूल,
पातकी घोर-प्रमादागार ।
न आ पाया क्यों हाय ! तुरन्त,
कौशिकाश्रम से ही धनु धार ॥

छत्र चँवरासन कुहरासन्न—
शून्य का जान न पाया भोर ।
जगा मां कैकैई ने दिया,
खींच ओहार राजसी घोर ॥

उसी की कृपा-दृष्टि की वृष्टि,
हुई तव हरित मनोरथ-वेलि ।
न्याय तव पर कितना प्रतिकूल,
उसी के यश से करते केलि ॥

राम को चाहे दो मत क्षमा,
दंड दो पल-पल भरकर पेट ।
किंतु मां के यश-शशि से तुरत—
अभागिन लो यह अमा समेट ।।

याचना करता आंचल किये,
क्षमा कर दो अनजानी भूल ।
राम के ले लो चाहे प्राण,
करो पर हृदय-शूल निर्मूल ।।"

देख रघुपति को अतिशय व्यथित,
भरे मारुति के लोचन नीर ।
विभीषण बोले बरबस उठा,
"वीरवर-अधिपति ! आप अधीर ।।

धरा को धीरज देगा कौन,
धैर्य किससे धारेगा धर्म ।
बिँधा यदि सीतापति का मर्म,
जगत का होगा मर्म अवर्म ।।

पूंछ लो सजल स्वलोचन कोर,
देखकर निज रचना की ओर ।
विगत-निशि विगत-प्राय निशि लीन—
कीजिये, वंदन करता भोर ।।"

राम बोले "ये कारागार,
बने प्रिय ! पावन देवागार ।
धर्म की तपोभूमि यह, सत्य—
साधना यहीं हुई साकार ।।"

बढ़ा ज्यों ही रघुपति का यान,
पार करता वन-पथ संकीर्ण ।
दिखा सम्मुख बलि-बंधन-कारि,
भव्य वामन-विग्रह अति जीर्ण ।।

विभीषण बोले प्रभु को देख,
"नाथ ! यह वह विराट की मूर्ति ।
हुआ करती थी जिससे कभी,
सुधर्मा - सभा - सुशोभापूर्ति ॥

विजय कर मेघनाद सुरलोक
इन्हें लाया निज रथ में डाल ।
रहे दिख स्थान-स्थान जो छिद्र,
जड़े थे दिव्य सुरत्न-कषाल ॥

ठहर पाते थे सम्मुख दृग न,
लजाती दीप्ति अमित रवि-माल ॥
जड़ाये वे सुलोचना स्नुषा—
पायलों में रघुनाथ ! निकाल ॥"

राम बोले "रावण के मुकुट—
रत्न से कर अंगांग सुपूर्ति ।
चढ़ा दो ससम्मान मम यान—
कराकर स्नान, त्रिविक्रम मूर्ति ॥"

दोहा

पहुँचे सागर-तीर पर, इधर प्रात रघुनाथ ।
उधर घटी घटना पृथक, युवराजों के साथ ॥

कैकसी

रोला

करते प्रभु गुण-गान, स्मरण कर कथा-पुरानी ।
कहने निज-निज लगे परस्पर करुण कहानी ॥
"मुझ सा पापी कौन" केकयी - नंदन बोले ।
"जिसके कारण स्वामि-स्वामिनी वन-वन डोले ॥

सहा कौनसा कष्ट न नष्ट हुआ क्या-क्या प्रिय ।
परम वंदना योग्य,सियाप्रिय विमल मृदुल-हिय ॥
करदें वज्र विदीर्ण हुईं वे - वे दुर्घटना ।
पर प्रभु मन पर रचा न पाईं अल्प-अल्पना ॥
साधु-सभा जिस भांति सदा करते मम वर्णन ।
अर्पित मन पल- विपल लजाता, होता अर्पण ॥
दे स्वभाग्य को शाप, आप फिर करता वंदन ।
किस सुपुण्य से मिले तुझे स्वामी रघुनंदन ॥
किस माता से जन्म, कौनसी बनी कुकरनी ।
कैसे अग्रज मिले स्वयं अनुकम्पा अपनी ॥
निज पादाम्बुज-कृपा कुपथ-रज मुकुट चढ़ाई ।
हुए न होने हैं न, राम राजा से भाई ॥
प्रिय-वर कपिवर! सत्य,न नर रघुवर,परमेश्वर ।"
कहते-कहते बने, भरत के लोचन निर्झर ॥
अंगद बोले "नाथ ! आप तो बंधु नाथ के ।
खेले-खाये-पढ़े - विवाहे साथ-साथ के ॥
मेरी ओर परन्तु विपल-भर तनिक निहारो ।
क्या कल, किसका पुत्र,कौनसा सुगुण विचारो ॥
जिसके कारण हुई मलिन, भारत-भू पावन ।
उस पामर का अंश, बताते अकुलाता मन ॥
गिरिवासी कुल अर्ध-सभ्य फल -मूलाहारी ।
जानी जाती भोग-वस्तु ही जिनमें नारी ॥
रिपु का बालक सोऽपि ज्ञान-बलहीन निराश्रित ।
कब किसने सस्नेह राम-सम किया समादृत ॥
पितु जाना जाना न जिन्हें पाकर मैं, पलभर ।
वे अनाथ के नाथ, अकारण करुणा-सागर ॥
रामचन्द्र राजाधिराज जग के, मम स्वामी ।
इच्छाओं से प्रथम पूर्ति-कर, अन्तर्यामी ॥

इतनी क्षमता-ममता-समता किसमें त्रिभुवन ।
तैरे जिनके नाम, सलिल पर तरि से पाहन ॥
जिनसे वैरि न द्वेष चाह कर भी कर पाता ।
रँगा रक्त में, पगा प्रीति-रस प्राण चढ़ाता ॥
पितु-अंतिमक्षण स्मरण मुझे, घटना कल की सी ।
धसा प्रखर-शर वक्ष, मात्र दिखती कलगी सी ॥
कण-कण पीड़ा कठिन, रक्त-निर्झरिणी झरतीं ।
पल-पल पलकें सकुच, प्रेम से पलटी पड़तीं ॥
उस क्षण कहता कौन, चले यह प्राण गँवाने ।
ज्यों परमात्मा खड़े निजात्मा विदा कराने ॥
देखे अमित अहेर-देह-हर्तार अहेरी ।
पर उस दिन तो लखी, अनोखी बजती भेरी ॥
पीड़ित की पीड़ा पीड़क की पुतली पलती ।
पीड़ित को पीड़ित पीड़क प्रति-पीड़ा करती ॥
लगा, राम का बाण राम के लगा हृदय में ।
हुआ सहोदर-स्नेह सु-भाव पराजय-जय में ॥
जिस क्षण मम कर थाम, थमाया नाथ-हाथ में ।
रंच मात्र भी दिखा अपरिचयपन न नाथ में ॥
लगा, पिता ने सत्य पिता को, सत्य दिखाया ।
प्रभु की तो क्या बात, सत्य-सुत सा अपनाया ॥
बरसाती सस्नेह-स्नेह जो प्रतिपल कण-कण ।
दे सुदैव वरदान, लखूं वह प्रभु-छवि क्षण-क्षण ॥
हों सुरपति सम नयन, श्रवण पृथु राजेश्वर सम ।
प्रभुरस से कर सरस कथारस-रसिक करूँ यम ॥"
हुई गिरा अवरुद्ध शुद्ध रस-सागर लहरा ।
रोम-रोम में राम-रंग रोमांच फरहरा ॥
फर-फर करता हुआ, सजाता हुआ मनाम्बर ।
भाव - भूमि के सुमन, भाव भू-पर बरसाकर ॥

करने एकाकार लगा मन-नभ तन-धरती ।
रसना रसमय लगीं बनाने ग्रांखें रिसती ।।

दोहा

चलता ही रहता सतत, दिव्य राम-रस और ।
'कुछ निदेश' बोला तभी, मंजु मंद स्वर पौर ।।

रोला

"नहीं-नहीं" कह भरत पुनः बोले लख नभ-तल ।
"सूचित करता निशा शेष षटघटी खमंडल ।।
करो वत्स ! कुछ शयन, प्रात तव मंगल-कारण ।"
लेटा कपि कह 'राम' मान कर भरत-सुशासन ।।
जपते 'प्रभुसियराम' भरत को आई झपकी ।
वातायन से तुरत एक छाया सी लपकी ।।
खड्ग हाथ में प्रखर, चर्म पर नीलाबंर तन ।
बिखरे कटि कच-श्वेत, धधकता नयन हुताशन ।।
नीलवर्ण, प्रत्यंग भस्म-ताम्राभ-विलेपन ।
लिये कुटिल संकल्प, कठिन कृत्यापन आनन ।।
धीरे-धीरे सम्हल, द्वार-ओहार खोंच कर ।
मणि-प्रदीप पट्टिका और नीचे कर सत्वर ।।
बढ़ी खड्ग को थाम पास रघुपति-यवीय के ।
खड़ी रह गई देख भाव-मृदु श्लाघनीय के ।।
मघा - चंद्रिका-सदन वदन, मस्तक गोरोचन ।
श्यामल-काकुल भाल, मदन-मद-मथन विलोचन ।।
पुतली ज्यों ग्रलिमाल लगा कर उर इंदीवर ।
शांत मूंदकर पलक-पांखुरी निशि सुषमासर ।।
युगल कपोलों मध्य प्रलंब नासिका सुन्दर ।
ज्यों करती नभ-गंग विभाजित पावस-ग्रंबर ।।

अरुण अधर, ज्यों मधुर उषा की धारा झांकी ।
ललित चिबुक छवि, गगन-क्षितिज ज्यों अचपल चांकी ।।
पीन वक्ष, आजानुबाहु, शंखाकृति ग्रीवा ।
सानुपात तन - यष्टि शुभा शोभा राशीवा ।।

दोहा

पीत पारदर्शी सुपट, हिलता मंद बयार ।
करता प्रमुदित चकित चित, पल-पल बारम्बार ।।

सोरठा

उठते-उठते रिष्टि, क्रूराकृति की रह गई ।
ज्यों पवीव गिरि-सृष्टि, भूमिविकंपन सिहरती ।।

रोला

तमस तत्व फिर उठा भुजग सा फण फैलाकर ।
"मार मार यह वही राम, है घोर धनुर्धर ।।
कीं जिसने विद्रूप सुता सह लंक-निरुपमा ।
लील गया यह राहु, दशानन अमर चंद्रमा ।,
यह मारण-निष्णात रूप सम्मोहक मायिक ।
यह शिखिवर्ण शिखीव मानसिक-वाचिक-कायिक ।।
इसका अधरारुण्य रक्त मम कुलाधार का ।
यह छवि, सागर शांत प्रलय-सायक कृतांत का ।।
सहसा ही संभ्रमित खड्ग ज्यों उठा उछल कर ।
गिरा झन्न मणि-दीप, तुरत टकराकर भू पर ।।
उठे एक हो साथ भरत-अंगद, कपि उछला ।
मारी असि पर लात, तीव्र झन-झन स्वर निकला ।।
थाम लिये बढ़ केश, पौर त्यों दौड़ा आया ।
बोला "इस वय आप, यहां मां ! यह क्या माया ।।"

'मां सुनते ही तुरत भरत ने कीश हटाया ।
सादर सर्वप्रथम स्वयं ही शीश झुकाया ।।
प्रश्न भरे कपि-नयन देख, प्रतिहारी बोला ।
'अंब कैकसी ! पटल आपने किस पल खोला ।।"
कर पौरिक आश्वस्त, भरत फिर शीश झुकाकर ।
बोले "आसन ग्रहण सुपूज्ये ! करो कृपा कर ।"
दो क्षण रहकर मौन, कैकसी पुनः तमककर ।
बोली "ले रे ! खड्ग, तनिक कर मुझसे संगर ।।
ज्यों मेरा कुल नष्ट किया त्यों नष्ट मुझे कर ।
अथवा मेरे हाथ राम ! क्रूरात्मन् आ मर ।।
होता मम प्रत्यंग तभी से दग्ध निरन्तर ।
जब से नाभिविदग्ध गिरा मेरा दशकंधर ।।
बंधु-रक्त आरक्त विभीषण के किरीट की ।
लगती ज्वाला सरिस ज्योतिकुल-चितापीठ की ।।
अमृत-नाभि का भेद, जान तू उस पामर से ।
नारायण बन गया, एक साधारण नर से ।।"
बोले भरत तुरंत "अंब ! यह तव भ्रम केवल ।
पितुमुख से ही सुना दशानन अमर नाभि-बल ।।
और स्वयं उद्घोष नृपति ने किया समर में ।
'अमृतनाभ मैं' शक्ति कहां तुझ वामन नर में ।।
बना दशानन-दंभ अंततः अंतक-कारण ।
पाप एक निज प्रकृति-विवश कर गये विभीषण ।।
आत्म-हनन कर हुए मौन ज्यों अमित प्रमुख-जन ।
मान पुण्य त्यों कर न सके मां-हरण समर्थन ।।"
"कैसा रे ! मां-हरण" कैकसी बोली विस्मित ।
"क्या मां! तुम सिय-मातु हरण से पूर्ण अपरिचित ।।"
"नहीं-नहीं, सिय किंतु हुई तव कब से माता ।"
"रघुकल में अनुजाग्रज पुत्र-पिता का नाता ।।

दोहा

मेरी माता मैथिली, पितु पूर्वज प्रभु राम ।
अनुगामी अनुचर अनुज, बाल भरत मम नाम ॥"
बैठ भूमि पर कैकसी, बोली माथा थाम ।
"अरे मूर्ख ! तू ही भरत, स्वयं राम सा श्याम ॥
साकेतासन सौंपकर, धार भिखारी रूप ।
बैठा लेकर पादुका, नंदिग्राम के कूप ॥"
"हां, वह ही पापी भरत, तव सम्मुख नत माथ ।
जिसके कारण वन गये, मां ! प्रभु सिय-रघुनाथ ॥
अब तक जीवित भूमि पर, मरा न मार कृपाण ।
कुटिल निठुर निर्लज्ज खल, ढोता पामर प्राण ॥"
भरत केकयी - पुत्र तू, व्यामोहित या भीत ।
धर्म भीरुता-वश लिया, दीन पालता प्रीत ॥
या कि घोर नीतिज्ञ तू, रचा स्नेह-षडयंत्र ।
करता सफल स्वयोजना, शील-सुमोहन मंत्र ॥"

सोरठा

"पाप पाप यह पाप, अति अनुचित अक्षम्य ही ।
मात्र प्रलाप कलाप," बोला अंगद गरज कर ॥

दोहा

"शरदपूर्णिमा-शशि सुखद, वृष-रवि तेज निधान ।
गंगा के पावित्र्य का, भरत - शील उपमान ॥
कर्म-वचन-मन से सदा, मैं रघुपति का दास ।
किंतु भरत सम राम ही, मुझे सहज विश्वास ॥
जिस रघुपति-श्री ने दिया, रिपु-गृह मम पद कील ।
शपथ उसी की, भरत सम, आर्य भरत का शील ॥"

सोरठा

"तो तू भी हनुमान-नहीं, बालि का पुत्र है ।
उमानाथ भगवान, कैसा चित्र विचित्र यह ।।
बल-सुन्दरता-वंश, सत्य रसानी योग्य तव ।
परम पराक्रम-अंश, तू कीशेश्वर बालि का ।।

रोला

रखे जिन्होंने विषय, भोग-रागादि देह के ।
बुद्धि-चित्त-मन-अहं पात्र शुचि शंभु-स्नेह के ।।
सुने बहुत, पर लखे श्वशुर-स्वामी ही केवल ।
निर्बल का छल नहीं, विराग राग का संबल ।।
सत्य तत्व यह तुम्हें देख कैकेयी-नंदन ।
जान गया विश्वास भरा मम श्रद्धान्वित मन ।।
अविश्वास-भय भरे द्वेष का प्राप्य विजन-वन ।
प्रेम-सुपथ-गन्तव्य, सरस त्रिभुवन-संपादन ।।
सकल विपद के मूल, तामसी मेरे तन-मन ।
होता कैसे राम दशानन, भरत विभीषण ।।
प्रतिपल सम्मुख बना कनकपुर दारुण-कानन ।
सधवा होकर झेल रही दुष्टा विधवापन ।।
बिना विभीषण चन्द्र, निशाचर तारे गिनती ।
हिय-माथे की मींच, अमा को पूनम कहती ।।
मृत कपूत ही हाय ! याद करती यमदूती ।
त्याग सपूत सजीव, बनी स्वयमेव निपूती ।।
आंखें स्वयं निकाल हाय ! निज हाथों अपनी ।
चली हथेली लिये, देखने सुन्दर कितनी ।।
गृह-प्रदीप से जला स्वगृह, निशि को दिन कहती ।
भर-भर आहें मूढ़ नापती फिरती धरती ।।

श्वशुर सुपावन-गंग, स्वामि मृदु करुणा-सागर ।
जिनका लाई विमल-सलिल मैं नीच चुराकर ।।
डाल गर्त में कहा, अहा ! मम पृथक सरोवर ।
अमृत मान कर गई, हलाहल मिला भयंकर ।।
देख मृत्यु का नृत्य लगी अब आंख चुराने ।
दोष स्वयं का लगी और के भाल लगाने ।।
तोड़ ताल से कमल, मरुस्थल-पथ पर रखकर ।
देख रही ऋतुराज-आगमन काग-शकुन पर ।।
मुकुर-विमोहित फँसी स्वजाले में मकड़ी सी ।
निज कौटिल्य ललंत कैकसी गल-जकड़ी सी ।।
खाती अपने डिंभ कुंडली में कुछ सांपिन ।
मैं कुल का कुल युवा खा गई कैसी पापिन ।।
देखो, मेरे हाथ लाल, लालों के शोणित ।
देखो मेरे अधर, किये पौत्रों ने लोहित ।।
वधुजन की सेदुंरी-भस्म प्रत्यंग लगाकर ।
बैठी माता-वेष डाकिनी निगल चराचर ।।
काटो यह शिर, पुण्य सामने खड़ा तुम्हारे ।
पाप-प्रसवनी शेष, अरे ! क्या पापी मारे ।।
करो धर्म-प्रण पूर्ण, चढ़ा यह तन श्री-फल सा ।
पूर्णाहुति के बिना रक्ष-वध-मख तव छल सा ।।
काल-रात्रि है मां न, घोररूपा खल नारी ।
शूर्पणखा-ताड़का छांव मेरी कजरारी ।।
उठा खड्ग, दो खंड-खंड कर यह तन पामर ।
तुम न करोगे स्वयं करूँगी मैं ही उठ कर ।।"
बढ़ी खड्ग-दिशि, भरत हो गये खड़े, जोड़ कर ।
"आत्मघात मां ! महापाप, पाप का न उत्तर ।।"
"तो क्या तन धर गलूं भरत ! सारे जीवन भर ।
अपने ही से लजा, जलूं पल-पल तिल-तिलकर ।।"

"हां मां ! हरता तिमिर, दीप जलकर ही पल-पल ।
बूंद-बूंद पी स्नेह, धार माथे पर काजल ।।
काल-रात्रि में प्रात-सूर्य की किरणें ढलतीं ।
पंक-ग्रंक से पृथक न पंकज-कलिका पलतीं ।।
विष पीकर तो नित्य अमित कायर मर जाते ।
किंतु कंठ में धार, त्रिपुर पर जय शिव पाते ।।
प्रसवनि ! कायर-क्रूर-शूर जन तीन धरा पर ।
जान कठिन संसार, पलायन करते कायर ।।
क्रूर् भोग में लीन, लोक-परलोक भुला कर ।।
ग्रात्महनन-सग्लानिविराग नाम का ग्रंतर ।।
चतुवर्ग कर धन्य, सकल संसार निभाकर ।
कर लेता हरि-भक्ति प्राप्ति, है वही शूर नर ।।
जो रस ग्रातप, तपा-तपा कर जगत खींचता ।
मेघ-माल-रथ चढ़ा, उसी से उसे सींचता ।।

दोहा

ढके समय की क्षार ने, जो पुनीत ग्रंगार ।
प्रकटे फिर स्थिति वायु से, तव सात्विक संस्कार ।।
दो नवजीवन मां ! इन्हें, देकर जीवन-ग्राज्य ।
निज निशिचरकुल-भवन का, भस्म करो दुर्भाग्य ।।

रोला

मनुज भूल कर, सिद्ध मनुज अपने को करता ।
भूल छिपाने हेतु, भूल कर दानव बनता ।।
ग्रौर भूल निज मान, देव बन जाता जननी ।
जो ले भूल सुधार, वही नारायण अवनी ।।
जो व्यतीत हो चुका, भूल कर उस अतीत को ।
ग्रागत-स्वागत हेतु, समुज्ज्वल सरस गीत को ।।

गातीं, पातीं स्वांस-स्वांस सामीप्य सिद्धि का ।
जाना, होकर उऋण, जगत-शिर डाल मृत्तिका ।।
कौन श्रेष्ठि संसार, न जो आया ऋण लेकर ।
ऋण-मोचन के हेतु, ईश भी आता भू पर ।।
बिँधा जगत के जीव-जीव का कण-कण ऋण से ।
खग-मृग भी देखतीं चुकाते नित जल-तृण से ।।
फिर यह मानव-योनि परम चैतन्य सनातन ।
इसके शिर तो ब्याज सहित है अमित मिश्रधन ।।
संविधान ये श्रुति-पुराण मां ! जिसके अगणित ।
कैसे वह मनुपुत्र, पलायन-वाद भरे चित ।।
संसृति कारागार पूर्व-कर्मों का ही फल ।
लांघे बंधन काट बंदि यदि भीत, भित्ती-दल ।।
तो पाकर आनंद मुक्ति का वह क्षण दो क्षण ।
फिर बनता जड़ शीघ्र, स्वशाश्वत बंधन-कारण ।।
त्यों कर चित चैतन्य, देख, निज विगतागत को ।
उठो निखिल के हेतु, सर्मपित करो स्वयं को ।।
तुम न मात्र दशशीश विभीषण की ही माता ।
सकल जगत से अंब ! अंब-सुत का तव नाता ।।
जो कौशल्या-अंब न ला सकतीं परिवर्तन ।
वह कर सकती आप, सहज निज करुणा-वर्षण ।।
ममतामयि ! है महा मातु-ममता की महिमा ।
लघिमा का तल दिखा, दिखा दो नभ की गरिमा ।।
देखो ! प्राची अरुण, उषा कैसी मुस्काती ।
लगा तमा का भोग, शिवा सी पान चबाती ।।
मन का भार उतार, उठो कल्याणि ! उषा सी ।
खिले लंक-हेमंत अनन्त वसन्त-प्रभा सी ।।
चढ़ी तामसी-धूलि कौणपों के जिस मन पर ।
उन्हें प्रफुल्लित करो स्वममतामृत वर्षण कर ।।

दोहा

करो मुखर शिशु को क्षमा, दिया अंब ! उपदेश ।
दो आशिष श्रीराम-छवि, करूँ पान अनिमेष ।।"

रोला

द्रवित कैकसी हुई, उठे छलछला विलोचन ।
"सत्य राम से नहीं भरत ! तुझसे रामायण ।।
तू न जगत का जीव, जगत-जीवों का जीवन ।
राजस-छवि ब्रह्मर्षि, कनक-घट यज्ञ-हुताशन ।।
तू कैकेईपुत्र सत्य या गल्प मुधा यह ।
अथवा अन्य रहस्य, निगल बैठी वसुधा यह ।।
समझी अब तक कथा राम की केवल छलना ।
लख यथार्थ प्रत्यक्ष, अजन्मी हुई कल्पना ।।
कल की कल निशि मरी, कैकसी रावण-जननी ।
आज उषा से लखे, विभीषण माता अपनी ।।

दोहा

कल का यह कलुषित हृदय, भरा रामसिय-द्रोह ।
दे वर ऋषिवर ! मुदित यह, हो रघुपति पद-मोह ।।
ज्यों ही पद छूने बढ़ी, ली रामानुज थाम ।
"हा मां ! यह क्या कर रहीं, राम-राम श्रीराम ।।"

सोरठा

फफक कैकसी उठी "भरत ! पद छू लेने दे ।
यह दम्भोन्नत-शीश धरा पर धर देने दे ।।
कर लेने दे आज, मुझे प्रायश्चित पूरा ।
इस पापिन को पुण्य न दे प्रिय वत्स ! अधूरा ।।

ओ मेरे सौभाग्य ! बता तू छिपा कहां था ।
रहा अवध क्यों छिपा भरत ! तव कार्य यहां था ।।

दिया होम सर्वस्व देवता ! तब तू आया ।
यह शीतल-संकल्प-कलश-जल तुझे चढ़ाया ।।
अब चल मेरे धाम, बनाने पापिन पावन ।
जिस पदरज से तरी अहिल्या, दे उसका कण ।।"
"मां ! वह महिमा मात्र जानकीनाथ-चरण में ।
और शक्ति सामर्थ्य कहां संसारी-जन में ।।
मंगलकारी भक्ति उन्हीं की भवभय-भंजन ।
कथा उन्हीं की सती-श्रवण, शिव-कंठ विभूषण ।।
रूप उन्हीं का अखिल लोक विश्राम-प्रदाता ।
नाम उन्हीं का सफल-मनोरथ-मख उद्‌गाता ।।"
"भरत ! सत्य, मैं किंतु सामने कैसे जांऊ ।
अस्ताचल सी मलिन, धर्म रवि कैसे पांऊ ।।"
"प्रभु को देखे बिना, भरा संकोच-पंक मन ।
हरनी उनकी दृष्टि निमिष में पाप पुरातन ।।
होता हिय-सर सरस, सरोरुह विमल विलोचन ।
मँडराता चित चपल बावला इन्दिन्दिर बन ।।
चित्रकूट से प्रथम दशा यह ही थी मेरी ।
पर प्रभु-भाव विचार बनी मति, निर्भय चेरी ।।
तनिक विचारो, कौन भरत से अधिक पातकी ।
राम-कृपा से और भरत सी सुधरी किसकी ।।"
चले कैकसी साथ, भरत-अंगद तुरंत फिर ।
पहुँचा रथ एकांत दूर, कुछ पुर-कोणाजिर ।।
हटीं राक्षसी चकित हुई पथ देतीं दिशि-दिशि ।
लगा कैकसी-निलय अंधतामिस्र नरक-निशि ।।
धूम्र भरे दुर्गंध, दशों-दिशि मैली करते ।
अमित-अमित अभिचार भयंकर, भय हिय भरते ।।

दौड़ होम में डाल कलश-जल, अंग-अंग के ।
यंत्र-तोड कर दिये फेंक बहु रंग-रंग के ।।
पात्र सहित शाकल्य सकल सागर में डाला ।
खंड-खंड कर, करीं विसर्जित नर-शिर माला ।।
शुद्ध-स्वच्छ कर भवन, सचैल स्नान कर सागर ।
आई तन-मन नील बहा, काषाय धार कर ।।
प्रातकाल की यज्ञ-मूर्ति सी लगी सुहावन ।
नित्य-कर्म से हुए निवृत्त इधर दोनों जन ।।
उधर नहा रघुनाथ राजप्रासाद पधारे ।
बोले "कीशकिशोर-भरत प्रिय ! कहां हमारे ।।"
द्वारपाल से कथा रात्रि की सुन कर सारी ।
मुदित विभीषण हुआ, भरी फिर शंका भारी ।।
बोले प्रभु "लंकेश ! कहो क्यों क्लान्ति वदन पर ।"
"परम-श्रेष्ठ या परम-निकृष्ट निकट अति रघुवर ।।
कहूँ अभी क्या, अभी मातु के मन्दिर जाता ।"
क्षण में सब कुछ समझ, कहा "प्रिय ! मैं भी आता ।।"
मारुति ने मन-प्रगति लजाता हांका स्यन्दन ।
देखे अंगद-भरत दूर से आनन्दित-मन ।।
देख अंब-छवि, हुए चकित प्रमुदित लंकेश्वर ।
भरे कठ-दृग, गिरे दौड़ कर तुरत पदों पर ।।
दी आशीशें लगा पुत्र को हृदय, हृदय से ।
लगी देखने राम-आगमन परम-सुचित से ।।
ज्यों-ज्यों आते गये पास, त्यों-त्यों नाचा मन ।
फिर बोली "जगदीश! जानकी-पति! अभिनंदन ।।
मुझ पापिन के द्वार आप रघुनाथ ! पधारे ।
कैसे पूजे चरण कौणपी, देव ! तुम्हारे ।।"
"मां ! मां हो मत बात कहो घनघोर अनय की ।
ज्यों रावण-लकेश अंब, त्यों राम-भरत की ।।"

प्रभु पग छूने बढ़े, कैकसी गिरी धरा पर ।
"मत मारो रघुनाथ ! पाप में और गला कर ।।
किन जन्मों के पाप आज तक, अब तक भोगे ।
क्या यह पापिन अभी अभागिन रहने दोगे ।।
जगपावन ! निज चरण, शम्भु शुभ शीश-विभूषण !
रखने दो शिर मुझे नाथ ! होने दो पावन ।।"
राम खड़े रह गये, उठी वह पदस्पर्श कर ।
लाकर मंजु प्रसून, रखे प्रभु के मस्तक पर ।।
सुन्दर आसन बिछा, बिठा रघुपति को सादर ।
लगी देखने पुनः, करूँ क्या अर्पित लाकर ।।
संकट जान, सुजान विभीषण बोले "माता !
यह प्रिय-कपि प्रभु-कृपा, बना अपना जामाता ।।
स्यानी नातिन हुई रसानी कब से अपनी ।
घर बैठे वर मिला, दान अब कन्या करनी ।।
चलो महालय आप, अंबिके ! यान सुसज्जित ।
खड़ी कैकसी हुई पूंछ दृग, सावधान चित ।।

दोहा

बिठा सपरिकर राम को, भर कर हर्ष अपार ।
निशिचरपति माता सहित, पहुँचे राजद्वार ।।
हुई सकल हलचल अचल, देख कैकसी-वेष ।
लगे पूंछने नारिनर, नयन-नयन अनिमेष ।।

रोला

कहां गया नर-चर्म रक्त-रंजित नीलाम्बर ।
कहां कोप घनघोर, कहां भ्रूभंगि भयंकर ।।

कहां गया कौटिल्य, करुणिमा कैसी उभरी ।
इस कंका में मंजु-मधुरिमा कैसे उतरी ।।
धरती-दुर्गतिकारि कहां गति गई, निमिष में ।
स्वप्न कि सत्य, सुसत्य रसोदधि प्रकटा विष में ।।
नाटक या कि यथार्थ,स्वभाव कि भाव कौन सा ।
द्वेषाकर प्रत्यंग, शांत दिख रहा मौन सा ।।
विधि-विधान में अलख अ-श्रुत कैसा संशोधन ।
अकस्मात यह कुंभिपाक में सुरसरि-प्लावन ।।
किसके कारण सदासुहागिन बनी सुहागिन ।
या कि निराशा स्वयं आ गई बन वैरागिन ।।
सरल हुई क्या, वक्र भाग्य-रेखा लंका की ।
या कि प्रकट अनुभूति अहैतुकि-रामकृपा की ।।
बजते बाजे बन्द हुए, सन्नाटा छाया ।
लगे सोचने सकल अशुभ-शुभ यह क्या आया ।।
अविश्वास-विश्वास तर्क-रत हुए परस्पर ।
तब तक आकर पास, कैकसी बोली हँसकर ।।
"अरी ! रसानी कहां लाडली सुता हमारी ।
देख रहीं क्या चकित, सास मैं खड़ी तुम्हारी ।।
मोह-निशा से जाग, आज नव-प्रात निहारा ।
उठती कैसे कहो, राम ने आज पुकारा ।।"
"मां"कहती मय-सुता बिलखकर गिरी पदों पर ।
बोली "लौटीं आप अब ! बहु देर लगाकर ।।"
"हाँ बेटी ! हैं सत्य, निशा ही थी वह डाइन ।
आती कैसे लाँघ भाग्य को, परम-अभागिन ।।"
चलीं केशरावती-केशिनी-वरविलासिका ।
अमृतप्रभा - भद्रिका - भद्रजंघा - अंजनिका ।।
पिवरा-कुमुदाबती - माधुरी - दर्पकमाला ।
माया - सौदामिनी - उज्ज्वला - वज्रज्वाला ।।

वंदन करने लगीं, कैकसी अति अकुलाकर ।
बोली "क्या आशीष, किसे दूं शाप बने वर ।।
मेरे सम्मुख खड़ीं बहू मेरी बन जोगन ।
भाल-थाल में तजा काल ने तनिक न भोजन ।।
जाने वाली रही, गये लेजाने वाले ।
जाना जिनको सत्य, पड़े सपनों के पाले ।।
द्यूत-दाँव पर हार गई, सिंदूर तुम्हारा ।
क्या लौटाऊँ, करे लुटी क्या साहूकारा ।।"
जो न जीभ कह सकी, लगीं वे कहने ग्रांखें ।
पसरी सावन-मघामाल की ज्यों पँच-पांखें ।।
फिर बोली "मांगलिक-समय, मत म्लान करो मन ।
मुझ ग्रपराधिन हेतु क्षमा-भिक्षा दो जन-जन ।।"

दोहा

बोली मयतनया "न यों, वचन कहो मां ! दीन ।
रखें कुशल, प्रभु से विनय, कुल-वल्लरी नवीन ।।"

ग्रंगद विवाह

रोला

नयन पूंछ, दे धैर्य, मिलाकर सबसे सादर ।
सकल व्यवस्था दिखा, बिठाई उच्चासन पर ।।
लिये रसानी साथ सामने सरमा आई ।
दे ग्राशीशें अमित, मुदित हो हृदय लगाई ।।
फिर बोली "जा इसे ग्रभी ले जा ग्रंतःपुर ।
हल्दी-तेल उतार वारकर नव-दूर्वांकुर ।।
ला वैसी ही सजा, सजा ज्यों इस दिन करतीं ।
लगे रसानी सजी, सजी ज्यों लंका-युवतीं ।।"

उठीं सुबाला नाच, झननझन झनकीं पायल ।
लगे बनाने वाद्य-वृन्द, सानंदित नभ-तल ।।
अंगद को इस ओर सजाने लगे कपीश्वर ।
लगा परम सुकमार मारमद-हर कपिकुंजर ।।
हुए मुदित रघुनाथ अंक में बिठा कीश को ।
लगे बांधने पाग, हृदय से सटा शीश को ।।
कंकण-वलय-अनंत भुजायें उठा-उठा कर ।
लगे मांडवी-रमण पिन्हाने अमित चावभर ।।
पुनः मांगलिक-द्रव्य बांध नूतन-कांदांबर ।
विधि-विधान से रखा ऋक्षपति ने सुकंध पर ।।
लेकर मारुति मुकुर, दिखाने लगे चुहल कर ।
कुछ कनखी से देख, झुका अंगद सकुचाकर ।।
निज किरीट के पांख लगा कलगी पर रघुवर ।
लगे देखने उठा-बिठाकर चला-फिराकर ।।
लगे सिखाने रीति-नीति, फिर छंद-मनोहर ।
हँसे ठठा सुग्रीव, भरत मुस्काये झुककर ।।
समाचार आ गया तभी, 'रघुराज पधारें ।'
धनाध्यक्ष के यक्ष, बजाने लगे नगारे ।।
दक्षिण हरिपति, भरत वाम, आगे ऋक्षेश्वर ।
रघुपति-मारुति पृष्ट, मध्य कपि कुँवर मनोहर ।।
देखे वादक अमित, रिक्त बहु हय-गय-स्यन्दन ।
सकुचाये, अवलोक दिशा अपनी रघुनन्दन ।।
बोले "निमिगृह भरत ! युहीं कौशिक सकुचाये ।
हुए मुदित, जब तुम्हें पिता-श्री लेकर आये ।।
आज पत्रिका भेज, यहाँ किसको बुलवायें ।
वर-यात्रा किस भांति पुत्र की बंधु ! सजायें ।।"
उड़ती देखी धूलि तभी उत्तर-नभ-मंडल ।
पड़े सुनाई स्पष्ट अनेकों मधुर वाद्य-दल ।।

प्रभु की ओर विलोक, पवनसुत चढ़े शिखर पर ।
बोले भर किलकारि "आ रहे गुहराजेश्वर ।।"
बढ़े स्वयं रघुनाथ सुहृद-अगवानी करने ।
सम्मुख प्रभु को देख, लगे गुहराज नाचने ।।
हरि ने देखा, दाश ठट्ट के ठट्ट उमड़ते ।
ज्यों सावन-घन सघन सुशीतल गगन घुमड़ते ।।
"धन्य सुमित्र निषाद ! समय पर लाज बचाई ।
गाढ़ी आड़े दिवस दिखाई प्रेम-सगाई ।।
होती पर-पुर आज अन्यथा बहुत हँसाई ।
भेरी तेरी सुहृद ! प्राण-स्वर सी सुखदाई ।।

दोहा

भेजे प्रिय-लंकेश ने, सादर हय-गय-यान ।
निज-निज रुचि अनुसार सब चढ़ें, करें प्रस्थान ।।"
चढ़े दाशजन रहँसकर, पा निज भूप-निदेश ।
सूत-महावत-साहनी, मुस्काये लख वेष ।।

रोला

अतिशय श्यामल-वर्ण चढ़े स्वर्णिम-अंबारी ।
ज्यों छविमाला सजी मेघमाला-नभचारी ।।
कुछ यानों के धँसे, पृथुल अति मृदुल बिछौने ।
कस्तूरी-मृग ज्यों वसंतवन रमे सलौने ।।
कसे जड़ाऊ-जीन, लसे रंगीन-परों से ।
कांबोजी-हय सजे बांकुरे चपल नटों से ।।
चढ़े धमक कुछ दाश हुमक ज्यों उछल-उछल कर ।
बिदक उठे हिनहिना, दबे सब बाजों के स्वर ।।

काठी चिपटे, सटे निगाली कुछ, कुछ लटके ।
कुछ गिर कर झट उठे, लाज से लटे पलटके ।।
अति विनम्रता चारु-चतुरता कुछ दिखलाते ।
बोले "हम तो बंधु ! भूमि पर शोभा पाते ।।
वाद्य-नाद पर अमित दिवाने लगे थिरकने ।
कुछ हो वृत्ताकार लगे मृदु-गायन करने ।।
कुछ सेचन रख शीश, क्षेपणी लेकर उछले ।
कुछ कूपक पर नचा-नचा कर करिया मचले ।।
कुल अलगोझे बजा-बजा कर लगे नाचने ।
कुछ उछाल कर शून्य वराटक लगे थामने ।।
भांति-भांति के खेल दिखाते हँसकर धींवर ।
उमड़ पड़ा ज्यों लंक पूर्णमासी का सागर ।।
लगे लुटाने मुदित मुद्रिका मुद्रा रघुवर ।
लगे लूटने मुदित दाश कौशल दिखला कर ।।
वानरपति को देख, राम का पा अनुशासन ।
बांध-बांध कर पंक्ति, बढ़े नागर वादक-गण ।।
वयोवृद्ध ऋक्षेश अग्र मातंग-पीठ पर ।
साधु-जनों से घिरे, चले कहते 'जय रघुवर' ।।
ले निज अष्टामात्य दाशपति तुरग नचाते ।
निकले ज्यों शुभ-दृष्ट सुमार्गी नव-ग्रह जाते ।।
तारक-व्यूह अपार, चला पीछे हरषाता ।
ठौर-ठौर पर ठहर-ठहर बहु कला दिखाता ।।
हंस-वर्ण मणि-स्वर्ण अलंकृत, श्याम - कर्ण हय ।
विचलित करता चित्त, दिखाता नृत्य-समुच्चय ।।
तारा का दृग तार, उषा के ललित अरुण सा ।
प्रगट बालि-बल-क्षरधि पुण्य शशि सगुण तरुण सा ।।
लगा धीर बलवीर लिये मणि-असि अंगद यों ।
वासन्ती-मंदार सजा धनु-धर मन्मथ ज्यों ।।

चँवर ढुलाते यक्ष, तानकर छत्र मनोहर ।
मानों वानर-वेष रोहिणी-प्रिय शरदम्बर ।।
पृष्ट भाग रघुनाथ लिये सुग्रीव भरत को ।
चले यान चढ़, सकल सुमंगल देते जग को ।।
बचा-बचा जन-व्यूह बढ़ाते यान पवनसुत ।
वरयात्रा, सुर चकित देखते नभ से अद्भुत ।।
मुदित देखतीं, चढ़ीं अटा नारीं पर नारीं ।
नारि-रत्न मय लगीं, रत्नमय लंक-अटारीं ।।
अनहद-जलद सुनाद, त्रिकुटि-प्रासाद गरजते ।
त्यों बजते बहु वाद्य, गगन से सुमन बरसते ।।
अतिशय श्यामल वदन, असित कुंचित कुंतल-घन ।
सघन कालिमा-सदन, जलद-मद-मोचन लोचन ।।

दोहा

शिर सेंदुर कुंकुम तिलक, रचे अधर तांबूल ।
रजत-कनक तारक खचित, शोभित नील दुकूल ।।

रोला

क्षीण लंक, अतिपीन नितंब, सदंभ पयोधर ।
लंका-श्यामा सरस, असमशर धनु सीं मनहर ।।
वातायन गृह-द्वार किये शृंगार लगीं यों ।
मंगलमय शनि-अनुष्ठान-घट-माल सजीं ज्यों ।।
गुह-दल करतब देख-देख अतिशय हर्षातीं ।
नचा-नचा कर नयन, तालियां मुदित बजातीं ।।
देख परम सुकुमार-रूप ताराकुमार का ।
लगा डोलने मान, मानिनी-अहंकार का ।।
होकर चचल लगे सरकने शिर से अंचल ।
उठे झूमके झूम, फिरे नक-बेसर मंडल ।।

झन-झन झांझन बजीं, उठीं खनखना कँगनियां ।
लगीं कामिनी लाज यूप से कसीं हिरनियां ।।
देख एक को एक, सुनाने लगीं लजाकर ।
रही रसानी भाग्यवती पितु-मात गँवाकर ।।
जैसे इसके जगे, भाग्य जागें सबही के ।
घर बैठे ही दर्श पागई अपने पो के ।।
कपिवर-वरछवि देख न पाई थीं मन भर कर ।
सहसा सम्मुख दिखा, अवधपति का रथ सुंदर ।।
ढके तुरत शिर स्वतः, हुए सुस्थिर-शुचि चित-मन ।
अनायास कर जुड़े, लगे करने दृग-वंदन ।।
झुका-झुका कर शीश, प्रसून लगीं बरसाने ।
लगीं सुमंगल-गीत सुमंगल - मय के गाने ।।

दोहा

ज्यों सम्मुख दोनों हुए, राजसदन बारात ।
पड़े अमित उत्साह से, वाद्यों पर आघात ।।
लगा युगल परिवार क्या, मिलते पारावार ।
प्रेम-नगर भूलीं सकल, सीमायें आकार ।।

रोला

उमड़ चला जन-सिंधु, पूर्णिमा-पर्व लजाता ।
किससे बोला कौन, न कोई कुछ सुन पाता ।।
शंख-चंग - मुरचंग - सरंगी - ढोल - बंसरी ।
उस कोलाहल-मध्य बनी रह गईं झल्लरी ।।
लगे बढ़ाने स्वयं विभीषण भीड़ द्वार से ।
दान-मान - सत्कार - नम्रता - शुभाचार से ।।
ऋक्षेश्वर का द्विरद प्रथम बैठाकर सादर ।
रोका, मणि वर्षण कर मणि-वर्षण करता कर ।।

पदस्पर्श कर भेंट, बिठाया कनकासन पर ।
लिये हृदय से लगा पुनः गुह, तुरग थाम कर ।।
ऋषिजन को ले चले रुचिर परिणय-मंडप में
धींवर-परिकर भरे द्वार, प्राचीर-अजिर में ।।
बढ़कर, कर वंदना उतारा प्रभु को रथ से ।
भरत-कीशपति सहित ले चले पुष्पित-पथ से ।।
पुनः लौटकर तुरत अंक में अंगद को भर ।
साशिष शोभित किये रत्नमय रुचिर मंच पर ।।
चलीं मत्त मातग-गामिनीं कोकिल-बयनीं ।
रूपराशि की राशि, राशि की राशि सुनयनीं ।।
करतीं मंगलगान मधुर स्वर-लहरी लहरा ।
वजा मंजु किंकिणीं, सुरंगी चुनरी फहरा ।।
कंचन-थाली जगा-दीप,भर मणि-घट पानी ।
बोली दें कैकसी "अग्र बढ़ सरमा रानी ।।"

दोहा

प्राजापात्य-प्रथा विहित, कर वर-द्वाराचार ।
करा बुला कर तुरत ही, कन्या से सत्कार ।।"

रोला

परिछन करके हटी, तनिक ज्यों सरमा रानी ।
सजी रसानी लिये, चलीं त्यों सखी सयानी ।।
सकल सुलक्षण-युता सुता अहिपति-दुहिता की ।
विकसित कलिका कलित इन्द्रजित-रति-लतिका की ।।
निशिचर-क्षारसमुद्र-संभवा रमामूर्ति सी ।
अरुण-प्रिया सी मृदुल, विमल राकेश-पूर्ति सी ।।
अजगव सी भँव सहज मनोभव-चाप लजातीं ।
सरला चितवन सरस सु-रस-विष-मद बरसातीं ।।

कौस्तुभ-मणि सी दीप्त मंजु-मंदार-मंजरी ।
सुनवन की अप्सरी, अमर-सुरसरि की शफरी ।।
वितल-निचुल को विदल, चली ज्यों शेष-कुमारी ।
या कि कामिनी बनी दामिनी गगन-दुलारी ।।
लगी सकल लालित्य-कोष की सौरभ सी छवि ।
उपमा-उपमिति द्वन्द, प्रतीप प्रतप्त हुआ कवि ।।
कर थामे इस ओर हठीला मचला बचपन ।
आंचल में उस ओर बावला बिचला यौवन ।।
घिरी युगल गिरि-कूल सरित ज्यों सागर तकती ।
चली रसानी लिये ललित वरमाल सिहरती ।।
हुए नयन ज्यों चार, विपल-भर पलकें झपकीं ।
कांप उठी तन-लता, कलित मन-कलिका चटकीं ।।
सखीं सिखाने लगीं 'पिन्हा पगली ! वरमाला ।
स्वागत कर तव सम्मुख आगत किये उजाला ।।
खड़े 'रोप ये चरण, किये बिन वरण न हटने ।
हटा व्यर्थ आवरण, न रण कल सकल झटकने ।।"
हटीं प्रौढ़ मुँह फेर, सकुच मुस्कान दबातीं ।
देख स्वच्छ मैदान, सखीं बोलीं इठलातीं ।।
"अजी कुँवर जी ! निरी बालिका सखी हमारी ।
लो वरमाला पहन तनिक झुक, कृपा तुम्हारी ।।
होगी तनिक न हानि, न होंगे छोटे पितु के ।
झुकते भूरुह सदा सरस वासंती ऋतु के ।।
पाओगे सुख सदा, मान लो बात हमारी ।
सरल न समझो, परम-मानिनी दुल्हन तुम्हारी ।।

दोहा

व्यंग्य-बाण सहते हुए, बना ढाल मुस्कान ।
रहे मौन नत-नयन ही, बालि-तनय बलवान ।।

रोला

होता देख विलंब, अंब कैकसी पधारी ।
झुके राम के धर्म-पुत्र धर्मध्वजधारी ।।
बोलीं ताली बजा, सहेलीं सारी हँसकर ।
"पिन्हा रसानी ! माल, खड़े शिर झुका द्वार वर ।।"
उठा न पाये शीश, कीश आशीशें पाते ।
खिले विलोचन तुरत रसानी के रसराते ।।
उठे हाथ कब बढ़े, पड़ो जयमाला किस पल ।
कोई पाया जान न, कन्या का कल-कौशल ।।
लगे बरसने सुमन, गान कर उठीं सुहागिन ।
करतीं मँगलाचार चलीं लेकर वर-दुलहिन ।।
स्वस्तिगान कर उठे विप्र आसन बैठाते ।
बैठे कपि युवराज सभा को शीश झुकाते ।।

सोरठा

लगे निभाने नीति, वैदिक-लौकिक घटज-भृगु ।
कहते निज कुल-रीति, हरिपति-लंकापति मुदित ।।
अनुचर-परिजन पांति, तत्पर खड़ी विनम्र-हो ।
सामग्री बहु भांति, लातीं लख संकेत लघु ।।

भुजंगप्रयात

गगन में चला यज्ञ का धूम्र-ज्यों ही–
सुगंधित, धरा की ध्वजा सा उड़ाता ।
घिरे व्योम में सुर सुखातुर हुए से,
अहा, लंक से धर्म-संदेश आता ।।

जहां की रहीं राह ग्राहें भरी हीं,
कुपित कामियों की हँसी या कि हहरी ।
वहीं से चली ग्रा रही वेद-वाणी,
घटा की जटा में छटा सी सुनहरी ।।

जिन्होंने किये यज्ञ विध्वंस ढेरों,
उन्हीं के अहो ! ढेर पर यज्ञ होता ।
गई लील जो ऊषरा धर्म-धारा,
उसी में मचलता मिला पुण्य-स्रोता ।।

धरानंदिनी की ग्रनुष्ठान-धरती,
जगी ज्योति जिसमें प्रभंजनतनय की ।
रचा ग्रल्पना दी परे कल्पना से,
जहां लालिमा से लखन ने हृदय की ।।

तरुण-वय तजी सेज की सौख्य-सज्जा,
भरे ग्रंक निश्शंक कांटे वनों के ।
जिन्हें देखकर हो गया क्षीण सागर,
क्षणों में जुड़े पीन मेले रणों के ।।

परोसी वही काल के थाल में जो—
उड़ी काल के भाल नीली-पताका ।
गगन-चुंबिनी आ गई-चूमने भू,
विपल में ग्रमावस बनी रक्ष-राका ।।

ग्रविश्वास, विश्वास से हार भागा,
मिले आन अपनों सरीखे पराये ।
किया धार अवतार संहार जिसने,
वही भक्त-आगार कर्तार ग्राये ।।

बजाने लगे वाद्य किन्नर रसीले,
उठीं नाचतीं अप्सरा खिलखिलातीं ।
लगीं पुष्पवर्षा अमर-राशि करने,
चलीं सिद्ध-गंधर्वियां गीत गातीं ।।

"विभीषण ! विलोको-विलोको गगन तो,
हमें देव आशीष देने पधारे ।"
उठे, व्योम में देखकर निर्जरों को—
सभासद झुका शीश करबद्ध सारे ॥

"बड़े भाग्य दर्शन दिये आपने जो,
क्षमा कर महापाप सारे हमारे ।
सुपूज्यो ! सकल आपकी अर्चना यह,
करें आप स्वीकार, कृपया पधारे ॥"

धनद को किये अग्र उतरे अमर-गण,
उठे 'जय-जयति' कह सभा-सभ्य सारे ।
निशाचर-नृपति ने नमन कर मही पर,
सभी के समादर सहित पद पखारे ।

सजाने शुभासन लगे वानरेश्वर,
बिठाने लगे केकईपुत्र सादर ।
चरण-वंदना जानकीनाथ की कर,
विराजे मुदित देवगण धन्य होकर ॥

तभी सामने से परम-वृद्ध भीषण,
दिखा एक आता कि ज्यों अस्थि-पंजर ।
सभी जन लगे सोचने कौन है वह,
चकित हो तुरत ही उठे राक्षसेश्वर ॥

दोहा

"मातामह सौभाग्य मम, स्वयं पधारे आप ।
किन्तु यान-शिविका बिना, यही हृदय संताप ॥"
माल्यवान बोला "प्रभो, सुना निशाचरनाह ।
सती-सुता कपि-कुँवर का, हरि-सानिध्य विवाह ॥
अचल शिला सी देह में, उगीं अचानक पांख ।
लाईं बूढ़े बैल को - जोत, बावली आंख ॥

ऊर्मिका

जिन्हें देवासुर-समर मँझार,
लाडले ! देखा पलक पसार ।
विमोहित होकर बारम्बार,
वार पर करते भीषण वार ।।

आज भी जब आती वह याद,
सजल-जलधर सी श्यामल मूर्ति ।
हुआ युग से यह हृदय निरीह,
अचानक भरता अद्भुत-स्फूर्ति ।।

लजाते मन-मारुत की सुगति,
विहगपति करते गगन विहार ।
प्रफुल्लित वासंती-मंदार –
सरीखे हरित-सुपंख पसार ।।

वामपद दक्षिण - जंघा रखा,
स्वतः बजते मंजुल मंजीर ।
पवन से करता कलित किलोल,
पारदर्शी केशरिया-चीर ।।

शरद-निशि-नभ सा वक्ष प्रशस्त,
लजाती कौस्तुभ पर्व-मयंक ।
सुशोभित रत्न-सुमन शृंगार,
डोलती वन-माला निश्शंक ।।

विलोकी रति भी मैंने पुत्र !
स्वर्ग में कामदेव के संग ।
लगी घृत सम्मुख छूंछी छाछ,
देख वे महाविष्णु के अंग ।।

चपल-भुजगों सी भुज-आजानु,
विभा वल्लीव वलय-केयूर ।
नाचतीं अंगुलिका मुद्रिका,
कलापी का करतीं मद चूर ।।

तरल तीखे मदभरे विशाल—
विलोचन सघन-नील कुछ लाल ।
दमकता ज्यों संवर्त-निशांत,
नवल दिन-मणि का यौवन-बाल ॥

अरुण अधरों पर उज्ज्वल शंख,
हंस ज्यों कर मधुपान प्रमत्त ।
दीप्त-मणि-कुंदन कुंडल श्रवण,
स्वरूप-विभक्त ज्योति-अविभक्त ॥

भाल के मध्य सुरेखा लाल,
उभयदिशि शोभित पीत-पटीर ।
कपिस-कैरव का अरुणिम-क'ष,
दिखाती सांध्य-चांद्रि ज्यों चीर ॥

कृष्ण-कुंचित-चिक्कण कच-राशि,
भृंग-चतुरंग रचे ज्यों व्यूह ।
जटित मणिराट किरीट ललाट,
अमित द्वादशरवि - माल-समूह ॥

प्रभासित स्वयं स्वप्रभा-प्रखर,
प्रकाशित करते निखिलालोक ।
भुवनभास्कर की प्रभा प्रभूत,
लांघती ज्यों उदयाचल ओक ॥

फेंकते गदा, खींचते खड्ग,
छोड़ते बाण, चलाते चक्र ।
बजाते शंख, नचाते शूल,
लजाते वज्र-प्रचालन शक्र ॥

झुलाते पाश, घुमाते दंड,
वंक भँव कर अधिकाधिक वक्र ।
उठाते वैरि-जीव - नवनीत,
त्याग भू क्षत-विक्षत शव-तक्र ।,

तात ! वह कैसे भूलूं दृश्य,
सुमाली पर लख संकट घोर ।
चला हो धूम्रकेतु सा कुपित,
बंधु माली खगपति की ओर ।।

हुए विस्मृत शस्त्रास्त्र समस्त,
मुष्टिका दी मस्तक पर तान ।
व्यथित मुखमोड़ विहगपति चले—
छोड़कर क्षण में समरस्थान ।।

तुरत वे पलटे कटि की ओर,
खुले ज्यों होते बंद कपाट ।
झटक कर पटक दिया झट चक्र,
लिया माली का मस्तक काट ।।

फिरे फिर मेरे सम्मुख शीघ्र,
गदा से नभ में दिया उछाल ।
देख कर व्यथित, द्रवित हो कहा—
"मनुज बन, जा कुटुम्ब को पाल ।"

याद करता पल-पल वे शब्द,
पड़ा लंका में तब से तात ।
सुना जब आये प्रभु श्रीराम,
चला आया मैं यहाँ हठात् ।।

प्रथम ही शूर्पणखा को देख,
श्रवण कर खर-दूषण - अवसान,
समझ मैं तभी गया था पुत्र !
आ गये धरती पर भगवान ।।

शिखर से जिस दिन दिखे सुबेल,
हुआ विश्वास विष्णु ही राम ।
न माना किंतु दशानन तनिक,
हुआ जो होना था परिणाम ।।

किंतु तव कृति से कुल की कीर्ति—
रही अक्षत-अकलंकित सत्य ।
उसी का यह शुभ-फल प्रत्यक्ष,
परम मंगलमय-कृत्य अपत्य ।।

राम के ही जाने को पास,
राम के ही आया हूँ पास ।
चतुर्दिक निर्भय-सुख-संतोष,
शेष सम्पन्न करो सोल्लास ।।"

सोरठा

चरण-वंदना हेतु, माल्यवान ज्यों ही झुका ।
श्रुति-मर्यादा-सेतु, उठे, लगाया हृदय से ।।
बिठलाया अति पास, की न विगत की बात कुछ ।
प्रभु का देख सुहास, हुए देव ईर्षित - मुदित ।।

दोहा

बोले द्विज "यज्ञादि सब, परिणय-कार्य अशेष ।
वेला कन्यादान की, समुपस्थित लंकेश ।।

रोला

कहा कैकसी ने "सुत ! बैठे धनाध्यक्ष वे ।
पूज्य-पाद कुल-ज्येष्ठ विभीषण! तव अग्रज वे ।।
ये मयतनया-वज्रज्वाला-सरमारानी ।
कर पीले कर, करें दान सब सुता रसानी ।।
आते ऐसे कभी-कभी जीवन में अवसर ।
जब दिखता है तात! कि कितना परिजन-परिकर ।।"

विव्हल हुए कुबेर, नयन में रुका न पानी ।
बोले "बोलीं बहुत देर कर हा ! कल्याणी ।।"
"होनी-नर्तन देख, जीभ क्या दीन बोलती ।
भाग्य वज्र-पट अबला ठोकर मार खोलती ।।"
माल्यवान की गिरा स्रोत सी सहसा फूटी ।
"सूर्योदय प्रिय ! तभी कुनिद्रा जब से टूटी ।।

दोहा

दिन का हो या रात का, बीत गया सो स्वप्न ।
शिक्षा लेकर, कर मनन, करो लक्ष्य-हित यत्न ।।
सकल निराशा त्याग कर, बढो साश सोल्लास ।
व्यर्थ न जाती साधना, रखो सुदृढ़ विश्वास ।।

रोला

तुम दोनों की सत्व-भावना, सत्य कामना ।
सफल हुई प्रिय ! सतत मौन-निष्काम-साधना ।।
मिला आज अध्यात्मवादियों को वह संबल ।
जो न प्रलय-पर्यन्त, किसी विधि होगा निर्बल ।।
प्रबल-पोत सम बना, सत्य-सिद्धान्त तुम्हारा ।
पार करेगा जगत अगम-भवसागर खारा ।।
ध्यान करो क्यों बनी, रसानी ही मिलनस्थल ।
मिला सती-सर यहीं, इन्द्रजित-सलिल समुज्ज्वल ।।
वृक्ष कभी का कभी फूलता-फलता जाकर ।
फल पाता है कभी कहीं से कोई आकर ।।
रस जाता है कहाँ-कहाँ कैसा-कैसा बन ।
फिर रिसते हैं कहां-कहां कैसे वन-उपवन ।।

यही प्रकृति का खेल, यही संसृति का प्रांगण ।
लगता कल्पित कथा, नित्य का सत्य प्रगट रण ।।
बोते चलो रसाल, छांटते पथ-बबूल प्रिय ।
पायेंगे सव्याज मूल तव फूल, फूल प्रिय ।।
देखेंगे इस पार, न तो उस पार नयन तव ।
है उसके अंधेर न केवल देर, यही भव ।।
उठो, न जाये बीत लग्न, करणीय करो निज ।
दो जग-हित वर-सुकर-भ्रमर को कन्या-सरसिज ।।
उठे सजल-दृग सकल, हरिद्रा-जल ले-लेकर ।
कर पीले कर, कर पर कर रख दिये, भाव-भर ।।
वचन-बद्ध कर, सप्तपदी लाजाहव भांवर ।
वर-कन्या कर पंचसाक्षि शुभ वरवधु होकर ।।

दोहा

बैठे, बहु आशीष दे, बैठे दोनों पक्ष ।
छुए इंद्र-पद भाव भर-अद्‌भुत वित्ताध्यक्ष ।।

रोला

उठे रसानी-कीश, बँधे आंचल से आंचल ।
झुके समादर सहित, प्रथम रघुपति के पद-तल ।।
फिर ऋक्षेश-कपीश - भरत-मारुति-गुहवर के ।
पदस्पर्श कर बढ़े, अमित आशिष पाकर के ।।
सुर-ऋषि-मुनि-द्विज-बटुक-रक्ष परिकर वंदन कर ।
चले लंक-कुल-देव नमन-हित वर-वधु सादर ।।
हो लीं हँसकर साथ सहेली अमित नवेलीं ।
सदा रसानी साथ हंसीं जो खाईं खेलीं ।।
कौतुक करती चलीं मार्ग में कई निराले ।
देव बताने लगीं, कीश के देखे-भाले ।।

लगीं पुजाने, कोश अमित-विधि लगे पूजने ;
लगीं चहकने कई, सकुचने कई चमकने ।।
बैठ गईं कुछ घेर छंद का आग्रह करतीं ।
कई हठीली डटीं वचन-शर दृग-धनु धरतीं ।।
रहा मौन नवरंग रँगा कपि, व्यंग्य झेलता ।
इंद्रिय-व्यूह-समूह अचल-मन सरिस खेलता ।।

दोहा

उधर-भव्य प्रासाद में, पाटे पड़े अनेक ।
व्यंजन बहु लाने लगे, सूद एक पर एक ।।
बैठ न पाये अतिथिगण, भरे थाल पर थाल ।
मधुर - सलौने-तिक्त-कटु-अम्ल-कषाय कषाल ।।

सोरठा

भोज्य-चोष्य-पय-भक्ष्य-लेह्य-चर्व्य शीतल-तपित ।
अश्रुत-अलखित नव्य, सजे कनक-मणि पात्र-दल ।।

दोहा.

पंच-कौर कर, प्राप्त कर, प्रभु का मृदु संकेत ।
लगे जीमने देव-मुनि-मनु-दनु-कपि समवेत ।।

ऊर्मिका

एक दिशि कामिनियों के गीत—
एक दिशि मंजु-मंद्र संगीत ।
एक दिशि मान, एक दिशि प्रीति,
सकल दिशि विनय, सुनय की मीत ।।

उठे भोजन कर, ले तांबूल—
गये सुर पूर्ण-काम निज धाम ।
विभीषण-कपिपति से पा मान,
चले धींवर कह 'जय श्री राम' ।।

विराजे सभा-सदन रघुनाथ,
निभाकर सांयकालिक कर्म ।
निशाचर लगे पूंछने "नाथ,
कृपाकर कहे धर्म का मर्म ।।"

देखकर लंकापति की ओर,
परम गंभीर धीर रघुवीर ।
परमहंसेश्वर हंस समान—
लगे दर्शाने नीरक्षीर ।।

"प्रकृति के पंचतत्व ज्यों हेतु,
देह का कारण जैसे प्राण ।
इंद्रियों का त्यों मन आधार,
शुभाशुभ-कर्मों का संस्थान ।।

यही मन, जो जड़ इंद्रिय-राशि—
दिखाता जंगम सी जग-मंच ।
स्वय पर सूत्रधार के वेष—
छिपा रहता है पृष्ठ-प्रपंच ।।

बोलतीं हैं कठपुतली सरिस—
इद्रियां, गिरा उसी की दीन ।
नाचतीं मन के ही संकेत,
चकित करतीं जन परम प्रवीण ।।

रचातीं नव-रस की नव-सृष्टि,
बनाती अंध, अँधेरी-दृष्टि ।
विषय को भीख मांग तन शून्य—
लौटतीं, इस मरु पर कर वृष्टि ।।

न संभव इससे तरना सहज,
मरुस्थल मन का दारुण नीच ।
उधर अप्राप्य औविरज शैल,
प्राप्य दव-भस्म इधर अति कीच ।।

मध्य में भव-भोगों से प्राप्त—
शक्ति से, भूख-भूख का रोर ।
मचाता, पेट-पीटता खड़ा—
यही मन बना वेष घनघोर ।।

यही तन-मन में अंतर प्रियो !
एक की करती प्राप्ति विरक्ति ।
अन्य को जितनी होती प्राप्ति,
युवा होती उतनी आसक्ति ।।

अनल को जो कर सकते सलिल,
बांध सकते स्वतंत्र जो वायु ।
नाप सकते अंगुल से गगन,
काल से ला सकते लड़ आयु ।।

रसा को आसन सरिस लपेट,
शेष को दे सकते विश्राम ।
बना सकते मुठिका पवि चूर्ण,
सप्त-दधि वंदी पुटिका-धाम ।।

न वे भी वश कर सकते इसे,
जीव अल्पज्ञ अल्प-पुरुषार्थ ।
अनोखा अजर-अमर पटु-मूढ़—
जगत में मन वह अलख पदार्थ ।।

लजाता निज अणिमा परमाणु,
दबाता गुरु गरिमा ब्रह्माण्ड ।
कोटि चंचलाधिक्य चांचल्य—
भरा, यह अपराजेय प्रचंड ।।

न इसको वश में करना सहज,
पराजित करना स्वप्न नितांत ।
मारने चले बहुत प्रण-बद्ध,
न लौटे, लुटे कल्प-कल्पांत ।।

लगाकर शंभु अखंड समाधि,
अहर्निश श्रुति-मख-रत कर्तार ।
अमित ब्रह्मर्षि-सिद्ध कर रहे,
इसी मतवाले की मनुहार ।।

निरन्तर कर सुसंग सज्जनो !
मिला है समाधान यह एक ।
नम्र - निर्दम्भ - कुतर्कविवर्ज्यं,
भक्ति-साधना शास्त्र-सुविवेक ।।

यही सद्धर्म सनातन-मार्ग,
जीव-हित महा - मंगलागार ।
चले यदि इस पथ पर ही बुद्धि,
सुभावित-स्वाभाविक - शृंगार ।।

साधु माली, सत्संग सुवारि,
सत्यगुरु - श्रद्धारत-मति भूमि ।
अध्ययन चिंतन मनन सुकर्म—
प्रकटतीं संस्कारांकुर-ऊर्मि ।।

पार कर संचित-कृत हेमन्त,
प्रकट होता सौभाग्य वसन्त ।
चित्त चैतन्य चुने गुण-सुमन,
चरित-गुण-गुंफित शील अनन्त ।।

विभूषण बना, सजा सुन्दरी—
बुद्धि को दो इस पथ पर चला ।
चलेगा क्या, दौड़ेगा स्वतः—
मत्त हो मन, पुकारता 'हला' ।।

हृदय सम्मिलनालय से पूर्व—
न देखे पीछे फिर यदि बुद्धि ।
जान लो तो निश्चित प्रिय-जनो !
रसिक-मन की अशेष-रसशुद्धि ।।

बुद्धि-मन मिलन हृदय-आयतन—
करा दो कैसे ही कर कष्ट ।
नित्य होता सुपुष्ट तव धर्म—
रहो निश्चित, न होगा नष्ट ।।

दोहा

पूंछा सुहृदो ! आपने, यही धर्म का मर्म ।
प्रतिपल रह सत्संग-रत, करो सकल जग-कर्म ।।"

सोरठा

जयकारों के मध्य, माल्यवंत बोला "प्रभो ।
मुख में रखा सुभक्ष्य, कृषक-सूद-जननी सरिस ।।

दोहा

कमल-कुमुद सौभाग्य के, कृपा-कटाक्ष प्रकाश ।
आज असुर-दल के खिले, गा प्रभु-पद-विश्वास ।।"

ऊर्मिका

तभी मयतनया-वज्रज्वाल—
कैकसी मां के आई संग ।
"नाथ ! हमने ही निज दुष्कर्म,
किया यह अपना नीला रंग ।।

प्रथम गौरव फिर पश्चाताप,
आज पर परमानंद निवास ।
न होता नीला तो यह पीत—
प्रकट क्या करता हरित-हुलास ।।

प्यास से ही पानी का मूल्य,
भूख से ही गौरवान्वित अन्न ।
अभावों से ही भाव समस्त,
सदा प्रभु! षडैश्वर्य-सम्पन्न ।।

काल के पड़े निशाचर गाल,
आपने महाकाल-छवि खींच ।
ललित-भय नृत्य-नाटिका दिखा,
कृपानट! दिये सुधा से सींच ।।

आपका एक-एक उपकार—
काल की मर्यादा कर पार ।।
कौन कहने में शेष समर्थ,
'नेति' तव श्रुति-छवि रहीं उचार ।।

मनुजता की निर्भय परिपुष्ट,
दनुजता का कर रण-उपचार ।
आपके त्याग-राग-रति-रोष—
सभी में करुणा-शुभा अपार ।।

श्रेष्ठ वरदानों का वरदान,
कृपाकर दें स्वभक्ति का दान ।
रमें मन 'राम-नाम' में सदा,
हृदय बन जाये रामस्थान ।।"

दोहा

झुकी कैकसी, ली बिठा, प्रभु ने सादर पास ।
बोले 'प्रसवनि! राम तव, जन्म-जन्म का दास ।।

हृदय सम्मिलनालय से पूर्व—
न देखे पीछे फिर यदि बुद्धि ।
जान लो तो निश्चित प्रिय-जनो !
रसिक-मन की अशेष-रसशुद्धि ।।

बुद्धि-मन मिलन हृदय-आयतन—
करा दो कैसे ही कर कष्ट ।
नित्य होता सुपुष्ट तव धर्म—
रहो निश्चित, न होगा नष्ट ।।

दोहा

पूंछा सुहृदो ! आपने, यही धर्म का मर्म ।
प्रतिपल रह सत्संग-रत, करो सकल जग-कर्म ।।"

सोरठा

जयकारों के मध्य, माल्यवंत बोला "प्रभो ।
मुख में रखा सुभक्ष्य, कृषक-सूद-जननी सरिस ।।

दोहा

कमल-कुमुद सौभाग्य के, कृपा-कटाक्ष प्रकाश ।
आज असुर-दल के खिले, गा प्रभु-पद-विश्वास ।।"

ऊर्मिका

तभी मयतनया-वज्रज्वाल—
कैकसी मां के आईं संग ।
"नाथ ! हमने ही निज दुष्कर्म,
किया यह अपना नीला रंग ।।

प्रथम गौरव फिर पश्चाताप,
आज पर परमानंद निवास ।
न होता नीला तो यह पीत—
प्रकट क्या करता हरित-हुलास ।।

प्यास से ही पानी का मूल्य,
भूख से ही गौरवान्वित अन्न ।
अभावों से ही भाव समस्त,
सदा प्रभु ! षडैश्वर्य-सम्पन्न ।।

काल के पड़े निशाचर गाल,
आपने महाकाल-छवि खींच ।
ललित-भय नृत्य-नाटिका दिखा,
कृपानट ! दिये सुधा से सींच ।।

आपका एक-एक उपकार—
काल की मर्यादा कर पार ।।
कौन कहने में शेष समर्थ,
'नेति' तव श्रुति-छवि रहीं उचार ।।

मनुजता की निर्भय परिपुष्ट,
दनुजता का कर रण-उपचार ।
आपके त्याग-राग-रति-रोष—
सभी में करुणा-शुभा अपार ।।

श्रेष्ठ वरदानों का वरदान,
कृपाकर दें स्वभक्ति का दान ।
रमें मन 'राम-नाम' में सदा,
हृदय बन जाये रामस्थान ।।"

दोहा

झुकी कैकसी, ली बिठा, प्रभु ने सादर पास ।
बोले ' प्रसवनि! राम तव, जन्म-जन्म का दास ।।

क्या आज्ञा निज बाल-हित," भरी कैकसी स्नेह ।
"सत्य-सत्य रघुनाथ ! तुम, जन-कल्याण सदेह ।।
गहराई तमसा अधिक, अब करिये विश्राम ।"
चले सकल जन शयन-हित, वंदनकर निज धाम ।।

मालिनी

कपिराज-कुँवर को लाईं बहु अनुचरियां ।
थी जहां रसानी शैया सजी अटरिया ।।
तारकमय चंद्रातप कंचन - दंडों पर ।
यों तना, चंद्र पर ज्यों सुचांद्रि न्यौछावर ।।
कौशेय-निचुल-चय-लसित चतुर्दिक भीतें ।
ज्यों शश-शिशु शशकी-पय घिर-घिर कर पीते ।।
यों लसी चित्र-सारिका चित्रकारी से ।
ज्यों उतरी रति रतिशाला नभ-वारी से ।।
बहु रंग-बिरंगे कोमल बिछे बिछावन ।
मनसिज-चौसर सी सेज मध्य मनभावन ।।
मणिदीप मृदुल, मंजुल मुकुरों की माला ।
करती मन सुमन-निचोल-गंध मतवाला ।।
भावुकता-पटुता का लख मेल मनोहर ।
यों लगा कला कल-कलश गई, लुढकाकर ।।
प्रियतम-शुभागमन जान, किये अवगुंठन ।
ज्यों उठी रसानी, खनक उठे आभूषण ।।
जुड़ गये द्वार कपि के आते ही अन्दर ।
रह गये ठगे से युगल सकुच मुस्काकर ।।
फिर चली रसानी पद धोने ले झारी ।
कपिवर बोले "कुछ ठहरो राजकुमारी ।।

श्रुति-लोक-रीति से यद्यपि दम्पति बनकर ।
हम आये देवि ! समर्पण-हेतु परस्पर ॥
जो जगत-रीति होती, होगी, क्या कहना ।
पर हृदय-परीक्षा चाह रहा मन करना ॥
क्या भिक्षुक का उपवास, नग्न का साधन ।
क्या मौन मूक का, पंगुल का एकासन ॥
क्या शव का प्राणायाम, क्लीव व्रत धारण ।
क्या जन्म-सूर का नासिकाग्र आकर्षण ॥
अब यहीं देखना, रामचरण-रत का मन ।
माया के सम्मुख कैसे करता नर्तन ॥
मां को लेकर भी प्रभु चौदह-संवत्सर ।
कैसे वन-वन में रहे तपस्वी बन कर ॥
क्यों प्रिया न आई स्मरण लषण को क्षण भर ।
कैसे व्रत धारण किया भरत ने दुष्कर ॥
कैसे रहकर रिपुदमन अवध-भवनों में ।
जय उन्हें कर गये, जो बिचले विजनों में ॥
कैसे मारुति लख कर शृंगार-दिगंबर ।
आ गये अछूते, भस्म कनकपुर को कर ॥
इस ओर बालि-दशशिर नित नवला लाकर ।
नारी के कारण जीवन गये गँवा कर ॥
सीमा का दोनों ओर उलंघन भारी ।
कर गये पुरुष ये, केन्द्र रही पर नारी ॥
हैं भोग-योग के दो पथ इस संसृति में ।
प्रभु सहित-रहित का भेद, न भेद प्रकृति में ॥
नारी को देना दोष, न लक्ष्य तनिक मम ।
पर भोग-योग सरि लय-कर नारी दधि-सम ॥
थी वृन्दा नारी एक जिसे छू क्षण-भर ।
हो गया शिलामय लक्ष्मीकांत-कलेवर ॥

थी सावित्री भी एक यहीं की नारी ।
जिस हेतु काल-दुरतिक्रमता ही सारी ।।
किस भांति पलक में पलटी, विदित जगत को ।
उस ओर और दें क्या प्रमाण दृग, मुख को ।।
उपसुंद-सुंद का जिसने घात कराया ।
उस तिलोत्तमा ने भी नारी - तन पाया ।।
लख सिय-सतीत्व अपने सतीत्व से सात्विक ।
विग्रह न, अनुग्रह मानी प्रभु का तात्विक ।।
तज सती सलौनी भवन, परम निस्पृह बन ।
ले निर्भय प्रिय-शिर किया चिता-आरोहण ।।
वह सती-शिरोमणि शुभे ! तुम्हारी जननी ।
जो तरल कर गई रिपु की कुटिल पलकनी ।।
परलोक-लोक जयमाल-शृंखला नारी ।
जो चाह बनो, मैं प्रस्तुत राजकुमारी ।।
यह काल-पाकगृह-ईंधन तन, तव केवल ।
दो बना वासना-कीट कि त्रिभुवन-मंगल ।।
बोली पट पलट रसानी दृष्टि उठाकर ।
"तव लक्ष्य-शिखर-निश्रेणी यह प्राणेश्वर ।।
तव चरण-कमल की मैं अलिनी बौराई ।
यह मन अब, तव मन-तन की वह परछाई ।।
जो हिलते ही हिलती, रुकते ही रुकती ।
जो उठते ही उठती, सोते में जगती ।।
चलती, लख सम्मुख-विभा, पृष्ठ दासी बन ।
पा विभा पृष्ठ करती बढ़ मार्ग-प्रदर्शन ।।
ज्यों ही करती अधिकार विभा मस्तक पर ।
या विपद्-अँधेरा लेता निगल कलेवर ।।
वह निश्चेतन सी चेतन में लय होती ।
सुख में न शील, दुख में न धैर्य निज खोती ।।

सोरठा

पाओगे प्राणेश, त्यों इस दासी को सदा ।
जो दोगे वर-वेष, लेगी वह सौभाग्य सम ।।"

दोहा

कपि बोले "प्राणेश्वरी, एक हृदय में चाह ।
तन-मन हृदय-सदन मिले, रघुपति-भक्ति-सुराह ।।"

मालिनी

"प्रिय प्राणनाथ ! विश्वास रखें दासी पर ।
प्रण पूर्ण करेगी प्राणों को भी देकर ।।
निष्कंप ज्योति निश्शंक जगे तव, स्वामिन ।
तव पद-रज का भरकर सिंदूर सुहागिन ।।
जीवन-भर जीवन-स्नेह जन्म-जन्मान्तर ।
प्रज्ज्वलित रखेगी, अर्पित कर प्राणेश्वर ।।
अब शयन करें, निश्चित मदन-पूजन कर ।"
रह गये खड़े क्षण भर तो चकित कपीश्वर ।।
हिल गया मनासन एक बार, दृग डोले ।
"तुम सच सुरपतिजित-सती-सुता" फिर बोले ।।
बढ़ चले प्रियांजलि से पुष्पांजलि लेकर ।
रति-रतिपति प्रतिमा पर की अर्पित सादर ।।
कर-बद्ध किया आवेदन शीश झुकाकर ।
"दो इस दम्पति को सियपति-पद-रति रतिवर ।।
प्रण घोर खड्ग की धार, बने तव शर-सम ।
दे तार सहज तरिका सम यम-नियमागम ।।"
बिखरे पुण्याशिष-सूचक-सुमन शिरों पर ।
ले चली रसानी प्रिय को प्रमुदित होकर ।।

बैठी, शैया पर सादर बिठा, धरा पर ।
लेटी लपेट आंचल, समाधि सी लेकर ।।
कपि रहे निरखते, लज्जित प्रेम-निमज्जित ।
सोये सकुचा एकाकी सेज सुसज्जित ।।

दोहा

उठी उषा ले अरुण-घट, ज्यों प्राची-प्राचीर ।
उठे प्रिया-मंजीर प्रिय, कहते जय रघुवीर ।।
चलीं खिलखिला अर्गला, कर हलचल अनुमान।
बढ़ीं नवेली नमन कर, चपल चलातीं बाण ।।

सोरठा

कर मज्जन शृंगार, आये वर-वधु प्रभु-निकट ।
दे आशीश दुलार, बैठाये रघुनाथ ने ।।

मालिनी

फिर बुला विभीषण को बोले रघुनंदन ।
"अब करो विदा लंकेश्वर ! पुष्पक-स्यन्दन ।।"
भर गये विभीषण के दृग, चित अकुलाया ।
बोले "प्रभात प्रभु ! क्या संदेश सुनाया ।।
केवल दो दिन ही रहे, व्यस्त रह पल-पल ।
कर काया-कल्प, न करिये प्राणों से छल ।।
कुछ दिवस दास का कर आवास सुपावन ।
ले साथ मुझे प्रस्थान करें मनभावन ।।"
सियपति का सुन मन्तव्य महालय सहमा ।
हो गई तिरोहित तुरत हृदय की सुषमा ।।

मयसुता - कैकसी - वज्रज्वाला - सरमा ।
बन गईं करुणिमा की सी अद्भुत उपमा ।।
रह गईं देखतीं वृद्धा-प्रौढ़ा-बाला ।
ज्यों पड़ा माधवी-मंजरियों पर पाला ।।

फिर बिलख उठीं, "रघुपति ले चले रसानी ।
सपनों की राजकुमारी हुई विरानी ।।
चल पड़ी गोद की पाली दिशा अजानी ।
क्या बनी बनाने को वियोगिनी, रानी ।।

क्या रचा हाय ! कन्या-धन क्रूर-विधाता ।
किस घड़ी हृदय का जोड़ वज्र से नाता ।।
जो पल-पल पुतली सी पलकों में पाली ।
वह हृदय-शरद-सरवर की मंजु मराली ।।

वह नव-वसंत की कली, चली पर-उपवन ।
दें किसे दोष, पर धीर धरे कैसे मन ।।
इन हाथों ही जो गुड़िया सरिस सजाई ।
वह सुता मांगती सम्मुख खड़ी विदाई ।।

किस विधि रोकें, किस विधि भेजें हा ! विधना ।
अब अपनी पर ही रहा न बस हा ! अपना ।।
बोली मयजा धर धीर-शिला छाती पर ।
हर स्त्री पर आता एक बार यह अवसर ।।

दोहा

हृदय अशीष, सुचाव मन, भर लोचन जलधार ।
करो इन्दिरा सा सरस, दुहिता का शृंगार ।।
अनुष्ठान की दीप सी, रची सुता कर्तार ।
सजग स्नेह से सींच कर, सौंपो स्वयं इनार ।।"

मालिनी

निजकर निज लोचन पूंछ, चलीं सब नारी ।
लौटीं ले-ले उपहार अनेकों सारी ।।
भर गये कक्ष के कक्ष कई, पल भर में ।
रह गईं कई फिर भी, मन की रख मन में ।।
दो स्वेच्छा से कन्या को सब, लघु लगता ।
पर लघु भी मांगा गया, शूल सा खलता ।।
ली बिठा ग्रंक में, बुला सुता-सुकुमारी ।
दे सीख, सजाने लगीं वृद्ध-कुल-नारी ।।
कोलाहल भारी बढ़ता देखा बाहर ।
"भेजो दुहिता को," बोले ग्रा लंकेश्वर ।।
बन गईं रुद्ध सी वाणी सिसकी सहसा ।
मानों श्रृङ्गार-जवास करुण-घन बरसा ।।
फिर निकलीं एकाएक एक सी वाणी ।
"लो चली सती की ग्रंतिम चिन्ह, रसानी ।।"
"तज हमें चली तू कहां रसानो प्यारी ।"
कर उठे पिंजरों में विलाप शुक-सारी ।।
गिर गईं कटोरी चुग्गों की, जल बिखरा ।
सिसकी का स्वर बन रुदन भवन में बिफरा ।।
ग्रा गिरी गोद में मृगी केलि-उपवन की ।
दृग भरे, दबी अनदबी दूब रद किनकी ।।
नयनों से कहती करुणा लंका-हिय की ।
'सखि ! हमें न देना भुला प्रिया बन प्रिय की' ।।
वन गईं रसानी की निर्झरिणीं पलकें ।
खुल गईं कसी कच-बंध सांवली-ग्रलकें ।।
दृग-जल भीगीं, चिपकीं लहरा ग्रानन पर ।
ज्यों चंदन-तरु पर पड़ीं पन्नगी न्हाकर ।।

हिय-हिय लगती, फिर पलट-पलट कर मिलती ।
आ लगी द्वार से, गोद-गोद में गिरती ।।

दोहा

लख सम्मुख शिविका सजी, कपि-युवराज निहार ।
बोली बढ़ मंदोदरी, आंचल भूमि पसार ।।
"प्रिय कुमार ! यह बालिका, दीन मातु-पितु हीन ।
कृपया कर देना क्षमा, नव-नव चूक प्रवीण ।।
कहना तारा बहिन से, अपनी दुहिता जान ।
रखें लगाकर हृदय ते, यह मेरी मन-प्राण ।।"
फिर बोली सुग्रीव से, नतशिर जोड़े हाथ ।
"लाज लंक की तव चरण-अर्पित है कपिनाथ ।।
रख लेना ढककर इसे, यह दुहिता का वित्त ।
भूल-चूक करना क्षमा, चित्त स्नेह-विक्षिप्त ।।"
कह न सके कुछ चाहकर, विह्वल वानर-नाह ।
भूल गये, गद्गद् हुए, लंकेश्वर की बांह ।।
शिविका के उठने लगे, ज्यों कौशेय-निचोल ।
उभय पक्ष का हृदय त्यों, गया ध्वजा सा डोल ।।

मालिनी

दी बिठा विभीषण ने सस्नेह कुमारी ।
झुक-झुक कर फिर-फिर बारम्बार दुलारी ।।
"धर धीर सुते ! अब किष्किंधा तेरा घर ।
तारा-जननी, सुग्रीवदेव प्रिय पितुवर ।।
तव बड़े भाग्य, अंगद जैसा वर पाया ।
जिसको रघुपति ने निज प्रिय पुत्र बनाया ।।
बल-शील-रूप-विज्ञान निधान निराला ।
जिसकी समानता दिखा न करने वाला ।।

वह पति न मात्र तव सुते ! सगुण-परमेश्वर ।
उसकी आज्ञा, तव-हित श्रुति से भी ऊपर ।।
लाड़लि ! पालन करना प्राणों से बढ़कर ।
परलोक-लोक पति-पिता भवन-हित हितकर ।।"
ले तभी एक गुड़िया अति सजी सजाई ।
अति सरल बालिका दौड़ी-दौड़ी आई ।।
बोलो "सखि ! तू जिसकी कर गई सजाई ।
ले लेजा उसको साथ, पड़ी अनव्याई ।।"
खो गया विभीषण का विवेक-धीरज, सुन ।
बज उठा कान में कुछ रुनझुन कुछ छुन-छुन ।।
पा ऋक्षेश्वर-संकेत उठी ज्यों डोली ।
हो गई कसैली, मीठी मिश्री घोली ।।
ज्यों चार बचाते-बचते दो-डग सरके ।
धर लिया दंड निज कंध भूप ने बढ़के ।।
कारुण्य बना श्रृंगार गीतमाला का ।
डोले कहार भी ले डोला बाला का ।।
आया विमान तक धीरे-धीरे डोला ।
यक्षों ने रख सोपान, द्वार बढ़ खोला ।।
उपहार चार पीछे से लगे चढ़ाने ।
वधु को कपीश-रक्षेश्वर लगे बढ़ाने ।।
दी बिठा रसानी वातायन में लाकर ।
फिर लंकेश्वर बोले रघुपति से जाकर ।।
"तव परम-कृपा करुणानिधान ! जनरंजन ।
जगदीश ! कोसलाधीश ! त्रितापविभंजन ।।
सियरमण ! पतितपावन ! मनुजाद-निकंदन ।
दुख किये दास के दूर राम ! रघुनंदन ।।
क्या कहे गिरा गुण अगणित नाथ ! तुम्हारे ।
हे मंगल-भवन ! अमंगल-हरण हमारे ।।

दोहा

विनय यही, रखना सदा यों ही शिर पर हाथ
निज ममता, मम अज्ञता, देख-देख रघुनाथ ।।"
"उठो उठो प्रिय मित्रवर ! पद न, हृदय तव स्थान ।"
लगा हृदय लंकेश को, बोले कृपानिधान ।।
बढ़ा कीशपति - ऋक्षपति-अंगद - केवट - भ्रात ।
चढ़े यान रघुवंशमणि, लिये समीरणजात ।
करता लंक-परिक्रमा, चला उदीची यान ।
गूँज उठे तल-अतल-नभ, 'जय सियपति भगवान' ।।
उतरे रामेश्वर-अजिर, राम सिंधु कर पार ।
धींवर-जन करने लगे, बौरा कर सत्कार ।।
मां-मातामह-मयसुता - सरमा - वज्रज्वाल ।
आये लिये विमान में, लंकेश्वर तत्काल ।।
माल्यवंत बोला "विनय, बस यह कृपानिधान ।
गृद्धराज सम अंक तव, देह तजें ये प्राण ।।
बहुत चल चुकी अब थकी यही शेष अभिलाष ।
मत कर देना दीन को, दो क्षण - हेतु निराश ।।"
कर मज्जन मृग-चर्म कस, रख शिर शिव-निर्माल्य ।
लीप धरित्री, कुश बिछा, जागृति हित सौभाग्य ।।
लेट गया प्रभु-अंक में, कर मुख लंका-ओर ।
रामचन्द्र मुख-चन्द्र के, लोचन बना चकोर ।।
दो पल दो ही स्वांस में, चटक गया ब्रह्मांड ।
गया क्षीर-सागर अमृत, पड़ा रह गया भांड ।।
दी धींवर - जन ने लगा, चिता सेतु-तट मध्य ।
दिया स्वयं रघुनाथ ने, वदन हुताशन-अर्घ्य ।।
लगीं चूमने नभ लपट, घिरीं गगन सुरझारि ।
दिया घोर-रिपु को स्वपद, करुणासिंधु खरारि ।।

मालिनी

मिल गये तत्व पाँचों पांचों तत्वों में ।
रई गईं अस्थि घुन खाईं भस्म-कणों में ।।

ले लिया राम ने लिपटा रज्जु शरासन ।
धनु-कोटि चोट कर किया स्वसेतु विभंजन ।।

ले माल्यवंत-अवशेष भाग बहु पुल का ।
बन गया कौर क्षण भर में सिंधूदर का ।।

रह गये खुले मुख, फटे सभी के लोचन ।
बोले कपीश "क्या किया जानकीजीवन ।।

तव कीर्ति-केतु यह सेतु भुवन का अचरज ।
स्वयमेव बनाया सागरतल का मलयज ।।"

बोले रघपति "तव कथन सत्य कपिराजन् ।
बन गया किंतु यह प्रिय-बंधनका ।।

जिस प्रिय का स्वागत किया अवध ने सादर ।
वह इसके कारण वंदि-वेष धारण कर ।।

धिक्कार मुझे देता, मम सम्मुख आया ।
"रे राम ! सेतु क्या दधि-नभ केतु उगाया ।।

बन गया गले का हार, हार यह कल का ।
थी भूल, गया उपचार किये बिन इसका ।।

यों ही दुख देने लगे मूर्ख आ-आकर ।
मम प्रिय पर मेरा यश-आगार ढहाकर ।।

ज्यों जलद तपन हरने को, जग जन-जनकी ।
ले विधि-विधि से लघु-लघु कणिका जल-कण की ।।

समभाव सभी पर नभ चढ़कर बरसाता ।
इस हेतु कहाता घन जग-जीवन-दाता ।।

हो जाते जड़-जंगम तन-वदन प्रफुल्लित ।
पर वही सलिल, बरसाती - सरि कर संचित ।।
किस भांति डुबा पुर के पुर प्रलय मचाता ।
तव जग का किसको कहो, शाप फिर जाता ।।
वह मेघ जिसे कर-कर आह्वान बुलाया ।
लघु-सरि - करनी से वह ही लघुता पाया ।।
त्यों रखें ध्यान, नृप करता प्रजा-सुपोषण ।
पापी मंत्री करलें न किसी का शोषण ।।
निज समालोचना जो न यशेच्छुक करता ।
वह अयशकूप असमय स्वघातकी मरता ।।
मृत-विप्र न, यह पुल कारण प्रिय-बंधन का ।
प्रत्यक्ष-रूप मम घोर-प्रमादीपन का ।।
होता न मूर्ति कपि-कला-कुशलता की यह ।
तो कर देता विध्वंस मार शर दुःसह ।।
यदि देता प्रिय को दंड तनिक न्यायालय ।
तो लेता बढ़ मैं स्वयं शीश पापालय ।।"

दोहा

पकड़ लिये लंकेश ने, रघुपति के पद-पद्म ।
"सत्य-सत्य रघुनाथ ! तुम, अशरण-शरण-सुसद्म" ।।

मालिनी

हिय लगा मित्र को, चले स्नान-हित रघुवर ।
तरि-पालों से बन गये घाट दो सुन्दर ।।
हो पृथक-पृथक नरनारी लगे नहाने ।
पट बदल, तिलक आ तट पर लगे लगाने ।।
पर रावण-कुंभकर्ण की भार्या मिलकर ।
छोड़ने सिंधु में लगीं विभूषण-अंबर ।।

धो अंगराग, कच-बंधन खोल बहाये ।
पट श्वेत-श्वेत, शिर भस्म, केश बिखराये ।।
भर गये राम के साथ-साथ दृग सब के ।
जब बैठीं दोनों, धरती पर आ करके ।।
बोली उठकर कैकसी "राम! रघुनंदन ।
दो आज्ञा, जाकर करूँ स्वामि के दर्शन ।।"

दोहा

गुह ने रथ लाकर दिया, चढ़ी कैकसी अंब ।
चली विश्रवाश्रम, नमन-आशिष दे अविलंब ।।
लगी अहिल्या दूसरी, जाती पति के धाम ।
वज्र-शिला चैतन्य की, शिलोद्धार श्रीराम ।।
ऋक्षराज कपि-वर-वधू, सजा साज - सामान ।
रामाज्ञा बरबस चले, निज-पुर लंक- विमान ।।
वज्रज्वाला-मयसुता, निज क्रम मन अनुमान ।
लगीं लता सी कांपने, देख-देख भगवान ।।

मालिनी

बोले रघुपति "लंकेश ! दिवस ढलने को ।
मन मचल रहा श्री-शैल-दर्श करने को ।।
हैं साथ देवियां अब पुर आप पधारो ।
निज राज-काज बहु वय से छुटा, सँवारो ।।
वज्रज्वाला कुररीव कर उठी क्रन्दन ।
"मत दुत्कारो यों दीनों को रघुनंदन ।।
श्रीचरण बिना अब राघव ! कौन हमारा ।
वे गये, पुत्र को कैसे कहूँ सहारा ।।
किस भांति नीच ने पामरता दिखलाई ।
मैं मृत्यु देखती हर क्षण उसकी आई ।।

मातामह ने तव धाम पा लिया अनुपम ।
मां गई, प्रात की भूली सांझ पिताश्रम ।।
जीजी समर्थ गंभीर धीर धीर लेगी ।
सरमा उदार है अशन-वसन नित देगी ।।
रखते यद्यपि मां-सम सदैव लंकेश्वर ।
पर फिर भी रहता सदा हृदय में यह डर ।।
किस क्षण मूलक क्या डाले अनहोनी कर ।
ले निगल आपके धनु से कब छुट कर शर ।।
मन कहता पाने दे री करनी का फल ।
पर हठ करता है ममता भरा हृदय-खल ।।
कहता 'प्रियतम का एक खिलौना ही तो ।
तू जननी है, उसकी संरक्षक भी तो' ।।
क्या किस से जाकर कहूँ, कहां हा! जाऊँ ।
मुख पति-सुत-कालिख सना किसे दिखलाऊँ ।।
क्या कहूँ आपसे, वदन कौनसा लेकर ।
क्या मांगू वर, विश्वास कौन सा देकर ।।"

दोहा

बोले लख रामेश-दिशि, धनु छूकर रघुनाथ ।
"नहीं उठेंगे देवि! अब, तव कुल पर ये हाथ ।।
जाओ अब निश्चित पुर, दो सुत को उपदेश ।
एक न निशिचर जन्मना, सकल कुसंगति-क्लेश ।।"
प्रभु ने वज्रज्वाल को, कंकण दिया उतार ।
यह मम रक्षा-सूत्र तव, वंश-रक्षणाधार ।।"
फिर बोले मयसुता से, "तव देखा संसार ।
आप न केवल लंक की, त्रिभुवन-धर्माधार ।।
जो सीता से तव विषय सुना, लखा शतकोटि ।
रहीं कूल प्रतिकूल-गति, थामे हरगिरि-चोटि ।।

लंक-शासिका सत्य तुम, तव लंकेश अमात्य ।
तव प्रभाव-वश ऋषि बने, देवि ! सनातन व्रात्य ।।
राजसूय साकेत में, रचा रहे आचार्य ।
वय से पूर्व पधार कर, सकल सम्हालें कार्य ।।"
पा प्रभु का संकेत गुह, लाये सज्जित यान ।
प्रभु बोले "लंकेश ! प्रिय, करिये अब प्रस्थान ।।"
कहा विभीषण ने "प्रभो, यह कैसा आदेश ।
चला अवध से, अवध तक, पहुँचाना है शेष ।।"
बोली सरमा "नाथ का, कथन उचित रघुनाथ ।
उनका तजना साथ क्यों, जिन का थामा हाथ ।।"
मौन देख रघुनाथ का, यान चढ़ायीं वाम ।
चलीं साथ दो दाश ले, कहतीं 'जय श्री राम' ।।
कर रामेश्वर - वंदना, ले निज परिकर साथ ।
लंका-यात्रा पूर्ण कर, चढ़े यान रघुनाथ ।।

मध्य-प्रदेश यात्रा

ऊर्मिका

अमित गिरि-सरि-सर-पुर कर पार,
तुंग-गिरि सघन वनों के पार ।
सह्यबाला कृष्णा की धार,
पुण्य पाताल-गंग छवि धार ।।

बजाती किंकणियां सी जहां,
शिलाओं पर कर केलि किलोल ।
प्रवाहित होती प्राच्योन्मुखी,
निरखती दधि-उल्लोल विलोल ।।

मुक्ति-मां के पुण्यामृत पूर्ण,
उरज - सम ज्योतिर्लिंग-ललाम ।
सप्त-प्राकाराच्छादन मध्य,
परम पावन श्रीशैल-सुधाम ।।

उतारा, कर 'हर-हर उद्घोष,
जानकीवर ने भूमि विमान ।
मल्लिकार्जुन के दर्शन किये,
अवधपति ने कर कृष्णा-स्नान ।।

सविधि निशियजन सुपूजन किया,
द्विजों को दिया दान सम्मान ।
प्राप्त कर भ्रमराम्बिका-प्रसाद,
किया प्रभु ने प्रातः प्रस्थान ।।

कुमारस्वामी का कर नमन,
पुष्पगिरि का कर दर्शन-लाभ ।
राम-गिरि लख फिर, बोले राम,
"कीशपति ! देखो क्या हरिताभ ।।

उतरते, उड़ते, दिशि-दिशि मेघ,
धवल-श्यामल-कल्माषक वेष ।
प्रिया के जाते ज्यों प्रिय-देश,
प्रिया का लाते प्रिय-संदेश ।।

गगन के मेघ-दूत ये दिव्य,
प्रकृति मुग्धा सी करती लास्य ।
कर रही मानों नवला चपल—
किसी शापित -विरही से हास्य ।।

किसी दिन कोई रसिक विशेष—
कहीं आ निकला इधर सुमित्र ।
हो गई सरस्वती की कृपा,
काव्य रच देगा अमर विचित्र ।।

किया सीता-सरवर आचमन,
विलोका स्ववन - प्रवासस्थान ।
देखता पावन चंपारण्य,
पारकर इन्द्रावती विमान ।।

डाकिनी और शंखिनी नदी—
जहां मिलतीं भुज-लहर पसार ।
गया श्रीदंतेश्वरी-सुधाम,
प्रकृति-सुत बस्तर सरल निहार ।।

बनाकर बांसों के धनु-बाण,
बींधते वनवासी तरु-पत्र ।
कंद-फल-मूल अशन, दल वसन,
चलाते प्रमुदित जीवन-सत्र ।।

बांटते हुए अमित उपहार,
बालकों से कर मुदित-दुलार ।
अमरकंटक पहुँचे रघुनाथ,
नर्मदा करती जहाँ विहार ।।

शुभ्रताभरी, संगमरमरी,
विंध्य-नागरी ललित चट्टान ।
झाँकती तरु-तरु की झंझरी,
प्रकृति-पथरी करती गुंजान ।।

प्रतीची - पारावारागार,
लिये उल्लोल-मल्लिकामाल ।
खेलती पुनर्जन्म-कंदुकी,
दिखी नवला सी मेकल-बाल ।।

स्नान कर, देकर दान अपार,
चले कर ज्वालेश्वर-अभिषेक ।
दिखाकर मँडला धार सहस्र,
सहस्रार्जुन का बल-अविवेक ।।

गये जाबालिपत्तनम् राम,
ऋषीश्वर से की सादर भेंट।
पितामह अज का देखा दुर्ग,
खड़ा ज्यों बांध, शीश नभ-फेंट॥

देवयानी की सुतपस्थली,
देवपर्वत के कर शुभ दर्श।
छत्रपुर-पन्ना को कर पार,
सिद्धि-शारद सम्मान सहर्ष॥

शिवपुरी-विदिशा होते हुए,
बेतवा-कपिल धार कर स्नान।
उदयगिरि-सांची-कला विलोक,
गये उज्जियनीपुरी महान॥

किया क्षिप्रा में मज्जन मुदित,
महाकालेश्वर का अभिषेक।
चिताभस्मांगराग अति दिव्य,
कराता जग को काल-विवेक॥

कर्क रेखा देशान्तर शून्य,
धार शिर अहि-मिथुनेव वृषेन्द्र।
गणित की करते शंका शमन,
भुवन के समय-सारणी केन्द्र॥

नम्र होकर भूगोल-खगोल,
ज्ञान-अर्चा करते सम्पन्न।
जहां पाकर वराह-सानिध्य,
भूमि ने किया भौम उत्पन्न॥

करा निर्मित बहु छात्रावास,
सुव्यवस्थित ' कर विद्यागार।
चलाकर दिशि-दिशि अन्नक्षेत्र,
अन्य निष्णाताचार्य अपार॥

बसाये देश-देश से बुला,
सकल परिवार सहित दे मान ।
कहा, दुर्लभ सामग्री यंत्र—
सुलभ कर "करिये अनुसंधान" ।।

अगस्त्येश्वर, देवी हरसिद्धि,
सपरिकर चित्रगुप्त परिवार ।
विश्वकर्मा, बलकेश्वर पूज,
चले क्षिप्रा-सरि उद्‌गम-द्वार ।।

केवड़ेश्वर की कर अर्चना,
गये ओंकार-क्षेत्र रघुवीर ।
पुण्य-गिरि-माला प्रणवाकार,
चरण धोता रेवा का नीर ।।

बैठकर तरी तरणिकुल-तरणि,
तुरत पहुँचे अमलेश्वर-तीर ।
किया जगपावन ने अभिषेक,
सुपावन हो मेकलजा-नीर ।।

नृपति मांधाता को जल दिया,
दशानन-रिपु ने सजल सुनेत्र ।
"पितामह वृद्ध ! तवाशिष शत्रु—
पराभव पाया विग्रह-क्षेत्र ।।"

दोहा

माहिष्मती विलोक कर, खड़े रह गये राम ।
जो सौन्दर्यैश्वर्य से, लजा रही सुरधाम ।।

ऊर्मिका

कुबेरेश्वर - कोटेश्वर - चरुक,
जयन्तीदेवी-चोरल तीर ।
सभी का करते बहु-विधि मान,
रेणुका-क्षेत्र गये रघुवीर ।।

विमाता-वचनाहत तप-निरत,
हुआ प्रियव्रत का राजकुमार ।
रमापति रुक न सके वैकुंठ,
आ गये विहगराज असवार ।।

किया शिशु को स्वस्पर्श सचेत,
दिया लघु ध्रुव को गुरु ध्रुव-धाम ।
लखा यमुना-तट वह ध्रुव-तीर्थ,
परम विह्वल-चित राजाराम ।।

देख वृन्दावन के वन-मंजु,
दृश्य गोवर्धन का अभिराम ।
धुमैली - धवली - कल्माषकी—
सांवली सुरभी-राजि ललाम ।।

हरित तृण चरतीं, लखतीं व्योम—
किसी को बाँधे मन तन-दाम ।
सच्चिदानंद भरे बहु भाव,
देखने लगे अनन्तायाम ।।

भरत की ओर पुनः अवलोक,
रहस्यों भरी लिये मुस्कान ।
यान से फिर-फिर लखते भूमि,
आ गये इन्द्रप्रस्थ भगवान ।।

"नंदिनी की सेवा से मिला,
जिन्हें रघु सा सुत वंश-प्रदीप ।
बसाकर गये मित्र लंकेश !
वही यह नगर महीप दिलीप ॥"

चले कर कालिंदी में स्नान,
धर्म-ध्वज धर्म-भूमि कुरु-क्षेत्र ।
जहां शुभ सरस्वती के तीर,
वेद-मंत्रों ने खोले नेत्र ॥

घटज-कौशिक की योगस्थली,
कुमोहामृत-भ्राता की राहु ।
ब्रह्मसर - चंद्रकूप - संनिहित—
हृदय से लगे पसार सुबाहु ॥

किया श्रीस्थाण्वीश्वर-अभिषेक,
पृथूदक - तीर्थ गये रघुवीर ।
भस्म कर दिया मार हुंकार,
जहां ऋषियों ने वेन-शरीर ॥

मिले मयदानव से मयराष्ट्र,
विश्रवाश्रम आये फिर राम ।
देववर्णिनी-कैकसी सहित,
किया मुनिवर ने चरण प्रणाम ॥

शोच-संकोच रहित नतशीश,
वीतरागी ने दी आशीश ।
चरणवंदन कर बारम्बार,
चले धर्मस्वरूप जगदीश ॥

परशुरामेश्वर का अभिषेक—
किया उत्तर में हर-नद तीर ।
जहां हैहय-मद-जल नभ उड़ा,
परशुधर-रुष-रवि परशु-समीर ॥

गये गढ़मुक्तेश्वर प्रभु, जहां—
जान्हवी दुर्गा-वेष विशाल ।
मुक्ति का गढ़ वसुधा पर बना,
मुदित बहती, दल अघ-दनु-भाल ।।

स्नान कर देकर दान अपार,
गये रघुनाथ रावली-घाट ।
मेनका लगा दिठौना गई—
जहां ऋषि-रति-सुन्दरी-ललाट ।।

दोहा

देववंद्य देवी-विपिन, शाकम्भरी निहार ।
ऋण-कपाल-मोचन नहा, मणि-मंजरिका पार ।।
अज-सर से होते हुए, नयनादेवी-स्थान ।
पहुँचे प्रभु, पल में हुई, सब की नष्ट थकान ।।
निरख सुखद आनंदपुर, कर अर्चन श्रीचैत्य ।
गये त्रिगर्त हुआ जहां, कभी जलन्धर दैत्य ।।
वृन्दा-सत्व सराहना, करते बारम्बार ।
पहुँचे रघुपति अमृतसर, दूर विपाशापार ।।

पश्चिमोत्तर यात्रा

ऊर्मिका

देखता इरावती-सौन्दर्य,
चंद्रभागा-तट पहुँचा यान ।
खंब से प्रकटे बालक-हेतु,
जहां सर्वव्यापी भगवान ।।

हुए प्रमुदित, लख मूलस्थान,
भक्ति-महिमा कहते रघुवीर ।
अन्नपूर्णा के दर्शन किये,
साधुवेला सरिसिंधु-सुतीर ॥

प्रगटती गुहा हिंगुला-ज्योति—
भूमि से बिखराती ः भ-हास ।
किये रघुपति ने परिकर सहित,
सुदर्शन-पार्श्व अर्णवी-पास ॥

नहाकर अमरकुंड अवधेश,
देखकर शुभ कटाक्षराजेश ।
पुरुषपुर - तक्षशिला - गांधार,
पार कर पहुँचे यवन-प्रदेश ॥

वेद-मंत्रों से विरहित अग्नि,
पूजते बाल्हिक जहां विशेष ।
विलोका विश्वामित्र-वशिष्ठ—
विग्रहोत्पन्न क्लेश-अवशेष ॥

मिले जन-जन से, देखे कर्म,
बदलते करवट कुटिल विधर्म ।
हुए चिंतित, लख दैत्याचार्य—
शुक्र की दुरभिसंधि का मर्म ॥

वेद-विपरीत सकल अर्चना,
दशों-दिशि अर्थ-काम प्राधान्य ।
लुप्त कर पुनर्जन्म-परलोक,
मान्य मर्यादा किये अमान्य ॥

धर्म - संस्कृति - आचार - विचार—
वेष - भूषा - भाषा - व्यवहार ।
सनातन रीति-नीति से विमुख—
दशानन सम, दारुण-प्रण धार ॥

समाहित समाधान असि सकल,
एक ही मज्जन-अर्चन पात्र।
राम बोले "देखो लंकेश!
देव-पापों के शत-शिर गात्र॥

मित्र बन बैठे गुरु-जन युगल,
हुआ अनुगत-जन का क्या नाश।
बनेगा कल यह शिर का शूल,
कहीं कहता मेरा विश्वास॥

पश्चिमोत्तर-सीमा पर भरत!
सदा रखना विशेषत: ध्यान।"
अर्बुमरु मक्केश्वर के अजिर,
जानकीपति का उतरा यान॥

किया यमकूप-नीर-अभिषेक,
चढा खर्जूर-पत्र-फल-फूल।
केकयी माता के पितु-गेह—
पधारे भुवन-शूल-निर्मूल॥

हृदय की हुई तिरोहित ग्लानि,
मुदित हो उठे युधाजित भूप।
कहा विह्वल होकर "तू राम!
सत्य साकार विष्णु का रूप॥

धर्म-ध्वज अशरण-शरणागार,
द्वेष-विरहित स्वप्रेम-प्रतीक।
न शत हेमंत सकेंगे लांघ,
प्रलय तक तव वांसती-लीक॥"

थाम पद बोले रघुकुलकेतु,
भरत-दिशि लखकर बारम्बार।
"पूज्य मातामह! इससा बंधु,
न है, होना न हुआ, संसार॥

सुना शूली का होता शूल,
लखा होता मैंने पर फूल ।
धर्म का ध्वज फहराता आज,
सत्य, प्रिय भरत-दंड शुभ-मूल ।।

किया माता ने जो उपकार,
पिन्हा दे पनही कर तन-चाम ।
न तो भी रंच-मात्र ऋण-मुक्ति,
कभी पा सकता यह शिशु राम ।।"

चार-दिन रह कर केकय-देश,
चले ले आज्ञाशिष-उपहार ।
अवन्तीपुरी जहां मार्तण्ड—
विराजे गिरि-माला-आगार ।।

दर्शकर, क्षीर - भवानी गये,
हुए प्रमुदित लख सलिल-स्वरूप ।
नाग-तप - भूमि अनन्तक्षेत्र,
देखते सरवर अमित अनूप ।।

गये प्रभु अमरनाथ गिरि-गुहा,
हिमाकर हिमाकार-छवि भव्य ।
विश्व-विश्रांति स्वतः पा शांति—
जहां पाती विश्रांति अलभ्य ।।

दोहा

दिव्य कपोत-मिथुन निरख, सादर किया प्रणाम ।
वृद्ध-अमरनाथस्थली, गये पुनः श्रीराम ।।
गये पुलस्तातीर पर, मुनि पुलस्त्य से पास ।
देख विभीषण को खिले, मुनि के नयन उदास ।।

ऊर्मिका

उठाकर लिये हृदय से लगा,
झुके ज्यों चरणों में रघुनाथ ।
तरल दृग बोले मुनि "अवधेश !
सुशोभित शिर पर ही तव हाथ ॥

सुधारक जाता जिस क्षण हार,
तभी आता संहार-मुहूर्त ।
न ममता-वश दे पाया दंड,
वस्तुतः मैं ही पातक मूर्त ॥

कृपाकर दिया विभीषण जलद,
कृपाकर ! तव उपकार महान ।
विश्व से नयन मिलाने योग्य—
रहा था वृद्ध न यह म्रियमाण ॥"

राम बोले "जग जीवन-मरण,
अयश-यश, हानि-लाभ विधि-हाथ ।
आपने कितने किये प्रयत्न,
ज्ञात सब मुझ को कुछ मुनिनाथ ॥

त्यागिये आप सकल संकोच,
जान्हवी के तल में भी कीच ।
किंतु जो निंदा करता मूर्ख,
जगत में कहलाता वह नीच ॥"

कह उठे विव्हल हो ब्रह्मज्ञ,
"राम ! तुम राम, वस्तुतः राम ।
सदा त्रिभुवन का पाने योग्य—
हृदय से सात्विक सरस प्रणाम ॥

न दंभ, न द्वेष, न राग, न रोष,
सनातन - श्रुति-सत्पथ - आरूढ़ ।
वचन तव गूढ़, सुकर्म निगूढ़,
सहज समझे कैसे जग मूढ़ ।।"

विभीषण को लख कहने लगे,
"पुत्र ! तेरे कारण कुल धन्य ।
बना था ब्राह्मण-कुल ब्रह्मघ्न,
पुनः ब्रह्मण्य - कृपा ब्रह्मण्य ।।

राम-कर - छत्र तले तू अभय,
राम-चरणासन चिंता-हीन ।
राम-रति - कवच ताप-त्रय-जयी,
राम-रवि-ज्योति सरोज नवीन ।।

दोहा

अजर अमर राघव-कृपा, तुझसे हम सब धन्य ।
बढ़े नित्य-नव तव-हृदय, रघुपति-भक्ति अनन्य ।।"

ऊर्मिका

चले ऋषि से ले प्रमुदित विदा,
शुद्ध-श्री महादेव के स्थान ।
शिवार्चन कर पुर-मंडल लांघ,
लगा ज्यों बढ़ने प्राची यान ।।

निहारी प्रभु ने उत्तर-दिशा,
बाण-गंगा की पावन धार ।
तपस्यालोक अलौकिक दिखा,
त्रिकूटा की घाटी के पार ।।

डाल दो नयन मूंद उर - माल,
अधर पर लहरा "तापसि ! धन्य ।
जानकी - यशागार - आधार,
शिले ! तव प्रीति-विरक्ति अनन्य ॥"

दोहा

जान न पाया एक भी, अद्‌भुत राम-रहस्य ।
दिखी देवघाटी सरस, स्वप्नोत्पल सी सत्य ॥

छप्पय

झरने झरते कहीं, कहीं सरवर लहराते ।
कहीं-कहीं के सलिल, कहीं मिल सरित बनाते ॥
गिरिमाला में कहीं, स्वयं झीलें बन जातीं ।
कहीं समुज्ज्वल सलिल खिलखिला बटियां न्हातीं ॥
कृषक-बालिका तरु तले, ज्यों फिरतीं फल बीनतीं ।
त्यों निर्मल-जल हीर-कण, किरणें लगतीं चीन्हतीं ॥
हरित-हरित घाटियाँ रुपहलीं चोटी-चोटी,
करतीं शिल-शिल नृत्य बिजलियां छोटी-छोटी ॥
बटिया-बटिया बँटे खेत ज्यों बिछे बिछौने ।
खिले-अधखिले फूल, सजे ज्यों नवल सलौने ॥
मदमाता वातावरण, करता मतवाला पवन ।
दृश्य-दृश्य करता हरण, क्षणभर में सारी थकन ॥
करते बादल रवि-शशि से नित आंख-मिचौली ।
भरते तमस-प्रकाश सहोदर बनकर कौली ॥
करतीं पथ-पथ केलि विभा-छांया हमजोली ।
मलती अगरु-अबीर लगा निज काजल-रोली ॥
उदयास्ताचल-भाव यों, अचल-अचल पर खेलते ।
ज्यों ब्रह्मज्ञाश्रम, सहज-रिपु को प्रिय, पशु देखते ॥

कहीं कुंद-मुचु कुंद - कदंब गंध बिखराते ।
कहीं खिले बंधूक, उर्वशी अधर - लजाते ।।
कहीं मालती लता, ललित बेला बलखातीं ।
कहीं विपिन-वीथिका पीतिका गणिका गातीं ।।
सेवंतो - भ्रमरोत्सवा - ग्रीष्मभवा - शैरीयकी ।
कहीं मौलश्री - कोमला - कनली - जटिला - केतकी ।।
नभ वितान के तले, प्रफुल्लित कानन प्रागंण ।
कुसुमित तरु कलधौत दंड मणि-माला मंडन ।।
इंद्रधनुष नासिका, चतुर्दिक रज्जु समीरण ।
कनकपाट गिरिशिला मंजु खर्बाट बिछावन ।।
चपला गर्जन झुनझुना, मधु झोंटा दे झूमता ।
अचलराज हिमवान-शिशु, रसा हिमाचल झूलता ।।
नगरोटा-मणिकर्ण - त्रिलोकनाथ - देवेश्वर ।
कपिलकुंड - नरमुंड - वसिष्ठाश्रम - रेवासर ।।
तक्षक - कमरूनाग - कालिका - नयनसरोवर ।
व्यासकुंड श्रीमौर-भौर-किन्नौर देखकर ।।
हरिद्वार हरि आगये, ब्रह्म-कुंड मज्जन किया ।
कुशावर्त नारायणी, नील - धार दर्शन किया ।।

दोहा

मायादेवी का किया, पूजन बारम्बार ।
गये न कनखल किंतु प्रभु, दक्ष-कुभाव विचार ।।

छप्पय

गऊघाट-काली-चंडी-मंसा अहिजननी ।
सप्तधार-ऋषिकेश-वीरभद्रेश्वर अवनी ।।
करते दिशि-दिशि स्नान, दान देते पग-पग पर ।
स्वर्गाश्रम निज व्यूह समेत पधारे रघुवर ।।

गंगा की शोभा निरख, लांघ उत्तराखंड को ।
चला गगन-स्यदंन तुरत, कैलासेश्वर सद्म को ।।

उत्तराखण्ड

ऊर्मिका

हिमाचल ऊँचा होने लगा,
लगा ज्यों-ज्यों बढ़ने नभ-यान ।
अमित फल-फूलों की राशियां,
रह गईं नीचे के मैदान ।।

विदाई केशर की क्यारियां—
दे उठीं, अँकुराया रोमांच ।
बिछाने लगीं हिमानी-शिला—
पांवड़े, जड़े रुपहले-कांच ।।

दूर से देवदारु द्विज - राशि,
मांगलिक ध्वनियां करतीं गान ।
रह गईं उत्कंठित सी खड़ीं,
देखतीं यान शीश-उत्तान ।।

सजाने तोरण बदली लगीं,
तानने बादल लगे वितान ।
इन्द्रधनुषों की प्रमुदित पंक्ति—
कर उठी वंदनवार-विधान ।।

हिलातीं निर्झरिणीं कंकणीं,
सजातीं मंगल-कलश अनेक ।
बजातीं नूपर सरिता अमित,
नमित-शिर करतीं धराभिषेक ।।

किंकणीं कटि खनकातीं झील,
नाचतीं लहरें भरी उमंग ।
रचातीं रंगोलीं रंगीन,
खिलीं कमलावलियां बहुरंग ।।

शिखर प्राचीर सुचित्र विचित्र,
लगाते अनुचर धातु-प्रपात ।
कंदरा थालीं रत्न-प्रदीप—
जगातीं रत्नवती निष्णात ।।

वनौषधि भरकर प्रस्तर-पात्र,
शिला सुंदरियां सज बहु-भांति ।
पुष्प-लाजादिक अर्पण हेतु,
खड़ी ज्यों हुईं पांति की पांति ।।

उठे गिरिपति सुस्वागत हेतु,
मुदित-चित अहो-भाग्य निज जान ।
शिला-तारक बन कर मम अतिथि,
पधारा स्वयं सगुण भगवान ।।

अवधपति बोले "देखो प्रियो !"
शिलाओं के अति दुर्गम-कोट ।
केलि कर रहे सरोवर-राज,
कमल-कुल कुश-किंशुक की ओट ।।

भरत ! जिनके आंगन में ललित,
गगन-गंगा की बहती धार ।
खिला जिनके नंदनवन कलित,
युगल पुलिनों पर सदा-बहार ।।

मुदित-चित रतिपति-ऋतुपति सदल-
रचाते जहाँ अलौकिक-रास ।
अमर वे स्वर्ग सुखों के स्वामि,
मानते पुण्य यहां का वास ।।

भगवती सरस्वती वागीश,
आदि-नादिनी वीण गुंजार ।
उतर कर ब्रह्मलोक से यहीं,
रमण करतीं प्रमुदित साकार ॥

विदुष-ऋषि-मुनि-कवि-कोविद-व्यास,
यहीं से करते हैं आव्हान ।
यही मानस जन-मानस मलिन—
सुपावन करता मात्र स्व-ध्यान ॥

भरत - भू का करतीं अभिषेक,
यहीं से निसृत सरित अनेक ।
नगाधिप के प्राणों की मूर्ति,
बताते इसे पुरुष सविवेक ॥

चँवर करतीं निज समझ सुभाग्य,
हंसिनो हँस कर पंख पसार ।
मृणालों की बाँसुरिया बजा,
भ्रमरियां करती हैं गुंजार ।

लजाती एक कुलवती लहर,
कूल तक लेती तान दुकूल ।
भँवर - भुज समा मंगलामुखी,
दिखाती एक नाभि का फूल ॥

शुक्तिका-पाणि मुक्तिका-गेंद,
रहीं अलबेलि हिलोर उछाल ।
उछलती वय-वश भरी उमंग,
समय-वश गिरतीं हुई निढ़ाल ॥

महावर रचा किन्नरी रहीं,
जलस्तम्भन कर भँवर-निकुंज ।
कमल-केशर से कलित कपोल,
सजातीं बना मुकुर कर-पुंज ॥

किशोरी रहीं वेणियां गूंथ,
निरखते किन्नर चारु हिलोर ।
मानिनी कहीं मना प्रिय रहे,
कांत-कांता-कुल कहीं विभोर ।।

वरुण के ललित अतल-प्रासाद,
गुँजाते किन्नर कहीं स्ववीण ।
रमण करते कुछ मिथुन नवीन,
गूंजती हँसी सुरति की क्षीण ।।

मानसर के उत्तर में रुचिर,
धनाधिप-पुर बिखराता हास ।
भुवन भर का ऐश्वर्य समस्त,
कर रहा छिपकर जहाँ विलास ।

पूर्व में वह वृषकेतु-निवास,
योगि सा समाधिस्थ कैलास ।
खड़ी दक्षिण-दिशि दाक्षायणी,
चिरन्तन अधरों पर ज्यों प्यास ।।

दूर नंदादेवी के नाम,
जगत में वही शिखर विख्यात ।
उधर कंचन-जंघा योगिनी,
अतनु पर करती सी पविपात ।।

इधर नर-नारायण के शिखर,
उर्वशी-कुंड लजाता काम ।
अलकनंदा-तट, इनके पार—
विष्णु का सिद्ध बदरिका - धाम ।।

तप्त-सर पावन ब्रह्म-कपाल,
झर रही वसुधारा अविराम ।
जा रही स्वर्ग-लोक को, लखो,
यहीं से सूक्ष्म सरणि अभिराम ।।

दंड-गिरि विरह-दंड सा कठिन,
किये गंगा-यमुना को दूर ।
तीर्थ-पति को यश देने हेतु,
पड़ा बनकर स्वभाग्य-प्रति क्रूर ।।

तनिक इस वातायन से लखो,
भवन गंगा-यमुना के युगल ।
इधर हीरक- हारावलि धवल,
उधर नीलम-मालायें नवल ।।

उधर वामन का श्यामल-चरण,
इधर कर्पूर-गौर वृष-केतु ।
खेलतीं तरल तड़ित सी शिला,
बनातीं भवसागर पर सेतु ।।

विधाता-कृति अभिनंदन- निमित,
बरसते सतत दुरंगे फूल ।
कलुष-कालिमा हरण कर एक,
एक देता शुभ शुभ्र दुकूल ।।"

विभीषण बोले "प्रभु रघुनाथ!
आपके तन-मन की अवतार ।
जान्हवी सरस समुज्ज्वल हृदय,
तरणिजा श्यामल प्रतिमाकार ।।"

पुन: बोले, प्रिय मित्र प्रशंस,
सकुच, मुस्काते सबके साथ ।
"भगीरथ पूज्य पितामह जहां—
तपस्या कर, लाये भुवि पाथ ।।

वही वह पुण्य धराली-क्षेत्र,
व्यर्थ कह रहा 'असंभव' शब्द ।
'न तज संकल्प अरे मनु-पुत्र!
काट पलकों में पल से अब्द ।।"

इधर केदारनाथ हर-पृष्ट,
उधर पशुपति-मुख महिमावान ।
खड़े उत्तुंग शिखर सशरीर,
शुभप्रद तुंगनाथ भगवान ।।

लखन का जीवन-दाता द्रोण,
तुम्हें ज्यों देख रहा हनुमान ।
यंत्र-मंडित वह काली शिला,
रक्तबीजासुर - पानस्थान ।।

उधर असि-वरणा-भागीरथी—
मिलन, उत्तर-काशी विमलेश ।
जड़भरत, ब्रह्म-कुंड के पास,
विरागी-पथ-कुल के पंथेश ।।

त्रियुगनारायण पंच-प्रयाग,
गुप्तकाशी बाणासुर-भूमि ।
जान्हवी - चंद्रा - मंदाकिनी,
खेलतीं शिला-शिला शत ऊर्मि ।।

अरे, नीचे तो देखो प्रियो !'
निकलता ब्रह्मपुत्र, क्या रूप ।
बढ़ रहा ज्यों ले मंगल-सूत्र,
पिन्हाने प्राची को गिरिभूप ।।

मुखर करती निज ममता मुदित,
इधर वह शत-शत धारा व्याज ।
भुजा फैलाये दुर्गा - वेष,
दौड़ती देवी सरयू गाज ।।

हो रहा कैसा घर्घर शब्द,
खींचते चक्र शताधिक यान ।
पाप-पंकिल हो श्रमित प्रयाग,
स्वस्थ्य होते कर इसमें स्नान ।।

हमारो जन्मभूमि प्रिय अवध,
बसी इसके ही दक्षिण - छोर ।
ताँकता कैसी भाव-विभोर,
अशीशें देती उठा हिलोर ।।

"प्रणम्ये ! पतित-सुपावनि ! देवि !
सु-भगवति ! बारम्बार प्रणाम ।
पूर्व-पुरुषों की भांति भवानि !
समा लेना अपने में राम ।।"

देख कर प्रभु का मृदु संकेत,
उतर उद्‌गम पर गया विमान ।
मानसर सरयू-प्रकटस्थली—
सपरिकर किया राम ने स्नान ।।

श्री कैलास यात्रा

दोहा

"शिव-पशुपति-वृषकेतु-हर, शूलधारि-त्रिपुरारि ।
शंभु-अभव-भव-भवविभव, भवानीश-भयहारि ।।"

ऊर्मिका

चले हर-कीर्तन करते राम,
परम विह्वल चित से कैलास ।
दृगों से लगा छलकने स्नेह,
ललकने लगा हृदय उल्लास ।।

झलकने लगा पुलक रोमांच,
लगे स्वर बनने अश्रुत-राग ।
बजाने लगे देवगण वाद्य,
रागिनी पाने लगीं सुहाग ।।

इधर केदारनाथ हर-पृष्ट,
उधर पशुपति-मुख महिमावान ।
खड़े उत्तुंग शिखर सशरीर,
शुभप्रद तुंगनाथ भगवान ।।

लखन का जीवन-दाता द्रोण,
तुम्हें ज्यों देख रहा हनुमान ।
यंत्र-मंडित वह काली शिला,
रक्तबीजासुर - पानस्थान ।।

उधर असि-वरणा-भागीरथी —
मिलन, उत्तर-काशी विमलेश ।
जड़भरत, ब्रह्म-कुंड के पास,
विरागी-पथ-कुल के पंथेश ।।

त्रियुगनारायण पंच-प्रयाग,
गुप्तकाशी बाणासुर-भूमि ।
जान्हवी - चंद्रा - मंदाकिनी,
खेलतीं शिला-शिला शत ऊर्मि ।।

अरे, नीचे तो देखो प्रियो !
निकलता ब्रह्मपुत्र, क्या रूप ।
बढ़ रहा ज्यों ले मंगल-सूत्र,
पिन्हाने प्राची को गिरिभूप ।।

मुखर करती निज ममता मुदित,
इधर वह शत-शत धारा व्याज ।
भुजा फैलाये दुर्गा - वेष,
दौड़ती देवी सरयू गाज ।।

हो रहा कैसा घर्घर शब्द,
खींचते चक्र शताधिक यान ।
पाप-पंकिल हो श्रमित प्रयाग,
स्वस्थ्य होते कर इसमें स्नान ।।

हमारो जन्मभूमि प्रिय अवध,
बसी इसके ही दक्षिण - छोर ।
ताँकता कैसी भाव-विभोर,
अशीशें देती उठा हिलोर ।।

"प्रणम्ये ! पतित-सुपावनि ! देवि !
सु-भगवति ! बारम्बार प्रणाम ।
पूर्व-पुरुषों की भांति भवानि !
समा लेना अपने में राम ।।"

देख कर प्रभु का मृदु संकेत,
उतर उद्गम पर गया विमान ।
मानसर सरयू-प्रकटस्थली—
सपरिकर किया राम ने स्नान ।।

श्री कैलास यात्रा

दोहा

"शिव-पशुपति-वृषकेतु-हर, शूलधारि-त्रिपुरारि ।
शंभु-अभव-भव-भवविभव, भवानीश-भयहारि ।।"

ऊर्मिका

चले हर-कीर्तन करते राम,
परम विह्वल चित से कैलास ।
दृगों से लगा छलकने स्नेह,
ललकने लगा हृदय उल्लास ।।

झलकने लगा पुलक रोमांच,
लगे स्वर बनने अश्रुत-राग ।
बजाने लगे देवगण वाद्य,
रागिनी पाने लगीं सुहाग ।।

दिशायें भरीं दिव्य संगीत,
प्रकृति का थिरक उठा प्रत्यंग ।
न्हा उठे पर्वतराज हिमाद्रि,
भक्ति-सरिता की सरस तरंग ।।

बजाने लगे मृदंग कपीश,
विभीषण ने ले ली षड़ताल ।
नाचने लगा प्रसन्न निषाद,
ताल दे उठे अंजनीलाल ।।

भरत के डाल हाथ में हाथ,
असुध से गाते श्री रघुनाथ ।
बढ़ चले, तज कर कल्प-समाधि—
हो लिये अमित तपस्वी साथ ।।

युगों से कर तन को कर्पूर—
रहे थे जो आरती उतार ।
हुए वे सिद्ध, संत योगीश,
जानकीपति को तनिक निहार ।।

सरकता पीछे चला विमान,
गगन से बरसे सुमन-पयोद ।
लगा हिम-शिखर रचाते रास,
सत्त्वरस रसातीत-आमोद ।।

सम्मिलित शनैः-शनैः हो गये,
त्याग संकोच देव-समुदाय ।
हुए दुर्गम गिरि के पथ सुगम,
कठिन हिम बना सुकोमल-काय ।।

अधर-स्वर रमते कंठ-निकुंज,
विहरते हृदय-कंज-कासार ।
निमज्जन करते नाभि-पयोधि,
सजाते रोम-रोम शृंगार ।।

वरण कर कुंडलिनी-कामिनी,
पलक-पट डाल त्रिकुटि-आगार ।
बिठा कर नासिकाग्र-पर्यंक,
हुए ज्यों मन-मति एकाकार ।।

धरित्री बोली 'जय गौरीश',
गगन बोला 'जय भोलानाथ' ।
'भूतभावन - जगपावन - स्थाणु',
गा उठे सरित-सरोवर साथ ।।

कंदरा गूंज उठीं, जय शंभु',
दिशायें कूंज उठी 'नटराज' ।
अतल-तल - वितल-तलातल-सुतल,
उठी पशुपति की 'जय जय' गाज ।।

स्वर्ग - अपवर्गलोक - गोलोक,
शिवस्वर का फैला आलोक ।
"त्रिलोचन - भवभयमोचन - शूलि,
चंद्रमामौलि - कपालि - विशोक ।।

भुजगभूषण - जगदूषणहारि,
देव - त्रिपुरारि - शीशशुचिवारि ।
वृषाङ्क - वामदेव - विश्वेश,
महामृत्युंजय - प्रलयंकारि ।।

पिनाकी - प्रमथाधिप - शितिकंठ,
कपर्दी - रुद्र - अर्धनारीश ।
ईश - ईश्वर - ईशान - सतीश,
शर्व - सर्वेश्वर - सिद्धाधीश ।।

ब्रह्म-व्यापक - अव्यक्त - अनादि—
अगोचर-अलख-अधीश - अनंत ।
सच्चिदानंद - उग्र - ओंकार—
भर्ग-भैरव - भगवान - दिगंत ।।"

कहीं पर कुंडल कहीं किरीट—
वलय - अंगद - वनमाल ललाम ।
धरा पर करता विग्रह नृत्य,
समाये प्राण 'शंभु-शिव' नाम ।।

लगा दिखने षोड़श-दल कमल—
मध्य शुचि-लिंगाकृति कैलास ।
चतुर्दिक हिमस्तम्भ-कुल तना—
नील उल्लोच सरिस आकाश ।।

रजत-मय रत्न-लसित पदपीठ,
लहर-दल शतदल गौरीकुंड ।
चंद्रमा मुकुट, दिवाकर छत्र,
दीपमालिका तारिका - झुंड ।

लगे करने सब दंड - प्रणाम,
छा गया अत्युत्साहोन्माद ।
समाया ज्ञान, शांत सर-राज,
भक्ति-सरिता - निनाद साल्हाद ।।

नंदि भृंग्यादिक हुए विदेह,
किया प्रभु को साष्टांग प्रणाम ।
लगाये हरि ने सादर हृदय,
पुनः पूंछा "कैसे सुखधाम ।।"

वृषभ बोले" वृषकेतु समाधि,
भवानी भवन विराजीं नाथ ।
सुपावन सदन करें श्रीसदन,
सकल ऋषि-मुनि परिकर के साथ ।।

क्षितिज-तल से हेमंताकाश,
गमन करते ज्यों मकर-दिनेश ।
किया त्यों विश्वनाथ के सदन,
अवधपति ने कर-बद्ध प्रवेश ।।

विलोकीं बाघम्बर-आसीन—
उदासी भरीं सती अति क्षीण ।
लगा झीनी-झिल्ली कंकाल,
काल की थाली प्राण-प्रवीण ।।

लटकते अंगों में रुद्राक्ष,
योगिनी सी धारे मृग-छाल ।
भस्म से ढकी दिव्य-यज्ञाग्नि,
एक शृंगार लाल-कण भाल ।।

रखे शतदल में चंपक-लिंग—
पूजतीं, लखतीं अपलक मौन ।
जिन्होंने देखीं अगणित बार,
अचानक कह जाते 'ये कौन' ।।

सती ये या कि सती की छांह,
सजीवन हैं अथवा निर्जीव ।
न आता महाकाल-गृह जान—
कि सचमुच काल हो गया क्लीव ।।

हुए चित ही चित रघुपति द्रवित,
योगिनी घिरीं सती को देख ।
जानकर शंकर का संकल्प,
समझ कर अमिट काल का लेख ।।

मौन हो एक बार रघुवीर,
पुनः पितु सहित बोल निज नाम ।
धरा पर धीरे बैठे मौन,
सती को करके राम प्रणाम ।।

सती की ज्योंही पलकें उठीं,
दिखे सहसा सम्मुख रघुवीर ।
हो गईं एक बार तो मौन,
नमन कर, फिर बोलीं धर धीर ।।

"आपकी प्रिया आ गईं देव !
हुआ निःशेष सकुल दशशीश ।
कुशल श्री-शेष-सकल परिवार,
आप तो हैं सकुशल जगदीश ।।"

किये नीचे ही नीचे पलक,
सकुच धीरे बोले अवधेश ।।
"कृपा तव आदि-शक्ति भव-देवि !
विभीषण पाये पद लंकेश ।।

कहां बैठे हर लगा समाधि,
करे कृत्कृत्य भाग्य निज दास ।"
तनिक उठ, तरल हो गईं पलक,
सरक ही गया उष्ण निःश्वास ।।

गिरा रह गई कंठ में घुटी,
हाथ ही कर पाया संकेत ।
घूमकर, प्रभु ने देखा पृथक—
एक उत्तुंग शृंग-वर श्वेत ।।

शृंग पर अपर-शृंग से अचल—
समुज्ज्वल तेजोमय त्रिपुरारि ।
स-श्रद्धा कर साष्टांग प्रणाम,
पुनः आसन बैठे त्रिशिरारि ।।

नंदि ने पद-प्रक्षालन किया,
भृंगि ने दिये दिव्य नव-वस्त्र ।।
चतुर-गण चँवर ढुलाने लगे,
लगाया वीरभद्र ने छत्र ।।

योगिनी भर लाईं फल-फूल,
मातृका लगीं सजाने थाल ।
जगत्पति का करने आतिथ्य—
लगीं भगवती झुकाये भाल ।।

लगे प्रभु लेने लघु-लघु कौर,
नंदि देते "लें-प्रभु लें और ।"
दृगों से किया तृप्ति - संकेत,
उदर करतल रख कहा 'न ठौर' ।।

सती ने किया मौन संकेत,
मातृका ले आईं तांबूल ।
लिया रघुवर ने कर कर शुद्ध,
टहलने लगे सम्हाल दुकूल ।।

बिछाये प्रथम गणों ने पाट,
लगे पाने सब शंभु-प्रसाद ।
"पधारें मखशाला में शौरि !
मार्ग-श्रम से हों विगत विषाद ।।"

सती के पीछे-पीछे चले—
मौन, अनुशासन सादर मान ।
भूमि पर गईं भवानी बैठ,
बिठा कर आसन पर भगवान ।।

रहे दोनों ही बैठे मौन,
सोचते 'क्या बोलेंगे कौन' ।
तनिक उठ ज्यों लघु ललित बयार,
हुमस का कुछ-कुछ चीरे मौन ।।

उठाकर अधमुँद पलकें तनिक,
सती से बोले त्यों रघुवीर ।
"समय के देवि ! सभी आधीन,
किसी को दोष न देते धीर ।।

न चित को दुखित करें इस भांति,
सहायक है सबका भगवान ।
प्रजापति-सुता जगतपति-प्रिया,
सृष्टि की आदि-मध्य-अवसान ।।

आपको देने वाला ज्ञान—
जगत में है जगदम्बा कौन ।
करें अपने स्वरूप का ध्यान,
राम केवल तव सेवक मौन ।।"

दोहा

हँसी सती, मरु-भूमि ज्यों, खिले प्रसून अकाल ।
बरबस बरसे नयन फिर, बोलीं उठा सुभाल ।।

भुजगप्रयात

"सती की सुनो हे, रमानाथ ! विनती,
बिना आपके दीन किसको सुनाये ।
छली जा चुकी हूं, न छलिये छली को,
महा-मौन मन, क्या मुखरता दिखाये ।।

कहा आपने सत्य ही सत्य-स्वामिन् !
रसा किंकरी भाग्य की, कर्म की है ।
बली है सभी से समय सब कराता,
प्रथम-दृष्टि से बात तो मर्म की है ।।

हृदय पर तनिक हाथ रख, दृग मिलाकर,
कहो, आपका क्या यही न्याय अंतिम ।
किसी से कहीं भी न फिर पूंछना है,
बनेगी तरलता, सकल ही अचल-हिम ।।

समय भाग्य का कर्म ही का पसारा,
अगर विश्व सारा सदा देव ! केवल ।
असीमित पतन, पाप ही है प्रबल तो,
रखें नाम प्रायश्चितों का महा-छल ।।

पतित-पावनी निज विरद-निधि कृपालो!
छिपी कौन सी कंदरा में दिखाओ ।
पतितजन-सुपावन न हैं आप यदि, तो—
कहो कौन है ? कौन है ? हरि! बताओ ।।

महापापिनी जो शिला सी पड़ी थी,
महाघोर घन-घाम-हिम-ताप सहती ।
गई प्राण-प्रिय-वास किसकी कृपा से,
कहो वह अहिल्या, किसे राम कहती ।।

सुना था, नहीं कूप जाता तृषित-ढ़िग,
गये द्वार मल्लाह के कौन सागर ।
स्वनख-निर्गता संतरण-हेतु किसने,
गिने कौन, कितने दिये तार पामर ।।

कभी ध्यान में योगियों के न आते,
जिन्हें नेति कह मौन श्रुति साध जाती ।
लगे संग यदि वे नहीं छद्म-मृग के,
कहो! कौन थे? क्यों न वाणी बताती ।।

गला मांस खाता रहा जो वयस भर,
क्रिया श्राद्ध उस गिद्ध का नाथ ! किसने ।
कुफल दे रिझाया किसे भीलनी ने,
मलय को दिया काठ सा फूंक जिसने ।।

दयाहीन, श्रुति-धर्म-भक्षी, कुभक्षी,
भवन दंभ के, खंब पातक-ध्वजा के ।
निशाचर महानीच ऐसे, जिन्होंने—
स्वगोलोक भेजे स्ववेषी बना के ।।

महानिर्दयी - तामसी - क्रूर - पामर,
विमोहित हुए रूप किसके निशाचर ।
बनाये बिना भक्ष्य छोड़ा न कोई,
सुपनखा वही मान बैठी किसे वर ।।

पड़ा भूमि भ्राता, महाशक्ति-व्रण ले,
सु-औषधि अमित दीं, न लघु चेत आया।
रही एक चिंता, किन्हें उस समय भी—
मुकुट हा विभीषण ! न तेरे सजाया ।।

बसे बालि-रावण किन्होंने उजाड़े,
विभीषण-शुभग्रीव किसने बसाये ।
खड़े लंक के दुर्ग किसने ढहाये,
उदधि पर तरी सी तराईं शिलायें ।।

लिये नाम जिनका न आहार दिनभर,
डरें स्वप्न में शूर, देखें झलक-भर ।
उछलते फिरे डाल से डाल पर जो,
बने बंधु किसके वही रीछ-वानर ।।

कहो, नाम जो शारदा नारदादिक—
रहे ले, मधुर तार झंकार करते ।
बजाते हुए डम-डमाडम सुडमरू,
महाराज मेरे भुवन में विचरते ।।

किया कौन सा कर्म खोटा न जिसने,
सुपावन वही, वार-बधु नाम किसका ।
अजामिल कहो वाजपेयी कहां का,
उसे नाम किसके, मिला धाम किसका ।।

सजी शीश प्रिय के पतित-पावनी जो,
विधाता-कमंडलु रिसी गंगधारा ।
द्रवित कौन होकर, हुए ब्रह्म-द्रव से,
इसे इस धरा-धाम किसने उतारा ।।

महाराग किसके हुए प्रिय विरागी,
गरल पी गये कौनसा रस मिलाकर।
हृदय-कुंज का शांत-एकांत लेकर,
रमे किस प्रिया में समाधी लगाकर ।।

चरण चांपती चंचला हो अचंचल,
दृगंचल रसातीत-रस-माधुरी भर ।
सुदर्शन-सुकौमोदकी-पंचजन से,
सजे कौन अहि-सेज पर श्यामसुन्दर ।।

महीसुर-चरण की चरण-पीठिका मणि—
सुकौस्तुभ हृदय-गर्भगृह नाथ ! किसके ।
विहगपति भुवन-वन विचरते अभय हो,
मुकुट से सजा पद-कमल माथ, किसके ।।

विधाता सुविकसित हुए नाभि किसकी,
दिशा-चक्र किस केन्द्र से सानुशासित ।
विभा कौन सी चंद्रमा में विभासित,
प्रभा कौन सी से प्रभाकर प्रकाशित ।।

खड़े शैल किस दर्प से शिर उठाकर,
कृपा कौन सी भर गई सप्त-सागर ।
सरित-सर-सुनिर्झर ध्रुवों से ध्रुवों तक,
बरसते जलद, व्योम जाकर धरा पर ।।

न उड़ती गगन में, न धसती अतल में,
अचल प्रेयसी सी रसा, बांह किसकी ।
अनल बल रहा है, पवन चल रहा है,
ढके शून्य, यह शून्य सी छांह किसकी ।।

'झनक एक पांये' किसी भी बहाने,
लिये कामना, साधना सिद्ध करते ।
कहो, कौन है लक्ष्य व्रत-तीर्थ-तप का,
हवन-यज्ञ-तर्पण-सरणि कौन मिलते ।।

विपल-पल-दिवस-निशि-अयन-पक्ष-संवत्,
विपुल ऋतु-चतुर्युगि-प्रलय-कल्प-मनुवय ।
कहो काल-रूपी पुरुष कौन है वह,
समुत्पन्न किससे हुआ, है कहाँ लय ।।

महामत्त गज से परम कीट तक को,
उठाता बुभुक्षित, न भूखा सुलाता ।
उदर-कंदरा जीव-भय कौन हरता,
प्रथम जन्म के कौन छाती रिसाता ।।

प्रलय-सिंधु क्रीड़ास्थली सी बनकर,
लहर पर लहर से ललित कौन डोले ।
बँधी शृंग किनके, भरी सृष्टि नौका,
निराशा निशा ग्राश-प्रत्यूषि बोले ।।

टिकी मंदराचल-रई पीठ किसकी,
लिये रस-कलश कौन निकले अतल से,
पहिन ली सुवर-कल-कमल-मालिका को,
किन्होंने उदधिबालिका-करकमल से ।।

महामेदिनी वंदिनी जो बनी थी,
बनी वंदनीया महावंद्य ! किससे ।
विराजी ग्रहो, शेष के शीश ग्रासन,
अधरपान अपना करा किस रसिक से ।।

तपित-खंब पर कौन बनकर पिपीली—
चले, कौन निकले नृहरि-रूप धारे ।
ग्रसुरवर-सरित तोड़ सारे किनारे—
समाई जहां, कौन वे सिंधु खारे ।।

सुपद-लघु सुकर-लघु निरखकर असुरपति,
वचन दे गया, बढ़ गया कौन सा तन ।
किन्होंने निमिष में दिये नाप त्रिभुवन,
किये लोक वामन, दिखा रूप वामन ।।

बना विप्र का वेष, क्षिति क्षत्रियों से,
करी शून्य किसने, किया रक्त-तर्पण ।
भरी भार भू को सुमन सी बनाकर,
किन्होंने मुदित काश्यपी की समर्पण ।।

सभी कल्पनातीत ये कर्म अद्भुत,
किये आपही ने न, तो और किसने ।
पुरातनपुरुष! उस पुरुष को कहो तो,
उसी का लगे दीन यह नाम जपने ।।

उठी रक्ष-विध्वंस-संकल्प लेकर,
भुजा आपकी दंडकारण्य में जो ।
बसे छांह जिसकी अभय हो अमर-गण,
प्रिया-तुलसिका के पड़ी कंठ में जो ।।

धनुष-चंद्रमा चंद्रमामौलि का जो,
गईं राहु सम लील पलकें झपकते ।
परशुपाणि से विष्णु का चाप जिसने,
लपट सम झपट सा लिया बात करते ।।

जनकनंदिनी की सु-उपधान सुखदा,
छुटा विप्र पर चक्र जिससे भयंकर ।
हृदय भक्त-प्रहलाद जिसने लगाया,
खिलाया कमल ध्रुव गगन के सरोवर ।।

उठा कर तनिक उस भजा को कहो तो,
न संसार के आप स्वामी सनातन ।
मिली एक अबला यही ईश्वरों क्या,
बना पाद-कंदुक रहे खेल भगवन ।।

हुए मौन वे एक बैठे हुए हैं,
कुपथ से न शिष्या तनिक रोक पाये ।
मुखर एक होने चले आप राघव !
पिता के लिए प्राण, त्यागी कहाये ।।

भुजग भी न हो वक्र जाता स्वबांबी,
लखा किंतु व्यवहार आहा! अनोखा ।
छली एक ने कह 'प्रियतमे प्रियतमे',
दिया एक ने 'अंबिका' बोल धोखा ।।

प्रिया-अंबिका हेतु ये भाव जिनके,
करे दीन ये विश्व विश्वास कैसे ।
न चर्चा करूँ आपको आप से, तो —
करूँ फिर कहां, कौन हैं आप जैसे ।।

पिताश्रय छुटा है, न पति का सुआश्रय,
निराश्रित निराश्रय कहां हो समाश्रित ।
कृपा सर्व-सामर्थ्य-सम्पन्न-ईश्वर !
करो, मत करो मन कुलिश किंकरी-हित ।।

छली को छलो मत, छली जा चुकी हूँ,
परम दीन हूँ, हीन हूँ सत्य अबला !
मरी को न मारो, तनिक तो निहारो,
कलाधर कला पर कठिन काल मचला ।।

बहुत कह गई आपसे देव ! अनुचित,
दुखी का दुखा देख मन, मन न धरना ।
स्वदिशि देख कर, देखना ओर मेरी,
क्षमाकारि ! इतनी कृपा आप करना ।।

अनायास यह देह रघुनाथ ! छूटे,
पुनर्जन्म पशुपति स्वपति-देव पाऊँ ।
अमित साधना-रत अपरिमित मिलें तन,
अमृत-पंथ से पर, भटक मैं न जाऊँ ।।

यही प्रार्थना है, यही याचना है,
यही एक आराधना साधना है ।
कृपा कर कृपानाथ ! स्वीकार करना,
यही कामना है, यही भावना है ।।"

दोहा

थर-थर तन, निर्झर नयन, हुई मौन मन मार ।
ज्यों शिर से डालो धरा, शिव शशिकला उतार ।।

हरिगीतिका

सुनकर सती की हिय-गिरा, प्रभु के सजल दृग हो गये।
कर खोज, हारे चित्त-मति-मन, शब्द ऐसे खो गये।।
संकेत पा जिनका चराचर-अजिर वाणी नाचती।
उन शब्द - ब्रह्म परेश की वाणी सुवाणी याचती।।
वाणी-सुकेलि मुखस्थली, वाणी-सदन कंठस्थली।
विधि-प्रसवनी नाभिस्थली, हर-रमणि हृदि-कंजस्थली।।
जाने-अजाने ठौर सारे, छान कर बैठी विकल।
दृग-कोर से तब स्वयं ही, प्रगटी गिरा होकर तरल।।
कर जोड़ बोले अवधपति, "मत अधिक लज्जित कीजिये।
परिहास कर निज शिशु सदोषी कह रही हो, सोचिए।।
यह कौन सी माया तुम्हारी है, महामाये! नई।
लावण्य-लीलामयि! हृदय क्या आज लीला आ गई।।
बन बुलबुलों से भुवन, जिनके केलि-सरवर लहरते।
अगणित गणित उपहास करते, उडुगणों से छहरते।।
जिनकी पलक अपलक त्रिदेवावलि विपुल करतीं प्रकट।
छल-छल छलकते लय-निलय जिस नागरी के पाणि-घट।।
जिस शक्ति की, कोई न जानी शक्ति, कितनी थाह है।
शीतल कि कालानल अचल वह या कि चपल प्रवाह है।।
भव-ऋद्धि-सिद्धि अनन्त-निधि दिग्पाल-दिग्गज नाग-गण।
जिनके ललित पद-कंज पंकज-मंच के मकरंद-कण।।
श्री-शारदादिक देवियों की दिव्य अधिभौतिक-कला।
जिनके सुकर-क्रीड़ा-कमल की कलित कलिका निर्मला।।
प्रज्ज्वलित ज्योति सुभालके धधके हुए दृग लाल की।
क्षण में बनी विकराल काली कोप-कोष-कपाल की।।

निज सैन्य सिंधु समक्ष, जिनको जान कर एकाकिनी ।
अति गर्व से दनुजेश दिखलाने लगा चतुरंगिणी ।।
सुस्मित अधर जिनके धराधर-धैर्य को हरने लगे ।
निज अट्टहासों से प्रकट बहु शक्तियां करने लगे ।।

ब्रह्माणियों के शाप से, इन्द्राणियों के वज्र से ।
कौमारियों की शक्तियों से, वैष्णवी के चक्र से ।।
आग्नेयियों की दृष्टि के प्राभंजनीय-दुकूल से ।
नरसिँहनियों की अयालों, मातंगियों की हूल से ।।

वाराहियों के थूथनों, रुद्राणियों के शूल से ।
पल में सकल खल-दल हुए स्वयमेव जब निर्मूल से ।।
एकाकिनी जो कह रहा था, वह अकेला रह गया ।
फिर लीन कर जो शक्तियों को रह गईं अपराजया ।।

संसार सारा लीलने को रक्तबीजासुर चला ।
खप्पर-चषक में भर, निमिष में पीगई जो अतिबला ।
पल-पल बदल कर रूप, जग को महिष ने विस्मित किया ।
जिन भगवती के शूल ने आमोद मृत, जीवित किया ।।

जब चंड-मुंडों के भयंकर-तमस से भुवि पट गई ।
जिन चंडिका की खड्ग-रवि-छवि से तमिस्रा फट गई ।।
मधु-कैटभों से भीत विधि की प्रार्थना कर जोड़कर ।
शत-शत श्रवण सुन, जो उठीं हरि-पलक-शैया छोड़कर ।।

सुर-सृष्टि पर जब मृत्यु-दाढ़ों सी विपद-बाढ़ें वढ़ीं ।
तज कनक-सिंहासन तुरत, जो उछल सिंहासन चढ़ीं ।।
जब जग अकाल कराल-काल अकाल बन कर छा गया ।
ममताभरी शाकम्भरी का वेष जिनको भा गया ।।

ऋतु-मंच पंच-प्रपंच जिनके तेज से तल झेलते ।
जिनके ललित शिशु से श्वसन, निर्भय नभाजिर खेलते ।।
जिन भूमि-भामा सेज के उज्ज्वल निकेतन सिंधु हैं ।
जिन उर्वराके गात पर पावस सरस रति-बिंदु हैं ।।

मार्तण्ड तपता वृषभ का जिन मानिनी के मान से ।
खिलता शरद् का चन्द्रमा जिनकी तनिक मुस्कान से ।।
जिनकी ललित भुज-वल्लगी की लहर ऋतुपति लहरता ।
जिनके नयन-किंजल्किनी-सर मीनकेतन छहरता ।।

जिनकी घनी काली पुतलियां केन्द्र हैं शृंगार कीं ।
आधार-दृढ़ आधार-गत निस्सार इस संसार कीं ।।
यह नासिका-पट जो इन्हें, कुछ पृथक सा है कर रहा ।
ज्यों लोकरस-परलोकरस, रिसते विरह-घट भर रहा ।।

जिनकी क्रियायें सकल संसृति-हेतु सेतु-प्रतीक हैं ।
जिनका न पाकर भेद वेद अभेद कहते ठीक हैं ।।
जिनकी न उपमा, आप अपनी अंब जो उपमा स्वयम् ।
उद्भवस्थिति-संहारिणी जो तत्त्व तत्वों की परम ।।

जो भ्रामरी-भीमा- भवानी - भैरवी - भवमोचिनी ।
दुर्गा-मृडानी - चंडिका - त्रैमूर्ति - धूम्रविलोचिनी ।।
ज्वाला-शिखा-उल्का-स्वधा-स्वाहा-घनालि- प्रभंजिनी ।
ब्राह्मी-अजा-आर्या-भवा-वागीश्वरी - श्री - रंजिनी ।।

कमला-रमा-पद्मा - पयोनिधिनंदिनी - पयवंदिनी ।
वृषभानुजा-विश्वम्भरा, ऋषि - त्रिदशहृदयानंदिनी ।।
नारायणी-गौरी - उमा - कात्यायनी - मेघस्वना ।
भुवनेश्वरी-काली - कराली - भद्रकाली - शोभना ।।

भद्रा-सुभद्रा - षोडशी - शिवदूतिका - त्रयलोचना ।
धृति-श्रुतिस्मृति-विद्या-विभा-जगदम्बिका - चंद्रानना ।।
मेधा-महामाया- महास्मृति - महामोहा - योगिनी ।
कूष्मांडिका-लज्जा-लता- कामायनी - कल्लोलिनी ।।

अतिघोररूपा - मुक्तकेशी - कालरात्री - कार्तिकी ।
जो योगिनी-भोगिनी-प्रस्तुति - मंगला - वैनायिकी ।।
अणिमा - सुमहिमा-प्राप्ति-लघिमा-कीर्ति-गरिमा-शाम्भवी ।
पिँगला-जया- विजया - अपर्णा-वेदमाता - भार्गवी ।।

गोलोकरमणी-गोपिका - गोधनसुगायन तत्परा ।
त्रिगुणात्मिका-गुणगणलता - गुणगत -विगतगुणज्वरा ।।
निद्रा-क्षुधा-श्रद्धा-प्रतिष्ठा-तुष्टि - तृष्णा - कालिका ।
देवी-प्रकृति-अपरा-परा-अजरा-जरा - गिरिबालिका ।।

जो जानकी के स्थान पर बन स्वयं छाया - जानकी ।
लंका पधारीं स्वयं ही, बन काल कौणप-प्राण की ।।
भगवान शंकर के भवन की वे भवानी भगवती ।
हों राम पर सदया प्रजापति - नंदिनी माता सती ।।

शिशु-ज्ञान की पहिचान-हित, गुरु प्रश्न करते जान के ।
पितु-शब्द तुनलाते, सुहेतुक शिशु-गिरा निर्माण के ।।
चलना सिखातीं बालकों को अंब ज्यों झुककर स्वयं ।
त्यों राम को परखा विपिन में आपने, तज निज अहम् ।।

बनकर परीक्षक दी परीक्षा, फिर परीक्षा-फल बनी ।
प्रिय सहित दी अपनी परीक्षा आपने दाक्षायणी ।।
जिस पर कृपा हो आपको, वह जानता इस मर्म को ।
दिवि-दम्पती धर्मप्रतिष्ठा-हित निभाते धर्म को ।।

यह शक्ति-शक्तिनिधान के संकल्प की शुचि-शक्ति है ।
प्रत्यक्षतः अति गोपनीया-भक्ति की अभिव्यक्ति है ।।
भगवान शिव में आपके प्रति कलुष, कलुषित-कल्पना ।
तव हृदय में प्रिय-प्रति नहीं विश्वास, कोरी जल्पना ।।

विभु आपमें, हो आप विभु में, वस्तुतः हो एक ही ।
भव-भवा का सम्बन्ध अनुपम जानते सविवेक ही ।।
यद्यपि अलौकिक-तत्व यह सुविवेक का, दुर्लभ परम ।
पर तव कृपा जगदम्बिके! यह प्राप्त हो जाता स्वयम् ।।

इस दाशरथि को दर्श दे, की आपने जबसे दया ।
नारायणी ! यह क्षुद्र, नारायण तभी से हो गया ।।
कहता जगत, ली आपने वन में परीक्षा राम की ।
पर वस्तुतः शिशु-साधना को सिद्धि दी निज नाम की ।।

अर्धांगिनी लौकिक न हो सकती कभी सर्वेश की ।
वामांग-शोभा करिविदलिनी ही सदैव मृगेश की ।।
भगवान शंकर ब्रह्म हैं, माया स्वयं तुम मां सती ।
व्यामोह का रच स्वांग, की महिमा विमोहित भवगती ।।

बैठीं, अनित्य-वियोग देकर, नित्य निज संयोग को ।
परिपुष्ट करतीं कृच्छ-व्रत से विश्व-अक्षय-भोग को ।।
ईकार तव तज, आज शव के भाव में शिव खो गये ।
ह्रींकार पा तव लघु मनुज, ओंकार से मां ! हो गये ।।

यदि जन्म अगणित धार कर, करता रहूँ तव अर्चना ।
तो भी न तुमसे उऋण होने की मुझे लघु-कल्पना ।।
सद्भूमि कौशल्या, सुदृढ़ आधार माता केकई ।
अंबा सुमित्रा अति विचित्रा चित्रकारी हो गई ।।

आकार भारत-भारती, स्वर्णिम कलश सी जानकी ।
उस राम के यश-शिखर फहराती पताका आपकी ।।
सर्वस्व जो हारा स्वयं, लाई जिता जिस राम को ।
स्वीकार सादर मां ! करो, उस नमित राम-प्रणाम को ।।"

कहते हुए करबद्ध नतशिर भूमि पर झुक से गये ।
सम्मुख उपस्थित शंभु को सहसा निरख, रुक से गये ।।
झुकते हुए शिव को, स्वयं झुकते हुए ही थामकर ।
यों मिले, ज्यों तमहर रमावर प्रात-सर भर भुज लहर ।।

निर्मल निरभ्र सुनील-नभ में छा गई ज्यों ज्योत्स्ना ।
या मिल गई साधक-हृदय में साधना-आराधना ।।
या जान्हवी-रविजा समागम मौन लखती भारती ।
ज्योतिर्मयी जग सी गई कर्पूर अगरुक आरती ।।

हरि-नीलिमा हर-शुभ्रता सहसा हरितिमा बन गई ।
ज्यों पालिनी-संहारिणी अभिनव-सृजन में रम गई ।।
निज-निज हृदय-प्रतिमा सरिस, हरि-हर स्वयं दिखने लगे ।
सिद्धांत श्रुति के प्रकट होकर नृत्य सा करने लगे ।।

हरि-हर मिलन हरि-हर मिलन सम निरख जन हर्षित हुए ।
स्वर हुए मुखरित मौन सारे, मौन दृग मुखरित हुए ।।
सम्मुख स्ववैभव-तस्करी लख चकित से निमि-भारती ।
निश्चित ज्यों बैठे, सजा कण-कण समर्पण-आरती ।।

हर-कंठ हरि-भुज, भुजग-पति की सी लसी कल-कुंडली ।
हरि-कंठ पशुपति-बांह विकसित मालती-कलिकावली ।।
कर युगल आलिंगन परस्पर, एक ही आसन रुचिर ।
बैठे, दिखाते गौणता तन की हृदय के भाव-स्थिर ।।

सुर-सिद्ध-मुनि-गंधर्व-किन्नर-मनुज स्तुति करने लगे ।
दृग-पाणि अंतर-कलश निज सौभाग्य-रस भरने लगे ।।
रघुनाथ-पशुपतिनाथ की वह यों लगी अद्भुत-छटा ।
ज्यों इंद्रधनुषी भाद्रपद-नभ तरल-रवि उज्ज्वल-घटा ।।

दोहा

आये वायस-वर तभी, मुनि लोमश के साथ ।
सभा सहित सादर उठे, तुरत शंभु-रघुनाथ ।।

ऊर्मिका

सभी के साथ सभागृह गये,
नमन कर, ले प्रतिनमन महेश ।
विराजे यथायोग्य जन सकल,
सती को देख दुखी लंकेश ।।

नमनकर, बोले नत कर-बद्ध,
"आज यद्यपि आनंद अनंत ।
दक्षजा-दुःख दाह सा किंतु,
धधकता है तन-मन पर्यन्त ।।

कृपा कर हों त्रिपुरारि ! प्रसन्न,
न मानें शिशु की अविनय-अल्प ।
कल्प सा हमने किया व्यतीत—
यहां, माँ को लख क्षण-क्षण स्वल्प ।।

खोलता कभी न मैं मुख तनिक,
तनिक हो पाता किंतु न बंद ।
मांगता पुनः-पुनः मैं क्षमा,
भरा शंकाकुल व्याकुल-मंद ।।

बहुत समझाता, समझे नहीं—
चित्त-मन-बुद्धि-अहं पर एक ।
युगल सम कौन, अधिक फिर कहां,
करे जो शमन स्वजन-अविवेक ।।

प्रश्न पर प्रश्न उठाता चित्त,
किंतु उत्तर-पथ मति गति-हीन ।
देखकर दोनों की दुर्दशा,
स्वयं ही आहत अहम्-मलीन ।।

करे क्या एकाकी अन्मना—
दीन यह मन, आधार-विहीन ।
हमारा हरे तरुण-भ्रम-तिमिर,
आपका नित्यालोक-नवीन ।।

कहें, क्या जिज्ञासा वह पाप—
न जिसमें प्रायश्चित का स्थान ।
अपरिचय, वह भीषण-अपराध—
त्याग ही जिसका दंड-विधान ।।

आप कुलदेव, आप मम इष्ट,
छिपाना उचित न अंतर-भाव ।
करें मत घृणा करुणिमा-पुंज,
हृदय का मुख से रिसता घाव ।।

जिन्होंने खगपति को कर कृपा,
काग का दिया द्वार उपहार ।
मोहिनी के प्रिय वे प्रभु कहें,
निरीहा का किस विधि उद्धार ।।"

विभीषण-वचन श्रवण कर, उठे—
झलक जलबिंदु भालदृग - भाल ।
झुकाये नयन रह गये राम,
न कह पाये कुछ भी तत्काल ।।

सभा में छाया ऐसा मौन,
स्वांस भी मान गये संकोच ।
भूमि का भारी भार निहार,
नमित ज्यों हुए अनंत स-शोच ।।

सभी की लगी सती-दिशि दृष्टि,
बहाती नमित - नयन जो नीर ।
मौन की शिल सरकाकर अधर—
धीर धर बोली स्वर गंभीर ।।

"पुत्र निशिचरपति ! तव भावना—
मातृ-प्रति यद्यपि भरी सुसत्त्व ।
कर गई, पर शीलातिक्रमण,
शंभु का जाने बिना महत्त्व ।।

मानिनी तब ही अर्धाङ्गिनी,
रहे तन से दो, मन से एक ।
हुई मैं तब स्वयमेव अयोग्य,
घिरी जब घोर-अहम्-अविवेक ।।

कुतर्कों की कर्दम से भरी,
भयंकर वज्र कुबुद्धि-कुभूमि ।
अहंकृति बीज, कृषक दुर्भाग्य,
सींच दीं मृगमरीचिका-ऊर्मि ।।

अ-श्रद्धा सानुकूल ऋतु बनी,
विपद मंजरी फला फल एक ।
अयश गुण, व्यथा स्वाद, विद्रूप,
उसी का नाम सती-अविवेक ।।

न पूछा सादर श्रद्धा-सहित,
हृदय में धार धैर्य-विश्वास ।
कौन नर - श्रेष्ठ सच्चिदानंद,
जगत्-पावन ये जगन्निवास ।।

शिवा तो उसी समय मर गयो,
बनी जब राम-परीक्षा-हेतु ।
प्रजापति-सुता-भाव का दंभ,
तोड़ कर चला प्रेम का सेतु ।।

राम केवल माध्यम रह गये,
कस गई चित्त-शिला वृषकेतु ।
बिना जाने मम पूर्ण कुकर्म,
दिखाते तनय ! दया किस हेतु ।।

गरुड़ की अनुचित उपमा यहां,
देख वे मोह-रोग प्रारम्भ ।
गये कर शंभु-गिरा विश्वास,
त्यागकर विहगराज-पद-दंभ ।।

न क्या हर सकते थे अज्ञान,
स्वयं हर वेद-वंद्य विज्ञान ।
किंतु हिय-भाव-परीक्षण-हेतु,
किया निर्धारित कागस्थान ।।

गरुड़ ने पूंछा, सुनकर कथा,
"नाथ ! किस हेतु धरी यह देह ।"
और मैं देख देह का स्वांग,
सलिल-तल रच बैठी हठ-गेह ।।

तजा केवल पत्नी का भाव,
और क्या तजी सती अति पोच ।
मिला यद्यपि बहु समय, परन्तु—
कहां मैं छोड़ सकी संकोच ।।

न सुन पाई रघुपति की कथा,
न समझा सादर रघुपति-तत्व ।
शंभु श्रोता, वक्ता घटयोनि,
रही मैं अंध-बधिर निःसत्त्व ।।

न ब्रह्मा का सह सके असत्य,
शूल से खंडित किया कपाल।
यही साश्चर्य-कृपा क्या न्यून,
मौन हैं दोषी से अहिमाल॥

न मानी ग्लानि, न ताना दिया,
पिता ने क्या न किया अपमान।
किया यज्ञांश प्रवंचित किंतु—
मौन कर गये पुनः विषपान॥

ले गये सारे रत्न बटोर—
सभी पल भर में ही सानंद।
दे गये परम-कृपाकर दान,
हलाहल औ क्षय - रोगी चंद॥

उड़ाते बहुरंगे कौशेय,
ठुमकते फिरते भूषण धार।
भोगते लोक-लोक के भोग,
जिताते पद-पद निज अधिकार॥

पराक्रम, बरसा देना सुमन,
नयन से ढरका देना धार।
कहो तो, क्या-क्या पाया नहीं,
कहां कब किसने आ इस द्वार॥

कनकफल - बेलपत्र - जलबिंदु—
चिता की चुटकी भर मल क्षार।
छोड़ क्या गये अचल, ले गये—
चतुर्फल फल-फल के भंडार॥

तनिक सी देख स्वपूजन-भूल,
देवता हुआ न क्रोधित कौन।
आज लख पशुपति का अपमान,
कहो, किस सुर ने तोड़ा मौन॥

निभाया किसे न मेरे सहित—
कहो तो आशुतोष ने कहां।
और फिर स्वार्थ-सिद्धि-उपरांत,
शंभु का ध्यान किसी को रहा॥

किसे क्या पता न, आया कौन,
पधारे केवल श्री रघुनाथ।
मिले या मिले न यह संयोग—
पुनः, ले नाथ-माथ शुचि-पाथ॥

प्रतिज्ञा - पूर्वक कहती सती,
साक्षि हों रघुपति-पशुपतिनाथ।
प्रजापति - कण - संभूत स्वदेह,
दहन कर दूंगी अपने हाथ॥

मिला सकती न नाथ से नयन,
याचना राम ! आप से एक।
कर्म-क्षय होने तक, दो एक—
या कि अश्रुत योनियां अनेक॥

किंतु जब मिले मानवी-देह—
मिलें पति प्रमुदित पशुपतिनाथ।
'शंभु मेरे, मैं हूँ शंभु की,'
न यह स्मृति पल भर छोड़े साथ॥

साधना हो कितनी भी कठिन,
सिद्धि-क्षण हो हर-पद सानिध्य।
भूत औ वर्तमान की भीति—
न कर दे छल कर भ्रमित भविष्य॥

नाथ ! गंगाधर की किंकरी,
मांगती एक यही वरदान।
पतित-पावन ! अबला की विनय,
करें स्वीकार, कोटि दे कान॥"

सती ने आंचल सजल पसार,
टिकाया धरती पर निज शीश ।
राम बोले "यह भावी मुखर,
अन्यथा दो क्या सती-सतीश ।।

किन्तु फिर भी निज गिरा-प्रमाण—
हेतु कहता, "हो तव संकल्प ।
अंब 'सत-शिव-सुंदर' जग-हेतु,
विघ्न-गिरि करें शंभु रज-अल्प ।।"

सोरठा

फिर बोले श्रीराम, "यदि हो आज्ञा देव ! तव ।
नित्य-दिव्य तव धाम, दर्शन कर, हों धन्य-शुचि ।।

दोहा

अभिप्राय प्रभु का समझ, बोले शम्भु सुजान ।
"स्वगिरि स्वदयया स्वपद से, धन्य करें भगवान ।।"
मौन त्रिशूली-सदन से, चले नंदि के साथ ।
किया निमज्जन शुचि-हृदय, गौरि-कुंड शुचि-पाथ ।।
लोमश-नंदि-भुशुंडि को, लेकर तुम सब साथ ।
हर-गिरि का दर्शन करो" बोले श्रीरघुनाथ ।।
"लगा रहा हूँ मैं इधर, शंभु-शिला पर ध्यान ।
लौटो तब तक शीघ्र ले, सबको भरत ! सुजान ।।"
चले सकल मस्तक झुका, पाकर हरि-निर्देश ।
नमन शिला को कर हुए, समाधिस्थ अखिलेश ।।
रोमांचित रघुपति हुए, लेते ही शिव-नाम ।
मानो उतरी शरद-ऋतु, शतदल-सर अविराम ।।
ध्यान-बिंदु भवपुंज के, अन्तर ललित निकुंज ।
लगे देखने दिव्यतम, भव्य - भाव्य भव-पुंज ।।

अंतर अंतर्हित हुआ, अंतर-अंतर लीन ।
मोहित मोहक-मूर्ति हो, प्रकटी परम नवीन ।।
लगे निरखने दृश्य यह, नभ से निर्जर-व्यूह ।
झड़ा स्वतः मंदार-कुल, विपुल प्रसून समूह ।।
लगे उतरने देव-गण, शनै-शनैः विधि-साथ ।
शम्भु-समीप खड़े हुए, सादर जोड़े हाथ ।।
लगे निरखने निखरता, 'हर-स्वर' हरि-कासार ।
शब्द-शब्द पर कर उठे, मुक्त-कंठ जयकार ।।

ऊर्मिका

वायसाश्रम पर आये सकल,
उठे हर्षित फड़फड़ा विहंग ।
शिलासन बैठ गये सब स्वयं,
प्रकाशित हुआ स्वतः सत्संग ।।

भरत बोले सादर मृदु गिरा,
"विराजे यहां भक्त-योगीश ।
कहें अति गोपनीय वह हेतु,
सती सी सती तजी क्यों ईश ।।"

जान शिव-अनुगत-सखा-सुशिष्य,
उठी सबकी भुशुण्डि-दिशि दृष्टि ।
काग बोले, "देखीं प्रत्यक्ष—
जिन्होने अमित-अमित क्षय-सृष्टि ।।

बदलते देखे अमित विरंचि,
इन्द्र-मनुगण की गणना कौन ।
कृपाकर वे लोमश भगवान,
जगत-हित करें भंग निज मौन ।।

त्याग-प्रतिमा सियपति के अनुज,
जगत में जिनसे भक्ति सनाथ ।
रहा शुभ-महतत्त्व का मुकुट,
उन्हीं प्रिय भरत-लाल के माथ ।।

हुए हम धन्य उन्हीं के दर्श,
करें सौभाग्य - दान ऋषिराज ।
ब्रह्म के दो-पाटों के बीच,
सती भगवती पिसीं किस काज ।।

रहस्यों के व्यूहों में व्यूह,
रहस्याच्छादित परम रहस्य ।
कहें प्रभु ! गोपनीय वह तत्व,
हुआ यह सब कुछ जिसके वश्य ।।"

"कारणों के कारण श्रीराम,
अकारण-कारण करुणागार ।
उन्हें कर वंदन कहता, सुनो—
श्रुतिस्मृति-तत्व स्वमति - अनुसार ।।

ब्रह्म यद्यपि निर्लेप निरीह,
अगोचर-अद्‌भुत - अकथ - अपार ।
किन्तु कौतुकवश भर अति कृपा,
स्वमाया का करता विस्तार ।।

नमित - माया भी पा निर्देश,
विविध-विधि रचती अद्‌भुत मंच ।
पंच-तत्वों के सघन निकुंज,
पैठता अंश ईश का रंच ।।

किंतु इस ईश्वर - माया मध्य,
भरत ! कौतुक का अति आधिक्य ।
जीव को ईश्वर करता प्रकट,
सिखाती माया पर पार्थक्य ।।

दया ईश्वर का स्थायी-भाव,
किंतु माया स्वभावतः क्रूर ।
जीव में विविध प्रलोभन जगा,
ईश से करती क्षण-क्षण दूर ।।

जहां पर अविश्वास-तम घोर,
अश्रद्धा का निर्जन कांतार ।
कामनाओं के हिंसक-जंतु,
बुभुक्षित फिरते वदन पसार ।।

अहम् की दलदल में फँस जीव,
गँवाता रहा-सहा भी ज्ञान ।
न रहता रंच चिन्हारी-चिन्ह,
भयंकर होता लहू-लुहान ।।

अहं दलदल से मद-कंदरा,
मोह के गर्त, लोभ की धार ।
काम का मगर, द्वेष के भँवर-
जीव लख - करता हाहाकार ।।

दंभिनी माया होकर मुदित—
मानती, यह मम जय-जयकार ।
भुलाती ज्यों जीवों से ईश,
भूल जाती त्यों निज कर्तार ।।

भुलाना ही तो है यह भरत !
भूल जाना ईश्वर की शक्ति ।
अचेतनता-संज्ञा अविवेक,
मृत्यु की संज्ञा भ्रांति अभक्ति ।।

फँसी निज भूल-भुलैयां मध्य,
जीव को करती हुई विरुद्ध ।
स्वयं बन कारण-अस्त्र अमोध,
अंश-अंशी में दारुण युद्ध ।

कराकर, भरती खप्पर स्वयं,
नचाने वाला जाता नाच ।
अंत में होती दग्ध परन्तु,
होलिका सी अपनी ही आँच ।।

किन्तु इस दहन-क्रिया में अमित—
जीव बनते समिधा-शाकल्य ।
न रहता जीव, न माया पुनः,
शेष रहता अशेष कैवल्य ।।

जन्म में मृत्यु, मृत्यु में जन्म-
निहित ज्यों रहते भरत ! सदैव ।
जीव-माया को भी यह अग्नि—
तपा, देती प्रभु-रूप तथैव ।।

जाल माया का, प्रभु-अभिमुखी—
महामाया सीता-सम काट ।
लखन सा हरि-अनुकंपित जीव—
अभय ले फिरती अवघट-घाट ।।

जीव औ परब्रह्म के मध्य—
विचरती, होता पर न वियोग ।
वियोगी हो वह कैसे जीव,
ईश-सानिध्य चुका जो भोग ।।

मिलाता जो प्रभु का मन स्वमन,
जीव लक्ष्मण वह दक्षिण-स्थान ।
मिलाता जो प्रभु के मन स्वमन,
छत्रधारी तव भरत! समान ।।

दिया जिसने मन-बंधन काट,
उसी की संज्ञा है हनुमान ।
ग्रहण कर वह चरणों में स्थान,
ग्रहण करता चरणों का स्थान ।।

ईश-माया का यह भी रूप,
ईश को करती जीवाधीन ।
परीक्षा लेती रहती किंतु,
अंततोगत्वा है न प्रवीण ।।

निमिष में करती खगपति भ्रमित,
सतत-सानिध्य-जात अभिमान ।
काग को एक अफर-शर दिखा,
करा देती विक्रम का भान ।।

बचा पद-पद चलता पद-चिन्ह,
पदाभरणों तक रखता ज्ञान ।
एक कर चरण-चिन्ह-अनुसरण,
बनाता पद-पद तीर्थस्थान ।।

पादुका-सेवक सेवा-धर्म —
मानता केवल अपना एक ।
ईश के निर्विकार पद-पद्म,
भ्रमर-वत् जीव विशुद्ध अनेक ।।

एक ने पद-पीठाराधना,
दिखाये प्रभु हिय-पीठासीन ।
त्याग-छवि किंतु युगों में कभी,
प्रगटते तुम-कपि-लखन-प्रवीण ।।

सरल अति यद्यपि यह पथ प्रियो !
कठिनतम पर इसका निर्माण ।
जीव-माया क्या ईश्वर स्वयं,
पालता विधिवत् यहाँ विधान ।।

स्वकर कर माया का शृंगार
धनुष रख सोये ८.र पसार ।
ईश भी यदि तो, लघु सा विहग—
वक्ष पर करता चोंच-प्रहार ।।

मान अपने को लघु प्रभु-दास,
भरत करता दृग खोले ध्यान ।
ईशक्तरता जगहित शिव स्वयं—
देख लेता नभ-पथ हनुमान ।।

अहं से अविश्वास उत्पन्न—
कि होता अविश्वास से अहम् ।
विहग से अंड, अंड से विहग,
विहग ही अंड, अंड खग स्वयम् ।।

प्रश्न में उत्तर पूर्ण-अपूर्ण—
कि उत्तर-गर्भ प्रश्न-सम्पूर्ण ।
रेत-मोदक मरीचिका-नीर,
फूल सेमल का मेधा-चूर्ण ।।

भटक दिशि-दिशि आ जाती वहीं,
पन्नगी यह दो-मुँही समान ।
मात्र है समाधान संतोष,
मौन संबल, विश्वास प्रमाण ।।

सती तो स्वयं शाम्भवी-शक्ति,
प्राण पर झटका लेगी झेल ।
अन्यथा इस माया की घानि,
खिँचा नारद जैसों का तेल ।।

दीन दुर्वासा का क्या किया,
देख लो कितनी सी थी चूक ।।
गाधिसुत की दुर्गति अवलोक,
सिद्ध सहसा रह जाते मूक ।।

राधिका, पा जिसका आलोक—
नित्य आलोकित सा गोलोक ।
अल्प से मान, विरह-निशि फिरी—
कल्प भर, कोकी सी खो कोक ।।

वस्त्र-भूषण क्या पुर-परिवार,
न जिसका चपल कर सके चित्त ।
बन गया एक हिरण का चर्म,
उसी के दुख का अमित निमित्त ।।

दांव देतों को देकर दांव,
धूल में बारम्बार पछाड़ ।
खड़ी हो जाती बन अनजान,
नवेली अबला सी कर झाड़ ।।

न इससे भला ठानना वैर,
न इससे भला लगाना राग ।
भलाई केवल इसमें तात—
मानना इसका भला सुहाग ।।

ईश के वाम-भाग में सदा,
श्रेष्ठ शुभ सुखकर इसका ध्यान ।
रहे अंशी के सम्मुख अंश,
वही माया फिर, ममता-खान ।।

बहुत संक्षिप्त भाव में भरत !
समझ लो सती-त्याग का सार ।
भक्ति के ध्वजस्तम्भ-आधार—
हेतु ही यह हर का उपहार ।।

सती ने जिस विधि की यह स्वयं—
व्यवस्था सादर अंगीकार ।
उड़ा कर माया रूपी क्षार,
दिखाया नित्य-सत्य-अंगार ।।

सकल आशंकायें कर दग्ध,
जगत को दिया सुदिव्यालोक ।
कथन से नहीं, कर्म से किया—
रामनामामृत सिद्ध-अशोक ।।

अतः प्रियजनो ! राम से रहे,
कालवश कोई भी संबंध ।
न भूलो किंतु कहीं भी कभी,
जीव-ईश्वर का प्रिय-अनुबंध ।।

बहेगी ही माया-सरि, उचित—
क्यों कि इसका बहना जगहेतु ।
जीव-ईश्वर के शाश्वत् पुलिन,
मिलाये रखो भक्ति के सेतु ।।

बनाती यही जीव ईशेव,
ईश बनता इससे जीवेव ।
भक्ति सज्ञान, जीव की नींव,
भरत ! स्वयमुपमा यह स्वयमेव ।।

चलो, अब बहुत समय हो गया,
प्रतिक्षा-रत होंगे रघुनाथ ।"
चले सब शम्भु-शिला की ओर,
भाव-विह्वल लोमश के साथ ।।

टिका कर-तल पर कलित कपोल,
शिला कुहनी रख, नभ की ओर ।
तांकते मुदित त्रिभंगी सुछवि,
विलोके दशरथराजकिशोर ।।

थाम मणिमय धनु, कटि कर अपर,
खेलता पीतांबर पवमान ।
शिला-शैया ज्यों घन-दामिनी,
परस्पर करते मोद-विमान ।।

कि निश्छल-निर्मल मन निश्चिंत,
कर रहे या रतिपति विश्राम ।
परम अभिरामों के अभिराम,
लगे रससराज शांत से राम ।।

चले सबको लेकर हर-भवन,
सुमंगल-भवन धीर गंभीर ।
मांगते महादेव से विदा—
हुए गद्-गद्, दृग झलका नीर ।।

भुजा ईश्वर को ईश्वर भरे,
खड़े रह गये लगाये वक्ष ।
वचन चितवन-आच्छादन छिपे,
हृदय को लखकर हृदय समक्ष ।।

कठिनता से ले हर से विदा,
सती को पुनः-पुनः कर नमन ।
सभी से यथा-योग्य मिल भेंट,
सपरिकर किया यान-दिशि गमन ।।

गिरे चरणों में दौड़ भुशुण्डि,
रखा प्रभु ने मस्तक पर हाथ ।
लपेटा वन-माला में काग,
चढ़े पुष्पक विमान रघुनाथ ।।

दोहा

परिक्रमा कैलास की, करता हुआ विमान ।
सांध्य समय उतरा ललित, राजराज-उद्यान ।।

छप्पय

ललित चैत्ररथ-विपिन, सहोदर नंदनवन का ।
अष्टसिद्धि नवनिधि का क्रीड़ांगण भूतल का ।।
महादेव के मित्र धनाधिप का रमणस्थल ।
करता अभय निवास यक्ष-किंपुरुष-गातुदल ।।
ज्यों संशोभित शरद्-सर, अरविंदावलि माधुरी ।
त्यों हिमवानँकवार में, लगो ललित अलकापुरी ।।

इन्द्र त्रिदेवों सहित किये धारण सिंहासन ।
करते चँवर समीर, दिशागज दिशि-दिशि सिंचन ।।
छत्र शेष, उल्लोच गगन, दीपक शशि-दिनकर ।
नर्तन करती प्रकृति, बजाते बाजे जलधर ।।
गाते नारद-तुम्बरू, सेवा करती स्वयम् श्री ।
विपिन चैत्ररथ झूलतीं, शुभा राजराजेश्वरी ।।
गुँथी कनक-गुण प्रभा- विभा - मंजरी कलेवर ।
करते व्याख्या अंग, अभिख्या की त्यों सुन्दर ।।
आभूषण प्रत्येक विविध मणि-माला-आकर ।
भाव-भाव के लगे काव्य-कुल लघु - न्यौछावर ।।
कर्तृकला कर्तार को, सिखलातीं बन कामिनी ।
प्रभु ने प्रमुदित हो लखीं, राजराज की स्वामिनी ।।
कर रघुनंदन नमन, लगे करने शुभस्तवन ।
चले श्रीद सामात्य जान श्रीश्रीश-आगमन ।।
कह 'जय-जय श्रीराम' प्रणाम किया धरती पर ।
सादर हिय से लिये राम ने लगा धनेश्वर ।।
आये मणि-प्रासाद में, दिव्य-जनों को दर्श दे ।
किया धन्य धननाथ को, निशि-नैवास्योत्कर्ष दे ।।
देखे प्रातः, चिन्ह दशानन-सम्पराय के ।
क्षत-निकाय पुरनाथ-पुरी के अमर-काय के ।।
भरे राम के नयन, किये निर्भय कर ले कर ।
चले मुदित कर राम विशिष्टालिंगन देकर ।।
"करें यज्ञ मुनिजन मुखर, सिद्ध विघ्न-गत साधना ।
करें भक्त भगवंत-प्रति-प्रीतिनिघ्न आराधना ।।"

दोहा

चला यान हिमवान की, करता पार ढलान ।
"वह अपना नयपाल प्रिय," बोले श्री भगवान ।।

रोला

नगपति का गोरक्ष-नृपेन्द्र-कुमार धरा पर ।
भारत-मां के वाम-श्रवण का कुंडल सुन्दर ।।
शालिग्राम-विहार सुखद वैकुंठलोक सा ।
संस्कृति-कंज-निकुंज धर्म-रवि विरद-ओक सा ।।"
लख दामोदर-कुंड गंडकी-उद्गम पावन ।
मुक्तिनाथ शुभ धाम गये सीता-मन-भावन ।।
यत्र-तत्र-सर्वत्र शिला चक्रांकित बिखरीं ।
ज्यों फिरतीं "बन नटी-मुक्ति पुत्तलिका चकरीं ।।
अमित नाम-गुण-रूप धार सच्चिदानंदधन ।
सत्य-पाश से बँधे, विपिन-पथ पड़े अचेतन ।।
झोली भर-भर लिये बीन रघुपति-परिकर ने ।
ज्यों चिंतामणि चुनी श्रीशपुर-पथ निधि-वर ने ।।
रघुपति, पशुपति-पुरी परम प्रमुदित फिर आये ।
व.क्-विष्णुमति-तीर्थ स-श्रद्धा सकल नहाये ।।
कर पशुपति-अभिषेक नमन अर्चन नीराजन ।
लख चक्रा-देविका सरित, गुह्येश्वरि पावन ।।
श्रीहरि-हर गज-ग्राह भूमि पहुँचे रघुनंदन ।
जहाँ भक्ति-वश अर्धनाम सुन छुटा सुदर्शन ।।
लख जड़भरत-पुलस्त्य-पुलह के प्राचीनाश्रम ।
प्राग्ज्योतिषपुर-ब्रह्मकुंड-ब्रह्मध्वनि उद्गम ।।

दोहा

चले घुमाकर गगन-रथ, पूर्व दिशा अवधेश ।
करते निशि-दिन सजल-घन, जहां विहार विशेष ।।

पूर्वोत्तर यात्रा

रोला

अरुणाचल-नागाप्रदेश - मेघालय - मणिपुर ।
त्रिपुरा-ब्रह्मा-चीन-प्रशांत पयोधि पूर्व धुर ॥
अंडमान-यव-मलय-सुमात्रा-बाली होकर ।
श्रीकामाक्षी-पीठ पधारे श्रीअवधेश्वर ॥
आदि शक्ति भगवती प्रकृतिदेवी जग-जननी ।
बैठीं दे सम्मान तंत्र को, मुद्रा अपनी ॥
देख कुमारी-कुंड, जयंती का पूजन कर ।
आये ढाका-नगर, ईश्वरी का अर्चन कर ॥
ब्रह्मपुत्र-सरितीर्थ नहा, आये शिवसागर ।
दुर्जयगिरि, कोकामुख, पुण्यस्थल जल्पेश्वर ॥
नवद्वीप - सीमंतद्वीप - तारक-घंटेश्वर ।
ताम्रलिप्तिका - त्रिपुरसुन्दरी - छत्रभाग हर ॥
कर काली के दर्श, किलकिला अवलोकन कर ।
झारखंड, ज्वालपा, वासुकीनाथ नमन कर ॥

सोरठा

वैद्यनाथ के धाम, चिताभूमि शुभ देव-गृह ।
पहुँचे राजा राम, चन्द्रकूप शिवगंग न्हा ॥

दोहा

स्वर्णिम शिखरागार तल, मणिमय गर्भागार ।
लघु-छवि, ज्यों शिव झांकते, वातायन-आधार ॥
दशशिर के अंगुष्ठ व्रा, लिये चिन्ह यों शीश ।
ज्यों कलंक निज अंक में, धार रहे रजनीश ॥

सोरठा

"बोले राम हठात्, "अरे हठीले ऋषि-तनय ।
कर बैठा पविपात, सूत्रपात कर भक्ति का ।।'
वैद्यनाथ-अभिषेक, पुनः मौन होकर किया ।
चले मही शिर टेक, तीर्थ-प्रबंध सुचारु कर ।।

रोला

वैद्य-भील के स्थान गये, स्वयमेव अवधपति ।
बोले "वंदन योग्य वृद्धवर ! तव वरेण्य-मति ।।
विश्वनाथ को त्याग शिला-सम निर्जन-वन में ।
गया घोर अभिमान-दशानन ले निज मन में ।।
पर तुमने संथाल-श्रेष्ठ ! ज्यों हृदय लगाया ।
क्या दूं उपमा, एक न चित उपमान समाया ।।

दोहा

रहकर प्रिय संतान-सम, प्रिय संतान समान ।
जगत-पिता रक्षण किया, की पूजा सविधान ।"

रोला

दे अनंत सम्मान, गये रघुपति वंकेश्वर ।
मुनिवर अष्टावक्र मिले अति प्रमुदित होकर ।।
चंडीपुर - तारापुर - कंचनपुर - शृंगेश्वर ।
हो, दुर्वासा-सदन राम पहुँचे बटेश्वर ।।
कर वंदन-वार्ता, देकर मख का आमंत्रण ।
पहुँचे गिरि-मंदार पार मुंगेर कृपाघन ।।
पावापुरी - अभयपुर - नालंदा - कण्वाश्रम ।
वैतरणी - प्राची सरस्वती का लख संगम ।।

मगध-राज्य के केन्द्र राजगृह आये रघुवर ।
मिले सुमित्रा-बंधु मुदित चित भुज फैलाकर ।।
निशि निवास कर, गये जानकीनाथ तपोवन ।
मुनिवर सनत्कुमार-सनातन - सनक-सनंदन ।।
हुए सिद्ध, कर जहां साधना, हरि-आराधन ।
कर परिक्रमा, चले गया रघुवंशविभूषण ।।

दोहा

पुनःपुनः सरि स्नान कर, गये फल्गु के तीर ।
सरस्वती - नीलांजना, मधुस्रवा के नीर ।।
पुनः-पुनः कर आचमन, गये विष्णु-पद धाम ।
किये श्राद्ध श्रद्धा-सहित, पितर जनों के राम ।।
प्रेतशिला का पड़ गया, राम-शिला शुभ नाम ।
पाया राजाराम से, ख्याति अमित गय - धाम ।।
तीर्थ-पुरोहित-पुस्तिका, लगा सही निज हाथ ।
चले दक्षिणा-दान दे, देवकुंड रघुनाथ ।।

रोला

जहां सुकन्या ने की सिद्ध सुकन्या-संज्ञा ।
संज्ञाजों की च्यवन-प्राश की सिद्ध सुवंद्या ।।
आयुर्वेद रसायन-शाला की सस्थापित ।
शाक-मूल-फल-फूल-वनौषधि-गरल असीमित ।।
दूर-दूर से भांति-भांति पहिचान मँगाये ।
अनुसंधान-प्रयोग विविध-विधि जो कर पाँये ।।
ऐसे बहु विद्वान विषय-निष्णात बुलाये ।
कर सब सुविधा सुलभ, समादर सहित बसाये ।।
पिष्टि-भस्म-आसव अरिष्ट-अवलेह - सूचिका ।
तैल - गंध-रस - अर्क-चूर्ण-अवलेपन-वटिका ।।

बहु-रोगों की एक, एक की औषधि अगणित ।
प्रकृति-समय-वय-विधा सुसम्मत, भाँति अपरिमित ।।
सहज सुलभ हो सकल-हेतु सर्वत्र सर्वदा ।
नृप ने किया प्रबंध, न भयदा हो तनापदा ।।
पहुँच पाटलीपुत्र महेन्द्र-घाट पर न्हाये ।
पट्टनेश्वरी नमन किया रोहितगढ़ आये ।।
ब्रह्मेश्वर-गुप्तेश्वर का पूजन कर सादर ।
शोणभद्र-कोईल-कर्मनाशा सरिता वर ।।

श्री विश्वामित्राश्रम

दोहा

पहुँचे विश्वामित्र के, सिद्धाश्रम रघुवीर ।
स्वेष्ट-शिष्य-रक्षक निरख, भरा विलोचन नीर ।।
साथ सियापति के किया, सब ने चरणस्पर्श ।
खड़े रह गये मौन ऋषि, करते अपलक दर्श ।।
देकर आशीर्वाद बहु, आसन किये प्रदान ।
मुनिजन वन-वन के जुटे, राम - आगमन जान ।।

रोला

लगे स्वस्ति-वाचन कर, करने मंगल-मार्जन ।
बांधा दक्षिण-भुजा मांगलिक-रक्षाबंधन ।।
बोले वन-जन सुना "हमीं ने कहा उसी दिन ।
ये दशशिर-शिर-विपिन करेंगे दहन किसी दिन ।।
जिस दिन क्रीड़ा-धनुष धार, यक्षिणी विदारी ।
कहा प्रात ही, करो प्रज्ज्वलित मख-अग्यारी ।।
किये समिध-गिरि खड़े,अमित बालक प्रेरित कर ।
की मुनि-मुनि से विनय, 'भरें श्रुति-स्वर से अंबर' ।।

मंत्रों में सुप्राण फूंकते, शर धर फिरते ।
मध्य-मध्य आहट लेते, तरु पर चढ़ कहते ।।
"देखो प्राची लखन," "आप प्रभु! लखो प्रतीची ।"
धनुष - शिंजिनी मंजु अभय-रेखा सी खींची ।।
क्या स्वर चितवन स्फूर्ति, मूर्ति क्या संमद-सुंदर ।
राजपुत्र-शृंगार सहज, कटि अजिन धार कर ।।
मणि-मय मुक्ता-हार मध्य रुद्राक्ष-विभूषण ।
चंदन-मृगमद संग भस्म अंगाग-विलेपन ।।
हुए तपी सैश्वर्य, चला ऐश्वर्य तपोवन ।
करता शंक-निवृत्ति भ्रमावृति घिरा साधु-मन ।।
ये अश्विनीकुमार, यमातिथि-आतिथेय या ।
ये शूली के शौरि, श्रीश के रुद्र, श्रेय या ।।
अयोन्याश्रित-सृष्टि-प्रलय के ये लघु-लघु क्षण ।
चले पंचशर शूर-वेष या देवासुर-रण ।।
भरा नयन उत्साह, कोप कुछ, रंच ग्लानि-कण ।
ज्यों पंकज-कासार खेलते अरुण-समीरण ।।
श्याम-गौर सुकुमार ब्रह्म-छवि तरुण सलौने ।
गजाखेट-सन्नद्ध मृगाधिप के से छौने ।।
ज्यों मारीच-सुबाहु दूर से देखे आते ।
चले खिलखिला लिये धनुष-मंडल मदमाते ।।
प्रथम द्वार पर डटे, क्षणों में काट हरावल ।
असुर - सैन्य में धँसे पुनः सोत्साह महाबल ।।
तीर-तीर तक चीर-चीर जाते फिर आते ।
ज्यों पर्वोदधि-ज्वार पुलिन ठुकरा लौटाते ।।
वज्र-युगल ज्यों गरज-गरज श्रावण-नभ मथते ।
मानों मदन-वसंत किशुंकी कानन करते ।।
उड़ा सुभुज शर सफर, अफर मारीच-कलेवर ।
समर रौंदनें लगे, खोजते जीवित निशिचर ।।

लगे लौटते, लिये धनुष शिंजिनी उतारे ।
ज्यों बलि दे यजमान, पुरोहित पास पधारे ।।
लगा विपल में शाक्त, वैष्णवी-सत्र हमारा ।
निशिचर-खंडों ढका अखंडित भूमि-पसारा ।।
छाई छाया आज वेद-सुरतरु की त्रिभुवन ।
प्रथमांकुर ने किया यहीं पर, पर उन्मीलन ।।"

दोहा

मुनि कौशिक की ओर लख, हाथ जोड़ नत माथ ।
"कृपा सकल श्रीचरण की" बोले रघुकुलनाथ ।।

रोला

यात्रा का वृत्तान्त सकल संक्षिप्त सुनाया ।
निज-निज रुचिकर भाव, सभी ने सहज बताया ।।
कपिपति बोले "सकल लोक मम राम सुधारे ।
मिली पुत्रवधु, बने विभीषण समधी प्यारे ।।"
बोले लंकानाथ "नाथ ने अब मिला दी ।
कृपासिंधु ने रत्न-सुसिंधु सुगन्ध मिला दी ।।
गुह बोले "म्हाराज ! अरे हम राजा हुइगे ।
जगदीस्वर के ईसु रमेस्वर परजा बनिगे ।।
ये लंकेस-कपीस-नृपानुज कछु तौ बनते ।
चिंतामणि से राम-कृपा धिँवरी के तुलते ।।"
देख मुनीश्वर-ओर, भरत शिर रहे नवाये ।
मारुति के रोमांच परम विह्वल मुस्काये ।।
कौशिक बोले "आप पुण्य-भाजन प्रियजन हो ।
रामचंद्र के भक्त-मित्र-साथी तन-मन हो ।।

पीते हो प्रिय रूप-माधुरी यद्यपि क्षण-क्षण ।
रघुपति कण-कण बसे, बसे रघुपति तव कण-कण ।।
किंतु रूप के साथ, नाम का स्मरण न तजना ।
छवि मद का है मृदुल उतार, नाम नित जपना ।।
रहे नाम के साथ रूप, मंगलमय दिशि-दिशि ।
करती है व्युत्पन्न अन्यथा ज्योति प्रेम-निशि ।।
लगी पलक भर पलक, दिया माया ने सपना ।
कहीं प्रतिष्ठा पुनः करे आरम्भ थपकना ।।
निद्रा की क्या बात, ग्रहो! फिर ऐसी ग्राती ।
कब रवि निकला-ढला, हुई कब संध्या-बाती ।।
हो जाता नर असुध हुग्रा, यों असुध ग्रनोखा ।
तभी प्रेम का स्वांग प्रेम से देता धोखा ।।
नाम उसी का विश्वमोहिनी नारद के हित ।
उसी मोहिनी-मोह हुए शिव स्वयं चकित चित ।।
वही मेनका बनी, तपोवन मेरे आई ।
छिपा रूप से रूप, समाधि दृष्टि टकराई ।।

दोहा

मौन विपिन में मौन लख, दृग-पग दृग-सोपान ।
धसी मौन मन-भवन में, मंद-मंद मुस्कान ।।
गई बिकृत चित-भित्ति कर, रति-मसि मसल नवीन ।
रहे देखते दृग फटे, फटी-फटी कौपीन ।।

रोला

ग्रतः रखो प्रिय ! नाम पहरुग्रा प्रबल बनाकर ।
विकसित करता रहे, मोह-निशि ज्ञान-दिवाकर ।।

मायासुत षट्-चोर न पास फटकने पांये ।
छकें रूप दृग, नाम गिरावलि पल-पल गांये ।।"
फिर मुनि बोले "राम ! तपस्या सफल तुम्हारी ।
युग-युग तक तव रहे कीर्ति-रति युवती न्यारी ।।"
प्रभु ने की वंदना, विदेह-ध्वजा फहराते ।
शतानंद के साथ दिखे लक्ष्मीनिधि आते ।।
कर वंदन-पदनमन भुजा भर अभिनंदन, कर ।
बोले रघुवर "कहो बंधुवर ! कैसे पितुवर ।।"
बोले श्रीनिधि सगुण अवध-लक्ष्मी के भ्राता ।
"करते हैं भवदीय स्मरण जग-मंगल-दाता ।।
प्रिय-अगवानी-हेतु साथ उपरोहित वर के ।
भेजा पितु ने दास, आगमन तव सुनकर के ।।
चलें पूज्यवर ! करें चरण-रज तिरहुत पावन ।
परमातुर तव दर्श-हेतु है माता का मन ।।"
गाधितनय की ओर लखा प्रभु ने सकुचाकर ।
बोले मुनिवर समझ रहस्य, मुदित मुस्काकर ।।
"प्रिय लक्ष्मीनिधि ! प्रथम आप साकेत पधारें ।
सिय-सीमन्तोन्नयन-कार्य सब भांति सँवारें ।।
फिर भगिनीशों सहित भगिनियां चारों लेकर ।
शीघ्र पधारें आप ! नृपति-परिकर ले सादर ।।"
समाचार शुभ जान, जनक-सुत अति प्रमुदित मन ।
बोले "मुनि! यह समाचार मिथिला का जीवन ।।
इस दिन की कर रहा प्रतीक्षा पुर का जन-जन ।
जब प्रिय-परिकर साथ पधारें पुर रघुनंदन ।।

दोहा

कंद-मूल-फल-अशन कर, बिछा अजिन-कुश भूमि ।
लेटे मुनि-आज्ञा सकल, तरल प्रेम-सरि ऊर्मि ।।

प्रात-कृत्य कर ली विदा, कौशिक से रघुनाथ ।
चले अहिल्याश्रम मुदित, सकल साथ ही साथ ।।

रोला

शतानंद ने मात-पिता की कही कथा सब ।
किस कारण से सही, सती ने अकथ व्यथा सब ।।
कैसे प्रभु ने स्वयं कृपा की, वन में आकर ।
कैसे पितुवर मुदित हुए माता को पाकर ।।
शतानंद-वैदेह विदा कर, वैदेहीपति ।
कपिलवस्तु-लुम्बिनी देख श्रावस्ती द्रुतगति ।।
भृगु-आश्रम से सरयू-तट मनियर पर आये ।
मेधा-ऋषि से सुरथ-समाधि जहाँ श्री पाये ।।
देवलास में निज कुल-गुरु-रवि का दर्शन कर ।
विंध्यवासिनी-महाधाम पहुँचे अवधेश्वर ।।
चंडमुंड-मर्दिनी निशुंभ-शुंभ-मद-हरणी ।
अष्टभुजा-कौशिकी-महाकाली जगजननी ।।
पुण्य जान्हवी-तीर त्रिरूपा बैठी गिरि पर ।
सकल सिद्धि-दायिनी द्रवित जगती पर होकर ।।
निशा-जागरण-पूजन-अर्चन विविध भांति कर ।
कर प्रणाम चरणाद्रि-पार ज्यों ही रघुनंदन ।।

वाराणसी

हुए, दिखी त्यों तुरत शंभु की पुरी निराली ।
गंग अर्धवृत फिरी, घिरी ज्यों शिव-छवि व्याली ।।
दिशि-दिशि ऊँचे शिखर रजत-कंचन के सुंदर ।
ज्यों गिरिवर-कैलास उतर आया धरती पर ।।

बजते घंट-मृदंग-शंख-मंजीरे मनहर ।
'हर-गंगे हर-हर गंगे' स्वर छूते अम्बर ।।
करते शुक-सारिका शास्त्र-चर्चायें घर-घर ।
गुरु-कुल के आचार्य, जीव-भृगु ज्ञान-मान हर ।।
बटु-अधरों पर मंत्र, भारती ज्यों नर्तन-रत ।
'गौरी श्वशुरागार' वैष्णवस्थल श्रुतिसम्मत ।।
दिवोदास का दिव्य-निवास प्रकाश जगत का ।
जहां अन्नपूर्णा दाता, याचक कर शिव का ।।
रुद्रावास-विशाल मुक्ति-तप-क्षेत्र भूमि का ।
काशी - वाराणसी - महानंदा - शिवपुरिका ।।
श्रीत्रिपुरारि स्वराज्य-मही गंगातट-रानी ।
जहां शम्भु सम्राट महागौरी पटरानी ।।
कोटपाल विकराल ढुंढिराजा अधिकारी ।
प्रमुखामात्य हरेश्वर, वीरेश्वर भंडारी ।।
जहां मुक्ति-हित मुक्ति विचरती बाट-बाट में ।
देते तारक-मंत्र, जहां शव श्रवण-पाट में ।।
धर्म - व्यवस्था-केन्द्र शारदागार सनातन ।
ग्रह-गोचर-नक्षत्र-गणित-सिद्धांत सुधाशन ।।
करतीं वरणा-असी संजवन ब्रह्म-प्रकाशन ।
जन्म-जन्म अघ कोटि निमिष में बनते ईंधन ।।
विश्वनाथ की पुरी तीन लोकों से न्यारी ।
चतुवर्णाश्रम-हेतु चतुर्फल की मधु क्यारी ।।

दोहा

कर मज्जन मणिकर्णिका, पंच-विनायक मान ।
ले गंगाजल प्रभु गये, विश्वनाथ के स्थान ।।
ज्योतिर्लिग महेश का, सप्तम परम पुनीत ।
'हर-हर' कह अभिषेक कर, विग्रह मला सुपीत ।।

रत्न-विभूषण से सजा, किया सुमन-शृंगार ।
बिल्व-पत्र अर्पण किये, जगा दीपिकाधार ।।
कर नीराजन स्तुति करी, कर-कर शृंगीनाद ।
लिया भवानी के भवन, हर-प्रसाद साल्हाद ।।

ऊर्मिका

अन्नपूर्णा की कर वंदना,
कर्दमेश्वर का कर सम्मान ।
मना षट्-पंच विनायक-वृन्द,
देख द्वादशादित्य-संस्थान ।।

पूजकर षोड़श-केशवदेव,
भैरवाष्टक, नव-दुर्गाव्यूह ।
त्रयोदश नरहरि, उनसठ लिंग,
शंभु के नाम-स्वरूप समूह ।।

गये प्रभु राजघाट को लांघ,
त्रिविष्टप-तीर्थ शीतला-घाट ।
पंच-गंगा दशाश्वमेधादि,
सत्य-प्रिय हरिश्चन्द्र नृप-घाट ।।

देख असि-वरणा-गंगा मिलन,
ज्ञानवापी - अक्षतवट - सौरि ।
लांगलीश्वर-दुर्गा सिद्धिदा,
धूपचंडी हर-चर द्विज-शौरि ।।

पुण्य अविमुक्त-क्षेत्र रघुवीर—
देखते, पग-पग करते दान ।
पधारे संकट-मोचन क्षेत्र,
किये जागृत जग-हित हनुमान ।।

देख निज प्रिय-कपि का प्रिय-भाव,
हुए प्रमुदित सियपति भगवान ।
कहा "प्रिय ! ज्यों जागा तव भाव,
रहेगा त्यों जागृत यह स्थान ।।

सिद्ध भक्तों के कार्य सदैव—
करे तव यह मंगलमय रूप ।"
कीश को वर दे, निशि रह चले,
नमन हर को कर कोसलभूप ।।

त्रिपथगा के शुभ दक्षिण-तीर,
आ गया कान्यकुब्ज नभ-यान ।
स्वर्ग का वामन विग्रह किया,
राम ने स्थापित लख सुस्थान ।।

प्रहर-भर रुककर शूकर-क्षेत्र,
पूज गोकर्णनाथ रघुवीर ।
नैमिषारण्य पधारे तुरत,
जानकीनाथ गोमती-तीर ।।

किया मिश्रक में सादर स्नान,
गये फिर चक्र-तीर्थ सस्नेह ।
लखा उन ऋषि दधीचि का स्थान,
जिन्होंने दी देवों हित देह ।।

दोहा

जा पहुँचे संग्रामपुर, जहां ताल के तीर ।
नृप दशरथ-शर से तजा, श्रवणकुमार शरीर ।।
सुस्मारक निर्माण कर, दे गण को आदेश ।
मंगलमय शुभ शकुन लख, चले अवध अवधेश ।।

ऊर्मिका

दूर से दिखा अवध का शिखर,
शिखर पर माणिकमय दिवसेश ।
छत्र सा लहराता शुभ शीश,
तरुण रघुकुल का अरुण ध्वजेश ।।

चतुर्दिक रंग-बिरंगी सजीं,
पताका-माला ललित अनेक ।
घेर कमलालय को ज्यों खड़ीं,
सिद्धियां सकल मुदित सविवेक ।।

दिखे फिर रजतकनक-मणि-जटित,
अमित भवनों के कलश अनेक ।
शिल्प - सौंदर्य - रंग - आकार,
लजाते हुए एक को एक ।।

पड़ी फिर धीरे-धीरे कान,
अमित वाद्यों की मृदु झंकार ।
दृष्टि-गोचर उत्तर-दिशि हुई,
मंजु तन्वंगी सरयू-धार ।

"जन्मभू जय" कह, हो कर-बद्ध,
किया प्रभु ने शिर झुका प्रणाम ।
तीर्थ-जल बरसा, दे आगमन—
सूचना आये नंदिग्राम ।।

भरत की देख साधनास्थली,
भरा प्रभु के नयनों में नीर ।
अधर से निकला "हुआ न है न,
भरता सा त्रिभुवन भर में वीर ।।"

सोरठा

इतने में ले यान, लखन अनुज-सचिवों सहित ।
आये ग्रामस्थान, प्रभु-अगवानी-हित मुदित ।।
लगा लिये उर राम, उठा पदों से बंधु-प्रिय ।
'सकुशल कोसलधाम' कहा दृगों ने दृगों से ।।
कर श्री सरयूस्नान, श्रीनागेश्वर - अर्चना ।
गुरु वसिष्ठ के स्थान, पहुँचे राम पदाति ही ।।

दोहा

लगा लिये उर से तुरत, करते देख प्रणाम ।
दी आशिष "यश वृद्धि हो, युग-युग राजाराम" ।।
अरुन्धती-वंदन किया, कर मख-रज अनुलेप ।
पास बैठ यात्रा-कथा, कही सकल संक्षेप ।।
आये, सुन नृप-आगमन, सैनप-चार-अमात्य ।
होते सिद्ध-समीप ज्यों, स्वयं उपस्थित साध्य ।।

चतुर्थ भुवन

मंगलाचरण

श्री गोविंद माधुरी

तन पर्व-शर्वरीनाथ सदन, रति-अधिपति-मद-मोचन लोचन ।
अलिमाला सा कुंतल-कषाल, कंचन-पंकज सा गोरोचन ।।
केकीय चंद्रिका शीश लोल, करते किलोल कुंडल कपोल ।
सुरलता-गुंजमालिका-माल, कौस्तुभ-मणि मध्य मनोज्ञ गोल ।।
मल्लिका-मालती-सेवंती, केयूर-करधनी-वनमाला ।
चंचल चपलेव दुकूल पीत, करती मुरली मन मतवाला ।।
त्रिभुवन-मोहिनी त्रिभंगी-छवि, कालिन्दी-तीर कदंब तले ।
गो-गोप घिरे वे नंदलाल, मम मन-मंदिर में रमण करें ।।

विषमय यमुना जल कर जिसने, ब्रज - मंडल का संमोद हरा ।
त्रिभुवन - पूजित ब्रज-रज पावन, बन गई यातनायतन धरा ।।
कटि कस दुकूल मुरली खोंसी, चढ़कर कदंब पर कूद पडे ।
जल उबल उठा, खल मचल उठा, झलके झलसे फण बड़े-बड़े ।।
थेइ-थेइ्-थेइ् थिरके फण-फण पर, फणि-मुख से चली लहू-ज्वाला ।
सुरसरित्-सृजक पद-शीर्ष सजीं, विधिपुर विधिवत् विधिशिर माला ।।
कालिय को दान भक्ति का दे, इति व्याधि महान प्रियों की, की ।
वे जनरंजन विषधर-गंजन, मम मन-मंदिर में रमण करें ।।

लहराता ज्वाला - माल ज्वार, दावानल प्रलय-पयोधि चला ।
मधुवन भभका, निधिवन धधका, दहली दिशि-ज्ञान-कला सकला ।।
बल उठे बांस, जल उठे कांस, पथ लगे भूलने स्वांस सकल ।
भूले तमाल-दल धूम्र-दाम, खौला कटाह सा यमुनाजल ।।
हो गये यशोदा-नंद विकल, बिचला गो-गोप-गोपिका दल ।
बोला कण-कण कर त्राहि-त्राहि, 'माधव ! तव संबल, तव संबल' ।।
पी गये हलाहल-पायी-प्रिय, पूतना-उरज सम दावानल ।
ब्रज-नवनी के वे नव-ग्राहक, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

झूमे ग्रहि-कोल-कमठ मंडल, हिम सा जम गया तरिणिजा-जल ।
जल उठे जलाशय, गले ग्रचल, ठहरीं बयार, चपला दृग मल ।।
शिखि-शिखा-शिखर अहि वैर-विगत, नाचे प्रमुदित मृग-पंचानन ।
विकसित ग्ररविंद-निकुंज मिले, चकवा-चकवी तमसा-ग्रांगन ।।
मन मन्मथारि का राग भरा, वैराग भरा मन मन्मथ का ।
विधि ने श्रुति-व्याख्या सगुण लखी गिरि बना सांध्य-पट रवि-रथ का ।।
जिनकी मुरली ने दिखा दिया, संभव कर सहज असंभव को ।
वे मुरलीधर गोपाल लाल, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

तड़-तड़-तड़-तड़ तड़िता तड़की, घन प्रलय-काल के मँडराये ।
हिम-ऋतु में पावस के प्रचंड, नद-नदी घुमड़ कर घिर ग्राये ।।
बह चले घोष कर करुण घोष, स्थिर रहे न विरद सुस्थिरों के ।
बन गये कीच की कीच सरिस, नभचुंबो शिखर मन्दिरों के ।।
भू लगी डुलाने भँवर-माल, नभ लगे हिलाने वज्र-बिंदु ।
रुष लगा बरसने सुरपति का, ब्रज-खंड बन गया शोक-सिंधु ।।
गिरिवर कनिष्ठिका-दंड धार, जग ग्रभय किया निज छत्र तले ।
वे इंद्र-दर्पहारी उपेन्द्र, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

कौमुदी शारदीया छाई, अवनी-अंबर-यमुना - जल पर।
रामावतार की मुक्तात्मा, श्रुति-ऋचा चलीं गोपी बन कर॥
झम-झम-झम झुमके झमक उठे, झन-झन-झन झनकीं झांझनियाँ।
हर-हर-हर हार-हमेल हँसे, खन-खन-खन खनकीं कंगनियाँ॥
बज उठे ढोल-ढप-चंग-शंख, भेरी-मृदंग सब एक संग।
त्रिभुवन का तन-मन हुआ तरल, निष्कलुष प्रकृति का अंग-अंग॥
प्रकटे खरारि बन वशीकरण, कण-कण कृष्णाकर्षण प्रकटा।
रसराज स्वयं - रस रसिकराज, मम मन-मन्दिर में रमण करें॥

क्या कोष-सैन्य-पुर तन तक भी, पासों की प्यास न बुझा सके।
गिरते धरती पर बार-बार, दुर्भागे मुँह ऊपर करके॥
नीचता सती को ले आई, दासी कह करती अट्टहास।
निष्प्राण-मूर्ति से हुए सकल, ज्ञानी-ध्यानी-योद्धा उदास॥
त्रिभुवन का सारा अंधकार, घनघोर घिर गया दशों ओर।
इस महा-निराशा में आशा, छहरा पीतांबर-छोर छोर॥
बन गया बांह प्रत्येक रोम, कर अभय पुकारों पर लहरा।
वे पुष्पवती के अक्षय-पट, मम मन-मन्दिर में रमण करें॥

बँध गये कवच, बज गये शंख, हो गई सुसज्जित सैन्य खड़ी।
पौरुष की कठिन परीक्षा की, प्रत्यक्ष प्रतीक्षित हुई घड़ी॥
गांडीव त्याग, भर कर उसांस, सेनापति बोला 'सब असार।
यह रुधिर-धार में धुला राज्य, धिक्कार हरे! कोटिशः बार॥
हो गया व्यर्थ सब शास्त्र-ज्ञान, मायापति को आ गई हँसी।
दिखलाया मुख में कुरुक्षेत्र, अगणित मृत - योद्धा पांत - फँसी॥
उठ अमर! समर कर, मैं कर्ता, तू साध्य, न साधक-सिद्धि-सिद्ध।
वे गीता - गायक श्रीनायक, मम मन-मन्दिर में रमण करें॥

लहराता ज्वाला - माल ज्वार, दावानल प्रलय-पयोधि चला ।
मधुवन भभका, निधिवन धधका, दहली दिशि-ज्ञान-कला सकला ।।
बल उठे बांस, जल उठे कांस, पथ लगे भूलने स्वांस सकल ।
भूले तमाल-दल धूम्र-दाम, खौला कटाह सा यमुनाजल ।।
हो गये यशोदा-नंद विकल, बिचला गो-गोप-गोपिका दल ।
बोला कण-कण कर त्राहि-त्राहि, 'माधव ! तव संबल, तव संबल' ।।
पी गये हलाहल-पायी-प्रिय, पूतना-उरज सम दावानल ।
ब्रज-नवनी के वे नव-ग्राहक, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

झूमे अहि-कोल-कमठ मंडल, हिम सा जम गया तरिणिजा-जल ।
जल उठे जलाशय, गले अचल, ठहरीं बयार, चपला दृग मल ।।
शिखि-शिखा-शिखर अहि वैर-विगत, नाचे प्रमुदित मृग-पंचानन ।
विकसित अरविंद-निकुंज मिले, चकवा-चकवी तमसा-आंगन ।।
मन मन्मथारि का राग भरा, वैराग भरा मन मन्मथ का ।
विधि ने श्रुति-व्याख्या सगुण लखी गिरि बना सांध्य-पट रवि-रथ का ।।
जिनकी मुरली ने दिखा दिया, संभव कर सहज असंभव को ।
वे मुरलीधर गोपाल लाल, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

तड़-तड़-तड़-तड़ तड़िता तड़की, घन प्रलय-काल के मँडराये ।
हिम-ऋतु में पावस के प्रचंड, नद-नदी घुमड़ कर घिर आये ।।
वह चले घोष कर करुण घोष, स्थिर रहे न विरद सुस्थिरों के ।
बन गये कीच की कीच सरिस, नभचुंबो शिखर मन्दिरों के ।।
भू लगी डुलाने भँवर-माल, नभ लगे हिलाने वज्र-बिंदु ।
रुष लगा बरसने सुरपति का, ब्रज-खंड बन गया शोक-सिंधु ।।
गिरिवर कनिष्ठिका-दंड धार, जग अभय किया निज छत्र तले ।
वे इंद्र-दर्पहारी उपेन्द्र, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

कौमुदी शारदीया छाई, अवनी-अंबर-यमुना - जल पर ।
रामावतार की मुक्तात्मा, श्रुति-ऋचा चलीं गोपी बन कर ॥
झम-झम-झम झुमके झमक उठे, झन-झन-झन झनकीं झांझनियाँ ।
हर-हर-हर हार-हमेल हँसे, खन-खन-खन खनकीं कंगनियाँ ॥
बज उठे ढोल-ढप-चंग-शंख, भेरी-मृदंग सब एक संग ।
त्रिभुवन का तन-मन हुआ तरल, निष्कलुष प्रकृति का अंग-अंग ॥
प्रकटे खरारि बन वशीकरण, कण-कण कृष्णाकर्षण प्रकटा ।
रसराज स्वयं - रस रसिकराज, मम मन-मन्दिर में रमण करें ॥

क्या कोष-सैन्य-पुर तन तक भी, पासों की प्यास न बुझा सके ।
गिरते धरती पर बार-बार, दुर्भागे मुँह ऊपर करके ॥
नीचता सती को ले आई, दासी कह करती अट्टहास ।
निष्प्राण-मूर्ति से हुए सकल, ज्ञानी-ध्यानी-योद्धा उदास ॥
त्रिभुवन का सारा अंधकार, घनघोर घिर गया दशों ओर ।
इस महा-निराशा में आशा, छहरा पीतांबर-छोर छोर ॥
बन गया बांह प्रत्येक रोम, कर अभय पुकारों पर लहरा ।
वे पुष्पवती के अक्षय-पट, मम मन-मन्दिर में रमण करें ॥

बँध गये कवच, बज गये शंख, हो गई सुसज्जित सैन्य खड़ी ।
पौरुष की कठिन परीक्षा की, प्रत्यक्ष प्रतीक्षित हुई घड़ी ॥
गांडीव त्याग, भर कर उसांस, सेनापति बोला 'सब असार ।
यह रुधिर-धार में धुला राज्य, धिक्कार हरे ! कोटिशः बार ॥
हो गया व्यर्थ सब शास्त्र-ज्ञान, मायापति को आ गई हँसी ।
दिखलाया मुख में कुरुक्षेत्र, अगणित मृत - योद्धा पांत - फँसी ॥
उठ अमर ! समर कर, मैं कर्ता, तू साध्य, न साधक-सिद्धि-सिद्ध ।
वे गीता - गायक श्रीनायक, मम मन-मन्दिर में रमण करें ॥

लहराता ज्वाला-माल ज्वार, दावानल प्रलय-पयोधि चला ।
मधुवन भभका, निधिवन धधका, दहली दिशि-ज्ञान-कला सकला ।।
बल उठे बांस, जल उठे कांस, पथ लगे भूलने स्वांस सकल ।
भूले तमाल-दल धूम्र-दाम, खौला कटाह सा यमुनाजल ।।
हो गये यशोदा-नंद विकल, बिचला गो-गोप-गोपिका दल ।
बोला कण-कण कर त्राहि-त्राहि, 'माधव ! तव संबल, तव संबल' ।।
पी गये हलाहल-पायी-प्रिय, पूतना-उरज सम दावानल ।
ब्रज-नवनी के वे नव-ग्राहक, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

झूमे अहि-कोल-कमठ मंडल, हिम सा जम गया तरिणिजा-जल ।
जल उठे जलाशय, गले अचल, ठहरीं बयार, चपला दृग मल ।।
शिखि-शिखा-शिखर अहि वैर-विगत, नाचे प्रमुदित मृग-पंचानन ।
विकसित अरविंद-निकुंज मिले, चकवा-चकवी तमसा-आंगन ।।
मन मन्मथारि का राग भरा, वैराग भरा मन मन्मथ का ।
विधि ने श्रुति-व्याख्या सगुण लखी गिरि बना सांध्य-पट रवि-रथ का ।।
जिनकी मुरली ने दिखा दिया, संभव कर सहज असंभव को ।
वे मुरलीधर गोपाल लाल, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

तड़-तड़-तड़-तड़ तड़िता तड़की, घन प्रलय-काल के मँडराये ।
हिम-ऋतु में पावस के प्रचंड, नद-नदी घुमड़ कर घिर आये ।।
बह चले घोष कर करुण घोष, स्थिर रहे न विरद सुस्थिरों के ।
बन गये कीच की कीच सरिस, नभचुंबी शिखर मन्दिरों के ।।
भू लगी डुलाने भँवर-माल, नभ लगे हिलाने वज्र-बिंदु ।
रुष लगा बरसने सुरपति का, ब्रज-खंड बन गया शोक-सिंधु ।।
गिरिवर कनिष्ठिका-दंड धार, जग अभय किया निज छत्र तले ।
वे इंद्र-दर्पहारी उपेन्द्र, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

कौमुदी शारदीया छाई, अवनी-अंबर-यमुना - जल पर ।
रामावतार की मुक्तात्मा, श्रुति-ऋचा चलीं गोपी बन कर ।।
झम-झम-झम झुमके झमक उठे, झन-झन-झन झनकीं झांझनियाँ ।
हर-हर-हर हार-हमेल हँसे, खन-खन-खन खनकीं कंगनियाँ ।।
बज उठे ढोल-ढप-चंग-शंख, भेरी-मृदंग सब एक संग ।
त्रिभुवन का तन-मन हुआ तरल, निष्कलुष प्रकृति का अंग-अंग ।।
प्रकटे खरारि बन वशीकरण, कण-कण कृष्णाकर्षण प्रकटा ।
रसराज स्वयं - रस रसिकराज, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

क्या कोष-सैन्य-पुर तन तक भी, पासों की प्यास न बुझा सके ।
गिरते धरती पर बार-बार, दुर्भागे मुँह ऊपर करके ।।
नीचता सती को ले आई, दासी कह करती अट्टहास ।
निष्प्राण-मूर्ति से हुए सकल, ज्ञानी-ध्यानी-योद्धा उदास ।।
त्रिभुवन का सारा अंधकार, घनघोर घिर गया दशों ओर ।
इस महा-निराशा में आशा, छहरा पीतांबर-छोर छोर ।।
बन गया बांह प्रत्येक रोम, कर अभय पुकारों पर लहरा ।
वे पुष्पवती के अक्षय-पट, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

बँध गये कवच, बज गये शंख, हो गई सुसज्जित सैन्य खड़ी ।
पौरुष की कठिन परीक्षा की, प्रत्यक्ष प्रतीक्षित हुई घड़ी ।।
गांडीव त्याग, भर कर उसांस, सेनापति बोला 'सब असार ।
यह रुधिर-धार में धुला राज्य, धिक्कार हरे ! कोटिशः बार ।।
हो गया व्यर्थ सब शास्त्र-ज्ञान, मायापति को आ गई हँसी ।
दिखलाया मुख में कुरुक्षेत्र, अगणित मृत - योद्धा पांत - फँसी ।।
उठ अमर ! समर कर, मैं कर्ता, तू साध्य, न साधक-सिद्धि-सिद्ध ।
वे गीता - गायक श्रीनायक, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

बन गया पितरवन पांडु-पक्ष, भट गिरे धरा पर प्राण-हीन ।
कट गया कवच, टूटा किरीट, गांडीव अलौकिक हुआ क्षीण ।।
जर्जरित देह शर-गेह बनी, अर्जुन विदेह सा गिरा धरा ।
कटि सटा पीत-पट कर्पट बन, मुख पर कचमाल उठी लहरा ।।
परिचिता कषा कर्कशा लगी, सरसीं तन से शोणित-सरिता ।
रद कड़के, फड़के अधरद्वय, भड़की बड़वा दृग प्रज्ज्वलिता ।।
पावस-पयोद लय-जलद बना, निज भक्त-हेतु प्रण तोड़ चले ।
वे चक्र-सुदर्शन - धारी हरि, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

श्री मथुरा के कारागृह से, लेकर प्रभास की लीला तक ।
जो महारथी-सारथी बने, ले आयुध मारक-सम्मोहक ।।
वैरी-सम्बन्धी स्वको ही, कर क्षीण क्षणों - क्षण भार हरा ।
फिरते ही जिनके बालक पर, कलियुग ने पहला वार करा ।।
दुर्दशा देख निज धरती की, करुणाकर जो फिर फिर आये ।
बन जिनकी कृपा-कोप के घन, विज्ञान-वेष में घिर आये ।।
की पांचजन्य में मुरली लय, प्यारी राधिका दुधारी में ।
वे अवधेश्वर कल्कीकृपालु, मम मन-मन्दिर में रमण करें ।।

सोरठा

आये राजाराम, खिली अयोध्या कमल सी ।
दिशि-दिशि-धाम ललाम, उठीं लहर स्वर लहरियां ।।

रोला

निकले पथ-पथ पौर, नारियां चढ़ीं अटारीं ।
लिये अरगजा-सुमन-केतकीरस की झारीं ।।

लखते कोई पंथ, निरखते कोई अंबर ।
आयेंगे नभयान यान में या कि नृपेश्वर ।।
दिखता कहीं व्यवस्था-रत कोई अधिकारी ।
घेर-घेर पूंछते 'नृपति का कहां सवारी ।।'
कोई कहते भरे अमित उत्साह हुलस कर ।
आज हमारा हुआ वसंत-महोत्सव सुन्दर ।।
तभी बढ़े पुर - द्वार पार कर ध्वज-संवाहक ।
लगे फूंकने प्राण तुरहियों में बहु वादक ।।
लगे रिक्त पथ करने तुरत राज-अधिकारी ।
दिखे अग्रसर पंक्ति-बद्ध ज्यों हय-असवारी ।।
चले बजाते वाद्य मधुर-मंथर-स्वर वादक ।
बढ़े झूमते कला-प्रदर्शन करते नर्तक ।।
रघु-सेनापति चंद्रकेतु चंचल तुरंग पर ।
गति देते शोभायात्रा को भल्ल उठाकर ।।
चले, लगे ज्यों धूम्रकेतु पर वृषभ-प्रभाकर ।
या कि चंचला-शिखर चमकते शीतल शशधर ।।
धर्मपाल - सौराष्ट्र - जयंत - सुमंत-अकोपन ।
राष्ट्रविवर्धन-सृष्टि-विजय रघुराज-सचिवगण ।।
चढ़े, सजे गज-अष्ट, दिशापालों से चलते ।
मधु-पंकज-कासार भ्रमर-दल उत्सव करते ।।
धनाध्यक्ष के यक्ष विमान चलाते भू पर ।
गंधर्वों के वाद्य, किन्नरों के गायन-स्वर ।।
अप्सरियों के मध्य मधुर मंजीर खनकते ।
दिव्य स्वतः ध्वनि अदृष श्रवण कर पौर चमकते ।।
तीन श्रेष्ठ गजराज सुरेन्द्र-मतंग लजाते ।
मणि-मय शिविका पृष्ट धार घंटियां बजाते ।।
बैठे कपिपति-लंक नृपति गुह ले प्रिय रघुवर के ।
लगते विग्रह प्राणवान से रघुपति-रति के ।।

रंग-बिरंगे छत्र, शीश पर ढुलते चामर ।
मानों चलते उतर त्रिदेव अवध के पथ पर ।।
सब से पीछे जुता सप्त-सैन्धव शुभ स्यन्दन ।
अनुजों-मारुति सहित सजे जिस पर रघुनंदन ।।
छत्र शुभ्र, शुभ शीश चँवर नर्तन सा करते ।
खिले विलोचन युगल सकल जन-मन-श्रम हरते ।।
प्रमुदित लाजा-सुमन लगीं बरसाने नारी ।
चले कुंकुमे झूम, घूमतीं नभ पिचकारीं ।।
करने लगा गुलाल लाल दल के दल बादल ।
लगा मचाने कीच नगर-पथ-मंडल शीतल ।।
महारणों के जयी पीठ सी लगे दिखाने ।
वज्र देख जो हँसे, शीश वे लगे छिपाने ।।
बोले हँसकर राम, देखकर कौतुक सुन्दर ।
"मार प्रेम की घोर, सहे क्या संसारी नर ।।
शिव सा योगी सहे, सहे या मदन अतनु सा ।
कवच कौन सा धार सहे लघु संसृति-मनु सा ।।"

दोहा

आये सूत-समीप प्रभु, अंतर-वेदी त्याग ।
अवध-प्रजा-अनुराग का, जाग उठा ज्यों भाग ।।

रोला

मघा-मेघ सा लगा रंग घमसान मचाने ।
मूंद-मूंद दृग-कमल, हृदय के कमल खिलाने ।।
भरत-लखन-रिपुदमन तनिक बढ़, भागे अंदर ।
लगे खेलने फाग, यान से राम उतर कर ।।
नागर-नट से लगे कुंकुमें हाथ लपकने ।
चले लक्ष्य पर, लगे लक्ष्य-चालक पर गिरने ।।

चले भीगते सु-जल, स्वरस से नगर भिगोते ।
चंदन से केवड़ा, केवड़े से तन धोते ॥
भेद-भाव से रहित नगर-जन-जन से मिलते ।
करते विविध विनोद कुशल-मंगल कह, सुनते ॥
ज्यों-ज्यों बढ़ते भूप, उमंग मचलती त्यों-त्यों ।
ज्यों-ज्यों हटती सकुच, चपलता बढ़ती त्यों-त्यों ॥
निज नृप को निज मध्य देख, नर लगे नाचने ।
अभय प्रजा-नृप स्नेह-प्रेम-पथ लगे झूमने ॥
लगे बजाने ढोल चाव से ज्यों कुछ लाकर ।
चमके चंग-मृदंग रंग बहु भर उमंग स्वर ॥
अलगोझों में दबे निमिष में बाजे सारे ।
वनवासी से कनकनगर वाले हिय हारे ॥
लखन-भरत-गुह-दमन-कीश- कीशेश- विभीषण ।
यक्ष-शूर-सैन्येश धीर-गंभीर सचिवगण ॥
उतर-उतर कर चले सकल प्रमुदित तज वाहन ।
तुरत ले चले सूत-साहनी-गजारोह जन ॥
शोभायात्रा बनी वसन्तोत्सव सी पल में ।
बने प्रथम-नागरिक, एक नागरिक निमिष में ॥
ऊदा-धानी-लाल - गुलाबी - हरा - बैंजनी ।
केशरिया-चंपई - गेंदई - नील - कासनी ॥
रंग लगे प्रत्यंग-अंग दिशि-दिशि का रँगने ।
इन्द्रधनुष ज्यों लगे कर्बुरी - गगन धिरकने ॥
किये राम-रंगीन, रँगीले प्रजाजनों ने ।
भरे प्रेम-विश्वास-समादर अभय-मनों ने ॥
पथ-पथ पर रघुनाथ खेलते फाग विहँसते ।
ज्यों ऋतुराज-वसंत हुए साकार विचरते ॥
घोष-वाद्य बादल-गुलाल वर्षा-पिचकारी ।
गई मयूरी भूल राम-छवि लख, सुधि सारी ॥

नाचे आम्रोद्यान हरित - लोचन प्रिय-प्यारी ।
लगा छके नृप-प्रजा मिथुन - संघट रवि-भारी ।।
पिक बौराई, देख बौर-वन शिखिनी - नर्तन ।
कर्क कुंभ में उगा, अनोखे राम-अवधजन ।।

सोरठा

छिपा प्रकृति पंचांग, प्रभु पंचानन राज्य से ।
मुदित हुआ सर्वांग, लगी हार मणि-हार सी ।।

रोला

दिखीं भवन-सोपान, लिये जननी नीराजन ।
धेनु-वत्स से चले चीर जन-वन रघुनंदन ।।
कैकई ने भरे अंक, गिरते चरणों पर ।
कौशल्या ने किया आरता, न्यौछावर कर ।।
लगीं सुमित्रा ग्राम-ग्रास मिष्ठान्न खिलाने ।
प्रभु का देख दुलार लगे गुह-गंग लजाने ।।
वानर-निशिचरराज अमित विधि से सत्कारे ।
रघुपति-प्रिय गुह-कीश लगा कर हृदय दुलारे ।।
"मेरा प्यारा भरत कहां" कौशल्या बोली ।
"मैं मां! यह" सुन पड़ी निकट ही वाणी भोली ।।
लगा हृदय से लगीं शीश पर हाथ फिराने ।
निश्छल प्रेम-तरंग उमंगों भरी न्हिलाने ।।
गूंजा राजद्वार सुमंगल गीत मधुर-स्वर ।
करतीं मँगलाचार चलीं जननी ले अन्दर ।।
देखीं प्रभु ने मध्य-पौर में जनकदुलारी ।
अनुजा-दासी घिरीं, प्रेम की प्रतिमा प्यारी ।।

अति तन्वंगी हुईं, सूक्ष्म शृंगार सजाये ।
लखतीं प्रिय को मुदित, नमित-शिर नयन उठाये ।।
हुईं प्रिया-प्रियतम की पलकें चार पलक-भर ।
मन से मन ने सकल कुशल ली जान परस्पर ।।

दोहा

कर मज्जन आये सकल, तन-मन रँगा उमंग ।
तब नृपने भोजन किया, अनुज-सखा - जन संग ।।
आये गुरु अपरान्ह-वय, भेंट स्वपरिकर साथ ।
बैठे अष्टामात्य सह, मंत्र-सदन रघुनाथ ।।
यात्रा-विश्लेषण किया, विविध-भाँति बहु-पक्ष ।
चिंता-चिंतन-चेतना, किये विभाजित कक्ष ।।
अनुज-अंब-वधुओं सहित, राज-मातु निःशान्त ।
निशि-वय यात्रा का कहा, प्रभु ने सब वृत्तान्त ।।
फिर बोले "मां ! एक दिन, मुनि-कौशिक-आगार ।
मिले स्व-उपरोहित लिये, श्रीनिमिराजकुमार ।।"
हुईं सतर्क विशेषतः, तीनों सिया समेत ।
प्रभु बोले "कहने लगे, चलिये जनक-निकेत ।।"

रोला

मां बोली "फिर" प्रभु बोले "फिर कुछ मुनिवर ने ।
कहा, सुना पर सही-सही वह बंधु भरत ने ।।"
देख तनिक प्रभु-दिशा अंब-दिशि तनिक सरक कर ।
बोले भरत विनम्र वचन-रचना-अति-नागर ।।
"समाचार तव पाकर किसी सुखद दिन सुन्दर ।
आयेंगे निमिकुँवर सुमंगलमय-फल लेकर ।।"
मँझली से कुछ समझ, पुनः कौशल्या हँसकर ।
बोलीं "सम संकोच-शील में दोनों रघुवर ।।

कल जायेंगे गुरुवर का पाकर अनुशासन ।
मिथिलेश्वर-पुर मंगलपाती लेकर धावन ।।
करो शयन निशि चढ़ी" चले माँ-आज्ञा पाकर ।
खिलीं दासियां देख, संग आते सिय-रघुवर ।।
लहर-लहर ओहारों पर ओहार उठातीं ।
चलीं दिखातीं राह, पाँव में पांख उगातीं ।।
पलक-पांवड़े अपलक नत-नत पलक बिछातीं ।
चलीं नमन कर सजा सेज, चंचला लजातीं ।।
दिव्य-दम्पती रहे, अमित-निशि चर्चा करते ।
उषा-काल ही दिखे, किन्तु रवि-अर्चा करते ।।
बैठे नित्य समान, सभा में आ राजेश्वर ।
सुन परोक्ष-वृत्तान्त पुष्ट अष्टांग देखकर ।।

दोहा

हुए मुदित रघुवंशमणि, सकल व्यवस्था जान ।
लगा लिये सौमित्रि-गण, हृदय हृदय ही मान ।।

रोला

सिय-सीमन्तोन्नयन-सूचना लेकर द्विजगण ।
शुभ-मुहूर्त अवलोक पधारे निमि-नृप-प्रागंण ।।
प्राणवान सा हुआ-निमिषभर में पुर सारा ।
ज्यों चन्द्रोदय-पूर्व, दिखा नभ पहला तारा ।।
टोल-टोल से गीत कामिनी गातीं आईं ।
सिय-माँ लेने लगी निजांचल हुलस बधाई ।।
भर-भर कर बहु चाव, भरे बहु भार शाक-फल ।
ले सुहाग-सम्पुटी सिया की पचरँग - तीयल ।।
लक्ष्मीनिधि सिय-भ्रात जनकसुत चले अयोध्या ।
साथ सम्हाले भेंट, अनेक नियोज्या-नियोज्या ।।

सीमा से ही सचिव-वृन्द कर स्वागत लाये ।
नगर-द्वार पर भरत-लखन-रिपुसूदन आये ।।
कनकभवन के मिले द्वार पर आकर रघुवर ।
लाईं जननीं दे आशिष मांगलिक-कार्य कर ।।
अंतःपुर में मिलीं भगिनियों सहित जानकी ।
मिलते-मिलते आंख भरीं भगिनियों-भ्रात की ।
नयन पूंछ, धर धीर पुनः पूंछा "मां सकुशल ।
पितुवर कैसे और सकल मिथिला में मंगल ।।"
"सब सकुशल अब स्वयं देखना लाडिलि ! चलकर ।"
सुन भैया की बात, उठीं सब अति उमंग भर ।।
करा चाव से खान-पान फिर स्नान कराया ।
स्वयं साथ चल, अमित भांति प्रासाद दिखाया ।।

दोहा

विविध-भांति नृप ने किया, श्यालक का आमोद ।
नृत्य-गान-चौगान-सरि, चौसर-विपिन विनोद ।।

रोला

वधु को निश्चित-दिवस तीर्थ-जल से नहलाकर ।
लगीं कराने सास सु-पूजन सुपट बिठाकर ।।
कर अरुन्धती अग्र नापितिन लगीं सजाने ।
वेणी गूंथ, प्रवीण रंजनी लगीं रचाने ।।
की सिन्दूरी मांग, चढ़ाई मस्तक रोली ।
आंजा अंजन आंख, सजीं खंजन सीं भोली ।।
लगा महावर, अंगराग प्रत्यंग लगाये ।
कर सराहना जनक-सदन के वस्त्र पिन्हाये ।।
चिबुक बिंदु धर, धरा अधर से पान अधर पर ।
दिया दिठौना कोण, तोड़ तृण नख-शिख लखकर ।।

सफल मांगलिक-द्रव्य लगीं गोदी में देने ।
झुकी लाज से लगीं झुका कर शिर, सिय लेने ।।
घिरीं मांगलिक-द्रव्य भरों फल-फूल जानकी ।
लगीं शिवा सी सिद्ध-पीठ की पर्व-काल की ।।
लाजा-वर्षण मध्य जेठियों के पद छूतीं ।
उठीं सूर्यकुल-कमल- लता - मंजरी - प्रसूतीं ।।
कर कुलदेवार्चन प्रियतम के सम्मुख आईं ।
मिले नयन से नयन, सकुच सकुचा मुस्काईं ।।
पुर-कन्यायें लगीं घेरकर करने नर्तन ।
जोड़-जोड़ सियराम-नाम शुभ-गायन ।।
हँस-हँसकर रनवास लगा करने न्यौछावर ।
गये छुड़ा कर राम निजांचल आंख बचाकर ।।
लगीं सुहागिन गाने, शिर पर गगन उठाने ।
कई थाम माताओं के कर चलीं नचाने ।।
लौटीं ले हिय-हार, डांट खा मृदुल हठीलीं ।
लगीं सजाने यमक-श्लेष से गीत रसीलीं ।।

दोहा

चलीं प्रात कर रतजगा, श्रम निद्रा दृग लाल ।
ले प्रमुदित मेवा भरे, मणिमय दो-दो थाल ।।
शृंगवेरपुर-कनकपुर, किष्किधा के नाथ ।
हुए उपस्थित प्रात ही, चलने को प्रभु-साथ ।।

रोला

ले माओं के साथ भार सारा शासन का ।
गुरुवर ने आदेश दिया, तिरहूत-गमन का ।।

दे मुद्रा निश्चित हुए प्रमुदित रघुनंदन ।
श्रीनिधि-अनुजों सहित चढ़े स्यंदन, कर वंदन ।।
अंगद-पवनकुमार स्वयं विकसित शतदल से ।
सजे राम-पदपीठ सुरभि-तट वत्स सरल से ।।
लगे स्वस्तिवाचन कर द्विज-दल आशिष देने ।
मान-सहित बिन कहे लगे मन-वांछित लेने ।।
चार रथों पर सजीं चार शिविकायें सुन्दर ।
सकल सुनहरी एक-एक से अधिक मनोहर ।।
मानों उतरीं भूमि दिशापतियों की पुरियां ।
भोगवती - अलका - संयमनी - अमरावतियां ।।
चारों वधु तीनों सासों का कर अभिवंदन ।
बैठीं शिविका एक, लिये यों आनंदित मन ।।

दोहा

ज्यों रघुपति-प्रिय के हृदय, चतुर्वर्ग सुस्थान ।
पाता है सम्मान से, त्रिगुणातीत समान ।।
बजे ढोल धम-धम धमर, प्राचीरों से तूर्य ।
प्रिय परिजन सह श्वशुर-गृह, चले सूर्यकुल-सूर्य ।।

रोला

चलीं नाचतीं नटीं, बज उठे बाजे अगणित ।
चले गगन से देव सुमन बरसाते हर्षित ।।
सजीं अमित शस्त्रास्त्र चली चतुरंग अवध की ।
नभचर सी भर चाव न छूतीं पाटी पथ की ।।
कपिराजा-युवराज-ऋक्षपति घिरे ऋक्ष-हरि ।
चले विभीषण लिये निशाचर-यूथ सुभग सरि ।।

चले राम के प्रिय निषाद ले धींवर-परिकर ।
विषय-विषय के विज्ञ विदुष-गण अगणित मुनिवर ।।
आये पुर-वन लांघ, गाधिसुत-आश्रम आतुर ।
ले ऋषि-वर को साथ पधारे राम जनकपुर ।।
बजे उभय-दिशि वाद्य, मचा अद्भुत कोलाहल ।
ज्यों पूनम-निशि मिले युगल-सरितापति निश्छल ।।
निकल भवन से वृद्ध-विदेह-भूप सीमा पर ।
मिले, शिशिर-ऋतु का हिमगिरि ज्यों आया चलकर ।।

सोरठा

उतरे रथ से राम, देख जनक, अनुजों सहित ।
करते देख प्रणाम, लगा लिये चारों हृदय ।।

रोला

लगे जनक-भुज घिरे कुँवर चारों दशरथ के ।
भोग-योग ध्रुव-मध्य, क्षितिज-दल ज्यों त्रिभुवन के ।।
तरल नयन, अपलक विदेह रह गये देखते ।
हृदय लगों में लगे हृदय भी स्वयं भूलते ।।
जनक-चेतना की चेतन, चैतन्य राम ने ।
तभी दिखे ब्रह्मर्षि-श्रेष्ठ गाधेय सामने ।।
करने चरणस्पर्श चले ज्यों, मुनि ने बढ़कर ।
लगा हृदय से लिये परम विह्वल हो निमिवर ।।
की बहु मंगल-कुशल, दूर से लख अंबारीं ।
चपल बाल-सम दौड़ नृपति ने सुता निहारीं ।।
महाकाव्य मन का दृग-द्वय ने पढ़ा शेष सम ।
किया उमग पृथु सरिस अष्ट-दृग ने हृदयंगम ।।
किया मंगलाचरण-विधान दृगों ने ज्यों भर ।
त्यों ही उपसंहार दृगों ने किया विहँसकर ।।

फिरे जनक ज्यों, घिरे ऋक्ष-कपि-धींवर-निशिचर ।
त्यों ही बढ़े तुरंत सियेश समूह चीर कर ।।
बोले "ये सब सखा पूज्यवर! मेरे प्यारे ।
भरा भवोदधि भयद-भँवर, ये सुखद किनारे ।।
इनसे ही यह राम, परम अभिराम आज का ।
सुरतरु सा श्रृंगार इन्हीं के मूल साज का ।।
चँवर-किरीट-सनाह-छत्र इस निबल रंक के ।
ऋक्षराज-गुहराज-स्वामि किष्किंध-लंक के ।।"
छुए सभी ने चरण, जनक के बढ़कर सादर ।
लिये हृदय से लगा, जान प्रियतम के प्रियवर ।।
फिर बोले "यह ललित-लाडला परम-सलौना ।
कपि अंगद युवराज मोदिनी-मृग का छौना ।।"

दोहा

जब तक प्रभु पूरा करें, "और-और यह" वाक्य ।
बोले जनक तुरन्त ही, "यह अशूल शिव-वाच्य ।।"

रोला

बोले प्रभु के साथ "सत्य यह सत्य" सकल-जन ।
सती-हीन शिव सगुण, सती-सुत मारुतनंदन ।।
जगमंगल को जन-संकुल जनपथ से लेकर ।
बढ़े, बनाते मार्ग प्रेम-विह्वल मिथिलेश्वर ।।
कोकिलकंठी-गीत, प्रजाजन के 'जय-जय' स्वर ।
बरसा प्रेम-पयोधि, पर्व पर प्रेम-पयोधर ।।
आये राजद्वार, राम कर पार राजपथ ।
ज्यों मधुवन-छवि देख, सपरिकर उतरा मन्मथ ।।
ममता की प्रतिमूर्ति सुनयना देख सामने ।
अनुजों सहित प्रमाण किया शिर झुका राम ने ।।

भरे विलोचन, भरा हृदय, भर आई वाणी ।
निज-रचना हरि-केलि देख विधिमति कल्याणी ।।
ज्यों व्यामोहित हुई, हुई त्यों गद्गद् रानी ।
पृथक परस्पर-पूरक चतु-छवि देख सुहानी ।।
अपलक पलभर रही खड़ी, फिर हाथ उठाकर ।
दीं आशीष अनेक, अनेकों कर न्यौछावर ।।
तभी द्विरद-शिविका से सम्मुख दुहिता उतरीं ।
सरसिज-सर से वेणु-निकुंज फिरीं ज्यों भ्रमरीं ।।
लगीं हृदय से दौड़, चले रिस, भरे विलोचन ।
हुई विदेह विदेह-प्रिया वैदेही-दर्शन ।।
खिलीं मैथिलीं, देख सहेली सकल पुरानी ।
दुहिता विस्मित देख, विहँसकर बोली रानी ।।
तव पितु ने ये सकल श्वशुर-गृह से बुलवाईं ।
तव शुभागमन जान मुदित आयसु पा आईं ।।
मिली भगिनियों सहित सीय बांहें फैलाकर ।
मानो बचपन मिला लौट पथ से बौराकर ।।
उमग-उमग कर मिलीं ललककर सकल सहेलीं ।
ले-ले क्रीड़ा-नाम बुझातीं हुईं पहेलीं ।।
कर आलिंगन भांति-भांति से चूम-थाम कर ।
करतीं कलित-किलोल भवन के आईं अंदर ।।
खान-पान पथ-क्लान्ति भूल, बैठीं बतलाने ।
कनबतियां कर, विहँस सरस-रुष-सरित बहाने ।।
ले मां का संदेश दासियां आतीं-जातीं ।
'हां-हां' करतीं किंतु न कोई भी उठ पातीं ।।
मां को सम्मुख देख, उठीं सीता सकुचाकर ।
मंगल-अर्चन किया अंब ने पाट बिठाकर ।।
भरी हास-परिहास गान-नर्तन-ऋतु आई ।
भूल गईं वय-वेश देख सिय-प्रेमसगाई ।।

सोरठा

कर मृदु अल्पाहार, पद-प्रक्षालन आचमन ।
बैठे जगदाधार, उधर सखा-अनुजों सहित ॥

दोहा

आये सानुज जनक नृप, पाकर कर सम्मान ।
मुदित हुए प्रभु से सकल, जान सुवृत्त सुजान ॥
पुरजन-परिजन-अनुजजन, सखाजनों के साथ ।
कर निशि-भोजन मोद भर, किया शयन रघुनाथ ॥
बोली लक्ष्मीनिधि-सुतिय, प्रात "नंदिनी-नाथ ।
शिव-गौरी-पूजन-निमित, चलो हमारे साथ ॥"
बोले धीरे से लषण, कर तिरछी मुस्कान ।
"अब क्या लेना रह गया, गौरी से वरदान ॥"

रोला

बोली हँसकर चतुर श्यालजा त्यों ही मुस्का ।
"पाना आज प्रसाद कुँवर जी ! दिव्य-पयस का ॥"
हुए वीरवर मौन, देख प्रभु को सकुचा कर ।
बोले रघुपति "देवि ! अभी हम होते तत्पर ॥"
उठे राम ज्यों, चले भरत भो सत्वर त्यों ही ।
बोले हँस रिपुदमन, गये देखे गुरु ज्यों ही ॥
"कहो बना किस कामधेनु के पय की पायस ।
आई हो तुम यहां सुरभि-ऋतु की नव-पावस ॥"
"इतना भी क्या पूंछ न निज जननी से आये ।"
"तभी पूंछते, जो न जान हम अब तक पाये ॥"
"क्या इसमें तव दोष, रीति ही ऐसी आई ।
पूँछा करतीं युँही प्रजा वृद्धों की जाई ॥"

"ज्ञान-वृद्ध-जन जप-तप कर संतति-मुख लखते ।
कूकर-शूकर अनायास ले सेना चलते ।।
क्षार-सिंधु से कौस्तुभ-मणि सम भूमि जोतते ।
मिलीं भुवन-श्री जिन्हें, एक बड़भागी दिखते ।।
किंतु आप सी कहीं न देवी पड़ीं दिखाई ।
जिनको कन्यादान समय ही जननी लाई ।।"
"यूं तो यूं ही सही, आप कर लें प्रमुदित मन ।
वे लातीं जो पातीं पौरुष-पीन पुरुष-जन ।।
वे अबला क्या करें, जिन्हें मिल जायें ऐसे ।
चढ़ा नासिका-श्रवण लौटतीं जैसे-तैसे ।।"
विहँस वक्र कर नयन. लषण बोले "जी हां जी ।
कहें अग्रजा थीं कि आपकी वे अनुजा जी ।।
जिनको इतनी व्यथा आपका मन कचोटती ।
अधिवक्ता बन विकल प्रात से हुई डोलती ।।"
"नंदानंद ! न कोई हम द्विज दीन परशुधर ।
इन्द्रजीत- दीक्षित न जिन्हें जीतोगे छलकर ।।
यहां किया यदि छल तो स्वयं छले जाओगे ।
यह न अवट, नासा से ऊपर जल पाओगे ।।
गोल-धनुर्हि टेढ़ी चितवनि लख बनरी डरतीं ।
मिथिला-कन्या उठा शंभु-धनु धोतीं धरतीं ।।
यहां कोप-गृह में न याचना वर की करतीं ।
मुनि-पौरों को यहां दयावश देवी वरतीं ।।"
"धन्य-धन्य हम हुए पाप कट गये हमारे ।
तरे आपकी तरी अवध के चार कुँवारे ।।"
करते ठीक दुकूल राम, कुछ आते अंदर ।
बोले, करते हुए श्याल-भीरु को निरुत्तर ।।
चलीं मौन नत-नयन, दबा अधरों में आँचल ।
खड़े हुए प्रभु-पार्श्व, सुमित्रा-सुत लखते तल ।।

निकलीं गातीं गीत, ईश-गौरी के नारी ।
लिये मांगलिक - द्रव्य, शीश पर कंचन-झारी ।।

दोहा

सीय-मांडवी-ऊर्मिला, श्रुति-आँचल तत्काल ।
राम-भरत-लक्ष्मण-दमन,से बांधे द्विजबाल ।।
लगा चार-वय चार-फल, होकर एकाकार ।
भवा-तरी भव-दाश लख, चले भवोदधि पार ।।

रोला

करते नगर कृतार्थ, भवानी-मंदिर आये ।
शतानंद-तिय ने सब मंगल-कृत्य कराये ।।
कर पूजन सिय बार-बार शिर लगीं झुकाने ।
देख लषण की ओर लगे रघुपति मुस्काने ।।
समझ सहेली एक, तनिक स्वर से उठ बोली ।
"लता-कुंज के श्याम, सामने तेरे भोली ।।
हुई साधना सिद्ध, सिद्धि को रख सम्हालकर ।
अचल चित्त कर, ध्यान न कंचन के मृग में धर ।।
टूट गया शिव-चाप, देख शर शिव-अमित्रके ।
लख सम्मुख निज सहज सांवरे हृदय-चित्र के ।।
लिये गोद गणराज-स्कंद कह रहीं भवानी ।
होगी मुझसी शीघ्र अवध-राजा की रानी ।।"
टूटी सीय-समाधि, खसी भुज-माला डाली ।
दो दिव्या देवियां दिव्य-दृग गिरा-निराली ।।
क्या बोलीं, कह सका न कोई सकल समझकर ।
दृग-सचिवों की गिरा समझता मन-राजेश्वर ।।

दोहा

आये रघुपति वाटिका, देखे मंजु-निकुंज ।
चित-उपवन करने लगे, केलि शुभा-स्मृति पुंज ।।

रोला

लगे खोजने सुमन सुमन-चयनस्थल लोचन ।
हो रिपुसूदन-भरत संग कुछ पीछे लक्ष्मण ।।
लगे बताने, फुलवारी की कथा पुरानी ।
लगे दिखाने स्थान, बताने वाली स्यानी ।।
लगा चतुर्दिक बजे किंकणीं-कंकण-नूपुर ।
दिशि मधु-आंगन बनी, बने हरियल दिग्-सिंधुर ।।
बना पंचशर पवन, क्षितिज-दल सुमन-शरासन ।
मन-सरसिज अनुराग भरे मनसिज-पराग-कण ।।
चले सुपंख पसार. देख क्रीड़ारत-ललना ।
सुमन-सुकंदुक साथ बांह-वल्लरी लहरना ।।
होते अस्तव्यस्त सुआंचल, जूड़े खुलना ।
सुमन-सुवेणी सजल-सुमन निर्झरिणी झरना ।।
स्वांस-प्रगति-वश प्रकृति-सुकृति का रूप बदलना ।
मन-कुमार का कृति-कृतिकांक अशंक मचलना ।।
कहीं झूलतीं रज्जु, डोलते कहीं हिँडोले ।
कहीं बोलते नयन, अधर होते अनबोले ।।
कहीं घेर के घेर हाथ में हाथ डालकर ।
करते जड़ चैतन्य, अचेतन नाच-नाचकर ।।
आईं सिय-प्रिय पास रँगीलीं कुछ लहराकर ।
बोलीं "क्या लख रहे रसीली आंख गड़ाकर ।।
परमधीर गम्भीर वीर दशशीश-विजेता ।
मिथिला-ललना-नयन, ललनजू ! मन के क्रेता ।।

एक वचन पर जो कि गये पुर-स्वजन त्याग कर।
क्या कर रहे विचार आज वे मौन धार कर॥"
बोले रघुपति विहँस "सोचता हूँ मन ही मन।
कहता 'हरि सर्वज्ञ' बावला कितना त्रिभुवन॥
जिन्हें मोहिनी रूप पड़ा फिर शिव-हित रखना।
दिखा न पाये एक तनिक मिथिला की ललना॥
सीखी तुम्हें निहार या कि फिर देख न पाई।
गगन चमकती इसी हेतु चपला इतराई॥
करती शिखिनी नृत्य मारती मृगी कुलांचें।
फिरतीं जल में मीन ढालतीं लोचन सांचें॥
क्यों किलकाती कली-कला बेला अलबेली।
हो मतवाली युंही जुही करती अठखेली॥
चंचरीक-चय चंपा-परिचय बना पहेली।
अब तक प्रकट न सकी प्रिया की एक सहेली॥"
बोली सकुचा विहँस "हटो तुम कितने सज्जन।
समझ गईं हम आज, आप बलिगृह के वामन॥"
बोले बढ़कर भरत "चलो कुछ तो पहचानीं।
हम समझे थे और, किंतु तुम निकलीं स्यानीं॥"
चकित हुईं "सिय-सहित सकल, सुन वचन भरत के।
बोली "निकले आप सत्य पूरक अग्रज के॥
जैसे इन से श्याम, श्याम वैसे ही मन के।"
बोले बढ़कर तुरत ऊर्मिला-रमण विहँस के॥
"पूज्यपाद का हृदय सदैव समुज्ज्वल-निर्मल।
पर तव कुंचित-अलक-कपाल कटीला-काजल॥
कुछ टोना कर गया, हमें तो ऐसा लगता।
इसी हेतु वह ग्रहण, ग्रहण वृष-दिनकर करता॥"
हँसे राम खिलखिला, लषण की पीठ थपक कर।
बोले "प्रिय! तू सत्य वचन-रचना अति नागर॥

दोहा

भरत ! आज से लषण को, सौंपो वचन विभाग ।"
छकीं छपदियों सी सखीं, प्रभु-अनुराग-पराग ।।

रोला

भरे मोद-संकोच असीम, चले मालीगण ।
लिये प्रसूनस्तबक-मालिका सुमन-विभूषण ।।
गये तुरत पहचान दूर से लखकर रघुवर ।
बोले निर्मल-प्रीति परखकर, बढ़कर हँसकर ।।
"उस दिन के दो, आज चार हम आये होकर ।
पुष्प तुम्हारे सिद्ध, सिद्धि देते हैं सत्वर ।।
माली बोले "हो सरकार सामरथ-साली ।
जौन उचार्यौ वचन, तांहि पै बरसै लाली ।।
सुरतरु कर्यौ अरंड, अरंडहिं नंदन-माथ्यौ ।
सागर सिमट्यौ लखि तुम्हार मुख तनिक रिसात्यौ ।।
पढ़े न सास्त्र गँवार, बात पै बोलैं सांची ।
तब फूलन-हित फुलवारी विधि मिथिला राची ।।
चार्‌या बिटिया नाथ ! हमारी लता-बिरवनी ।
चढ़ि रघुकुल-बटराज गगन की भई अलगनी ।।
हम विदेह नृप माली, माली नृपति हमारे ।
लाये पूजन-फूल वयस के प्रथम सकारे ।।"
लख प्रभु की मुस्कान, लगे माला पहनाने ।
मुदित, मुकुट कुंडल में कलियां कलित लगाने ।।
फिर सचाव निश्शंक अमित सारंग-विभूषण ।
सजा दिये सब भांति दिवाकर-वंश विभूषण ।।
देख परम सुकुमार सुमन-शृंगार सलोने ।
"देखो" बोली एक, "छिपे सर मनसिज-छौने ।।"

निज प्रतिबिंब निहार, उतारे रत्नाभूषण ।
रघुपति देने लगे, नटे कह 'हा' माली-गण ॥
"यहु बिटियन को बित्त, न मिलिहैं ठौर नरक मँहु ।
पायौ मानुष-जनम जनमि-जग भ्रम जोनिन बहु ॥
करि तव दरसन राम ! चारि फल करतल हमरे ।
जनम-जनम के पाप, आप लखि आपहिं पजरे ॥"

सोरठा

निश्छल धर्म-विवेक, मालाकारों का निरख ।
नर-नारी प्रत्येक, हुआ विशेष सुसत्वमय ॥

रोला

विनय सहित ले विदा, नमन कर शिवा-शिखर प्रति ।
फिरे राज-प्रासाद वाहनासीन मरुत-गति ॥
जनकसभा रघुनाथ बंधुओं सहित पधारे ।
सकल सखा-जन कनकासन आसीन निहारे ॥
याज्ञवल्क्य के पास विराजे कौशिक मुनिवर ।
मानो ज्ञान समीप तपोबल देह धारकर ॥
शतानंद विद्वान - शिरोमणि गौतम-नंदन ।
ऋषिवर अष्टावक्र, पंचशिख धर्मसुवाहन ॥
कौशिक - धर्मव्याध-श्वेत- मांडव्य - पराशर ।
सुत लक्ष्मीनिधि, बंधु कुशध्वज पृथकासन पर ॥
निगमागम-शस्त्रास्त्र-काव्य-कृषि-नय पारंगत ।
बैठे निज-निज स्थान, स्वविषय-विमल-विग्रहवत ॥
सजे मध्य, धर राजदंड नृप सीरध्वज त्यों ।
ब्रह्म-तेज उद्दीप्त सुरेन्द्रासन-दीवट ज्यों ॥
उठी सभा सब देख अवधपति का शुभागमन ।
स्नेह-समादर सहित नृपति ने जामाता-गण ॥

युगल-युगल युग ओर बिठाये निज निज-आसन ।
लगे जनक नृप, तीर्थ भरे हिमवान सुशोभन ।।
माना जीवन धन्य सभी ने कर प्रभु दर्शन ।
अधिकारी-जन लगे राष्ट्र का करने चिंतन ।।
बोले अष्टावक्र "राम! तव अश्वमेध से ।
हो संस्कारित पुनः स्वसंस्कृति अग्नि-वेष से ।।
जन-जीवन की शुद्धि-हेतु यज्ञों की रचना ।
की विधि ने विधिवत् विचार श्रुति-सौध अल्पना ।।
धर्म भूप का कारण, भूप काल का कारण ।
धर्म-निवारक नृप करता निज स्वय निवारण ।।
धर्म, विधा को अश्रुत-अपठित-अज्ञ मानते ।
पर कण-कण का सूक्ष्म-तत्व मर्मज्ञ जानते ।।
नृप सर्वज्ञाचरण करे अल्पज्ञ-वेष त्यों ।
धारे भुवनाधार-श्रीश को अंक शेष ज्यों ।।
रवि-किरणों सम तेजो राशि विमल हों अनुचर ।
सर से सर सम,दधि से दधि सम लें समुचित कर ।।
केन्द्र गगन निधि में पल-पल कण-कण कर संचित ।
नत मुख,मुखरित करें वित्त,घन-चित-सम वितरित ।।
सदानुचर पहचान, बनाती नृप को ईश्वर ।
राम! अन्यथा सत्य नरक के दाता चाकर ।।
भरा महत्वाकांक्षा निज हित-अहित-लीन मन ।
देश-हेतु निरपेक्ष, पठन-पदवी-पद साधन ।।
धन-संचय साधना, सिद्धि संपन्न-स्वजीवन ।
प्रायः बना स्वलक्ष्य नृपति - सेवन करते जन ।।
और कुष्ट में खाज अवधपति! तव बन जाती ।
नृप-प्रमाद-वश दृष्टि शत्रु की जब पड़ जाती ।।
रखे प्रशासक भूप अतः बहु भांति परखकर ।
तिस पर भी चर और रखे चर पर भी प्रतिचर ।।

धार धर्म का कवच, देखता दश-दिशि ईश्वर ।
करे राज्य उदयास्त भूमि पर अभय कल्प-भर ।।
पुनर्जन्म-परलोक-पुण्य-पापादिक का भय ।
रखता नृप को मनुज, अन्यथा दानव दुर्जय ।।
जिसका केवल लक्ष्य, रहे सुस्थिर वंशासन ।
करता चित्त अशांत सदैव कुशंका-चिंतन ।।
चिंता से भय उदय, कीच से दुष्ट-गंध सम ।
अधिकारों का दंभ असाध्य त्रिदोष-ताप सम ।।
भूल प्रजापालन तब बनता भूप दुशासन ।
लेता उसको लील उसी का पाप-हुताशन ।।
चाटुकार-आलसी-भ्रष्ट-शंकित गति-विधि मय ।
यद्यपि चिनगी स्वल्प अनुग,पर राज्य-तुषा-क्षय ।।
जब दुर्गुण-दल पनप-पनप संकोच त्यागता ।
राष्ट्र-द्रोह की संज्ञा भ्रष्टाचार धारता ।।

दोहा

राज्यतंत्र-गणतंत्र यों, बनते यम-उपहार ।
निगल साधना-हीन को, ज्यों लेते अभिचार ।।

रोला

राज्यतंत्र का केन्द्र एक राजा ही होता ।
यदि हो जाता पतित, प्रथम अपने को खोता ।।
हो यदि जागृत प्रजा, न होता तो बहु धोखा ।
प्रजातंत्र का गणित और ही किंतु अनोखा ।।
प्रजातंत्र में क्योंकि देखता जन-जन सपना ।
है यह जितना सुखद,दुखद भी निश्चित् उतना ।।
यहां गौण कर्तव्य, प्रमुख अधिकार-भावना ।
भोजन-वाहन-भवन-भोग की उच्च कामना ।।

प्रचुर महत्वाकांक्षा फिर जो नाच नचातीं ।
धर्म-कर्म-नय राशि निशा-कज सी मुँद जातीं ।।
दस्युदलों से नित्य-नवल दल आते-जाते ।
आकर्षक-रव ग्रामसिंह सम गगन गुँजाते ।।
छलना-सम रच रास, मूढ़ व्यामोहित करते ।
देख व्यवस्था-भंग तिमिर खल घूक निकलते ।।
पद-कंदुक सम निमिष-निमिष दिशि नियम बदलते ।
पंगु-प्रशासन अध्यादेश-यष्टि पर चलते ।।
अभय समाज-विरोधी बन मनमानी करते ।
प्रजातंत्र के दल जिनके आँचल में पलते ।।
सदा समस्यायें यूं तो रहतीं सुरसा सी ।
किंतु दानवी उन्हें बनाते रक्त-पिपासी ।।
समाधान से हीन, लीन अपने में रहकर ।
रखकर नेता नाम, बनाकर संकट दुस्तर ।।
देते अद्भुत नाम, अजात-समस्याओं को ।
समाधान के नाम जन्म नव-विपदाओं को ।।
सत्याग्रह के नाम दुराग्रह-मय आंदोलन ।
क्राँति-प्रगति के नाम अराजकता के नर्तन ।।
शक्ति-प्रदर्शन-हेतु जुटाने अज्ञ-दीन जन ।
सुविधाओं के नाम अरण्य-रुदन के दर्शन ।।
तुष्टिकरण-उत्कोच प्राप्त कर पोच-समर्थन ।
भड़का कर भावना सेकते कर, कर ईंधन ।।
गुरुकुल तजकर छात्र, त्याग निर्माण श्रमिक-गण ।
कृषक खेत से, वणिक हाट से, घर-घर से जन ।।
स्वयं निकल कुछ, बाध्य शेष को कर निकालते ।
पुर-पुर पथ-सर मत्त-द्विरद-सम मसल डालते ।।
यदि शासन प्रतिरोध करे तो अत्याचारी ।
मौन रहे तो तो प्रजा नपुँसक कहती सारी ।।

दोहा

दल तो दल-दल बन स्वयं, जलते निज-कृत-गाज ।
पर जाते पापी निगल, सबल राष्ट्र-गजराज ।।

रोला

देख समय का रूप, बदलता नेता करवट ।
देख पथिक को ज्यों पुंश्चली चीतती मरवट ।।
बनते गाढ़े मित्र, शत्रु कल के पा अवसर ।
पद-हित करते संधि सकल सिद्धांत त्याग कर ।।
पद पाते ही पुनः दंभ-अहि फण फैलाता ।
कल का प्रेम-प्रसंग प्रेत-लीला बन जाता ।।
कल तक जो स्तुति-हेतु, खोज शब्दों की करते ।
वे निंदावलि-कोष-वेष प्रत्यक्ष प्रगटते ।।
राजनीति का मानचित्र शिशु-पाटी बनता ।
अनघड़-अक्षर प्रात-निशामुख चितता-पुतता ।।
ज्यों मसान-द्विज-यष्टि प्रतिक्षण बलती-बुझती ।
दल-परिवर्तन-सिद्ध-गिरा त्यों वेष बदलती ।।
प्रेम-स्वांग-वश पुनः परखना, परखा पड़ता ।
ज्यों कीचड़ में नहा फाग में हँसना पड़ता ।।
गाते कोकिल सरिस घूम अंडे कुछ देते ।
कुछ कागों से कांव-कांव कर उनको सेते ।।
वंश-वृद्धि-हित अन्न चोंच में कुछ चुन लाते ।
पिक-पोतक चुग तुरत सामने फुर उड़ जाते ।।
कांव-कांव कटु शून्य-कूट कूटती विचरती ।
कोकिल छिपती मौन, कीच बन वर्षा जलती ।।
त्रिय-चरित्र के सूक्ष्म-भेद, लख प्रजातंत्र को ।
जपने लगते मौन, नमित-मुख महामंत्र को ।।

इससे वैरी श्रेष्ठ दुष्ट सम्मुख तो दिखता ।
पर यह क्रीड़ा-सर्प गरल ले सछल विहँसता ।।
और इसी से विश्व-शक्तियां अवसर पाकर ।
करतीं हस्तक्षेप विविध-मुद्रा दर्शाकर ।।
ज्यों जाले में कला - दंभ-वश मकड़ी फँसती ।
त्यों सत्ता-स्वामिनी परायी दासी बनती ।।
ज्यों दीना दीनत्व प्रकट कर वेश्या बनती ।
पुन: मान-हित मान-सहित खल को प्रिय कहती ।।
विश्व-शक्ति का नाम दीन हो त्यों दल लेते ।
देश - धर्म का गर्व त्रसित-कुण्ठित हो देते ।।
गृह-विग्रह में फूंक देश का देते यौवन ।
पर-कर पुतली बने नाचते, हुए अचेतन ।।
शनै:-शनै: वह दुष्प्रभाव इतना बढ़ता है ।
आ दबाव में देश-कार्य तजना पड़ता है ।।
भाषा-भूषा अमर-सुसंस्कृतियां यों मिटतीं ।
ज्यों तन तजते समय प्राण-शक्तियां सिकुड़तीं ।।
क्रूर भेड़िये भेड़-हेतु केवल टकराते ।
देख अन्यथा एक-एक को पथ से जाते ।।
देख देश की कला-सम्पदा, विश्व-शक्तियां ।
मायाविनियां क्रूर धारतीं नानाकृतियां ।।
करतीं दे ऋण - अन्न विविध उद्योगस्थापन ।
फिर करतीं देशीय-वस्तु से मन उच्चाटन ।।
करा तस्करी पुन: देश के पतित खोजतीं ।
सूंघ बाघ-सम मृग पर मृग यम बना थोपतीं ।।
संस्कृति के आदान-प्रदान नाम पर खुलकर ।
चोरी से डाके पर आ जाते पा अवसर ।।
करतीं अंग-प्रदर्शन कोलिन-खला उतरतीं ।
चुग्गा देकर सुग्गों सम जन-मन वश करतीं ।।

हर हिय-लोचन, लोप स्नेह संस्कृति का करतीं ।
नगर-नगर की डगर-डगर में विहँस विचरतीं ।।
करतीं युवजन भ्रष्ट, भेद पल-पल का लेतीं ।
कण-कण का रस चूस गरल-मय हाला देतीं ।।
ऊपर से नीचे तक फिर वह क्रम आता है ।
अनायास ही दास देश तब हो जाता है ।।
ध्वजा उतरती नहीं, न मुद्रा - चिन्ह बदलते ।
पर-हस्ताक्षर नहीं किसी पत्रक पर दिखते ।।
देती संसद् जिसे समर्थन अति हर्षाकर ।
शव दिखता शिव सरिस, वस्तुतः पर-प्रेताकर ।।
गृह-नय-शिक्षा-श्रम-विदेश- सूचना - प्रसारण ।
कृषि-रक्षा-उद्योग- वित्त - वाणिज्य - पर्यटन ।।
दृष्टि-हीनदृग, गति-विहीन पग निरुत्साह मन ।
गिरा रहित मुख, स्वांस गणित रत अस्तंगत तन ।।
करतीं स्वजन उदास, हास्य देतीं पर-जन को ।
कैसे निज योजना लगेंगो बोलो मन को ।।
यद्यपि सहज असंभव प्रथम-दृष्टि में लगता ।
किंतु गहन चिंतन-रत नर प्रत्यक्ष निरखता ।।
नेता-धूर्त प्रजाजन - मूर्ख भ्रष्ट - अधिकारी ।
और बाह्य-षड्यंत्र मिलें आ पापाचारी ।।

दोहा

सद्-शिक्षण का लोप कर, घड़ते नव इतिहास ।
देश पंगु सा देखता, असमय प्रलय-विलास ।।
करते दुखित विशेषतः, जैसे राहू-केतु ।
प्रजातंत्र में त्यों अधिक, चिंता चिंतन-हेतु ।।

रोला

किंतु न इसका अर्थ, त्याज्य गणतंत्र सर्वथा ।
पर ज्यों करती बीज ऊषरस्थली अन्यथा ।।
त्यों संस्कार-विहीन जनों के हित न तंत्र यह ।
अभय-प्रबुद्ध-चरित्रयुतों हित सिद्ध-मंत्र यह ।।
करें महात्माजन बढ़ प्रथम सुदृढ़ अनुशासन ।
पक्षपात विरहित हों सदा स्वच्छ-निर्वाचन ।।
हो पल-पल संघर्ष, इसी की संज्ञा जीवन ।
किंतु मधुर-स्वर हो कुल-वधु कंगन सा खन-खन ।।
फिर न तनिक भय, नित्य बने बिगड़ें सौ-सौ दल ।
महापाप मतभेद न, हैं, होते, होंगे कल ।।
राष्ट्र-भक्ति साकार रूप माधुर्य-भाव का ।
जन्मभूमि के सम्मुख वैभव तुच्छ स्वर्ग का ।।
गंगाजल जल सकल, चतुष्फल कण-कण रज का ।
वृक्ष-वृक्ष का पत्र, पितामह नंदन-वन का ।।
शैल-शैल की शिला, नगर-वन-पथ का कंकर ।
दलदल -ऊषर-विजन-अगम्य-हिमाच्छादित-सर ।।
दर्शनीय अविभाज्य - अंग शुभ जन्मभूमि के ।
परम ललित शृंगार प्रकृति की भाव- ऊर्मि के ।।
भाषा-भूषा - मूल विहाराहार - प्रथा-नय ।
महापुरुष-मत-वाद-विधा वैविध्य समुच्चय ।।
वासन्ती-वैबुध्य परमशुभ सौरभ-कलरव ।
तत्व त्राध्य, तारुण्याप्लावित निश्छल शैशव ।।

सोरठा

ममता पारावार, सारागार असार का ।
किये सकल शृंगार, राष्ट्र ब्रह्म साकार ही ।।

हो अक्षत यह भाव, भयद न कोई तंत्र-दल ।
महा-मत्स्य की नाव, देगी क्षय में भी शिखर ।।

रोला

अतः दूरदर्शी शुभ-दर्शी नृप-नेता हित ।
देश-धर्म को सच्चरित्र हो रखना समुचित ।।
राम ! अन्यथा वह नृप-नेता क्या, बस पाला ।
होता, दे दुष्काल देश को काल-निवाला ।।
यद्यपि तव-प्रति कथन, सूर्य को दीप दिखाना ।
वेद-विहित ऋषि-कर्म जगत को पथ दर्शाना ।।
तव माध्यम से आज, उसी की कुछ सुपूर्ति की ।
नृप-नेता है कौन, सूपमा तव सुमूर्ति की ।।
शतशः आशीर्वाद तुम्हें मेरा रघुनंदन ।
चरित-सूर्य तव करे प्रकाशित भुवन-कमल-वन ।।
अनुज-अनुग आदर्श भरत-लक्ष्मण-रिपुसूदन ।
तव सुकीर्ति से नृप दशरथ भोगें इंद्रासन ।।
करे वृद्धि तव यश की नृप ! संतान तुम्हारी ।
हो दिनकर-कुल-छत्र तले भू स्वर्ग-दुलारी ।।"
पा ऋषि की आशीश, राम ने शीश झुकाया ।
नय-पथ से सद्-राग-भवन नवराग समाया ।।
दौवारिक ने किया तभी आकर आवेदन ।
"ऋषिवर गालव, भूप ! पधारे लिये शिष्यजन ।।"
उठी जनक के साथ सभा, सुन साधु-आगमन ।
लाये कर सम्मान, बिठाया ऋषि को आसन ।।
बोले ऋषि "मैं राम ! तुम्हारे कारण आया ।
पूर्व-सिंधु पर शतकंधर की काली-छाया ।।
मँडराती तव सुयश सूर्य पर राहू बनकर ।
लो दशकंधर विजयि ! विजय-धनु सजा दिव्य-शर ।।

दशकंधर से बली दशगुणा है शतकंधर ।
क्रूर पातकी नीच परम निर्लज्ज भयंकर ।।
मेघनाद ने प्रकृति निराली इसकी, लखकर ।
रखा परिध पर परिधि बांधकर समय-समय पर ।।
महिरावण-नारान्तक सम न मिला आमंत्रण ।
असम्मान निज मान न उतरा यह लंकारण ।।
पहिले तो वाणिज्य - पोत लूटा करता था ।
मेघनाद से भेंट पुनः लेकर पलता था ।।
अब इन लंकनरेश-सौम्यभावों के कारण ।
अभय विचरता सिंधु-सिंधु कण-कण भरता व्रण ।।
कच्चा मानव-मांस, लहू पी-पीकर खाता ।
देश-देश की तीय क्रूर छल-बल से लाता ।।
करता नित - निशि मद्य-मांस से काली-पूजन ।
होता नव-विधि नित्य भैरवी-चक्र-प्रकाशन ।।
श्रुति-विपरीत कुमार्ग, न जो कह पाती रसना ।
उसकी होती नाथ ! नित्य उस खल के रचना ।।
अनुजा-तनुजा-अंब सकल सम्बन्ध जगत के ।
रखते अर्थ न रंच निकट उस घोर-दनुज के ।।
आया करने युद्ध न वह लंका में पामर ।
इसमें भी कल्याण निहित तव निश्चित रघुवर ।।"

दोहा

हँसे उपेक्षा भाव से, लखन फिरा धनु हाथ ।
देख नमित-मुख सीय-दिशि, मौन रहे रघुनाथ ।।
फिर बोले उठ जनक से, नत शिर कोसलपाल ।
"दें आज्ञा अब कर कृपा, माननीय ! तत्काल ।।"
सजे तुरत रथ-पालकी, अमित-अमित उपहार ।
भरे विलोचन सानुजा, सीता हुईं सवार ।।

प्रभु बोले भर भुज भरत, रिपुसूदन सस्नेह ।
"अंत पुर-सेना सहित, प्रियवर ! जाओ गेह ॥"
किया विभीषण ने तुरत, पुष्पक का आह्वान ।
जनक-सुनयना नमन कर, चढ़े राम भगवान ॥
मुदित ऋक्षपति-कीशपति, अंगद-लंकानाथ ।
द्विविद-मयन्दादिक चढ़े, पवनपुत्र के साथ ॥
हाथ थाम कर सुतों का, बोले नृपति विदेह ।
"समरोत्सव यह वृद्ध की, तुच्छ भेंट सस्नेह ॥"
किये सुनयना ने तिलक, दिये खड्ग बहु भेंट ।
उतर-उतर कर-कर नमन, पुनः खोस निज फेंट ॥

सोरठा

ले फिर आशीर्वाद, चढ़े राम रघुनाथ सह ।
करता मंगलनाद, चला विमान हृदय चुरा ॥